UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186809

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP--902—26-3-70—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/Sol V Accession No. H 3975

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा

[श्री वृन्दावनलाल वर्मा के प्रकाशित उपन्यासों का
आलोचनात्मक विवेचन]

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच्० डी० उपाधि के हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

लेखक—

डॉ० शशिभूषण सिंहल

बी० ए० (ऑनर्स), एम० ए०, पी-एच्० डी०
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य १०)

Checked 1965

मुद्रक : राजकिशोर अग्रवाल
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, बागमुजफ्फरखाँ, आगरा

नानी जी

स्व० श्रीमती लक्ष्मी देवी जी

की

पुण्य स्मृति में—

दो शब्द

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में बुन्देलखंडी पट पर अंकित गत-युगीन प्रेम और शौर्य के मोहक चित्रों के प्रति लेखक को बचपन से आकर्षण रहा है। उन उपन्यासों के अध्ययन के साथ मस्तिष्क में कुछ प्रश्न आये और उपन्यासकार के व्यक्तित्व को निकट से समझने की तीव्र इच्छा जगी। सन् १९५१ में लेखक को वर्माजी के समीप आने का अवसर मिला। उनके वार्तालाप, संस्मरणों तथा पत्रों आदि से संकलित उपन्यासकार के व्यक्तित्व के प्रकाश में उपन्यासों के अध्ययन एवं विश्लेषण कार्य को एक नवीन दिशा प्राप्त हो सकी। इस ओर अनवरत अध्ययन, मनन चलता रहा है। विगत सात वर्षों में वर्माजी के उपन्यासों पर लेखक की एक आलोचनात्मक पुस्तक तथा कुछ फुटकर लेख "अमृत पत्रिका", "आजकल", "साहित्य संदेश" आदि पत्रों में प्रकाशित हुए हैं।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के गत लगभग तीस वर्षों में रचित ५००० पृष्ठों के १७ उपन्यास* अपने विशद कलेवर के साथ निज का मूल्य रखते हैं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'प्राचीन' हमारा मनोरंजन तथा कुतूहल-वर्द्धन करने के साथ हमें वर्तमान में कार्य करने की स्फूर्ति और शक्ति प्रदान करता है। जिस प्रकार चिकित्सक प्राणधारियों की शरीर-रचना को भली प्रकार समझने के लिये कंकालों का अध्ययन तथा शवों की चीर-फाड़ करता है वैसे ही वर्माजी ने वर्तमान को भली प्रकार समझने तथा सुधारने के लिये पुरातन का गहन अध्ययन किया है। वे अतीत के अग्राह्य के दुष्परिणाम को सामने रखकर ग्राह्य को उभारते हुए पाठक को उसे ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं। वर्माजी ने इतिहास के चौखटे में मानव की शाश्वत समस्याओं और क्रियाओं को ऐसी विधि से संजोया है कि वे बीते युग की कहानी होकर भी हमारे 'आज' की चर्चा हैं।

वर्माजी ने ऐतिहासिक तथा सामाजिक, सभी उपन्यासों में भारत के पतन के मूलाधार 'समाज' को अपनी प्रयोगशाला बनाया है। विभिन्न घातक

***वर्माजी के नव-प्रकाशित उपन्यासों, 'भुवन विक्रम' तथा 'माधवजी सिंधिया' को मिलाकर संख्या १९ हो जाती है; इन उपन्यासों का विवेचन देखिए परिशिष्ट ४ में।**

सामाजिक कुरीतियों, मजदूरों, किसानों की हीन दशा का परिचय देते हुए उन्होंने भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की योजना प्रस्तुत की है। उनकी दृष्टि निर्बल को सबल, अव्यवस्थित को सुव्यवस्थित और कुरूप को सुरूप बनाने पर रही है।

वर्माजी का मानव-चरित्र संबंधी अध्ययन एवं अनुभव उल्लेखनीय है। उन्होंने निज के संपर्क में आये हुए अनेक स्त्री-पुरुषों को सजा-संवार कर अपने उपन्यासों में पात्रों का रूप प्रदान किया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी पुरानी सज्जा से भूषित पात्र वर्माजी के समकालीन बुन्देलखण्डी हैं। आज के तथा पूर्वकालीन बुन्देलखंडी निवासियों में मूलतः साम्य है। वर्माजी ने वर्तमान और पुरातन का समन्वय कर इतिहास की निरंतर अमिट आंतरिक शृङ्खला को सामने रखा है। उन्होंने बुन्देलखंडी चारित्रिक व्यक्तित्व को कुछ काल-विशेष की संकुचित परिधि से मुक्त कर स्थायी स्वरूप प्रदान किया है।

वर्माजी के अधिकांश उपन्यासों का घटना-क्षेत्र बुन्देलखंड है। बुन्देलखंड से वर्माजी का पीढ़ियों से अटूट संबंध है। उन्होंने यहाँ की प्रकृति– नदियों, मैदानों, पहाड़ों, खंडहरों की भयानकता, शुष्कता और सौंदर्य के सजीव दृश्य उपन्यासों में प्रस्तुत किये है। बुन्देलखंडी समाज की भाषा, गीत, त्योहारों, रीति-रिवाजों का सांगोपांग चित्रण उनके हाथों हुआ है। वस्तुतः वर्माजी के उपन्यासों को पढ़कर बुन्देलखंडी जगत् का एक बृहत् चित्र आँखों के आगे खिंच जाता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में वर्माजी के सन् १९५५ तक प्रकाशित समस्त उपन्यासों को एक क्रम में रखकर उनका विधिवत् आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास है। वर्माजी के उपन्यासों पर इस दिशा में सामग्री का प्रायः अभाव है। गत कुछ वर्षों से उनके उपन्यासों अथवा उनकी औपन्यासिक कला पर आलोचना-ग्रन्थों में किंचित् चर्चाएँ, पत्रिकाओं में कतिपय लेख तथा परीक्षोपयोगी दृष्टि से लिखी गई कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाश में आई हैं। लेखक ने वर्माजी के उपन्यासों के विश्लेषण-कार्य में भिन्न आधार ग्रहण किया है। उसने (हडसन, श्यामसुन्दरदास, गुलाबराय आदि) विद्वानों द्वारा प्रतिपादित उपन्यास संबंधी सिद्धांतों के निजी मनन, चिन्तन की कसौटी पर वर्माजी के उपन्यासों को कसा है। इस प्रकार वर्मा जी के उपन्यासों के तत्त्वों के विश्लेषण तथा परस्पर तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा उनके मूल में निहित उपन्यासकार की कला की खोज एवं उसके विकास का निर्देश-कार्य, लेखक की दृष्टि में उसका मौलिक प्रयत्न है।

(उपन्यास के प्रायः सर्वमान्य छः तत्त्वों के आधार पर वर्माजी के उपन्यासों

के अध्ययन को प्रबन्ध में छः अध्यायों में विभाजित किया गया है। यथा, उनके उपन्यासों में, कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, लेखन-शैली तथा जीवन-दर्शन। इनसे पूर्व, दो अध्यायों में क्रमशः वर्माजी के व्यक्तित्व की चर्चा है, और उपन्यास का स्वरूप निश्चित करते हुये वर्माजी के उपन्यासों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। प्रथम के अतिरिक्त सभी अध्यायों के आरंभ में अध्याय से संबंधित विषय की परिभाषा प्रस्तुत कर उसके अंगों एवं आवश्यक गुणों की समीक्षा की गयी है। तत्पश्चात् विषय की समीक्षा के आधार पर वर्माजी के उन्यासों के उस अध्याय-संबंधी तत्व का अध्ययन किया गया है। उस तत्व की उल्लेखनीय विशेषताओं को अपेक्षित उदाहरण देकर स्पष्ट करते हुए उनका विशद विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयत्न रहा है। अध्याय के अंत में विश्लेषण के फलस्वरूप संकलित सूत्रों का क्रम-बद्ध विवेचन कर निष्कर्ष के रूप में वर्माजी के उपन्यासों में उस तत्व के प्रयोग पर लेखक ने अपना मत बनाया है।

पहले निवेदन किया जा चुका है कि वर्माजी के व्यक्तिगत संपर्क के प्रकाश में लेखक को उनके उपन्यासों के अध्ययन में एक नवीन दिशा के दर्शन हुए हैं। जहाँ कहीं प्रबंध में कोई गुत्थी आयी है वहाँ लेखक ने, आलोचक के ही नहीं, वरन् उपन्यासकार के दृष्टिकोण से उसकी पृष्ठभूमि को हृदयंगम कर उसके निराकरण का प्रयत्न किया है। ऐसे स्थलों पर, भले ही लेखक और उपन्यासकार के विचार में साम्य या वैषम्य हो, उपन्यासकार के विचारों का उल्लेख किया गया है। लेखक को आशा है इस विधि से अध्ययन में रोचकता बढ़ी है और समस्याओं के विभिन्न पक्षों पर विचार करने का अवसर मिला है।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय, 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा' में लेखक ने उपन्यासकार के व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में सचेष्ट परिस्थितियों एवं शक्तियों पर विचार किया है। वर्माजी की वर्तमान शारीरिक अवस्था, स्वास्थ्य तथा व्यवहार के साथ उनके परिवार के पारम्परिक संस्कारों, बाल्यावस्था की प्रवृत्तियों तथा जीवन संबंधी अनुभवों को एक क्रम में पिरोकर उनके प्रभाव-स्वरूप वर्माजी के व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। भारत की बीसवीं शताब्दी के युग-धर्म के उनके इतिहास, साहित्य, धर्म, राज-नीति संबंधी विचारों पर पड़े प्रभाव को उसी विश्लेषण में ला रखा है। इन सब सूत्रों के आधार पर वर्माजी का व्यक्तित्व खड़ा कर उनके प्रतिबिंब को उनके उपन्यासों एवं लेखनशैली में आँकने की चेष्टा की गयी है। इस अध्ययन में लेखक ने वर्माजी के सम्पर्क में आकर व्यक्तित्व-अध्ययन-प्रक्रिया का विशेष-

तथा आश्रय लिया है। वर्माजी के व्यक्तित्व से संबंधित सामग्री का यत्र-तत्र से चयन तथा वर्माजी के उपन्यासों एवं व्यक्तित्व के मध्य कार्य-कारण-शृङ्खला की स्थापना का कार्य लेखक का निज का है।

दूसरे अध्याय, 'उपन्यास' और वर्माजी के उपन्यासों का वर्गीकरण' में उपन्यास के साहित्य से संबध का उल्लेख करते हुए विद्वानों द्वारा प्रस्तुत उपन्यास संबंधी परिभाषाओं के आधारभूत तत्त्वों को छान-बीन कर उपन्यास के मौलिक स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास है। उस स्वरूप की कसौटी पर वर्माजी के उपन्यासों को कसकर उनका प्रचलित वर्गों में विभाजन करने के साथ उन उपन्यासों को अन्य उप-विभागों में विभाजित करने के हेतु उपन्यासों के कुछ नवीन वर्गों की उद्भावना भी की है।

तीसरे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासों की कथावस्तु' में कथावस्तु की परिभाषा के साथ उसमें अपेक्षित गुणों तथा उसके प्रकारों का उल्लेख करते हुए लेखक ने वर्माजी के प्रत्येक उपन्यास के कथानक की संश्लिष्ट कथाओं को स्वतन्त्र रूप से अलग रखकर उनका सार प्रस्तुत किया है। उन स्वतन्त्र कथाओं के उपन्यास में महत्त्व, गुणों तथा परस्पर संपर्क आदि विशेषताओं का विवेचन 'अ' भाग मे करने के उपरान्त भाग 'ब' में कथाओं के स्रोत उल्लिखित है। ऐतिहासिक उपन्यासों से संबंधित सुप्रसिद्ध तथ्यों के प्रमाण में ऐतिहासिक ग्रन्थों को उद्धृत किया गया है, किन्तु उनके परम्परा अथवा किंवदन्तियों संबंधी अंशों तथा सामाजिक उपन्यासों के स्रोतों की खोज में लेखक को वर्माजी तथा कुछ बुन्देलखण्ड-निवासियों के संस्मरणों का आश्रय लेना पड़ा है। (ऐसे वार्तालापों अथवा संस्मरणों के स्रोत रूप में बारंबार उल्लेख से प्रबन्ध में अनावश्यक पुनरावृत्ति दोष आजाने के भय से लेखक ने इनका प्रायः उल्लेख नहीं किया।) अध्याय के अंत में निष्कर्ष-स्वरूप वर्माजी के उपन्यासों मे प्रयुक्त समान कथा-सूत्रों का उल्लेख करते समय उन पर किये गये उपन्यासकार के विविध प्रयोगों का विशेष विवरण दिया गया है। इस प्रकार उपन्यासकार की कथा-संबधी मूल कल्पनाओं एवं उनके कालानुसार विकास का स्पष्टीकरण है। वर्माजी के ऐतिहासिक कथानकों के स्रोत-सम्बन्धी निष्कर्ष प्रस्तुत कर उनकी ऐतिहासिक सामग्री के संचय की विधि को भी स्पष्ट किया गया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में तथ्य, कल्पना के परस्पर मिश्रण की दृष्टि से उनके विकास के क्रम की खोज का प्रयत्न है। उपन्यास की कथाओं का संपूर्ण उक्त विश्लेषण लेखक का मौलिक अध्ययन है।

चौथे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण' में पात्र, चरित्र, चरित्रों के प्रकार, चित्रणविधि संबंधी सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए

वर्माजी के पुरुष तथा नारी पात्रों को भिन्न कोटियों में रखकर उनपर विचार किया गया है। वर्माजी के प्रधान पुरुष पात्रों के चारित्रिक तत्त्वों में उपन्यासकार के विभिन्न प्रयोगों को लक्ष्य करना लेखक का ध्येय रहा है। यथा, प्रणयी पात्रों में क्रमशः उग्रता, समर्पण, दृढ़ता, रसिकता तथा निराशा आदि गुणों की प्रधानता का विश्लेषण है। वर्माजी की नारी सम्बन्धी धारणा का उल्लेख करते हुए उपन्यासों में उनके प्रधान नारी पात्रों के स्वरूप के क्रमिक विकास का परिचय प्रस्तुत है। अन्य कोटि के वर्गगत पात्रों की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में लेखक ने वर्माजी के कथानकों एवं पात्रों के परस्पर संबंध, पात्रों के आकर्षण के रहस्य, पात्रों के स्रोत, चरित्र-चित्रण-विधि आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। वर्माजी के पात्रों से संबंधित लेखक का यह शोध मौलिक है।

पाँचवें अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासों में कथोपकथन' में संवादों की नाटकीयता, तीव्रता, संक्षिप्तता, भावानुकूलता आदि उल्लेखनीय विशेषताओं पर विचार करते हुये उनके प्रयोग में उपन्यासकार की कला एवं उसके विकास पर प्रकाश डाला गया है। वर्माजी के कथोपकथन विषयक गुणों की लेखक द्वारा यह खोज मौलिक है।

छठे अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि' में उनके अधिकांश उपन्यासों का घटना-क्षेत्र बुन्देलखण्ड निश्चित करने के उपरान्त उपन्यासों की राजनीतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के प्रभाव को सामाजिक परिस्थिति एवं मनोवृत्ति पर आँकने का प्रयास है। साथ ही उपन्यासों के प्राकृतिक वातावरण की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार की वातावरण-सृष्टि संबंधी विधि का विश्लेषण किया है। वातावरण सम्बन्धी उक्त विश्लेषण लेखक का मौलिक प्रयास है।

सातवें अध्याय, उपन्यासों में 'वर्माजी की भाषा और लेखन-शैली' में वर्माजी की भाषा पर विचार करते हुए उनके पात्र संबंधी शब्द-चित्रों, उपमाओं, विभिन्न प्रकार के वर्णनों और कहावतों, उक्तियों आदि के प्रयोगों का लेखक ने मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

आठवें अध्याय, 'वर्माजी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन' के अंतर्गत उपन्यासों में प्रत्यक्ष रूप से अथवा कथा के माध्यम से व्यक्त उनकी मान्यताओं एवं धारणाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त उपन्यासों की प्रमुख विशेषताओं (उद्देश्य-सम्बन्धी) का विवेचन किया गया है। इस प्रकार लेखक ने वर्माजी के जीवन संबंधी दृष्टिकोण एवं उसकी अभिव्यक्ति की विधि निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत की है। लेखक की उक्त गवेषणा मौलिक है।

'परिशिष्ट' में वर्माजी से हुए गत सात वर्षों के पत्र-व्यवहार में से उल्लेखनीय बीस पत्रों को उद्धृत किया गया है। इन पत्रों से लेखक के अध्ययन तथा उसकी तत्सम्बन्धी जिज्ञासाओं पर प्रकाश पड़ सकेगा। साथ ही ये पत्र वर्माजी के व्यक्तित्व एवं विचारधारा पर सीधा प्रकाश डालेंगे, ऐसी आशा है। इनसे वर्माजी की 'अपनी कहानी, अपनी जुबानी' का आनन्द भी आना संभव है।

गुरुजनों की कृपा के विषय में बिना कुछ कहे बात समाप्त करने को जी नहीं चाहता। वर्मा जी के उपन्यासों पर शोध-कार्य में पथदर्शक (गाइड) डा० दीनदयालजी गुप्त, एम्० ए०, एल्० एल्० बी०, डी० लिट्०, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, का लेखक पर वरद हस्त रहा है। मार्ग में आई अड़चनों तथा कठिन समस्याओं को हल करने में उनका प्रौढ़ एवं सुलझा हुआ दृष्टिकोण सदा सुलभ रहा। श्रद्धेय डाक्टर साहब जैसे पथ-प्रदर्शक से जो स्नेह और मार्ग-निर्देशन प्राप्त हुआ उस के आगे लेखक नत है।

हिंदी साहित्य के वयोवृद्ध दिग्गज डा० गुलाबरायजी के अमूल्य ग्रन्थों 'काव्य के रूप' तथा 'सिद्धान्त और अध्ययन' से लेखक को उपन्यास-सम्बन्धी दृष्टि-कोण बनाने में जो सहायता प्राप्त हुई है, उसका साक्षी स्वयं यह प्रबन्ध है। सुप्रसिद्ध आलोचक डा० सत्येन्द्र के अनुभवी एवं परिश्रमशील परामर्श के प्रति लेखक आभारी है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी विचार-विनिमय के हेतु लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा के पास झाँसी गया और रहा। उन्होंने जिस उत्साह और स्नेह से लेखक को देखा, वह अनिवर्चनीय है। वर्मा जी के सुपुत्र तथा उनकी रचनाओं के प्रकाशक श्री सत्यदेव वर्मा से खोज-कार्य में जो सामग्री एवं सहर्ष सहायता मिली, भुलाई नहीं जा सकती।

लखनऊ — शशिभूषण सिंहल

दिनांक जनवरी १, १९५८

विषय-सूची

पृष्ठ

अध्याय १, उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा १

वृन्दावनलाल वर्मा और उनके संस्कार ३
वर्माजी ने ऐतिहासिक उपन्यास क्यों लिखे ४
उनका क्षेत्र बुन्देलखंड ही क्यों ५
वर्माजी पर वाल्टर स्काट का प्रभाव ६
वर्माजी के उपन्यासों में, इतिहास के झरोखे से वर्तमान में ६
बीसवीं शताब्दी और वर्माजी ७
वर्माजी की 'नाटक' में रुचि ८
वर्माजी का धर्म संबंधी दृष्टिकोण ९
वर्माजी राजनीति के समीप ९
वर्माजी सक्रिय राजनीति में १०
वर्माजी के उपन्यासों पर प्रभाव ११
वर्माजी—बुन्देलखंडी ! ११
वर्माजी का सजीव व्यक्तित्व और बाँकी शैली १२

अध्याय २, 'उपन्यास और वर्माजी के उपन्यासों का वर्गीकरण' १३

साहित्य—जीवन—उपन्यास १५
"उपन्यास" की व्युत्पत्ति १६
उपन्यास के तत्व १७
उपन्यासों के प्रकार १८
(अ) तत्वों के आधार पर १८
वर्माजी के उपन्यास १९
(ब) वर्ण्य वस्तु के आधार पर २५
सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास २५
इतिहास है क्या ? २६
इतिहास—संघर्षों का लेखा-जोखा २७

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास २८
ऐतिहासिक उपन्यास—क्यों ? ३०

वर्माजी के उपन्यासों का वर्गीकरण—

(अ) सामाजिक उपन्यास ३२
(ब) ऐतिहासिक उपन्यास ३२
(स) लोक कथात्मक उपन्यास ३३

वर्माजी के (अ) सामाजिक उपन्यासों का वर्गीकरण—

(क) वैवाहिक समस्या ३३
(ख) धर्म-परिवर्तन-समस्या ३४
(ग) ग्राम-सुधार-समस्या ३४
(घ) ग्रामीण समाज संबंधी ३४
(ङ) नागरिक समाज संबंधी ३४
(च) ग्रामीण-नागरिक-समाज संबंधी ३४

वर्माजी के (ब) ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण— ३४
(क) शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास ३५
(ख) ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यास ३५
(ग) १३वीं शताब्दी (से संबंधित उपन्यास) ३६
(घ) १५वीं शताब्दी का अंत और १६वीं का प्रारम्भ ३६
(ङ) १८वी शताब्दी ३६
(च) १९वीं शताब्दी का पूर्व और मध्यकाल ३६

अध्याय ३, वर्माजी के उपन्यासों की कथावस्तु ३७

कथावस्तु ३९
अच्छा कथानक ४०
कथानक के प्रकार ४१

वर्माजी के उपन्यासों की कथायें, कथाओं के विधान और स्रोत—

गढ़ कुंडार ४२
लगन ४८
संगम ४९
कुंडली चक्र ५४
प्रेम की भेंट ५६
प्रत्यागत ५८

बिराटा की पद्मिनी ५६
मुसाहिब जू ६५
कभी न कभी ६९
झांसी की रानी ७८
कचनार ८२
अचल मेरा कोई ८७
मृगनयनी ९०
सोना ९९
अमरबेल १०२
टूटे काँटे १०७
अहिल्याबाई ११४
कुछ निष्कर्ष ११७

वर्मा जी के समान कथासूत्र

(अ) प्रणय कथायें ११८
(ब) असफल, एकांगी, प्रेम की कथायें १२२
(स) प्रेम-त्रिकोण १२५
(द) सफल दाम्पत्य जीवन १२७
(इ) पति-सुधार १२८
(फ) असफल वैवाहिक जीवन १२८
(ज) मगलमय अंत के प्रतीकस्वरूप विवाह १२९
वर्माजी ऐतिहासिक कथानकों के स्रोत १३०
१—इतिहास १३०
२—स्थानीय इतिहास १३०
३—अवशिष्ट वातावरण १३१
४—बीती घटनायें १३२
५—लोक कथायें १३२
६—कल्पना १३३
वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास १३३

अध्याय ४, वर्माजी के उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण १३५

पात्र और सजीवता १३७
चरित्र १३८
पात्रों के प्रकार १३९

चित्रण-विधि १३६
पात्र तथा कथानक १४१
वर्माजी के पात्र १४१
पात्र की बाह्याकृति और अन्तःकरण १४२
उग्र प्रणयी नागदेव और अग्निदत्त १४३
प्रणय में पूजक—दिवाकर और कुंजरसिंह १४७
दृढ़ अचल और रसिक सुधाकर १५२
निराश प्रेमी चम्पत १५७
स्मृतिलोप का एक प्रयोग---दलीपसिंह १५८
आदर्श शासक---मानसिंह १६०
तीन खल पात्र (अ) स्वार्थी, धूर्त भुजबल १६२
(ब) अहम्मन्य नवलबिहारी १६३
(स) कुटिलमति रामदयाल १६४
अधकचरा दार्शनिक ललितसेन १६७
दुर्बल-चरित्र-नायक सम्पत १६८
लोभी भिखारीलाल १६८
उद्दण्ड नन्दराम १६९
वर्माजी के नारीपात्र १७०
नारी में दैवी तत्व १७१
नारी या देवी १७२
नारी व्यवहारिकता की ओर १७४
नारी—रणचंडी १७६
नारी—एक समन्वय १८१
वर्माजी की नारी के कुछ अन्य रूप---(अ) ईर्ष्यालु उजियारी १८५
(ब) आकांक्षामयी गोमती १८६
(स) लालसामयी कुन्ती १८६
(द) लोलुपा अंजना १८७
(इ) कर्कशा रोनी १८८
(वर्माजी के अन्य पात्र)-- सामतवादी पात्र १८८
अन्य पात्र १९२
अँगरेज़ पात्र १९३
वर्माजी के पात्रों से संबंधित कुछ मौलिक निष्कर्ष
(अ) कथानक और पात्र १९३

(ब) पात्रों के आकर्षण का रहस्य १९५
(स) पात्रों का स्रोत १९८
(द) स्थूल चरित्र-रेखायें १९९
(इ) वर्माजी की चित्रण-कला और विकास २००

अध्याय ५, वर्माजी के उपन्यासों में कथोपकथन २०३

कथोपकथन और अपेक्षित गुण २०५
वर्माजी के संवादों में नाटकीयता २०६
वर्माजी के पैने संवाद २१३
वर्माजी के भावानुकूल संवाद (अ) प्रणय २१७
(ब) क्रोधावेश २२२
वर्माजी के युवती-वार्तालाप २२४
वर्माजी के उपन्यासों में लोकभाषा का प्रयोग २२५
वर्माजी के मुसलमान पात्रों की अस्वाभाविक भाषा २२७
निष्कर्ष २२९

अध्याय ६, वर्माजी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि २३३

वातावरण २३५
बुन्देलखण्ड २३६
वर्माजी के बुन्देलखण्डी उपन्यास २३८
(वर्माजी के उपन्यासों में) राजनीतिक उथल-पुथल और समाज २३८
ऐतिहासिक परिस्थितियाँ, २३९
सामाजिक परिस्थिति और मनोवृत्ति २४१
त्योहार २४३
रीति-रिवाज २४५
प्रकृति और वर्माजी २४५
(वर्माजी द्वारा) भौगोलिक विवरण २४६
प्रकृति-चित्र २४७
लम्बेवर्णन २५१
प्रकृति का शुष्क पक्ष २५२
निष्कर्ष २५३

अध्याय ७, उपन्यासों में वर्माजी की भाषा और लेखन-शैली २५५

भाषा और शैली २५७
वर्माजी की भाषा २५८
(वर्माजी द्वारा) पात्र-चित्र २५८
उपमाओं का प्रयोग २५९
वर्णन (अ) भावात्मक २६२
(ब) व्यंग्यात्मक २६३
(स) युद्ध और प्रणय २६३
कहावत और उक्ति-प्रयोग २६५
नाटकीय व्यंग्य २६६

अध्याय ८, वर्माजी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन २६७

जीवन-दर्शन २६९
अभिव्यक्ति की विधि २६९
यथार्थ और आदर्श २६९
(वर्माजी के उपन्यासों में) मानव जीवन और प्रणय २७०
जातिगत भेदभाव २७३
(वर्माजी के उपन्यासों में) निर्बल प्रबल हो सकते हैं २७६
युद्ध क्यों ? २७७
वर्माजी के उपन्यासों का उद्देश्य २७७
वर्माजी का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण २८०

परिशिष्ट २८३

परिशिष्ट १—वर्माजी के कुछ पत्र २८५
पत्र सं० १, दि० २३-११-५०, २८५
,, २, ,, ९-१२-५०, २८७
,, ३, ,, २६-१२-५०, २८८
,, ४, ,, २८-२-५१, २९०
,, ५, ,, ११-३-५१, २९२
,, ६, ,, १७-३-५१, २९३
,, ७, ,, १२-७-५१, २९५
,, ८, ,, २८-१-५२, २९६

,, ६, ,, २८-४-५४, २६७
-, १०, ,, ६-५-५४, २६८
,, ११, ,, २२-११-५५, २६८
,, १२, ,, २०-१-५६, ३००
,, १३, ,, २८-१-५६, ३०१
,, १४, ,, १२-२-५६, ३०४
,, १५, ,, १७-२-५६, ३०५
,, १६, ,, २३-२-५६, ३०६
,, १७, ,, २६-२-५६, ३०७
,, १८, ,, २५-७-५६, ३०७
,, १६, ,, २१-१२-५६, ३०८
,, २०, ,, ६-७-५७, ३०६
परिशिष्ट २—वर्माजी के उपन्यासों की रचना-कालक्रम मे सूची ३१४
परिशिष्ट ३—सहायक ग्रन्थ-सूची ३१५
(क) श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास ३१५
(ख) सहायक ग्रन्थ (हिन्दी) ३१६
(ग) सहायक पत्र-पत्रिकायें ३१७
(घ) सहायक ग्रन्थ, (अँग्रेजी) ३१८
परिशिष्ट ४—वर्माजी के नव-प्रकाशित उपन्यासों (भुवनविक्रम, माधव जी सिंधिया) का विवेचन,— ३१६

—:o:—

अध्याय १

उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्मा और उनके संस्कार

बलिष्ठ देह और गम्भीर आकृति के, ये है झांसी वालों के 'बड़े भैया' और हमारे उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा। ६८ वर्ष से अधिक आयु है[1] फिर भी उनकी देह में मल्लों जैसा बल, और स्फूर्ति शेष है। सिर पर पीछे कढ़े हुए चमकते थोड़े से बाल और माथे पर जीवन-संघर्ष की साक्ष्य भरती उभरी लकीरें विद्यमान हैं। बुंदेलखंड की प्रचंड घाम, शीत, वर्षा और कष्टों में पलने के कारण उनका गेहुंआ रंग श्यामल हो चला है।

वृन्दावनलाल वर्मा का वंश जाति से कायस्थ किन्तु कर्म से क्षत्रिय रहा है। उनके पूर्व पुरुष महाराज क्षत्रसाल के सैनिक थे। उन्होंने तलवार, तमंचे की दुनियाँ में पैठ कर योद्धा-जीवन देखा था। वर्मा जी के प्रपितामह आनन्द-राय मराठों के दीवान और फौजदार थे। सन् १८५७ में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के झंडे के नीचे अंग्रेजों से लड़े। अन्त में किसी अंग्रेज अफसर की गोली खाकर युद्ध में ही उन्होंने प्राण विसर्जन किये थे। पितामह कन्हैयालाल विद्रोह-दमन के पश्चात् अंग्रेजों के बन्दी रहे। विक्टोरिया की शांति-घोषणा के उपरान्त उन्हें मुक्ति मिल पाई थी। पिता अयोध्याप्रसाद ने अवश्य इस धारा को मोड़ दिया। वे साधारण पढ़-लिखकर सरकारी नौकर हो गये थे।[2]

वर्मा जी को उत्तराधिकार में मिली है शौर्य परम्परा और बचपन में परदादी से मिली वीर सेनानी लक्ष्मीबाई सम्बन्धी कहानियों की धरोहर। यह धरोहर उनके अबोध हृदय को शौर्य-प्रेम का एक अस्पष्ट सन्देश दे गयी थी। उनका शरीर स्वस्थ था, कुछ कर दिखाने का इच्छुक। प्रारम्भ से ये खेलकूद और

१. **जन्म तिथि...पौष शुक्ला अष्टमी सम्वत् १९४५; ९ जनवरी सन् १८८९—वर्मा जी का पत्र, सं० ११; २२. ११. ५५.**

२. **अपनी कहानी...वृन्दावनलाल वर्मा [अपूर्ण, अप्रकाशित]**

व्यायाम के घोर प्रेमी रहे है। नदी में नहाने, तैरने और जंगलों में घूमने के शौकीन। खिलाड़ी एक नम्बर के। हॉकी और कबड्डी में सबसे आगे रहते थे। अब भी उनकी रग-रग में गर्मी है। व्यायाम करते है और उनके शब्दों में— 'हमें आज भी डंड पेलना अच्छा लगता है।')

ऐतिहासिक उपन्यास क्यों लिखे

इस प्रकार वर्मा जी के चित्त पर वीर-प्रसू-भूमि, बुंदेलखंड की गाथाओं और वंश की परम्पराओं के संस्कार थे ही, उन का स्वस्थ शरीर कुछ कर दिखाने को, किसी नेतृत्व को ग्रहण करने को लालायित था। उन्होंने बचपन में जो पुस्तकें पढ़ीं वे विदेशियों के रंग में रंगी हुई थी। उनसे उनके बाल-सुलभ कोमल चित्त में जमे संस्कारों को एक ठेस लगी। यह ठेस या यह प्रतिक्रिया ही उनके सुप्त कलाकार को जगाने और विकसित करने में सहायक हुई। बचपन में उन्होंने बंगला से अनूदित नाटक 'अश्रुमति' पढ़ा। उसमें राणा प्रताप के देश-प्रेम की कथा थी किन्तु साथ ही राणा की किसी पुत्री अश्रुमति की अकबर के पुत्र सलीम से प्रेम की असंगत कल्पना की गयी थी। बालक वृन्दावन को अपने चाचा से यह जानकर अत्यन्त खेद और आश्चर्य हुआ कि छपी पुस्तकों में गलत बातें भी होती हैं। उसने निश्चय किया, 'मैं गलत नहीं लिखूंगा।' कक्षा ६ में, उन्होंने अंगरेज मार्सडन द्वारा रचित 'भारत का इतिहास' पढ़ा। उसमें 'गरम देश' के भारतीय जन का ठण्डे देश-वासी अंगरेजों से हारते रहना अनिवार्य बताया गया था। लिखा था, अब राज्य अंगरेजों के हाथ में है, भारत का भविष्य सुरक्षित है। अंगरेजों को हराना किसी के वश का नहीं। अपनी शक्ति अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये वे गर्मियों में ठन्डे पहाड़ों पर चले जाते हैं। एक पीढ़ी के बूढ़े होने पर नये रक्त वाले युवा अंगरेज इंग्लैंड से आकर उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। भिन्न संस्कारों में पले वर्मा जी के बाल-मन को यह मान्यता न रुची। उन के अबोध चित्त ने एक और निर्णय किया, 'पढ़ूँगा और खोज करुँगा।' आगे चलकर हाई स्कूल में उन्होंने एक अन्य अंगरेज लिखित पुस्तक पढ़ी। उसमें भारतियों के पराक्रम की पुष्टि की गयी थी। उस पुस्तक में लिखा था, महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के समय प्रतिरोधी अधनंगे पैदल 'घक्करों' ने तीन-चार हज़ार कवचधारी घुड़सवार आक्रमकों को पल भर में चीर डाला था। बालक के चोट खाये इच्छा-संकल्पों को नया बल मिला। भारतियों की वीरता का हाल पढ़कर सन्तोष मिला, गर्व हुआ किन्तु एक शंका भी उठ खड़ी हुई। फिर भारत हारा क्यों? अवश्य कहीं न कहीं कोई कसर रही

होगी। क्या थी वह कसर और वह कैसे दूर होगी, यह प्रश्न उसके चित्त में चक्कर काटने लगा। वाल्टर स्कॉट के दो-एक उपन्यास पढ़े और कर्नल टॉड का 'राजस्थान' पढ़ा। खूब पढ़-लिख कर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की इच्छा जगी। रूप-रेखा अभी सामने न थी और न स्कॉट या टॉड की भाँति लिखने के लिये कोई भूखण्ड चुन पाया था।[१]

बुंदेलखंड ही क्यों

किशोर वृन्दावन लाल के हृदय पर एक और चोट लगी। वह चोट एक नये मार्ग की ओर इंगित कर लुप्त हो गई किन्तु उसका प्रभाव अक्षुण्ण था। बात वर्मा जी से ही सुनिये —'एक पंजाबी मित्र के यहाँ ब्याह था। इनके पिता और कुछ नातेदार दस-पन्द्रह बरस पहले व्यवसाय के सिलसिले में झाँसी में आ बसे थे। बुंदेलखंड और बुंदेलखंडी उनके मिहमानों की चर्चा के विषय थे। मैं वहाँ जरा पीछे बैठा था।

'बड़ा कमबख्त इलाका है जी यह।' एक बोला। दूसरे ने जोड़ा —'आदमी बड़े मरियल सड़ियल! हां औरतें मजबूत होती है।'

—'जंगल, पहाड़, भील और नदियों के सिवाय और है क्या यहाँ?'

—'जानवर है, जानवर। आदमी से ज्यादा अच्छे।'

मिहमान हंस पड़े। मेरे कलेजे में छुरियाँ सी छिद गईं। जिस भूमि ने मेरे माता पिता को जन्म दिया, जहाँ लक्ष्मीबाई का पराक्रम प्रकट हुआ, जिस भूखण्ड में चन्देले और उनके बाद छत्रसाल हुये वह कमबख्त! जहाँ के आदमियों का आल्हा सब जगह गाया जाता है, जिन्होंने औरंगजेब के और फिर अंग्रेजों के दांत खट्टे किये वे मरियल सड़ियल!! और जानवरों से गये बीते!!! दिन-रात पसीना बहाकर जो अकालों से लड़ते रहे हैं, वे इनके मज़ाक की चीज़! जी में ऐसी आग लगी जो कभी नहीं बुझी। उस दिन से बुंदेलखंड की एक एक कंकड़ी, एक एक बूंद, एक एक पत्ती और कली मन में रमने लगी। परन्तु शुरू से ही मैं अपनी इस भावना को संकुचित बनने से बचाये रहा। हरिश्चन्द्र का नीलदेवी नाटक, भारतदुर्दशा नाटक, रामायण और महाभारत मेरे सम्बल बने रहे। केवल क्षेत्र के विकल्प की समस्या थी जो अपने आप यों हल हुई।'[२]

१. आजकल [मासिक, जुलाई, १९५७]...पृ० १७ के तथा वर्मा जी से व्यक्तिगत वार्तालाप के आधार पर

२. अपनी कहानी

वाल्टर स्कॉट का प्रभाव

सत्तरह–अट्ठारह वर्ष की आयु में उन्होंने वाल्टर स्कॉट के प्रायः सभी उपन्यास पढ़ डाले। उपन्यासों में स्काटलैंड के मनोमुग्धकारी वातावरण के दर्शन कर अपने बुंदेलखण्ड के प्रति और भी अनुराग बढ़ा। स्काट से कई प्रेरणायें मिलीं। ऐतिहासिक कथाओं में इतिहास के ढांचे को सदैव सच्चा और सही रखने की मौलिक आवश्यकता पर ध्यान गया। परम्पराओं को स्वाभाविकता की तखड़ी पर तौलने का नियम उपयुक्त जँचा। इतिहास से सम्बन्धित भौगोलिक स्थानों का पूर्ण निरीक्षण कर उसे आत्म-सात् कर लेने पर ही विषय पर लेखनी उठाने का सिद्धान्त मन में खप गया। कुछ बातें खटकी भी, स्कॉट के अत्यन्त लम्बे वर्णन, राजा सामन्तों के प्रति उसकी अटूट आस्था और समाज के साधारण स्तर या निम्न श्रेणी के लोगों के प्रति उसकी उपेक्षा। उच्च वर्ग के लोगों का तर्क तथा मनोविज्ञान-सम्मत दृष्टि से मूल्यांकन करना ही वर्मा जी को युक्तिसंगत जान पड़ा।[१]

इतिहास के झरोखे से वर्तमान में

सत्ताइस वर्ष की आयु में वृंदावनलाल जी ने पढ़-लिख कर वकालत प्रारम्भ की। इसके बाद के लगभग ग्यारह वर्ष उन्हें लेखनी माँजने में लग गये। विक्टर ह्यूगो, ड्यूमा, अनातोले फ्रांस, मोपासाँ, आदि साहित्यकारों की कृतियाँ भी पढ़ने को मिलीं। बुन्देलखन्ड की खुली गोद में भ्रमण करने का उन्हें शौक था ही। शिकार का व्यसन भी साथ लग गया। इस बहाने उन्हें प्रकृति के घनिष्ट सम्पर्क में आने का पूरा अवसर मिला। एक रात को जंगलों में बेतवा नदी के किनारे शिकार के लिए झाड़ी की ओट लिये बैठे थे। हलकी बयार की सनसनाहट और ऊपर से धुधली सी चाँदनी। प्रकृति की विशाल गोद और दूर चाँदनी में कुंडार का प्राचीन निर्जन किला झाँई मार रहा था। ऐसी हृदयस्पर्शी बेला में वर्मा जी के हृदय में कल्पना और विचारों की आँधी सी आ गयी। कितना प्राचीन है यह किला, न जाने कितने दृश्य इसने देखे होंगे। कैसा वैभव रहा होगा यहाँ! किन्तु आज तो कुछ भी शेष नहीं! हृदय में टीस उठी और उनकी विश्लेषणात्मक वृति करवट लेने लगी। वर्मा जी इस प्रसंग में स्वयं लिखते है—(प्राचीन में कुछ बहुत अच्छा था, कुछ बुरा। बुरे के हम शिकार हुए। अच्छे ने हमें सर्वनाश से बचा लिया। क्या वर्तमान और भविष्य के लिए हम प्राचीन से कुछ ले सकते हैं? प्राचीन की गलतियों

१. आजकल [जुलाई, ५७] ...पृ० १८

से बच सकते हैं। वर्तमान का हरएक क्षण भूत और भविष्य में परिवर्तित होता रहता है। कोई किसी से अलग नहीं। इन्हें भली भाँति देखो, परखो और संश्लेषण की विधि अपना कर पढ़ो। बुन्देलखंड के इतिहास और भूगोल से परिचित था ही, बहुत सी परम्परायें भी हाथ लग गयी थी। निश्चय किया कि वर्तमान की समस्याओं को लेकर प्राचीन में रम जाओ और उपन्यास के रूप में जनता से सामने अपनी बातों को रख दो।'—[१] इसी उधेड़बुन में रात्रि कट गयी। शिकार का कार्यक्रम जहाँ का तहां रह गया। प्रातः तक एक उपन्यास की रूप-रेखा मस्तिष्क में खिंच गयी। बात १६ अप्रैल, १९२७ की है। लिखना प्रारम्भ किया उन्हीं जंगलों में। अदालत की छुट्टियाँ हुईं और ठीक दो महीने में लिखना समाप्त हो गया और सामने आया उनका सर्व प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास—'गढ़ कुंडार'।

वर्मा जी का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'विराटा की पद्मिनी' भी ऐसे अन्य संयोग की देन है। शिकार की टोह में विराटा जा पहुँचे। संयोगवश गाँव वालों से झगड़ा होते-होते बचा। फिर परिस्थिति मेल-जोल के रूप में पलट गयी। गाँव वालों से वर्मा जी ने 'पद्मिनी' की कहानी सुनी, उसके शिला पर अंकित चरण-चिन्ह भी देखे। उस सूत्र पर लिखा गया उपन्यास। ऐसे अधिकांश उपन्यास वर्मा जी के भ्रमण-वृत्ति के प्रसाद है।

बीसवीं शताब्दी और वर्मा जी

वर्मा जी का व्यक्तित्व १९ वीं शताब्दी के अन्त और बीसवी के पूर्वार्द्ध से प्रभावित है। जागरूकता की दृष्टि से यह युग भारत के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। अत्यन्त संक्षेप में, इसकी रूप-रेखा का उल्लेख यहाँ वांछनीय है। इन दिनों अङ्गरेजों के साथ योरोप के आविष्कारों ने भारत के स्तब्ध वातावरण में पदार्पण किया। यकायक रेल, तार, प्रेस, शिक्षा, सफाई की हवा चल उठी। पीड़ित भारतीय जन ने शनैः-शनैः नेत्रोन्मीलन कर नवीन प्रकाश में स्वयं का मूल्यांकन किया। वह भूत के अग्राह्य को त्याग कर नवीन के ग्राह्य को धारण करने के लिए व्यग्र हो उठा। 'विज्ञानवाद' ने बुद्धि और विचार की रूढ़ियों के बंधन से मुक्ति दिलायी। लोक की समस्याओं के आगे परलोक की चिन्तायें फीकी पड़ गयीं।

आर्य समाज [स्थापित सन् १८७५] ने हिन्दुओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया। कुरीतियों को तर्क एवं औचित्य की कसौटी पर कस कर व्यर्थ

१. आजकल [मासिक, जुलाई, १९५७]···पृ० १८

ठहराया गया। अंग्रेजों की शोषक नीति के दुष्परिणाम स्पष्ट हो चले थे। उसका एक मात्र उत्तर था—'अपना राज्य'। इस स्पष्ट या अस्पष्ट उद्देश्य को दृष्टि में रखकर सन् १८८५ में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रश्न मौलिक होने के कारण गांधी जी के नेतृत्व में काँग्रेस ने बारंबार रचनात्मक कार्यक्रम पर, विशेषकर किसानों की उन्नति, साम्प्रदायिक ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण आदि आन्दोलनों पर बल दिया।[1] 'अपने राज्य' के नारे साथ एक आकांक्षा और जुड़ी हुई थी—'अपनी भाषा'। देश में अंग्रेजी, उर्दू के आधिपत्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। हिन्दी-प्रचार आन्दोलन ने वेग पकड़ा।[2] बाद के वर्ष भारतीय जन की सजगता और संघर्ष के हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन, प्रथम तथा द्वितीय विश्व-युद्ध, स्वतंत्रता प्राप्ति तथा देश-विभाजन आदि का लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

'नाटक' में रुचि

वर्मा जी ने जिस समय होश संभाला हिन्दी जगत में नाटकों की धूम थी। हम कह आये हैं कि उन पर पहला प्रभाव डालने वाली पुस्तक थी—'अथ्रुमती', नाटक। उन दिनों 'पारसी थियेटर' सर्वसाधारण के मनोरंजन का साधन था। भाषा एवं नाट्य-कला के प्रश्न पर हिन्दी नाटककारों का पारसी रंगमंच से मतभेद था। वर्मा जी ने सन् १९०५ के लगभग झाँसी में 'जनरल राबर्ट्स थियेट्रिकल कम्पनी' के 'ड्रामे' देखे। उन ड्रामों की भाषा ठेठ उर्दू थी और वातावरण भी भारतीयता से कहीं दूर। तभी वर्मा जी के मन में हिन्दी के रङ्ग-मंच की स्थापना की कामना जगी। मराठा नाटक मंडली के अभिनीत नाटक देखे। कुछ नाटक लिख डाले। सन् १९०३ में 'नारान्तक वध' नाटक लिखा और घर की अटारी में खेला भी। १९०८ तक कई नाटक लिखे।[3] इस प्रकार वर्मा जी का साहित्यिक जीवन नाटकों से प्रारम्भ होता है। इस दिशा में वे बढ़ते गये। सन् १९४६ से अब तक उनके १९ नाटक प्रकाशित हो चुके हैं।

वर्मा जी गरीबी में पले थे। बारह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह हो गया था। हाई स्कूल पास करने के बाद दो वर्ष छोटी-मोटी नौकरियों में बिताये। फिर ग्वालियर से बी० ए० और आगरा से एल० एल० बी० की

---

१. काँग्रेस का इतिहास : खंड २ [डा० पट्टाभि सीता रमय्या]···पृ० ५
२. सन् १८९३ में काशी-नागरी-प्रचारणी सभा तथा १९१० में हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना।
३. देखिए परिशिष्ट···वर्मा जी का पत्र, सं० २, ता० ९-१२-५०

परीक्षायें पास की। ग्वालियर में रियासती 'अन्धेरखाते' के उन्हें कई अनुभव हुए। आगरा में उनके अनेक साहित्यिक मित्र बने। वहीं 'प्रताप' के सम्पादक स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी से परिचय हुआ जो अन्त में मित्रता के रूप में परिणत हो गया था।

धर्म सम्बन्धी दृष्टिकोण

वर्मा जी का परिवार 'सनातन धर्म' में आस्था रखता था। 'आर्य समाज' के एक बड़े उपदेशक के व्याख्यानों ने उन्हें घोर आर्य समाजी बना दिया। बी० ए० में उन्होंने डार्विन, बर्कले स्पेन्सर, मार्क्स की पुस्तकें पढ़ीं। धर्म सम्बन्धी पुरानी आस्था की नींव हिल गई। उनका देवी-देवताओं से विश्वास उठ गया और वे 'नास्तिक' बन गये। धीरे-धीरे विचारधारा में प्रौढ़ता आई। उनकी धारणा बन गयी कि विश्व की संचालक कोई महान् शक्ति है, उसका अस्तित्व स्वीकार करना होगा, किन्तु धर्माडम्बरों से उठा वर्मा जी का विश्वास फिर नहीं लौटा। वे अपनी कर्म-विषयक इस धारणा को 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' के नाम से पुकारते हैं।[1]

राजनीति के समीप

राजनीतिक हलचलें वर्मा जी को प्रायः छूती रहीं। 'बंग-विभाजन' के विरोधी जन-आन्दोलन ने वर्मा जी को स्फूर्ति दी। रूस जैसे बड़े देश पर नगण्य जापान की विजय के समाचार ने उनके दुर्बलों के सबल बनने के विश्वास को पक्का किया। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ उनकी विचारधारा को परिपक्व करती रहीं। 'प्रयाग समाचार', 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'बंगवासी' और बा० बालमुकुन्द गुप्त का 'भारत मित्र' वे चाव से पढ़ते थे। 'स्वदेशी' और 'बाइकाट' में वर्मा जी का विश्वास बढ़ा। देश की स्वाधीनता-प्राप्ति और शोषकों के संहार के लिये, बम, पिस्तौल के प्रयोग में उनकी आस्था जमने लगी थी। सन् १९१६ में वकालत प्रारम्भ करने के साथ उनकी 'सक्रिय राजनीति' का द्वार भी खुला। वकील जीवन के कड़ुवे-मीठे अनुभवों के साथ कुछ वर्षों बाद आय बढ़ने लगी। राजनीति और जनकार्य में रुचि बढ़ी। झाँसी के इन्फ्लुएंजे से पीड़ित लोगों की सेवा की और मृतकों के दाह-कर्म कार्य के लिये स्वयं-सेवकों में वर्मा जी सम्मिलित हुए। अप्रैल, १९१९ में

१. 'अपनी कहानी' तथा वर्मा जी से व्यक्तिगत वार्तालाप के आधार पर

हुए 'जलियाँवाला काँड' में पीड़ित भारतियों की समवेदना में उन्होंने अपने वकील मित्र राजनारायण के सहयोग से शहर में हड़ताल करायी।

सक्रिय राजनीति

१९२० में काँग्रेस ने कलकत्ता में नई काउंसिलों के बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत किया। चुनाव हुए। इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध नेता श्री सी० वाई० चिन्तामणि के खरे व्यक्तित्व तथा योग्यता से वर्मा जी विशेषतया प्रभावित हुए थे। वर्मा जी उनके अनुयायी बन 'लिबरल पार्टी' के सदस्य हो गये। यू० पी० काउंसिल की सदस्यता के लिए चिन्तामणि झाँसी चुनाव-क्षेत्र से खड़े हुए। वर्मा जी और उनके साथियों ने अपने उम्मीदवार की सफलता के लिए जी तोड़ प्रयत्न किया और चिन्तामणि काँग्रेसियों के विरोध पर भी चुन लिये गये। अवध में गरीब किसानों की ओर से लगान न देने का आन्दोलन चला। इसी सम्बन्ध में कानपुर के 'प्रताप' पर किसी जमीदार ने मुकदमा चलाया। सम्पादक गणेशशकर विद्यार्थी की ओर से वकीलों में वर्मा जी भी थे।

सन् १९२२ की एक दुर्घटना ने वर्मा जी को काँग्रेस से और भी दूर कर दिया। उनके मित्र राजनारायण ने म्यूनिस्पैलिटी की ओर से प्रस्ताव रखाया कि शहर में नल लगाये जायें और खर्च पूरा करने के लिये जनता पर 'कर' लगाया जाय। शहर के काँग्रेसी नेताओं ने कर या 'हाउस टैक्स' के प्रश्न को अपनी महत्वाकांक्षा और हिंसक भावना पूर्ति का साधन बना लिया। उन्होंने कर के विरोध में राजनारायण के परिवार का 'बाइकाट' कराया। राजनारायण क्षय रोग से पीड़ित थे। उनकी चिकित्सा-सेवा आदि के सभी साधनों पर रोक लग गयी। अन्त में दुर्बल, पीड़ित राजनारायण के प्राण पखेरू उड़ गये। विरोधियों की इस हिंसा से वर्मा जी को भारी ठेस लगी। वे स्वय लिखते है—'मैं काँग्रेस से अलग हो गया और इन नेताओं का विरोध करता रहा। अहिंसा की लम्बी चीख-पुकार करने वाले भी कितना घोर कर्म कर सकते हैं, यह मन में बैठता गया। 'साधुनं प्रति साधुनं' बिलकुल ठीक है—जो इसका पालन न करे वह नीच है, परन्तु हर एक के प्रति पूरी अहिंसा का सिद्धान्त मुझे नही जंचता। कभी-कभी हिंसा जरूरी ही नही, बिलकुल उचित भी है।'[1]

सन् १९३० में वर्मा जी को कृषि और बागबानी का शौक लगा। उन्होंने बड़े पैमाने पर प्रयोग किए, असफलता हाथ आई और सिर पर आ गया साठ-

---

१. वर्मा जी का पत्र ता० ९-७-१९५७

सत्तर हजार रुपयों का ऋण। वे सन् १९३६ से ३८ तक झाँसी जिलाबोर्ड के अध्यक्ष रहे। वहाँ उन्हें अपनी प्रबन्ध-शक्ति के प्रदर्शन का अवसर मिला।[१] वकालत छोड़ दी। सन् ५१ में झाँसी से प्रदेश के एक प्रमुख कांग्रेसी के विरुद्ध विधान सभा के लिए वर्मा जी ने चुनाव लड़ा किन्तु असफल रहे। जिला कोआपरेटिव बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर लगभग तीस वर्षों से हैं। आर्थिक कठिनाइयों में बिंध जाने के कारण वर्मा जी की लेखनी पाँच वर्ष [सन् ३२ से ४२ तक] स्थिर प्रायः रही। सन् ४५ से वे अनवरत गति से लिखते आ रहे हैं।

उपन्यासों पर प्रभाव

वर्मा जी के उपन्यास उनके संस्कारों, प्रभावों और चिन्तन की देन है। कहा जा चुका है, वर्मा जी ने इतिहास को वर्तमान की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास और वर्तमान का समन्वय है। उन की दृष्टि राष्ट्र के पुनर्निर्माण पर रही है। भारत के पतन के मूल कारण, 'समाज' को उन्होंने क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक, सभी उपन्यासों में अपनी प्रयोगशाला बनाया है। सामाजिक कुरीतियों, जाति-पाँति-गत भेदभाव, पतितों के प्रति निष्ठुर व्यवहार, दहेजप्रथा, वैवाहिक सम्बन्ध का मूलाधार 'कुंडली' मात्र को मानना, दासीप्रथा आदि [गढ़ कुंडार, लगन, संगम, कुंडली चक्र, प्रत्यागत, कभी न कभी, कचनार, मृगनयनी] की ओर उन्होंने इंगित किया है। मजदूरों और किसानों की हीन दशा [कभी न कभी, टूटे काँटे] उन्हें चुभी है। स्वतंत्रता आन्दोलन की अपनी योजना उन्होंने 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' में रख दी है। इस उद्योग में साधन के रूप में 'हिंसा-अहिंसा' के प्रश्न पर उन्होंने दृष्टिकोण बनाया है [अचल मेरा कोई]। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सहकारिता के मार्ग पर गाँवों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उन्नति की योजना की रूप-रेखा 'अमर बेल' में प्रस्तुत की गई है। जीवन में सुख और प्रगति की प्राप्ति का मूल मंत्र कोरा वैभव-प्रदर्शन या मिथ्याभिमान नहीं, शारीरिक श्रम एवं उत्साह है [सोना]।

वर्मा जी—बुंदेलखंडी !

वर्मा जी बुंदेलखंडी पहले हैं, बाद में कुछ और। वे यहीं उपजे, पले और

१. वर्माजी का पत्र ता० ९-७-५७

विकसित हुए हैं। जिझौती[1] और उनका सम्बन्ध आज का नहीं पीढ़ियों का है। इसके (बुंदेलखंड के) लिये दीवान आनन्दराय ने गोली खाई तो क्या वर्मा जी की लेखनी तनिक स्याही भी न खाती ! उन्हें इस 'दरिद्र-खंड' की विभूति का ज्ञान है। उन्हें यह भी मालूम है कि यहाँ के लोगों के पास पैसे नहीं है फिर भी वे फागें और राछरें गाते हैं। अपनी झीलों और नदी, नालों के किनारे नाचते हैं और रंगीन कल्पनाओं में डूब-डूब जाते हैं। फटे हाल में भी अपने आप में मस्त ये बुंदेलखंडी उनके उपन्यासों में उभर आये हैं। यही नहीं, बुंदेलखंडी नदियों की तीखी धार, गहरे भरके, पहाड़ियों के उतार-चढ़ाव, घने जंगल, सुन्दर फूल और जल-लहरों पर सूर्य की चमकती किरणें, सब की सब उपन्यासों में आ विराजी हैं। बुंदेलखंड से वर्मा जी का यही तादात्म्य उनके उपन्यासों का आकर्षण है, उनका जीवन।

सजीव व्यक्तित्व और बाँकी शैली

वर्मा जी सजीव है। वह तथाकथित वृद्धावस्था में भी युवा हैं। उन्हें जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक पग स्फूर्ति दे रहा है—कार्य करने की, मौज करने की और चलते-चलते गा उठने की। उनमें 'मनमौज' और 'उत्फुल्लता' मूर्त हैं। वे संगीतप्रेमी हैं। शिल्पकला से उन्हें प्रेम है। हठयोग, व्यायाम, घुड़-सवारी, आखेट, उन्हें क्या नहीं भाता ! झाँसी में वकालत की तो श्यामसी में खेती करते हैं। पूरे 'घुमक्कड़', बुंदेलखंड का चप्पा-चप्पा छान मारा है। स्वच्छन्दता और मौज उनकी लेखन शैली में बसी है। वे सीधी-सादी कहानी कहते हैं एक प्रवाह में, बिना किसी प्रकार की कृत्रिमता के। उनके उपन्यासों को आराम से लेटे हुए पढ़ा जा सकता है। वहाँ विशेष मानसिक श्रम अपेक्षित नहीं। छोटे-छोटे वाक्य एक बाँकापन लिये हुए, मिठास से सिक्त, हृदय को गुदगुदाते से। वर्मा जी के साहित्यिक जीवन को तीस वर्ष होने को आये। इस लम्बे अरसे के बीच साहित्यिक रुचि और लेखन पद्धति में भारी अन्तर आ गया है। वे युग के साथ कदम मिला कर चलने में सजग हैं, उनके उपन्यास इस तथ्य के साक्षी हैं।

---

१ बुंदेलखंड का प्राचीन नाम

अध्याय २

'उपन्यास' और वर्मा जी के उपन्यासों का वर्गीकरण

साहित्य–जीवन–उपन्यास

उपन्यास साहित्य का एक भेद है और साहित्य है भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति। मानव ने अपने जीवन में जो देखा और करता है, उसके सार्वजनिक अभिरुचि एवं महत्व के अंगों पर जो कुछ विचारा और अनुभव किया है, उस सबका सजीव विवरण ही साहित्य है।[1] अभिव्यंजना की दृष्टि से साहित्य के अन्तर्गत रचनाओं के पाँच प्रधान भेद १—कविता, २—नाटक, ३—निबंध, ४—गद्य काव्य तथा ५—उपन्यास और कहानी किये जाते हैं।

जीवन और उपन्यास के अटूट संबंधों को लक्ष्य करते हुए डा० श्यामसुन्दरदास ने उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहा है।[2] नॉविल (उपन्यास) की निम्नलिखित परिभाषा उक्त सूत्र पर प्रकाश डालती है—'नॉविल नाम साहित्य में समकालीन अथवा आधुनिक जीवन के निरीक्षण पर आधारित आचार-विचार के अध्ययन को प्रदान किया गया है। इसमें पात्र, घटनायें, षड्यंत्र (रहस्य) काल्पनिक होते हैं। तभी यह पाठक के लिये नवीन (नॉविल) है किन्तु इसकी नींव वास्तविक इतिहास की समानान्तर रेखाओं पर ही रहती है।

'नॉविल शब्द का तात्पर्य अनुभव की सहज, स्वाभाविक स्थिति के निर्वाह से है। नॉविल एक शृङ्खलाबद्ध कहानी है। यह कहानी वास्तव में ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं है किन्तु वैसी (वास्तविक) सहज ही हो सकती है।[3]

---

१. एन इंट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ़ लिट्रेचर···पृ० ११
२. साहित्यालोचन···पृ० १४७
३. दि एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका···१९ वाँ भाग···पृ० ८३३

यहाँ 'काल्पनिक' का तात्पर्य कपोल-कल्पना से नहीं वरन् घटना के ठेठ सत्य के शुष्क बंधनों के छुटकारे से हैं। उपन्यास की कथा और पात्र भले ही वैज्ञानिक सत्य की निश्चित सीमा—'ऐसा हुआ या ऐसा है'—में प्रवेश न कर पायें किन्तु उन सबका मूलाधार जीवन-प्रवाह और मानव सुलभ प्रवृत्तियाँ, रहने के कारण उपन्यास मानव तथा उसके जीवन के निकट रहता है। उपन्यास घटना के मात्र सत्य से नहीं बंधता वरन् उसकी संगति और संभावना से अधिक नियन्त्रित रहता है। इसी तथ्य को स्पष्ट करने के हेतु किसी की अत्युक्ति है—'कथा (उपन्यास) में नामों तथा तिथियों के अतिरिक्त सब बातें सच होती हैं और इतिहास में नामों तथा तिथियों के अतिरिक्त कुछ भी सच नहीं होता।' अतः उपन्यास, कार्य-कारण-शृङ्खला में बंधा हुआ एक गद्य कथानक है। इस विस्तृत, पेचीदा कथा में जीवन के प्रतिनिधि प्राणियों से सम्बन्ध रखने वाली वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा जीवन के सत्य का सजीव उद्घाटन रहता है।

'उपन्यास' की व्युत्पत्ति

उपन्यास का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'नॉविल' का तात्पर्य 'न्यू' अर्थात् नवीन से है। इसका विकास लैटिन शब्द 'नॉविस' से हुआ है।[1] आज के अर्थ में प्रयुक्त हिन्दी का शब्द, 'उपन्यास' प्राचीन नहीं है। बा० गुलाबराय के मतानुसार इसका शब्दार्थ है, सामने रखना। शब्द, उपन्यास (उप+न्यास) के विश्लेषण से उसका एक अन्य स्पष्ट अर्थ संभव है। 'उप', उपसर्ग शब्दों के पहले लगकर उनमें गौणता या न्यूनता आदि कई अर्थों की विशेषतायें उत्पन्न करता है। और, शब्द, 'न्यास' के अर्थों में से एक है स्थापना करना या रखना (प्रामाणिक हिन्दी कोश—रामचन्द्र वर्मा, पृ० १४७ तथा ६४७)।—'उपन्यास' में लेखक 'स्थापना' करता है अपनी कथात्मक सृष्टि की। परमात्मा की सृष्टि वह असाधारण—बृहत्—जगत् है तो लेखक की यह रचना, 'उप (गौण--साधारण--लघु--) जगत्' या 'उपन्यास' है। इस प्रकार, 'उपन्यास' का शब्दार्थ हुआ लघु (जगत् की) स्थापना। डा० सत्येन्द्र 'उपन्यास' शब्द का

१. एन० ब्रिटेनिका···भाग १९···पृ० ८३३

स्रोत 'मनुस्मृति' को ठहराते हैं और आधुनिक अर्थ में इसके प्रचलन का श्रेय बंगला लेखकों को देते हैं।[1]

उपन्यास के तत्त्व

उपन्यास के तत्त्वों पर विचार करते समय हडसन ने अत्यन्त सरल रीति से उनकी व्याख्या करते हुए १—कथानक, २—पात्र, ३—कथोपकथन, ४—देशकाल (वातावरण) ५—शैली तथा ६—उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या अथवा जीवन-दर्शन, मुख्य तत्त्व उपन्यास में माने हैं।[2]

उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है इसलिए उसका सम्बन्ध मानव व्यापारों, क्रियाकलापों और घटनाओं से होता है। ये सब मिलकर बनते हैं 'कथानक'। इन घटनाओं का विधाता मानव, उपन्यास-सृष्टि का 'पात्र' कहलाता है। उपन्यास-जगत् में पात्रों की बातचीत को 'कथोपकथन' कहते हैं। ये जीवन की घटनायें किसी विशिष्ट समय और किसी विशिष्ट स्थान पर घटित होती हैं। इस समय और स्थान को ही 'पारिस्थिति', 'वातावरण' अथवा 'देशकाल' कहते हैं। उपन्यासकार की अभिव्यंजना के ढंग को 'शैली' कहते हैं। यह उपन्यास का पाँचवा तत्त्व है। इन पाँच तत्त्वों के अतिरिक्त एक छठा तत्त्व भी माना जाता है। प्रत्येक उपन्यास में लेखक जाने या अनजाने जीवन और उसकी कुछ समस्याओं का उद्घाटन तथा विवेचन करता है। अर्थात् उपन्यासकार घटनाओं, पात्रों, मनोवेगों आदि को इस प्रकार उपस्थित करता है जिससे थोड़ा बहुत इस बात का पता चलता है कि वह संसार को किस दृष्टि से देखता है और जीवन के प्रति उसका क्या विचार है। इसको हम उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या अथवा 'जीवन-दर्शन' या उपन्यास का 'उद्देश्य' कह सकते हैं।

१. **'''तो 'परीक्षा गुरु' से उपन्यास का आरंभ एक नये रूप में हुआ। अब वह वार्ता न थी अंग्रेजी शैली का 'नॉवेल', बंगाली शैली का 'उपन्यास' था। पं० किशोरीलाल गोस्वामी जी ने इन पंक्तियों के लेखक को एक बार बतलाया था कि उपन्यास नाम का प्रारंभ बंगाल के बंकिमचंद्र ने किया था। उनका कहना है कि बंकिम बाबू उनके घनिष्ट मित्र थे। बंकिम बाबू एक दिन हुक्का पीते-पीते मनुस्मृति पढ़ रहे थे कि उन्हें उसी में उपन्यास शब्द का पता चला और वही नाम उन्होंने ग्रहण कर लिया था।' समीक्षा के सिद्धांत'''पृ० १५७**

२. **दि स्टडी आफ़ लिट्रेचर'''पृ० १७०**

उपन्यासों के प्रकार

उपन्यासों के विभेद उनके तत्त्वों और वर्ण्यवस्तु के आधार पर किये जा सकते हैं। पहले तत्त्वों के आधार पर भेदों को लेंगे। उपन्यास के दो मुख्य तत्त्व हैं—कथानक और पात्र। इन दोनों की उपन्यास में प्रधान, गौण अथवा समन्वित स्थिति के आधार पर उपन्यासों को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१—घटना प्रधान, २—चरित्र प्रधान, ३—नाटकीय उपन्यास।

[अ] तत्त्वों के आधार पर

घटना प्रधान उपन्यासों का केन्द्र कथानक है। यहाँ कथानक पात्रों के चरित्र द्वारा विकसित नहीं होता वरन् उसका भविष्य उपन्यासकार की इच्छा शक्ति पर निर्भर है। घटना जैसा रुख ग्रहण करती है वैसी ही गतिविधि कठपुतली जैसे उन पात्रों की हो जाती है। ये उपन्यास मानव की शिशु-सुलभ वृत्ति, जिज्ञासा की तृप्ति मात्र करते है। कहानी सुनते समय बालक का केवल एक प्रश्न, एक ही रुचि रहती है—'आगे क्या हुआ ?' ऐसा क्यों हुआ, कैसे हुआ, इन समस्याओं के प्रति वह उदासीन रहता है।

चरित्र प्रधान उपन्यास में दूसरे तत्त्व, पात्रों के चित्रण पर बल रहता है। पात्रों के चरित्र पर विभिन्न कोणों से प्रकाश डालने के लिए उनको भिन्न-भिन्न स्थलों तथा परिस्थितियों में अग्रसर किया जाता है। पात्र घटनाओं के आश्रित नहीं रहते वरन् उनकी गति के अनुसार घटनाओं का संयोजन होता है। पात्र का चरित्र अपने आप में घटना है। उसके विभिन्न अङ्गों को प्रकाश में लाने के लिए असंबद्ध घटनायें मूल में एक पात्र विशेष से संबंधित होने के कारण परस्पर असंबद्ध होते हुए भी संबंधित रहती है। इनमें व्यवस्था न दीख पड़ने पर भी एक आन्तरिक व्यवस्था रहती है। फिर भी कथासूत्र पात्रों के पूर्णतया अधीन रहने के कारण शिथिल रहता है।

नाटकीय उपन्यास में दोनों तत्त्वों, कथावस्तु और चरित्र-चित्रण में समन्वय रहता है, घटनायें तथा पात्र परस्पर घात-प्रतिघात करते हुए विकसित होते हैं। पूर्व परिस्थितियों से प्रभावित और अपनी विशेषताओं से उद्वेलित होकर पात्र अपनी क्रियाशीलता के अनुसार कार्यकलाप में जुट जाते हैं। पात्रों की गतिविधि घटना-चक्र को नवीन मोड़ देती है और उनके चरित्र पर नया प्रकाश। इस प्रकार घटना से चरित्र और चरित्र से घटना का विकास होता है। दोनों में कार्य-कारण का सम्बन्ध रहता है। घटनायें एक निश्चित ध्येय

को दृष्टि में रखकर संपादित होती हैं। ध्येय उपन्यास के अन्त में रहता है। उपन्यास की समस्या उसकी 'प्रारम्भ' है, समस्या का उलझाव-सुलझाव 'मध्य', और उसको लेकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना ही उपन्यास का 'अन्त' है। समस्या के सूत्र में ये तीनों स्थितियाँ गुंथी रहती हैं। उपन्यासकार घटनाओं का निर्माण और चरित्रों का विकास निर्धारित योजना के आधार पर करता है। किन्तु यह सब कुछ जीवन के नियमों के क्षेत्र में रह कर करना होता है।

नाटकीय उपन्यास समस्या से बंधा होने के कारण निश्चित–सीमित घटनास्थल को रंगमंच बनाता है। यह देश अथवा स्थल सापेक्ष नहीं वरन् समय सापेक्ष रहता है। उपन्यास की समस्या उदय से लेकर अन्त तक पहुचने में अनेक घटनायें और उनका काल अपने आप में समेटे रहती है।

वर्माजी के उपन्यास

औपन्यासिक तत्त्वों के संतुलन की दृष्टि से श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का वर्गीकरण करने से पूर्व उनके उपन्यासों की सूची देना युक्तिसंगत होगा। प्रकाशन काल के क्रम से उनके सन् १६५५ तक प्रकाशित १७ उपन्यासों की सूची इस प्रकार है—

क्रम सं०	प्रकाशन का सन्	उपन्यास	पृष्ठ
१	१६२७	गढ़ कुण्डार	४२१
२	१६२७	लगन	११५
३	१६२७	संगम	३०२
४	१६२८	कुण्डली चक्र	२५२
५	१६२८	प्रेम की भेंट	१२३
६	१६२८	प्रत्यागत	२३५
७	१६३०	विराटा की पद्मिनी	३२७
८	१६४०	मुसाहिबजू	१२०
६	१६४५	कभी न कभी	१६१
१०	१६४६	झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई	५११
११	१६४७	कचनार	४१६
१२	१६४६	अचल मेरा कोई	२६४
१३	१६५०	मृगनयनी	४८२
१४	१६५१	सोना	२४८

१५	१९५३	अमरबेल	४७७
१६	१९५४	टूटे काँटे	३९०
१७	१९५५	अहिल्याबाई	१९० [1]

वर्मा जी के नाम से एक अन्य उपन्यास 'कोतवाल की करामात' प्रकाशित हुआ था किन्तु वे स्वयं उसको अपनी रचना स्वीकार नहीं करते हैं।[2]

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रायः दोनों प्रमुख तत्त्वों, कथानक और पात्रों के परस्पर घात-प्रतिघात द्वारा उनके विकास की योजना रहती है। कथानक उपन्यास-कार के मस्तिष्क में पहले से स्पष्ट और पूर्व नियोजित रहता है। वह स्वाभाविक ढंग से कथानक में पात्रों को गूँथता है। पात्रों की प्रतिक्रिया स्वरूप नियोजित मार्ग पर कथानक चलकर वांछित 'अन्त' तक जा पहुंचता है।[2] उपन्यास का घटनास्थल या रंगमंच भी प्रायः सीमित रहता है। इस दृष्टि से 'प्रत्यागत' और 'अमरबेल' तनिक भिन्न पड़ जाते हैं। प्रत्यागत का प्रमुख पात्र मंगल अपना घर, बांदा छोड़कर कुछ समय के लिये भटकने लम्बई और मलाबार चला जाता है किन्तु उसके लौटने पर कथा का मुख्य भाग बाँदा में ही विकसित होता है। इसी प्रकार अमरबेल के देवराज और अंजना भी दो एक बार अपने, अफ़ीम के अवैध व्यापार के संबंध में लखनऊ, बनारस आदि शहरों की परिक्रमा कर आते हैं। 'मृगनयनी' तथा 'टूटे काँटे' के पात्र भी थोड़े समय के लिए मुख्य घटनास्थल को छोड़कर अन्यत्र भटकते हैं अथवा अन्य स्थलों से सम्बद्ध कुछ गौण कथाओं को इन उपन्यासों में प्रश्रय मिला है। इन उपन्यासों में स्थल-वैभिन्य कम है और सब समय सापेक्ष है। प्रत्येक उपन्यास की कथा ध्येय या अन्त को दृष्टि में रखती हुई घटना तथा पात्रों को विकसित करती चलती है।

प्रत्येक उपन्यास में पात्र एवं घटना के परस्पर सन्तुलन, घटनास्थल तथा

१—उपन्यासों की यह सूची वर्मा जी के साहित्य के प्रमुख प्रकाशक, मयूर प्रकाशन, झाँसी द्वारा प्रकाशित वर्माजी की रचनाओं की सूची पर आधारित है। वर्माजी ने भी इन पंक्तियों के लेखक को अपने १३.४.५५ के पत्र में उक्त सूची को प्रामाणिकता प्रदान की है।—वर्माजी के उपन्यासों की रचनाकाल के क्रम की दृष्टि से सूची परिशिष्ट २ में देखिए।

२—'वृन्दावनलाल वर्मा—सम्पादक को पत्र, ८.९.१९४०, 'साहित्य सन्देश', अक्टूबर–नवम्बर, १९४०...पृष्ठ १७२

समय आदि सम्बन्धी निज की विशेषतायें होती हैं। कलाकार की दृष्टि नियमों पर नहीं वरन् सर्वोत्तम रीति से अपनी लक्ष्यपूर्ति पर रहती है। भले ही रूढ़िगत नियमों की लीक उसे छोड़नी पड़े। अतः तत्वों की दृष्टि से उपन्यासों के कथित तीन प्रकारों में से किसी एक की कसौटी पर उपन्यास विशेष को कस कर पूर्णरूपेण खरा पा लेना कठिन है। तीन प्रकारों के मध्य कोई निश्चित विभाजक रेखा खींचना सैद्धान्तिक रूप से भले सम्भव हो किन्तु उपन्यास-रचना में इन विभेदों के गुण परस्पर घुल मिल जाते हैं। फिर भी विभेदगत नियमों को सहज, साधारण रूप से ग्रहण करते हुए हम वर्मा जी के निम्नांकित उपन्यासों को नाटकीय उपन्यासों की कोटि में रख सकते हैं—

१. गढ़ कुंडार
२. लगन
३. संगम
४. कुण्डली चक्र
५. प्रेम की भेंट
६. प्रत्यागत
७. विराटा की पद्मिनी
८. मुसाहिबजू
९. कभी न कभी

१०—झाँसी की रानी—। इसके संबंध में प्रायः प्रश्न उठाया जाता है कि यह जीवन-चरित है अथवा उपन्यास ? जीवन-चरित क्या है, इस विषय पर आगे चलकर विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ नाटकीय उपन्यास की दृष्टि से इस रचना पर विचार कर लेना पर्याप्त होगा। इस रचना का निश्चित ध्येय है, लक्ष्मीबाई की, 'स्वराज्य-प्राप्ति'। ध्येय के प्रति लक्ष्मीबाई प्रारंभ से जागरूक है। उपन्यास के मध्य में वह इस दिशा में सक्रिय प्रयत्न करती है। विरोधी धाराओं का संघर्ष घनीभूत हो उठता है और कथा अन्त की ओर तीव्रता से अग्रसर होती है। रानी को भौतिक रूप से स्वराज्य-स्थापना में सफलता नहीं मिलती किन्तु उसे यह संतोष रहता है कि महान् साधना का श्रीगणेश हो गया। लोग इस ध्येय के प्रति जागरूक हो गये। एक दिन अपना जब सफलता देवी के वरद्-हस्त की छाया भी भारतियों को प्राप्त होगी। इस प्रकार रानी की असफलता में भी सफलता निहित है। कथा अपने निष्कर्ष पर संतुलित गति से जा पहुँचती है। कथा लक्ष्मीबाई के चरित्र के चारों ओर घूमते रहने पर भी चरित्र प्रधान उपन्यासों की

भाँति चरित्र की आश्रित होकर नहीं रह जाती। घटनाओं और चरित्र में कार्य-कारण का सम्बन्ध स्थापित रहता है। लक्ष्मीबाई की चारित्रिक विशेषताओं के कारण नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और वे घटनाओं को जन्म देती हैं। साथ ही घटनाचक्र में पड़कर लक्ष्मीबाई का चरित्र स्पष्ट होता चलता है। कथा के प्रारम्भ से अन्त तक पहुंचने में वर्षों का समय लगता है। घटनास्थल क्रमशः बिठूर, झांसी और ग्वालियर तक सीमित रहता है।

इन सब विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' को नाटकीय उपन्यास स्वीकार करना उचित होगा।]—

११—कचनार
१२— अचल मेरा कोई
१३— मृगनयनी
१४— सोना
१५—अमरबेल
१६— टूटे काँटे

'अहिल्याबाई' को नाटकीय उपन्यासों की श्रेणी में रखना विवादास्पद है। पहला प्रश्न है उपन्यास के ध्येय या 'कार्य' का—अहिल्याबाई में प्रमुख कथा है अहिल्याबाई की। प्रासंगिक कथा है अहिल्याबाई के पुत्रवत् प्रिय मल्हारराव की उच्छृंखलता, आनन्दी से अनबन तथा आनन्दी की हत्या करने पर मल्हारराव के पश्चाताप की। दो गौण कथायें हैं डाकू गनपतराव के प्रायश्चित्त और सुधार, तथा आनन्दी के मल्हारराव के प्रति असफल प्रेम और उसके हाथों मारे जाने की। इनमें गनपतराव और आनन्दी की कथा का निश्चित ध्येय है। मल्हारराव का अन्त उसके उच्छृंखल चरित्र का सूत्र-संकलन मात्र है। मल्हार को आनन्दी की हत्या करने के उपरान्त पश्चाताप है इसका आभास उपन्यासकार देता है। किन्तु यह कहना कि मल्हारराव के पश्चाताप का चित्रण करने के ध्येय से ही उसकी कथा प्रारम्भ से अन्त तक संजोयी गयी है उचित न होगा। मल्हार के जीवन में आनन्दी की हत्या की घटना एकाएक आ जाती है और वह अनमना हो जाता है। उसकी सम्पूर्ण कथा किसी सन्तोषजनक 'अन्त' तक न पहुंच पाने के कारण पाठक के समक्ष प्रश्नवाचक चिन्ह के समान उलझी, अपूर्ण रह जाती है। मल्हार की कथा एक उच्छृंखल युवक के जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत करने के अतिरिक्त 'अन्त' का प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाती।

अहिल्याबाई की मुख्य कथा क्रमबद्धता और संगठन की दृष्टि से मल्हार-वाली कथा की अपेक्षा शिथिल है। उसमें निश्चित 'अन्त' का अभाव है।

यह तथ्य अहिल्याबाई की कथा से सम्बद्ध परिच्छेदों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाएगा। [परिच्छेद ३ –अहिल्याबाई का न्याय-कार्य, व्यक्तित्व और स्वप्न देखना; ५– मल्हार की अहिल्या से क्षमा-प्रार्थना, अहिल्या का व्यक्तित्व; ६—अहिल्या का दरबारकार्य; १३– विद्रोहियों के प्रति अहिल्याबाई का दृष्टिकोण, मन्दिरों का दर्शन; १४– नवाली के मन्दिरों की यात्रा, १५—रोगिणी सिन्दूरी की सेवा करना; १७– अहिल्याबाई का टोटके में विश्वास; १९—अहिल्याबाई की दानवीरता, गनपतराव डाकू का हृदय-परिवर्तन और अहिल्याबाई द्वारा उसे क्षमादान; २२—अहिल्याबाई का महान् व्यक्तित्व। धर्म-चर्चा, राज्य-कार्य, चाटुकार कवि को हतोत्साहित करना; २३—मल्हार से भेंट, २४—मल्हार के अपनी माता से झगड़ने पर अहिल्याबाई का क्रोध. दरबार में राज्यकार्य और मल्हार के प्रति पुनः स्नेह; २५—महेश्वर में पूर्णिमा के मेले में अहिल्या द्वारा प्रबन्ध, मल्हार के प्रति पक्षपात; २६—अहिल्या द्वारा जामवाट पर बने मन्दिर का निरीक्षण, उसकी राजनीतिक समस्याएँ; २८—अहिल्या की मान्धाता और ओंकारनाथ तीर्थों की यात्रा; २९—अहिल्या की समस्याएं, अहिल्या का दामाद तथा पुत्री शोक; ३१ –अहिल्या का उच्छृंखल गिन्धिया को शाप; ३२ अहिल्या का मन्दिर-दर्शन, मल्हार की दुष्टता के प्रति कोप; ३४ अहिल्याबाई की राजनीतिक समस्याएं। एक कवि को सही मार्ग बताना; ३५ –अहिल्याबाई की न्यायप्रियता और मृत्यु] इन अठारह परिच्छेदों में अहिल्याबाई सम्बन्धी कथा का विश्लेषण बताता है कि ये सूत्र परस्पर असम्बद्ध है और किसी ध्येय की ओर केन्द्रित नहीं हैं। एक चित्र अहिल्याबाई की न्यायप्रियता का है तो दूसरा शासन-कौशल का, तीसरा धार्मिकता, चौथा सेवाभाव और पाँचवा अन्धविश्वास का, इत्यादि। इन सब चित्रों को प्रस्तुत करने वाली घटनाओं को किसी ध्येय या अन्त विशेष की शृंखला क्रमबद्ध नहीं करती वरन् अहिल्याबाई के चरित्र-चित्रण के आश्रित होकर ये घटनाएं पदार्पण करती है। ऐसी दशा में घटना तथा चरित्र में कार्य-कारण का क्रमबद्ध सम्बन्ध स्थापित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। घटनाएँ चरित्र के विभिन्न पक्ष स्पष्ट करने के लिए संजोयी गयी है वे चरित्र के घात-प्रतिघात से उत्पन्न नहीं होतीं। उपन्यास [?] का प्रारम्भिक भाग पढ़कर यदि एकाएक उसका अन्तिम भाग पढ़ा जाय तो न अहिल्याबाई के चरित्र में ही कोई परिवर्तन लक्षित होगा और न मध्य के कथा-सम्बन्धी ज्ञान का अभाव ही खटकेगा। उपन्यास का घटनास्थल भी बढ़ जाता है। अहिल्याबाई के मन्दिरों तथा एकान्त-प्रेम की सूचना देने के लिए उपन्यासकार उसे महेश्वर से ले जाकर मान्धाता और ओंकारनाथ में घुमाता है। 'अहिल्याबाई'

की ये सब विशेषताएं उसे चरित्र-प्रधान उपन्यास के समीप ले आती हैं किंतु इसमें चरित्र की ऐतिहासिक वास्तविकता के प्रति अधिक आग्रह और रचनात्मक कल्पना का सीमित क्षेत्र होने के कारण यह ग्रन्थ जीवनी अथवा जीवन-चरित की सीमाओं में बहुत कुछ खप जाता है।[1] इसमें आई घटनाओं के अङ्कन की अपेक्षा उनके चित्रण पर अधिक बल दिया है। अहिल्याबाई के चरित्र को केन्द्र मानकर उसके आलोक में प्रायः सभी घटनाओं का चित्रण किया गया है। इस प्रकार अहिल्याबाई में चरित्र प्रधान-उपन्यास तथा जीवन-चरित के गुणों का घोल-मेल है। वर्मा जी मूलतः जीवन-चरित लिखना चाहते थे। उन्होंने ग्रन्थ में तत्कालीन वातावरण तथा वर्तमान एवं भविष्य के हेतु 'कुछ' देने के लिए ही जीवन-चरित की प्रणाली त्यागकर उपन्यास लिखने का निश्चय किया था।[2]

१. सारा साहित्य ही मनुष्य का अध्ययन है किंतु जीवनी और आत्म-कथाओं में यह अध्ययन सत्य और वास्तविकता की कुछ अधिक गहरी छाप लेकर आता है।.....फिर भी उपन्यास उपन्यास ही है। उसमें रचनात्मक कल्पना का कुछ अधिक पुट रहता है। जीवनीकार भी कल्पना का प्रयोग करता है किंतु वह सामग्री के संयोजन और प्रकाशन की विधि में उसे काम लेता है। फिर भी उसकी कल्पना वास्तविकता से सीमित रहती है। वह कल्पना के अलंकारों से अपने चरित्र नायक को इतनी ही साज-सम्हाल कर सकता है जितनी में उसका आकार-प्रकार न बदलने पाये। वह उस माँ की भांति है जो अपने बालक को नहला-धुलाकर, बाल सम्हाल कर तथा धुले कपड़े पहनाकर समाज में भेजती है। कपड़ों के चुनाव में वह अपनी रुचि और कल्पना से कार्य लेती है किंतु वह आकृति को असलियत को बदलने वाले पेण्ट का [या प्राचीन भाषा में कहें तो अङ्गराग का] कम प्रयोग करती है। जीवनीकार [आत्मकथा लेखक नहीं] उपन्यासकार की भांति सर्वज्ञता का भी दावा नहीं करता है वह द्रष्टा के रूप में रहता है। वह अपने चरित्र नायक के बहुत से रहस्यों को जानता है किंतु फिर भी वह उसके मन की सब बातों को पूरी दृढ़ता के साथ नहीं कह सकता है। अज्ञात विषयों के संबंध में वह अनुमान से ही काम लेता है।

—काव्य के रूप" पृ० २५२

२. ऐतिहासिक उपन्यास में तत्कालीन वातावरण की अवतारणा लेखक के लिये अनिवार्य है। दूसरी कठिनाई है—आज और आने वाले कल के लिए भी तो उसमें कुछ हो। केवल ऐतिहासिकता या मनोरंजन मात्र अभीष्ट नहीं है। जीवन-चरित की प्रणाली से काम बनता न दिखा तो मैंने उपन्यास लिखने की सोची।

...अहिल्याबाई [परिचय] पृ० २

यह रचना-कार्य-कारण-शृंखला में सन्तोषजनक रीति से बंधी न होने के कारण उपन्यास की संज्ञा प्राप्त नहीं कर सकती। कथानक का 'ध्येय' विशेष नहीं है। इसीलिए अन्त में अहिल्याबाई की मृत्यु का दृश्य कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाता। वह मुख्य पात्र के अन्त की सूचना भर देता है। हाँ उपन्यास ? का ध्येय है—अहिल्याबाई के चरित्र पर प्रकाश डालना। इस तथ्य को वर्मा जी ने भी स्वीकार किया है।[१]

[ब] वर्ण्य वस्तु के आधार पर

उपन्यासों की वर्ण्य वस्तु के विचार से धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रागैतिहासिक, आर्थिक, यौन और प्राकृतिक (प्रकृति का अंकन करने वाले) आदि अनेक भेद किये जा सकते हैं। इनमें सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों पर यहाँ विचार करना अभीष्ट है।

सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास

सामाजिक उपन्यास का सम्बन्ध है समाज से। स्थायी तथा सर्वसाधारण महत्व के कुछ सामान्य हितों की पूर्ति के लिए शान्तिपूर्वक प्रयत्नशील सहयोगी मनुष्यों का समूह समाज है। मनुष्यों या व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध (शान्तिपूर्वक सहअस्तित्व, मतभेद, द्वन्द्व आदि) तथा उनकी सामान्य हित पूर्ति की दिशा में आई अड़चनें, प्रयत्न एवं निष्कर्ष ही सामाजिक उपन्यास की रीढ़ की हड्डी का कार्य करते है।

ऐतिहासिक उपन्यास का सम्बन्ध बीते हुए किसी काल की घटनाओं, चरित्रों और वातावरण से रहता है। ये सब तत्व समाज विशेष के अंग बन कर आते है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यास की भाँति मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों और उनकी समस्याओं की कहानी है। उपन्यासकार इसमें वर्तमान समाज की समस्याओं को भी कलापूर्वक ला रखता है। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास का 'इतिहास' उसमें अपेक्षाकृत प्रधान रहता है। उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह, उन तथ्यों के आधार पर उपन्यासकार की अपनी व्याख्या तथा काल विशेष के वातावरण की यथाविधि अवतारणा के मूल में यही इतिहास रहता है। ऐतिहासिक उपन्यास

१. **पर आपका यह कहना बिलकुल सही है कि अहिल्याबाई के चरित्र पर प्रकाश डालना ही इस उपन्यास का [या चरित कह लीजिए] खास ध्येय है।**

—वर्मा जी का पत्र, २८-१-५६

की यह विशेषता उसे सामाजिक उपन्यास से भिन्न स्तर पर ला खड़ा करती है।

वर्मा जी की ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रायः चर्चा की जाती है। अतः उनके उपन्यासों को उक्त कसौटी पर कसने से पूर्व इतिहास तथा ऐतिहासिक उपन्यास के रूप और दोनों के परस्पर अन्तर पर विस्तार से प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

इतिहास है क्या ?

इतिहास है क्या, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों ने तीन मत प्रस्तुत किए हैं। कुछ लोग इतिहास की गतिविधि को स्वचालित और बिना किसी ध्येय विशेष के मानते है। उनके मत मे इतिहास अपने को दुहराता है। बस ! इतिहास अपने आप को दुहराता क्यों है, क्या इतिहास की प्रगति वास्तव में प्रगति नही है ? क्या वह केवल पुनरावृत्ति मात्र है, बिना किसी ध्येय के, बिना किसी लक्ष्य के ? इन सब प्रश्नों के उत्तर में वे मूक हैं। यहाँ मनुष्य जीवन के हाथ में कठपुतली मात्र है। वह किसी अज्ञात की इङ्गित पर खोया सा नाचे जा रहा है। ये विद्वान् रामराज्य और गुप्तकाल के सुनहले स्वप्न देखते हैं। उन्हे विश्वास है, समय की कीली पर घूमता-फिरता इतिहास एक दिन अवश्य फिर से बीता वैभव ला प्रस्तुत करेगा। साथ ही एक मनोरंजक शङ्का उठ खड़ी होती है, तो मुगल साम्राज्यशाही और अंग्रेजी राज्य भी किसी न किसी दिन फिर आ धमकेंगे। इतिहास सम्बन्धी यह अनोखी कल्पना मानव की इच्छा-शक्ति की प्रसाद कही जा सकती है। मानव अतीत के वैभव के पुनरुज्जीवन की कल्पना करता है और यह कल्पना उसे भाती है।

अन्य विद्वान सागर की गोद में उठने और गिरने वाली तरंगों की भाँति इतिहास को आँकते हैं। वे देखते हैं, सरिता पर्वत से श्रवित हो मैदानों पर बहती है और एक दिन सागर में मिल ही जाती है। सागर में भी उसे विश्राम कहाँ, बादल में परिवर्तित हो वह बनती है मेघ, मेघ उमड़ते हैं, गरजते है, और बरसते हैं। सूर्य उदय होता है, चमकता है और अस्त होता है, कल फिर उठने के लिए। दिन के पीछे रात और रातके पीछे दिन दौड़ता है। प्रकृति की यह विश्रामरहित दौड़धूप, जिसका मूलमन्त्र उत्थान-पतन का चक्र जान पड़ता है, उन्हें इतिहास को उत्थान-पतन की आवृत्ति मात्र मानने की प्रेरणा देती है। तह में उपर्युक्त दोनों मत अधिक भिन्न नहीं है। इस दृष्टि से संसार में महान् पुरुषों का और स्फोटक घटनाओं का पदार्पण अभिप्राय शून्य जान पड़ता है।

विद्वानों का तीसरा वर्ग मानव के अस्तित्व को पहिचानने पर बल देता है। वे मनुष्य को प्रकृति या किसी अज्ञात, रहस्यमयी शक्ति (भले ही वह ईश्वर, नियति, प्रकृति या जो कुछ भी कही जाय) के हाथ में कठपुतली कैसे मान लें ? उनके मत से इतिहास मनुष्य निर्मित, लक्ष्य विशेषोन्मुख तथा नपी-तुली गतिविधि है। फ्रांस, रूस तथा चीन में १९ वीं शताब्दी में करवटें लेने वाली औद्योगिक क्रांति ने उसकी आँखें खोल दीं। इतिहास की दिशा को, उसके प्रवाह को बदलने या मोड़ने वाले कुछ महापुरुष ही नहीं, मनुष्यों के वर्ग, यूथ के यूथ होते हैं। इतिहास की गति द्वन्द्वात्मक है। यह विचार हमें स्फूर्ति प्रदान करता है। मनुष्य पीछे देखता है। पिछली बातें प्रेरणा देती हैं उसे आगे बढ़ चलने की और अपने साहस, शौर्य, प्रगति और जीवन के प्रति निष्ठा रखने की। यह तीसरा मत ग्राह्य जान पड़ता है। इसमें मनुष्य के अस्तित्व की स्वीकृति तथा उसकी प्रगति की व्यवस्था है। इतिहास हमारे लिए केवल खंडित पाषाणों से भरा अजायबघर नहीं है। उससे स्फूर्ति ग्रहण करनी है। मनुष्य को इतिहास ने बनाया, उसी प्रकार मनुष्य भी इतिहास बनाता है। हर क्षण यह क्रिया चल रही है।[1]

इतिहास—संघर्षों का लेखा-जोखा

प्रकृति, मनुष्य और समाज के मध्य सृष्टि के श्रीगणेश से आज तक द्वन्द्व चलता आया है। इस अनादि, अनवरत द्वन्द्व का लेखा-जोखा मानव का इतिहास है। मनुष्य ने सर्वप्रथम, प्रकृति के विरुद्ध विज्ञान का शस्त्र ग्रहण किया, प्रकृति की मनमानी उसे अखर उठी थी। प्रकृति को बहुत कुछ वशीभूत कर लेने पर द्वन्द्व का चक्र रुका नहीं। मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगी। तृप्ति के साधन सीमित थे और आवश्यकताएँ अनेक। जीवन की निर्बाध गति में यह बाधा उसे कैसे सहन होती ? मनुष्य, मनुष्य से सचेत हो गया। आदम के वंशज में आदमखोर की प्रवृत्ति अंगड़ाई ले उठी। मनुष्यों ने भिन्न-भिन्न यूथों में बँटकर मोरचे बनाये और आपस में भिड़ गये। विजेताओं ने शासन की बागडोर सँभाली। वे स्वामी थे और विजित उनके दास। यह कहानी आज तक न जाने कितनी बार दोहराई गई।

आगे चलकर मनुष्य ने समाज का अस्तित्व अनुभव किया। व्यक्ति और समाज की सीमायें कहीं-कहीं आपस में टकरायीं। समाज ने व्यक्ति की उपेक्षा

१. आलोचना···५ अक्टूबर, ५३ में 'ऐतिहासिक उपन्यास'···पृ० १० से १२

की और व्यक्ति ने समाज के प्रति विद्रोह। द्वन्द्व चैतन्य हो उठा। समाज ने विद्रोह को कुचल दिया अथवा कभी-कभी किसी क्रान्तिकारी ने समाज की धारा को मोड़ कर युग-प्रवर्तक की संज्ञा पाई। इस प्रकार अनन्त काल से मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और समाज में अनवरत द्वन्द्व होता चला आ रहा है। गत संघर्षों की स्मृति उसे कल की टक्करों के लिए बल देती है, स्फूर्ति देती है, प्रेरणा देती है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का इतिहास के सम्बन्ध में व्यक्त किया गया मत यहाँ उल्लेखनीय है–'सृष्टि ईश्वर ने रची और चलाई है और उसी की प्रेरणा से यह अब भी चल रही है, इस सिद्धान्त को मैं नहीं मानता। समाज का सृजन आर्थिक विवशताओं से होता है।'' काम्टे ने फ्रान्स में इसको प्रारम्भ किया बर्कले ने इङ्गलैंड में इसे बढ़ाया। और मार्क्स ने इसे परिपक्व किया। इस सिद्धान्त में इतिहास की कोई गुंजाइश नहीं। मैं इसके कुछ अंशों को मानता हूं और कुछ को नहीं। मेरा अपना अलग सिद्धान्त है।

'मानव का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है और होगा। वह एक बात में बढ़ता है दूसरी में घटता है। सर्वतोन्मुखी बाढ़ कभी नहीं आती। यही मानव का प्रगतिवाद है।'[1]

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यास

'इतिहास का अर्थ है 'इति-ह-आस' यानी यह ऐसा हुआ। उपन्यास का अर्थ ही है 'नवलिका' [नवेले, नाविल] या कादम्बरी। पहला घटना का यथार्थ वर्णन करता है। दूसरा कल्पना का रोचक रम्य विलास है। तो क्या दोनों में कोई मौलिक विरोध है, क्या यथार्थ की गौण मिट्टी से ही हमारी कल्पना नहीं बनती और हमारे सपनों का कुछ असर हमारे यथार्थ निर्माण पर पड़े बिना नहीं रहता है और फिर ऐतिहासिक उपन्यास एक कलाकृति भी है। यानी कलाकार व्यक्ति की मेधा और मार्मिक भावना से छनकर नया रूप और रङ्ग दिखलाने वाला समाज दर्शन। कलाकार व्यक्ति समाज-निरपेक्ष नहीं और न ही समाज व्यक्तियों से अप्रभावित रहा है।

अंग्रेजी समालोचक वाल्टर बैगहौट ने ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास की तुलना बहते हुये जल प्रवाह में पड़ी हुई प्राचीन दुर्ग मीनार की छाया से की है। पानी नया है। नित्य परिवर्तनशील है परन्तु मीनार पुरानी है अपने स्थान पर स्थित है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की भी यही समस्या है कि

१. 'तरंग' ९ मार्च ५१, में 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा'।

उसके पैर तो इस जमीन पर है वह सांस इस युग और निमिष में ले रहा है। परन्तु उसका स्वप्न पुरातन है और फिर भी नवीन है। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेंगे।[१]

ऐतिहासिक उपन्यासकार और इतिहासकार दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है यद्यपि ये प्रचलित तथ्यों पर आधारित है और भूत का ही वर्णन करते है। इतिहासकार तथ्यों तथा उनके कारणों को दृष्टि में रखते हुए अनुमान अथवा तर्क द्वारा उन्हें शृङ्खलाबद्ध करता है। वह तथ्यों और कारणों के आधार पर सम्बन्धित विस्मृत घटनाओं आदि का अनुमान लगा सकता है। कल्पना तथा व्याख्या का कार्य उसके क्षेत्र से बाहर है। वह खोजमात्र करके परिस्थिति और घटना का वर्णन करता है उसका निर्माण नहीं। उसके लिये बाह्य घटनायें मुख्य हैं। आन्तरिक भावनाओं के वर्णन से यथाशक्ति बचता है। उन्हें उसी सीमा तक स्पर्श करेगा जहां तक बाह्य घटनाओं से वे अनुमेय है। उसके लिये राष्ट्र मुख्य है और व्यक्ति गौण। अतः उसका क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं हो पाता।

दूसरी ओर, ऐतिहासिक उपन्यासकार तथ्यों पर आधारित होते हुए भी कल्पना और व्याख्या का प्रयोग करने के लिये स्वतन्त्र है। वह वैज्ञानिक की भाँति परिस्थितियाँ उत्पन्न कर उन पर सामाजिक प्रयोग करता है। वह पात्रों के मानसिक विश्लेषण के साथ विश्वासपात्र की भाँति उनके आन्तरिक रहस्य का दिग्दर्शन कराता है। उसकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्त्व अधिक है, वह पात्रों को मनुष्य के दृष्टिकोण से ग्रहण करता है। मनुष्य के वास्तविक जीवन का बहुत सा अंश अव्यक्त रहता है। वह उसके जीवन के अनावश्यक व्यक्त को छोड़कर उल्लेखनीय अव्यक्त को व्यक्त करता है जब कि इतिहासकार व्यक्त का भी केवल उतना ही अंश ग्रहण करता है जो राष्ट्र व जाति के उत्थान पतन से सम्बन्धित है। व्यक्ति को प्रमुखता देने के कारण उपन्यासकार जीवन के अधिक समीप है।

कल्पना के इतने विस्तृत क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते समय ऐतिहासिक उपन्यासकार केवल उपन्यासकारिता में रमा रह कर 'इतिहास' के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उसका कर्तव्य-निर्वाह उसी समय सम्भव है जब वह उपन्यास में प्रचलित और अप्रचलित ऐतिहासिक तथ्यों को बिना तोड़े मरोड़े ज्यों का त्यों रहने दे। तथ्य का गला घोटकर कल्पना, व्याख्या, संगति और सम्भावना सब निष्प्रभ हैं, निष्प्राण हैं। उपन्यासकार का कौशल इसी में है, वह दोनों मुख्य तत्त्वों—इतिहास और उपन्यास—को ऐसे घुले-

---

१. 'आलोचना'...५, में 'ऐतिहासिक उपन्यास'

मिले रूप में ले आये जैसे दूध और चीनी। उन्हें अलग-अलग पहिचान लेना असम्भव जान पड़े।

कथावस्तु को शृङ्खलाबद्ध तथा सजीव रूप प्रदान करने के लिये उपन्यास-कार को परम्पराओं तथा किंवदन्तियों का आश्रय लेना होता है। वह अपने आदर्श तथा पसंद की कसौटी पर खरी उतरनेवाली परम्पराओं को चुनकर उन्हें उपन्यास में जहाँ-तहाँ सजा देता है। साथ ही उसे कुछ काल्पनिक चरित्रों को स्थान देना होता है। उपन्यासकार की यह देन यदि तर्कयुक्त, अर्थपूर्ण तथा आनुपातिक है, और तथ्यों को ठेस नहीं पहुँचती तो ग्राह्य है। ऐतिहासिक उपन्यासों में खप सकती है।

ऐतिहासिक उपन्यास—क्यों ?

प्राचीन गाथायें पाठकों के मनोरंजन और कुतूहलवर्द्धन के अतिरिक्त उन्हें बल भी प्रदान करती हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास के चौखटे में मानव की शाश्वत समस्याओं और क्रियाओं को ऐसे ढङ्ग से संजोता है कि वे बीते युग की कहानी होकर भी 'आज' की चर्चा है। वह वर्तमान समस्याओं की नींव पर इतिहास की अद्‌भुत, शृङ्गार, वीर, रौद्र, वीभत्स और करुण रस की चुभने वाली हृदयस्पर्शी कहानियों की दीवारें उठाता है और उन पर टिकाऊ कल्पना की छतें पाट कर सुन्दर भवन खड़ा कर देता है। ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता में पाठक को विश्वास होता है। वह उपन्यास के पृष्ठों में उलझता हुआ वर्तमान समस्याओं की कटुता और तत्सम्बन्धी अपने दुराग्रहों को क्षण भर के लिये भुला बैठता है। इसी बीच उपन्यासकार तटस्थ पाठक को चुपचाप अदृश्य प्रेरणा देता है और पाठक न्यायोचित सुझावों को निष्पक्ष भाव से ग्रहण कर लेता है—बिना किसी झिझक के। इस विषय में वर्मा जी का वक्तव्य उल्लेखनीय है —'उपन्यास और कहानी आप को आज भी दैनिक समाचार पत्र की अपेक्षा किसी दूसरे समय और वातावरण में उठा ले जाती है। आप अपने तत्कालीन क्षण को भूल जाते हैं और कहानी के क्षणों में विचरने लगते हैं। मैं आप लोगों को कभी सैकड़ों वर्ष पीछे ले जाता हूँ और कभी उससे भी अधिक परन्तु इतिहास की उदासीनता में आप को फिर भी जकड़े रहता हूं। किसी देश का इतिहास भूत और वर्तमान से अलग रह कर नहीं चलता। भूत में ग्राह्य और अग्राह्य दोनों ही हैं। भूत के ग्राह्य को लेना और अग्राह्य को छोड़ देना वर्तमान के लिए उतना ही आवश्यक है जितना भविष्य के लिए वर्तमान की सुरुचता और सुघड़ता का। मैं गौरव गाथा द्वारा वर्तमान को भुलाता नहीं हूँ। और न

पाठक को पलायनवादी बनाता हूँ। मैं उनको उत्तेजित करके भविष्य के लिए प्रबल बनाता हूँ। मैं ताश के सुन्दर पत्ते बनाता हूं। आप उनसे तुरुप, ब्रिज चाहें जो खेलें, परन्तु खेलें सहानुभूति, ईमानदारी और खिलाड़ीपन के साथ। मैं केवल लकड़ी का खेल नहीं सिखाता जिससे केवल हाथ-पांव तोड़े जाएँ या खोपड़ी का भंजन किया जाए। वर्तमान समस्याओं का हल अचेत मन पर हमला करने से ज्यादा आसान होगा और सचेत मन पर हमला करने से कम। जब मैं शताब्दियों पहले के वातावरण में पाठकों को उठा ले भागता हूँ, तब वे वर्तमान का कोई भी आग्रह या दुराग्रह साथ नहीं ले जा पाते। फिर वहीं उनके अचेत मन में प्रवेश करके जो कुछ करना चाहता हूँ कर डालता हूँ। वे जब उपन्यास को समाप्त करने के बाद वर्तमान में लौटते हैं, तब अपने आप को कुछ अधिक सशक्त, स्फूर्तिमय और बढ़ा हुआ पाते हैं। उनको मैं पुराने वातावरण में ले जाकर पुरातन की ग्राह्य और अग्राह्य दोनों मूर्तियाँ दिखाता हूँ जिससे वे वर्तमान में लौट कर पुरातन के सड़ियल-पने को वहीं छोड़ आएँ और सशक्त को अपने साथ रखकर वर्तमान की समस्या से भिड़ने में अपने आपको समर्थ पाएँ। 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'लक्ष्मी बाई', 'कचनार' इत्यादि में ग्राह्य और अग्राह्य आप दोनों पाएंगे।.....

'...पहली बार पढ़े तो मनोरंजन होता है, कुछ स्फूर्ति मिलती है। पाठक पलायनवादी किसी भी हालत में नही बनता। पलायनवाद तो सैक्स सम्बन्धी उपन्यास कराते हैं। मज़दूरों को किसी कारखाने में क्या और क्यों मिलना चाहिए? किसको मिटा कर कौन आगे बढ़े। यह मै नहीं बतलाता और न सिखाता हूँ। मैं तो निर्बल को सबल बनाना चाहता हूँ और यह भी दूसरे का खून बहाए बिना। यदि मेरे कुछ पाठक समझें कि यह सम्भव नहीं, तो मैं कहूँगा कि वे भारतीय या अभारतीय संस्कृति के इतिहास को समझे नहीं। मैं स्काट, ह्यूगा से भिन्न ऐतिहासिक उपन्यासों में आजकल की समस्याओं का भी समावेश करता हूं। 'लक्ष्मीबाई' उपन्यास में नारायण शास्त्री ब्राह्मण और छोटी नाम की भंगिन का प्रणय एक समस्या है न। पलायन के लिए लोग 'चन्द्रकान्ता' पढ़ सकते हैं, पर मेरा उपन्यास नहीं।'

राजनीतिक समस्याएं भी उनके क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। वे कहते हैं—मेरे उपन्यास आज के राजनीतिक प्रश्नों का उत्तर नहीं देते तो करते ही क्या हैं? 'लक्ष्मी बाई' में बाबा गंगादास और लक्ष्मीबाई की बातचीत, अंग्रेजों से झाँसी की जनता की लड़ाई, उसी उपन्यास में बाँदा के नवाब, राय साहेब, पेशवा, तात्या इत्यादि के चरित्र इसके जवाब हैं। पूरा उपन्यास पढ़ने पर

वर्तमान प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा। और बिना किसी विशेष राजनीतिक दल का नाम लिए, बिना किसी को चिढ़ाए-कुढ़ाए ही आर्थिक प्रश्नों का उत्तर मिलेगा। हाँ, मुद्रास्फीति, पूंजी और श्रमवाद इत्यादि के शब्द नहीं होंगे, क्योंकि सीधी बात है कि उपन्यास सम्पत्ति-शास्त्र की पुस्तक नहीं है। मैं श्रमजीवी हूं और श्रम का पुजारी। श्रम का आराधक, चाहे श्रम हाथ-पैर का हो, चाहें दिमाग का हो। दिमाग का श्रम अधिक पैना, अधिक मूल्यवान और अधिक महत्त्व का होता है। और रहेगा। यह सब मेरे ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों में मिलेगा। सामन्तों के निकम्मेपन और दुष्परिणाम का चित्र मेरे उपन्यास 'मुसाहिबजू' में पाइएगा।'[१]

वर्मा जी के उपन्यासों को वर्णवस्तु के दृष्टिकोण से निम्नलिखित दो भागों में बांटा जा सकता है।

[अ] सामाजिक उपन्यास

१. लगन
२. संगम
३. कुंडलीचक्र
४. प्रेम की भेंट
५. प्रत्यागत
६. कभी न कभी
७. अचल मेरा कोई
८. अमरबेल

[ब] ऐतिहासिक उपन्यास

१. गढ़ कुण्डार
२. विराटा की पद्मिनी
३. मुसाहिबजू
४. झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई
५. कचनार
६. मृगनयनी
७. टूटे कांटे
८. अहिल्याबाई

---

१. 'सरगम'...९, 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—

इनके अतिरिक्त 'सोना' उपन्यास अपनी विशेषताओं के कारण प्रथक वर्ग में रखा जा सकता है। इसके कथानक और पात्र बुन्देलखंडी लोक कथाओं से संजोये गये हैं। इन कथाओं को मनोविज्ञानसम्मत बनाने का प्रयत्न है। कथाओं की कड़ियों को जोड़ने का कार्य उपन्यासकार की कल्पना और अनुभवों ने किया है। इस प्रकार यह तीसरा वर्ग हुआ।

[स] लोक कथात्मक उपन्यास

१. सोना

अब सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को क्रमशः समस्याओं, क्षेत्र तथा ऐतिहासिक पूर्णता-अपूर्णता तथा काल के आधार पर उपविभागों में विभाजित किया जा सकता है।

[अ] सामाजिक उपन्यासों का वर्गीकरण

मुख्य कथाओं की आधार भूमि प्रस्तुत करने वाली समस्याओं की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों का वर्गीकरण —

(क) वैवाहिक समस्या

[इसके अन्तर्गत सामाजिक प्रथा, विवाह, से सम्बन्धित समस्याएँ ली जा सकती है। ये समस्याएँ हैं दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों में मनमुटाव, विवाह के अवसर पर आपसी झगड़े, वर-वधू की कुंडलियों के मिलने का प्रश्न तथा स्त्री पुरुष के मध्य प्रेम, जो विवाह का आधार बनता है, या अपनी उन्मुक्तता के कारण रूढ़िगत समाज से टकराकर उस सागर में बरसा भाँति-भाँति की लहरें उठा देता है]

१—लगन [दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों में मनमुटाव तथा पति और पत्नी की एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन]

२—संगम [दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों में मनमुटाव। विवाह के अवसर पर आपसी परिहास के कारण सक्रिय झगड़ा। इस झगड़े का दुष्परिणाम उपन्यास के अन्त तक प्रभाव रखता है]

३—कुंडली चक्र [असफल प्रेम। मात्र कुंडली मिलाकर विवाह करा देने का दुष्परिणाम]

४—प्रेम की भेंट [युवक-युवती का परस्पर प्रेम और उसमें बाधा]

५—कभी न कभी [विवाह निश्चित करने की समस्या। इस प्रसंग में टीपना अथवा कुंडली का विशेषतया उल्लेख आता है]

६—अचल मेरा कोई [अनमेल विवाह और प्रेम-त्रिकोण]

(ख) धर्म-परिवर्तन-समस्या

१—प्रत्यागत [युवक मंगल के बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने पर उसके हिन्दू-समाज में प्रत्यागमन की समस्या]

(ग) ग्राम-सुधार-समस्या

१—अमरबेल [सहकारिता आन्दोलन द्वारा ग्रामीण समाज के पुनर्गठन और ग्राम निर्माण कार्य की समस्या]

सामाजिक उपन्यास ग्राम, नगर या ग्राम-नगर दोनों क्षेत्रों को लेकर चलते हैं। क्षेत्र की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों के तीन विभाग किये जा सकते हैं :–

(घ) ग्रामीण समाज सम्बन्धी

१—लगन [बरौल और बजटा]

२—प्रेम की भेंट [तालबेहट]

(ङ) नागरिक समाज सम्बन्धी

१—प्रत्यागत [बाँदा] प्रधान पात्र कुछ समय के लिये बम्बई तथा मलाबार में भी ठोकरें खाने चला जाता है।

(च) ग्रामीण–नागरिक–समाज सम्बन्धी

[इन उपन्यासों में कथा ग्राम तथा नगर के समाज से सम्बन्ध रखती है या नगर तथा ग्राम की कथायें साथ-साथ चलती हैं]

१—संगम [बरुआ सागर, ढिमलौनी···झाँसी]

२—कुंडली चक्र [मऊसहानिया, सिंगरावन···बड़ा गाँव छावनी]

३—कभी न कभी [बनगंवा···बलवन्तनगर]

४—अचल मेरा कोई [अचल, सुधाकर, कुन्ती की मुख्य कथा शहर तथा पंचम, गिरधारी की प्रासंगिक कथा गाँव में चलती है। गाँव तथा शहर के नाम का उल्लेख उपन्यास में नहीं किया गया है]

५—अमरबेल [घटनायें सुहाना, बाँगुर्दन गाँवों में केन्द्रित रहती हैं फिर भी मुख्यपात्र देशराज और अंजना का सम्पर्क शहरी जीवन से विशेष रूप से रहता है और वे शहरी स्पर्श गाँव में लाने में सफल होते हैं]

[ब] ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्गीकरण

ऐतिहासिक उपन्यास किसी विगतकाल के वातावरण को अपने आप में संजोये रहते हैं। अतीत के वे धूमिल आकर्षक दिन ही पाठक के चित्त को

लुभाने के शक्तिशाली साधन हैं। इस दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों के दो भेद किये जा सकते हैं।

१—वे उपन्यास जिन्हें आकर्षण प्रदान करने के लिये विगत युग के वातावरण मात्र की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया जाता है। उस वातावरण में घटित होने वाली घटनाएँ, घूमने-फिरने वाले पात्र किसी भी युग की देन हों अथवा उपन्यासकार की कल्पना ही उनकी स्रष्टा हो सकती है। दूसरे प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास वे हैं जिनमें ऐतिहासिक वातावरण के अतिरिक्त अधिकांश घटनाएँ तथा पात्र भी ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित रहते हैं। इन ऐतिहासिक तथ्यों को सजीव तथा शृंखलाबद्ध रूप प्रदान करने के लिये उपन्यासकार निजकी कल्पना तथा व्याख्या का सहयोग देता है। केवल ऐतिहासिक वातावरण वाले तथा ऐतिहासिक वातावरण, कथावस्तु और पात्रों से युक्त उपन्यासों को श्री शिवनारायण श्रीवास्तव ने क्रमशः ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यास तथा शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दी है।[1] इसी प्रसंग में उन्होंने 'गढ़ कुंडार' की सम्पूर्ण कथा तथा समस्त पात्रों को ऐतिहासिक और 'बिराटा की पद्मिनी' के इन तत्त्वों को काल्पनिक माना है। यह निष्कर्ष सरसरी दृष्टि का परिणाम जान पड़ता है। वास्तव में 'गढ़ कुंडार' की केवल मुख्य कथा और कुछ मुख्य पात्र ऐतिहासिक है। अतः शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास से हमारा तात्पर्य होगा उसकी मुख्य कथा तथा मुख्य पात्रों की इतिहास-सम्मतता से। 'बिराटा की पद्मिनी' के पात्र और कथा भी काल्पनिक नहीं है, इस तथ्य पर आगे प्रकाश डाला जाएगा।

(क) शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास

१—गढ़ कुंडार
२—मुसाहिबजू
३—झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई
४—मृगनयनी
५—अहिल्याबाई

(ख) ऐतिहासिक प्रेमाख्यानक उपन्यास

१—बिराटा की पद्मिनी
२—कचनार
३—टूटे काँटे

इन आठ ऐतिहासिक उपन्यासों की कथाएँ विभिन्न कालों से सम्बन्ध रखती

१. हिंदी उपन्यास···पृ० ४२

हैं। अतः कालक्रमानुसार इन का एक अन्य वर्गीकरण किया जा सकता है–

(क) तेरहवीं शताब्दी

१—गढ़ कुंडार [इसका सम्बन्ध १३ वीं शती के अन्तिम भाग से है—खंगारों के नाश पर उपन्यास का अन्त होता है। यह घटना सन् १२८८ की है। उपन्यास की घटनाओं का प्रारंभ लगभग एक वर्ष पूर्व होता है]

(ख) पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त और सोलहवीं का प्रारंभ

२—मृगनयनी [मृगनयनी के पति मानसिंह तोमर का ग्वालियर में राज्यकाल सन् १४८६ से १५१६]

(ग) १८ वीं शताब्दी

३—बिराटा की पद्मिनी [दिल्ली में उस समय फ़रुखसियर का राज्य था। सन् १७१३ से १७१९। सैयद भाइयों का अस्त]

४—टूटे काँटे [मुहम्मदशाह का राज्यकाल १७१९ से १७४८। नादिरशाह का आक्रमण १७३९]

५—अहिल्याबाई [देहान्त १३—८—१७९५]

६—कचनार [१७९०···१८००]

(घ) १९ वीं शताब्दी का पूर्व और मध्य काल

७—मुसाहिबजू [सन् १८०० के बाद]

८—झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई [सन् १८५७ के विद्रोह के आसपास का काल]

अध्याय ३

वर्मा जी के उपन्यासों की कथावस्तु

कथावस्तु

उपन्यास का संबंध घटनाओं और व्यापारों से, अर्थात् उन बातों से है जो सहन या संपादित की जाती हैं। इनको ही हम उपन्यास की 'वस्तु' या 'कथानक' कहते हैं। उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है किन्तु जीवन का स्वरूप किसी सुयोजित साँचे में ढलकर खड़ा नहीं होता। जीवन-प्रवाह वर्षा-जल की भाँति, बिना किसी उद्देश्य, बिना किसी योजना के चलता रहता है। उपन्यास कलाकृति है, उसमें जीवन एक विशेष दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाता है। वह जीवन की नींव पर खड़ा मनोरम भवन है। यह भवन असंभव को संभव कर दिखाता है। इसकी भित्तियों पर जीवन के चुने हुए चित्र रहते हैं, उनमें एक क्रम रहता है। ये थोड़े से चित्र एक योजना को दृष्टि में रखकर अङ्कित होने के कारण जीवन की पूरी झाँकी देने में समर्थ हैं।

उपन्यास में एक सन्देश रहता है। उपन्यासकार उस सन्देश—लक्ष्य—को दृष्टि में रखकर जीवन से घटनायें चुनकर उन्हें एक क्रम में संवारता है। संयोजन में अनावश्यक घटनाओं को छोड़ आवश्यक घटनाओं को (भले ही वे जीवन में गौण रही हों) महत्त्व प्रदान करता है। वह जीवन की विशृङ्खलता में भी कोई शृंखला, कोई क्रम, कोई योजना ढूँढ़ निकालता है। उसका कार्य फोटोग्राफर का नहीं वरन् चित्रकार, मूर्तिकार या कुम्हार जैसा है। जीवन उसके लिये कुम्हार के गारे के समान है। वह उस मिट्टी को काट छाँट कर एक नूतन, सोद्देश्य, संगठित रूप प्रदान करता है। अतः कथानक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है, वह किसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर जीवन से संग्रहीत घटनाओं की सुसंगठित क्रमबद्ध योजना है।

कथावस्तु के ढाँचे को सुदृढ़ बनाने में दो तत्त्वों का हाथ रहता है—इतिवृत्तात्मक और रसात्मक। इतिवृत्त घटनाओं के मध्य संयोग स्थापित कर कथा

को अग्रसर करता है; घटनायें प्रारंभ से लेकर अन्त तक इस संतुलन और अनुपात में रहें कि उनका क्रम अटूट रहे और कथा का अन्त उन सब क्रिया-कलापों का तर्कसंगत निष्कर्ष जैसा जान पड़े। हृदयस्पर्शी घटनाएं रसात्मक स्थल हैं। इतिवृत्तात्मक और रसात्मक स्थलों पर आनुपातिक प्रकाश डाल कर पाठक के हृदय में वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में उपन्यासकार की कला है।

अच्छा कथानक

बा० गुलाबराय ने अच्छे कथानक के पाँच गुण स्वीकार किये हैं, उन्हें संक्षेप में यहाँ दिया जाता है—

१—मौलिकता—मौलिकता का प्रश्न बड़ा जटिल है। वैसे तो जितने उपन्यास हैं उन सबके कथानक पन्द्रह-बीस मूल समस्याओं में घटाये जा सकते हैं। कथा में विषय की नवीनता हो तो बहुत अच्छी बात है किन्तु वर्णन का ढंग अवश्य नवीन होना चाहिए। समीक्षक इसी मौलिकता को देखता है।

२—कौशल—कथावस्तु में संबंध-निर्वाह और उसकी उलझनों को सुलझाने की चतुरता है। पेचीदा कथानकों में, विशेषकर उनमें जिनमें कि एक से अधिक कथायें समानान्तर रूप से चलती हैं, कौशल की बहुत आवश्यकता रहती है।

३—संभवता—उपन्यास में सत्य की कसौटी संभावना ही है। उपन्यास एक कलाकृति है, उसमें सत्य का सुन्दर रूप से प्रदर्शन किया जाता है। इस कारण उपन्यास घटनात्मक सत्य से नहीं बँधता किन्तु वह कोई ऐसी बात भी नहीं कहता जो संभव और घटनीय न हो। उपन्यास में कल्पना वास्तविकता का अनुसरण करती है किन्तु वहाँ वास्तविकता की मक्खीमार नकल नहीं होती। कलाकार फोटोग्राफर नहीं वरन् चित्रकार होता है। साधारण मनुष्य जिन बातों में बेखबर रहता है कलाकार उनके विषय में सचेत रहता है। वह चलती दुनियाँ के परिवर्तनशील दृश्यों में शाश्वतता को पकड़ता है। उसकी दृष्टि व्यापक होती है। वह ऐसा चित्र देता है जिसमें मनुष्य का आत्म-भाव निखर आये। कलाकार जीवन का सत्य ही नहीं देता वरन् सत्य के हार्द को समझने की दृष्टि भी देता है।

४—संगठितता—उपन्यास कलाकृति है। यद्यपि जीवन का प्रवाह किसी कटे-छटे ढाँचे के अनुकूल नहीं है तथापि उपन्यास के कथानक में संगठन, क्रम और संगति का होना आवश्यक है। संगठन से अभिप्राय यह है कि न कोई आवश्यक बात छूटे और न कोई अनावश्यक बात आये। इसके साथ यह भी वाँछनीय है कि घटनाएँ कार्य-कारण-शृङ्खला में बंधकर क्रमागत रूप में

दिखाई दें। संगठन-क्रम और संगति का निर्वाह स्वभाविक रूप से ही होना चाहिए अन्यथा इनके अतिरेक से कृत्रिमता का दोष आ जाएगा।

५—रोचकता—रोचकता जीवन के लिए चाहे आवश्यक न हो किन्तु उपन्यास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। रोचकता के लिए कुतूहल और नवीनता चाहिए। क्षण-क्षण में नवीनता प्राप्त करते रहना सौन्दर्य का व्यापक गुण है। नॉविल शब्द का ही अर्थ है नवीन। घटनाओं के एक दूसरे से सबंधित रहते हुए भी आकस्मिक और अप्रत्याशित को कथानक में स्थान मिलना चाहिये। वह अप्रत्याशित ऐसा हो जो कार्य-कारण-शृङ्खला से बाहर न होता हुआ भी पाठक की कल्पना से बाहर हो। आकस्मिक संयोग का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु इसके बाहुल्य से कृत्रिमता दिखाई देने लगती है। रोचकता के लिए न तो अधिक ब्योरे की आवश्यकता है और न उसकी उपेक्षा की। वैचित्र्य में एकता का गुण शैली का ही प्राण नहीं वरन् रचना मात्र का जीवन रस है।[1]

कथानक के प्रकार

कथानक गठन की दृष्टि से दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं— १—शिथिल कथानक २—सुगठित कथानक। पहले वर्ग का कथानक एक दूसरे से फूटने वाली घटनाओं से संयोजित नही रहता वरन् मुख्य पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने वाली परस्पर असंबंधित अनेक घटनाओं को लेकर उसका निर्माण होता है। उन घटनाओं में तारतम्य या कार्य-कारण का संबंध नहीं रहता, वे केवल मुख्य पात्र के चारों ओर घूमती हैं। सुगठित कथानक में किसी निश्चित योजना को दृष्टि में रखते हुए घटनाओं को परस्पर गूँथा जाता है। ऐसी दशा में उपन्यासकार के मस्तिष्क में कथा का पूरा ब्योरा उपन्यास-रचना से पूर्व रहता है। उस योजना में पात्र और घटनायें उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेते हैं। उन सब के मूल में कथा-सूत्र रहता है जो सबको मिलाता हुआ 'परिणाम' या 'अन्त' की ओर ले जाता है।

सुगठित तथा पूर्वनियोजित कथानक अपनी चुस्ती और सौंदर्य के कारण पाठकों के आकर्षण का विषय रहता है किन्तु कथानक अत्यधिक योजनाबद्ध होने पर उसमें संयोग, दैवयोग या आकस्मिकता के बहुप्रयोग के फलस्वरूप, वह यंत्रचालित-सा और अस्वाभाविक हो जाता है। संयोग जीवन में आते हैं किन्तु उपन्यास में पग-पग पर मनोवांछित विधि से घटनाओं का घटना और पात्रों का पर्दापण, पाठकों को उपन्यासकार की मनमानी जैसा

१—काव्य के रूप...पृ० १७२ से १७८

जान पड़ेगा। उनकी बुद्धि संयोगों की बाढ़ के प्रति विद्रोह कर उठेगी। अतः पूर्वनियोजित कथानक को स्वाभाविक गति से अग्रसर होना चाहिए।

कथानक एक या एक से अधिक कथाओं द्वारा निर्मित होने की दृष्टि से सरल तथा पेचीदा कथानकों की दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। सरल कथानक में केवल एक कथा होती है। पेचीदा कथानक में दो या दो से अधिक कथाएं मिलकर चलती हैं। ऐसी दशा में कथाओं का परस्पर ऐसी रीति से गूँथा जाना आवश्यक है कि वे सब किसी बड़ी सरिता में स्वतः आ मिलने वाली जल-धाराओं जैसी स्वाभाविक और कथानक की अनिवार्य, अविभाज्य अङ्ग सी जान पड़ें।

उपन्यास में कथावस्तु नाटक की भाँति दो प्रकार की होती है, अधिकारिक और प्रासंगिक। अधिकारिक, प्रधान पात्रों से सम्बन्ध रखने वाली मुख्य कथा है। इसका सूत्र प्रारम्भ से फल-प्राप्ति तक रहता है। प्रासंगिक–प्रसंगवश आयी या गौण कथा है। इसका संबंध सीधा नायक से न रह कर अन्य पात्रों से रहता है। यह मूल कथा की गति को बढ़ाने के लिए रहती है। इसकी फल-सिद्धि नायक के अतिरिक्त किसी अन्य को होती है। यह नायक की अभीष्ट फल-सिद्धि से भिन्न होती है किन्तु नायक का इससे हित साधन अवश्य होता है। इसके दो प्रकार हैं—पताका और प्रकरी। अधिकारिक के साथ अन्त तक चलने वाली प्रासंगिक कथा 'पताका', तथा उसके बीच में ही रुक जाने वाला कथा-प्रसङ्ग 'प्रकरी' है।[1]

अब हम प्रत्येक उपन्यास की कथावस्तु पर विस्तार-पूर्वक विचार करेंगे।

गढ़ कुण्डार

१. 'गढ़ कुंडार' की मुख्य कथा कुंडार के राजकुमार नागदेव के असफल प्रणय और खड्गार-राज्य के पतन की गाथा है। नागदेव बाल सखा अग्निदत्त सहित शिकार की टोह में घूमते फिरते भरतपुरा की गढ़ी में जा ठहरता है। गढ़ी में माहोनी के सोहनपाल बुन्देला से उसकी भेंट होती है। सोहनपाल के साथ राज्य-वितरण के समय अन्याय हुआ था। वह अपने भाई से राज्य की पुनर्प्राप्ति के हेतु कुण्डार से सहायताप्राप्ति की आशा में वहाँ ठहरा था। उसी रात्रि गढ़ी पर मुसलमान सेना की एक टुकड़ी आक्रमण करती है। युद्ध में घायल हुए नागदेव की परिचर्या सोहनपाल की कुमारी पुत्री हेमवती करती है। नागदेव हेमवती पर पूर्णतया आसक्त हो जाता है। वह उसे प्रेमपत्र लिखता है किन्तु वह पत्र उस तक नहीं पहुँचता।

---

१. काव्य के रूप...पृ० २८

नागदेव सोहनपाल को कुण्डार की सहायता का आश्वासन देता है। सोहन अपने सहायकों सहित सारौल डेरा डालता है और उसकी कन्या, पुत्रादि कुण्डार में ठहरते हैं। मुसलमानों के एक अन्य आक्रमण के समय नागदेव सारौल की गढ़ी में हेमवती के समक्ष प्रेम प्रकट करता है। हेमवती बुन्देला-पुत्री और नागदेव खंगार ! ऐसा वैवाहिक सम्बन्ध ! असम्भव !! हेमवती नागदेव का तिरस्कार कर उसकी प्रणय-याचना ठुकरा देती है। बुन्देले भी इस प्रस्ताव को ठुकराते हैं। नागदेव रात्रि में हेमवती-हरण का प्रयत्न करता है और असफल रहता है। हेमवती आदि कुण्डार से भाग निकलते हैं। नागदेव द्वारा अपमानित अग्निदत्त भी बुन्देलों मे जा मिलता है। वे सब कुंडार से अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए छल का आश्रय ग्रहण करते हैं। सोहनपाल नागदेव से हेमवती के विवाह का प्रस्ताव भेजता है। विवाहोत्सव के अवसर पर खङ्गार अपनी रीति के अनुसार खूब सुरा ढालते हैं और अचेतप्रायः हो जाते हैं। उस समय बुन्देले आक्रमण कर खङ्गारों को समाप्त कर देते हैं। कुण्डार पर सोहनपाल बुन्देला का अधिकार हो जाता है।

२. दूसरी कथा है अग्निदत्त के असफल प्रणय, अपमान और प्रतिशोध चुकाने की। वह ब्राह्मण है, खङ्गार नागदेव की बहन मानवती से प्रेम करता है। मानवती के विवाह के अवसर पर उसे ले भागने की योजना बनाता है। मानवती की किंकर्तव्य-विमूढ़ता तथा भय के कारण अग्निदत्त मनोरथ में असफल रहता है। एकाएक नागदेव के घटनास्थल पर आ जाने से रहस्य खुल जाता है। अग्निदत्त को नागदेव के हाथों अपमानित होकर भागना पड़ता है। प्रतिशोध की अग्नि में सुलगता अग्निदत्त बुन्देलों को कुण्डार-विनाश में योग देता है। अंत में एक खेत में पड़ी प्रसूता मानवती की रक्षा में पागलों की भाँति लड़ते हुए पुण्यपाल के हाथों मारा जाता है।

३. तीसरी कथा है दिवाकर और तारा के नैसर्गिक सफल प्रणय की। दिवाकर सोहनपाल के सेवक-मित्र धीर प्रधान का पुत्र है। वह सोहनपाल के पुत्र, पुत्री के साथ कुण्डार जा ठहरता है। वहाँ वह अग्निदत्त की सरला, सुन्दरी बहन तारा के दर्शन करता है। तारा अपने पिता के निर्देशानुसार पति-प्राप्ति के लिए अग्नि भैरव के नित्य पूजन का व्रत लेती है। पूजन के लिए देवरा की चौकी से नित्य कनैर के फूल दिवाकर लाता है। दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं। तारा ब्राह्मण और दिवाकर कायस्थ ! दिवाकर का वर्णाश्रम-धर्म-भीरु हृदय इस समस्या को लेकर अन्तर्द्वन्द्व में उलझ जाता

है। वह हेमवती की रक्षा करता हुआ घायल हो उसके साथ कुण्डार छोड़ जाता है।

नाग-हेमवती के विवाह के पूर्व दिवाकर बुन्देलों के षड्यंत्र की तीव्र आलोचना करता है। बुन्देले उसे विक्षिप्त और भयानक समझ देवरा चौकी के तलघरे में बन्द कर जाते हैं। तारा कुंडार से आकर उसे तलघरे से मुक्त करती है और दोनों इस कंटकाकीर्ण संसार को त्याग कर योग-साधना के लिए कहीं चले जाते हैं।

४. सैनिक अर्जुन कुम्हार और सामन्त हरि चन्देल। अर्जुन सरल,उजड्ड बुन्देलखण्डी है। भरतपुरा गढ़ी के फाटक पर उसकी अग्निदत्त और नागदेव से भेंट होती है। वे उसकी निर्भीक कर्कशता पर खीझते नहीं रीझते हैं। नाग अर्जुन द्वारा हेमवती को प्रेम-पत्र प्रेषित करता है किन्तु स्वामिभक्त अर्जुन वह पत्र हरिचन्देल को सौंपना अपना कर्त्तव्य समझता है। नाग के क्रोध की आशंका पर दोनों स्वयं व्यक्तिगत रूप से अपराध ओढ़ने को कटिबद्ध हैं किन्तु बात खुलती नहीं। हरिचन्देल नाग के विवाह के अवसर पर बुन्देलों द्वारा मारा जाता है।

५. अत्तीबेग और इब्नक़रीम। भरतपुरा की गढ़ी के मुसलमान आक्रमकों में से दो—अत्तीबेग और इब्नकरीम—बन्दी बनाये जाते हैं। धूर्त्त छली अत्ती कुंडार भेजे जाते समय भाग निकलता है और पुनः थोड़े दिनों बाद मुसलमान आक्रमकों को ले आता है। दृढ़, वीर इब्नक़रीम को नागदेव कुण्डार की सेवा में रख लेता है। अत्तीबेग के आक्रमण की सूचना इब्नक़रीम अपने स्वामी को देकर युद्ध में अत्तीबेग का वध करता है। नागदेव के विवाह के अवसर पर इब्नक़रीम स्वामी की रक्षा करता हुआ मारा जाता है।

× × ×

(अ) जैसा कि कहा जा चुका है नागदेव के असफल प्रणय और कुण्डार-राज्य के पतन की कथा 'गढ़ कुण्डार' में अधिकारिक है। इसमें विकास की पाँचों अवस्थायें स्पष्टतया लक्षित होती हैं। दूसरे परिच्छेद 'अर्जुन पहरेदार' में परिस्थिति की व्याख्या है। नागदेव आदि के परिचय और पारस्परिक सम्बन्धों की सूचना मिलती है। 'भरतपुरा की गढ़ी' [परि० ३] में सोहनपाल की कुण्डार से सहायता-याचना तथा नाग के हेमवती के प्रति आकर्षण का प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है, इसे प्रारम्भिक संघर्षमय घटना कह सकते हैं। नाग की हेमवती के प्रति तीव्र लालसा, हेमवती आदि का कुण्डार में आकर रहना तथा खंगारों की ओर से इस सम्बन्ध को स्थापित करने के प्रयत्नों के साथ कार्य चरम सीमा की ओर बढ़ने लगता है। यह अवस्था 'आखेट'

[परि० २७] से मानी जा सकती है। फिर आती है चरम सीमा—'आक्रमण' [परि० ४७] में हेमवती द्वारा नाग की प्रणय-याचना का ठुकराना। यहाँ आकर खंगार बुन्देलों का संघर्ष स्पष्ट हो उठता है। कथा किसी अंधकारमय भविष्य की ओर तीव्रता से अग्रसर होती है। यह कार्य की ओर झुकाव की अवस्था 'कुण्डार में धीर प्रधान' [परि० ६७] तक चलती है—खंगार-विनाश-षड्यंत्र के आयोजन तक। राजा हुरमतसिंह द्वारा नाग-हेमवती-विवाह की स्वीकृति तथा विवाह के अवसर पर खंगार नाग की घटनायें 'महोत्सव' [परि० ७४] पर पहुंचकर परिणाम या अन्तिम अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं।

अग्निदत्त की कथा प्रासंगिक है, मुख्य कथा से प्रारंभ से लेकर अन्त तक गुंथी हुई। अग्निदत्त नागदेव का बाल सखा है। दोनों दूसरे परिच्छेद में साथ साथ पदार्पण करते हैं, दोनों प्रेम-मार्ग के पथिक है। अग्निदत्त नागदेव की बहन मानवती से प्रेम करता है। दोनों प्रेमियों—नाग, अग्निदत्त—का लक्ष्य संदिग्ध है, उलझा हुआ। आगे चलकर नाग को हेमवती-हरण में असफलता मिलती है। वह लौटता है चोट खाया, झुंझलाया। अग्निदत्त को मानवती के साथ पलायन के हेतु उद्यत पा आग बबूला हो उठता है। वह अग्निदत्त का मान-मर्दन कर उसे कुण्डार से निष्कासित करता है। नाग अग्निदत्त के मनोरथ को विफल करता है और अग्निदत्त करता है नाग और कुण्डार के विनाश में सहायता। ७४ वें परिच्छेद में खंगार-नाश और ७६ वें में अग्निदत्त का वध है। दोनों कथायें साथ प्रारम्भ होकर साथ परिणाम पर पहुँचती है। विकसित भी एक साथ होती है, कंधे से कंधा भिड़ाकर। अग्निदत्त की कथा मुख्य कथा की गति बढ़ाती है और उसकी फल-प्राप्ति या 'कार्य' में योग देती है।

दिवाकर और तारा के प्रणय वाली तीसरी कथा का सूत्रपात २६ वें परिच्छेद 'तीन आश्चर्य' से होता है। दिवाकर, सोहनपाल के सहायक धीर प्रधान के पुत्र तथा अग्निदत्त की बहन तारा के मध्य प्रणय पनपता है। दिवाकर बुन्देलों का सहायक है और नाग की हेमवती-हरण-योजना में बाधक सिद्ध होता है। इस घटना के अतिरिक्त यह कथा मुख्य कथा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालती। यह, मुख्य कथा को काटती पीटती और उसमें जहाँ तहाँ उभरती हुई चलती है। उसके परिणाम 'महोत्सव' से भी यह बचकर निकल जाती है। नागदेव के विवाह-षड्यंत्र में बुन्देले भावुक दिवाकर को विश्वास समझ सम्मिलित नहीं करते। उसे देवरा के तलघरे में बन्द कर छोड़ जाते हैं। कुण्डार में बुन्देलों और खंगारों के मध्य मारकाट मचती है और

इधर तारा घोड़े पर सवार हो कुण्डार त्याग दिवाकर से देवरा में जा मिलती है। दोनों 'योग-साधना' के लिये चल पड़ते हैं। मुख्य कथा का संघर्ष और विनाशमय परिणाम इस कथा के नेपथ्य में रहता है, संकेत जैसा।

नाग-अग्निदत्त की कथाओं के अतिरिक्त इस तीसरी प्रणय कथा के द्वारा आदर्श प्रणय के चित्रण का लक्ष्य उपन्यासकार की दृष्टि में रहा है। नाग का प्रेम एकांगी है, उसमें लोलुपता और हठ है। अग्निदत्त के प्रेम में प्रचंडता प्रधान है। वह परिस्थिति और मर्यादा के प्रति उदासीन है। निराश होने पर उसका प्रेम प्रतिक्रिया का रूप धारण कर लेता है। दिवाकर और तारा के प्रणय का स्तर इन दोनों कथाओं से भिन्न है। दोनों का प्रणय मन्दिर और पूजन के वातावरण में प्रस्फुटित होता है, मूक, नियंत्रित और परस्पर न्यौछावर हो जाने की भावना लिए। यह कथा मुख्य कथा के परिणाम के बाद भी चलती है उससे अलिप्त रहकर। अन्तिम परिच्छेद [७७] पर दिवाकर, तारा के पलायन के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है। यह कथा स्वतन्त्र है, मुख्य कथा को केवल कहीं-कहीं छूती हुई। उपन्यास में इसका गुम्फन कुछ ऐसी विधि से हुआ है कि साधारण पाठक को इसकी उपस्थिति खटकती नहीं, प्रिय लगती है।

अर्जुन कुम्हार और उसके स्वामी हरिचंदेल की कथा मुख्य कथा में प्रकरी का कार्य करती है। नाग हेमवती के हेतु अर्जुन को प्रेम-पत्र देता है। पत्र गन्तव्य स्थान तक न पहुंचने के कारण नाग की हेमवती के प्रति भ्रमपूर्ण धारणा पुष्ट होती जाती है। यही भ्रम हेमवती द्वारा नाग के अपमान और कुंडार-पतन का कारण बनता है। सैनिक अत्तीवेग तथा इब्नकरीम की कथा तत्कालीन मुसलमान सैनिकों के चरित्र के दो विभिन्न पहलू प्रस्तुत करती है— एक ओर स्वार्थी आक्रमक अत्तीवेग तो दूसरी ओर उसूल का पाबन्द, स्वामिभक्त इब्नकरीम। यह कथा मुख्य कथा की घटनाओं से संबद्ध है किन्तु उसे विशेषतः प्रभावित नहीं करती।

(ब) स्थानीय इतिहास में मुख्य कथा का सूत्र इस प्रकार मिलता है। घटना सन् १२८८ की है। माहोनी के राजा बीरबल [वीरपाल] ने राज्य वितरण करते समय अपने अनुज सोहनपाल के साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं किया। लिखा है—'असंतुष्ट सोहनपाल कुंडार के खंगार राजा नाग के पास सहायता-प्राप्ति के लिये गया। नाग ने सहायता का वचन दिया किन्तु शर्त लगाई कि सोहनपाल को उससे खान-पान का और वैवाहिक संबंध स्थापित करना होगा। इस प्रस्ताव पर सोहनपाल के रोष की सीमा नहीं रही, वह तुरंत खंगार-दरबार को छोड़कर जाने के लिये तत्पर हो गया। उसकी

गतिविधि पर दृष्टि रखी गयी। नाग उसे बलपूर्वक रोकने तथा अपने प्रस्ताव के अनुसार विवश करने पर कटिबद्ध था। सोहनपाल ने भागकर धंधेरादेव के वंशज मुकुटमणि चौहान के यहाँ शरण ली। मुकुटमणि राजा के अधीन ४०० सैनिकों का स्वामी था। मुकुटमणि ने (नाग के विरुद्ध) सहायता देना अस्वीकार किया और इस विषय में केवल तटस्थ रहने का आश्वासन दिया। इसके उपरान्त सोहनलाल ने क्रमशः चौहान और कछवाहों से सहायता प्राप्ति का विफल प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा करेरा के जागीरदार, पुण्यपाल नामक पंवार राजपूत ने सहायता का वचन दिया। दोनों ने नाग को उसके राज्य से युद्धकौशल द्वारा बहिष्कृत करने का षड्यन्त्र रचा। वह राज्य तेरह लाख रुपये के मूल्य का था। यह तय हुआ कि सोहनपाल कुंडार जाकर नाग के विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव की स्वीकृति का बहाना करे और राजा तथा उसके संबंधियों को अपने घर पर निमंत्रण दे। योजना पूरी उतरी। और जब राजा नाग अपने बन्धुओं तथा मंत्रियों सहित सोहनपाल के घर आया, उन सब का सोहनपाल के संगी साथियों ने विश्वासघात कर वध कर डाला। इस प्रकार सोहनपाल कुंडार का राजा हो गया और उसने सम्पूर्ण कुंडार राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उसने पुण्यपाल तथा मुकुटमणि को अपना मन्त्री नियुक्त किया और पुण्यपाल को अपनी पुत्री विवाह दी। दहेज में इटौरा गाँव दिया और अपने छोटे भाई दयापाल को एक लाख की जागीर लगा दी।'[१]

'गढ़ कुंडार' में उक्त तथ्य ज्यों के त्यों है, उपन्यासकार ने उन्हें अपेक्षाकृत सजीव बनाने के लिये कहीं कहीं हेरफेर की है। ये किंचित् परिवर्तन इस प्रकार हैं—

१—कुंडार का राजा नागदेव का पिता हुरमतसिंह है नागदेव नहीं—पिता द्वारा पुत्र के विवाह की बात चलाना अधिक स्वाभाविक और रोचक लगती है।

२—नाग के सोहनपाल की पुत्री के प्रति प्रेम का विवरण—यह कल्पना तथ्य में प्राण डालती है। सोहनपाल की पुत्री के प्रति नाग की विशेष रुचि ही उस प्रस्ताव के मूल में रही होगी।

३—विवाह (?) के हेतु सोहनपाल का बन्धु बान्धवों सहित कुंडार पहुँचकर मदिरापान से मदमत्त वरपक्षियों का नाश। मदिरापान वाला तथ्य

१—झाँसी गजेटियर [यूनाइटेड प्रांविसेज आगरा व अवध के गजेटियर्स का चौदहवाँ ग्रन्थ] पृ० १८८, १८९

परम्परा में प्रचलित है। ऐसी ही स्थिति में शक्तिशाली खंगारों का नाश संभव था।

हेमवती का वास्तविक नाम रूपकुमारी था। उसका विवाह सोहनपाल के सहायक करेरा के पँवार सरदार पुण्यपाल के साथ हुआ था। उपर्युक्त सभी चरित्रों का उपन्यास में उपयोग किया गया है। हुरमतसिंह की पुत्री, मानवती भी ऐतिहासिक है। खंगार नाश के समय उसका नवजात पुत्र बच रहा था। अनेक खंगार उसी बालक की संतान हैं, ऐसा कहा जाता है।

विष्णुदत्त का पुत्र अग्निदत्त, पुत्री तारा, धीर प्रधान का पुत्र दिवाकर, अर्जुन, हरिचंदेल, इब्नकरीम तथा अन्तीवेग काल्पनिक हैं और उनकी कथायें भी उपन्यासकार की कल्पना की देन हैं।

अग्निदत्त के विवरण में निश्चय की दृढ़ता, क्रुद्ध होने पर छुरी का उत्तर तलवार से देना, अपमान राई-रत्ती भर न सहना, उन्मादक प्रेम की उपासना, परवश कोई काम न करना, जुझौती की वीर गाथाओं को अपनी वंश–विरुदावली समझना तथा मित्रता से अंतर्तम भाव की टक्कर हो जाने पर उसे भी एक ओर रख देना, यह सब बातें उसे 'जिझौती' का निवासी तथा १३ वीं अथवा १४ वीं शताब्दी का पुरुष सिद्ध करने के लिए यथेष्ट हैं। इन्हीं गुणों को अग्निदत्त में विभिन्न स्थलों पर उभारा गया है।

दिवाकर की कथा का आधार वर्मा जी की निज की कोई अनुभूति है। उसमें शौर्य तथा वीरता के गुण तत्कालीन हैं किन्तु उसकी दार्शनिकता और पलायनवादी झोंक आज के नवयुवक जैसी है।

वर्मा जी ने अर्जुन कुम्हार में मित्र दुर्जन कुम्हार का प्रतिबिंब और इब्नकरीम में अपने बहादुर साथी शिकारी करामात मियां का चित्र प्रस्तुत किया है। अन्य पात्रों में भी उन्होंने अपने सम्पर्क में आये व्यक्तित्वों को ला रखा है। ये चरित्र आज के होते हुए भी विगतकालीन मानवीय प्रवृत्तियों के परिचायक हैं। आज भी बुन्देलखंड के मूल निवासी आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में कम आ पाये हैं। उनमें परम्परागत गुण थोड़े बहुत बदल कर ज्यों के त्यों स्थित।

लगन

दहेज के प्रश्न पर संबंधियों के मनमुटाव तथा वर, वधू की परस्पर एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन, 'लगन' उपन्यास की कथा है। बजटा के शीबू माते के पुत्र देवसिंह का बरौल के बादल चौधरी की कन्या रामा से

विवाह होने पर भी वधू की विदा नहीं होती। दहेज में निश्चित सौ भैंसें न मिलने के कारण ही बात बढ़ जाती है। बादल की रामा को अन्यत्र 'बिठलाने' की योजना की सूचना पा द्वेषी शीबू को प्रसन्नता और भावुक देवसिंह को पीड़ा होती है। देवसिंह विवाहिता पत्नी को इस प्रकार त्यागने के लिए तत्पर नहीं है। रामा के 'कराव' की चर्चा पहाड़ी के छैला युवक पन्नालाल से चलने पर देवसिंह की पीड़ा तीव्र हो उठती है। पन्ना लम्पट और कामुक था। देवसिंह रात्रि में बजटा बरौल के मध्य स्थित विशाल बेतवा नदी को तैर बरौल में रामा से छिपकर कई बार भेंट कर आता है।

एक बार अमावस्या की रात्रि में देवसिंह रामा की अटारी के पास जाकर पुकारता है। पन्नालाल बादल के यहाँ अतिथि के रूप में ठहरा हुआ था। वह रामा की सूनी अटारी में वासनापूर्ति की इच्छा से उसे खोज रहा था। पन्ना देवसिंह को ऊपर आने देता है और उसे धर दबाता है। रामा अटारी तक देवसिंह से मिलने आती है किन्तु वस्तुस्थिति को समझ कर बरौल से भाग कर बजटा, शीबू माते के पास जा पहुँचती है। देवसिंह मारपीट में पन्ना को अधमरा कर देता है। बादल आदि के आ जाने पर देवसिंह का सत्कार होता है और तिरस्कृत पन्ना घर लौट जाता है।

पुत्र के [illegible]एक लोप हो जाने से व्याकुल शीबू रामा को सत्कारपूर्वक घर छोड़कर साथियों सहित बरौल पहुँचता है। वहाँ दोनों संबंधी निष्कपट हृदय से प्रेमपूर्वक मिलते हैं। तीसरे दिन बादल भैंसें शीबू के घर पहुँचा देता है।

× × × ×

(अ) 'लगन' की कथा सीधी सादी है। रामा और देवसिंह के वैवाहिक झगड़े की समस्या पन्नालाल के बीच में आ जाने के कारण उलझती है। दोनों की मिलने की लगन बढ़ती है और परस्पर मिलते जुलते हैं। पन्ना की कुटिलता इस रहस्य के उद्घाटन में सहायक होती है। इस प्रकार पन्ना का चरित्र कथा को उलझाने के बाद उसे गति प्रदान कर परिणाम तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

(ब) यह घटना बरौल की ही है। देवसिंह का असली नाम नन्दलाल है। नन्दलाल का चढ़ी बेतवा को रात्रि में पार करने का पराक्रम किंवदन्ती के रूप में अब भी आसपास के देहातों में प्रसिद्ध है।

संगम

१—'संगम' उपन्यास की कथा एक लोभी पिता के बिगड़े हुए पुत्र के विवाह-संबंध में उत्पन्न हुए मनमुटाव को लेकर प्रारंभ होती है। उलझी

हुई परिस्थिति अन्त में शनैः शनैः सुलझती है और विरोधी धाराओं का मिलन होता है, संगम होता है। झाँसी का ब्राह्मण भिखारीलाल निर्धन और लोभी है। वह अपने पुत्र सम्पतलाल का विवाह बरुआसागर के धनीराम नाई के यहाँ पली ब्राह्मण-कन्या जानकी से करने के लिये बरात ले जाता है। भिखारीलाल के लोभ और हृदय की संकीर्णता के कारण विवाह के वातावरण में तनाव आ जाता है। बरात के नाई नन्दराम और एक कन्या पक्षी व्यक्ति का उपहास मारपीट का रूप धारण कर दोनों पक्षों में घमासान करा देता है। झाँसी पहुँचकर नन्दराम अदालत में दावा दायर कर धनीराम आदि के नाम वारंट निकलवाता है। इस कार्य में भिखारीलाल की सहमति थी। ससुराल में दो दिन का सुख भोगने के बाद जानकी को अपमान और सास का दुर्व्यवहार बुरी तरह खटकने लगता है। भिखारीलाल का सम्पन्न निकट संबंधी सुखलाल, जो विवाह के अवसर पर उपस्थित था, धनीराम से सहानुभूति रखता है। सुखलाल आदि के विरोधी हो जाने के कारण नन्दराम मुकदमे में हार जाता है। भिखारीलाल और सुखलाल में घोर शत्रुता ठन जाती है।

झाँसी में प्लेग फैलता है। प्रायः सभी निवासी भाग कर जहाँ-तहाँ शरण लेने का उद्योग करते हैं। संपतलाल निर्द्वन्द्व हो झाँसी में रहने के लिये जानकी को बरुआसागर पहुँचा आता है। नशा-पानी तथा मलाई मिठाई का निर्बाध क्रम बनाये रखने के लिये वह अपने मित्रों की भाँति सूने मकानों के ताले तोड़कर चोरी करने में भाग लेता है। वैर-प्रतिशोध में नन्दराम सुखलाल पर गोली चलाकर उसकी हत्या का प्रयत्न करता है। बाद में लालमन डाकू सुखलाल को उठा ले जाता है, उसकी शुश्रूषा करता रहता है। झाँसी में सुखलाल की मृत्यु का समाचार फैलता है। सम्पतलाल सुखलाल को अपना संबंधी सिद्ध कर उसकी धनराशि का दावेदार बनने का सुख-स्वप्न देखता है। दावे के लिये कोर्ट फीस के हेतु भिखारी को एक हज़ार रुपया ऋण मिल जाता है किन्तु पूरी फीस के लिये रुपये की आवश्यकता बनी रहती है। धन-प्राप्ति के लिये सम्पत और उसका मित्र चुखर एक षड्यन्त्र रचते है। सम्पत स्त्री का रूप धारण करता है। स्त्रियों का व्यापार करने वाले एक पंजाबी के हाथ चुखर सम्पत को बेच देता है। भिखारीलाल के पास रुपया पहुँच जाता है। सम्पत को पंजाबी के साथ रेल यात्रा करनी होती है।

बरुआसागर में परित्यक्ता जानकी का मन न लगता था। वह धनीराम के साथ मथुरा आदि की यात्रा के लिये रेल में बैठती है। एक ही डिब्बे में धनीराम, जानकी तथा सम्पत, पंजाबी के यात्रा करने का संयोग होता है।

घूंघट में छिपा हुआ सम्पत भेद नहीं छिपा पाता । अगले स्टेशन पर उसका षड्यन्त्र खुल जाता है । धनीराम और जानकी भी वहीं रुक जाते हैं । सब झाँसी लौटते हैं । धनीराम सम्पतलाल की ज़मानत करता है । सम्पत में परिवर्तन आता है । वह पश्चाताप का अनुभव करता है किन्तु सम्पत का विरोध करने पर भी भिखारी सुखलाल की सम्पत्ति वाला दावा नहीं छोड़ता । भिखारीलाल की एकतरफा विजय होती है । कानून की पकड़ में न आ सकने के कारण सम्पत भी षड्यन्त्र वाले मुकदमे से रिहा हो जाता है । तुरन्त समाचार प्राप्त होता है कि सुखलाल जीवित है । भिखारीलाल की आशाओं का महल क्षण भर में धराशायी हो जाता है । दावे सम्बन्धी मुकदमे पर पुनर्विचार होता है । फिर भी सुखलाल उदारता का व्यवहार करता है । भिखारीलाल को क्षमा कर देता है ।

२—दूसरी कथा है सुखलाल की । सुखलाल संपतलाल के विवाह में बरा में उपस्थित रहता है । वहां मारपीट होने पर लोगों को शान्त करता है । झाँसी में नन्दराम को मुकदमेबाजी से रोकने का भरसक प्रयत्न करता है । रोकथाम में असफल होने पर नन्दराम पर ऋण न चुकाने के अभियोग में अपनी ओर से दावा करता है । नन्दराम पर डिग्री हो जाती है । भिखारी-लाल आदि विरोधीजन सुखलाल के चरित्र को लेकर उसे समाज में अपमानित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं । सुखलाल विधुर था । उसकी एक अहीरिन रखेल थी । रखेल से एक पुत्र था रामचरण । यह सम्बन्ध सुखलाल के लोकापवाद का कारण बनता है । सुखलाल रामचरण से सम्पर्क त्याग देता है ।

प्लेग के दिनों में सुखलाल ढिमलौनी गाँव में डेरा डालता है । वह नन्दराम से डिग्री का रुपया वसूल करने पर कटिबद्ध रहता है । नन्दराम के हृदय में घोर प्रतिशोध की ज्वाला दहक उठती है । वह झाँसी से बैलगाड़ी में ढिमलौनी को लौटते हुए सुखलाल को मार्ग में गोली मार कर भाग जाता है । बाद में डाकू लालमन मृतप्रायः सुखलाल को उठा कर ले जाता है । उसकी अत्यन्त मनोयोग से शुश्रूषा कर रक्षा कर लेता है । पुनर्जीवन प्राप्त कर सुखलाल क्षमा और उदारता का मार्ग पकड़ता है । रामचरण और गंगा का विवाह करके अपनी सम्पत्ति रामचरण और पुत्री राजाबेटी में आधी-आधी बाँट कर स्वयं तीर्थ यात्रा पर चला जाता है ।

३—तीसरी कथा है नन्दराम नाई के वैर-प्रतिशोध की । बरात में दावत के अवसर पर कन्यापक्ष के लोगों से कटु उपहास करने में नन्दराम अग्रणी रहता है । मारपीट वही प्रारम्भ करता है और पिटता भी है । गाँव की पुलिस

धनीराम का पक्ष लेती है। नन्दराम झाँसी में इसी घटना को लेकर दावा दायर करता है किन्तु दावा खारिज हो जाता है। नन्दराम का धनीराम और सुखलाल से वैर हो जाता है। धनीराम नन्दराम पर झूठे दावे के प्रत्युत्तर में दावा कर डिग्री करा लेता है। सुखलाल अपने पहले दिये हुए ऋण के सम्बन्ध में उस पर डिग्री कराता है। निर्जन मार्ग में बैलगाड़ी पर जाते सुखलाल को गोली मारकर प्रतिशोध चुका नन्दराम जंगल में जा छिपता है। वह महीनों भूखा, प्यासा जंगलों में मारा-मारा फिरता है। पुलिस के भय से और आत्म-ग्लानि के कारण उसका जीना दूभर हो जाता है। मजिस्ट्रेट के सामने अपने आप को हत्यारा स्वीकार कर हत्या का प्रायश्चित्त करता है। नन्दराम को हत्या के अभियोग में दस वर्ष की कैद होती है।

४—चौथी कथा लालमन डाकू से सम्बन्ध रखती है। लालमन से दूर-दूर तक लोग काँपते है। लालमन सुखलाल और जानकी से सम्बन्ध मानता है। जानकी के विवाह में गुप्त रूप से भाग लेने जाता है और पंगत के समय उद्दण्ड नन्दराम को दण्डित करता है। वह धनीराम को नन्दराम पर कानूनी कार्य-वाई करने का आदेश देता है। इसके उपरान्त जंगल में पड़े मृतप्रायः सुखलाल की रक्षा कर उसे अपने एक साथी सहित ढिलमौनी के मकान में रखने आता है। लौटते समय उस पर बगल से रामचरण प्रहार करता है। मार्मिक चोटें खाने के कारण लालमन मृतप्रायः होकर गिर पड़ता है। सुबह पुलिस उसे झाँसी के अस्पताल भेजती है। वहाँ लालमन अपना अन्तिम बयान देकर मर जाता है।

५—पाँचवी कथा है सुखलाल की अहीरिन रखेली से उत्पन्न पुत्र रामचरण के अपमान और कर्तव्यपरायणता की। वह सुखलाल की रखेली का पुत्र होने के कारण उपेक्षित है। स्वाभिमाना है और सेवाभाव वाला। झाँसी में प्लेग पीड़ितों की सेवा करता है। पुलिस की अकर्मण्यता की आलोचना करने के फलस्वरूप उसका कोपभाजन बन जाता है। सुखलाल की हत्या के आरोप में उसे जेल का द्वार भी देखना पड़ता है। वह मृत घोषित, सुखलाल की सम्पत्ति भिखारीलाल के चंगुल से बचाकर सुखलाल की पुत्री राजाबेटी को दिलाने का भरसक प्रयत्न करता है। ढिमलौनी में लालमन डाकू से उसकी मुठभेड़ होने पर लालमन उसके हाथों मारा जाता है। रामचरण को सुखलाल अपनी सम्पत्ति का अर्द्धभाग देता है और उसका विवाह अपनी आश्रिता विधवा, गंगा से करा देता है।

× × ×

(अ) सुखलाल की प्रासंगिक कथा का उपन्यास में विशेष महत्व है।

नन्दराम लालमन तथा रामचरण की कथाओं से इसका सीधा और पुष्ट सम्बन्ध है। सुखलाल की हत्या के पश्चात् भी उसकी मृत्यु की घटना सभी कथाओं को प्रभावित कर विकसित होने में योग देती है।

सम्पत का विवाह एक ऐसी घटना है जहाँ से सभी कथाओं का स्रोत फूटता है। सुखलाल उस अवसर पर घराती-बराती लोगों के मध्य उत्पन्न हुए तनाव को समाप्त करने का प्रयत्न करता है। आगे चलकर इसी प्रश्न पर उसके भिखारीलाल तथा नन्दराम से सम्बन्ध बिगड़ते हैं। क्रुद्ध नन्दराम द्वारा सुखलाल की हत्या के पश्चात् भिखारी मृत सुखलाल का निकट सम्बन्धी बन उसकी धनराशि हड़पने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में दुर्गति होने पर सम्पत सुधरता है और सुखलाल के जीवित होने के समाचार पर भिखारी के काल्पनिक महल धराशायी हो जाते हैं। मुख्य कथा को बढ़ाकर निष्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय सुखलाल को है।

लालमन विवाह के अवसर पर उद्दंड नन्दराम को पीटकर उसकी प्रतिकार की भावना को उद्दीप्त करता है। नन्दराम की गोली से आहत सुखलाल की रक्षा कर उसकी कथा में योग देता है। लालमन के अन्त का श्रेय रामचरण को है।

रामचरण सुखलाल का अहीरिन से उत्पन्न पुत्र होने के कारण समाज और सुखलाल के तिरस्कार का भागी है। पुलिस उस पर सुखलाल की हत्या का आरोप लगा अत्याचार करती है। वह सुखलाल की औरस पुत्री के अधिकार के हेतु भिखारीलाल के विरुद्ध मुकदमा लड़ता है। अन्त में लालमन उसी के द्वारा मारा जाता है। रामचरण की कथा सुखलाल और भिखारी की कथाओं को छूती है किन्तु लालमन के अतिरिक्त किसी अन्य कथा को विशेषतया प्रभावित नहीं करती। रामचरण का प्रसङ्ग अन्य कथाओं से प्रायः स्वतन्त्र है, उसके द्वारा आधुनिक सामाजिक मनोवृत्ति तथा सच्चरित्र उत्साही युवक के प्रयत्नों का परिचय दिया गया है।

(ब) उक्त पाँचों कथाओं की सभी घटनाएँ सत्य है। ये सब भिन्न-भिन्न समय पर विभिन्न स्थलों पर घटित हुई हैं। मुख्य कथा झाँसी में बीती थी। सुखलाल, नन्दराम और रामचरण की कथाएँ परस्पर सम्बन्धित थीं, इनका घटनास्थल अन्य स्थान है। लालमन दतिया रियासत के कुख्यात मन्नूलाल डाकू का प्रतिबिम्ब है। उसके सम्बन्ध में प्रचलित चर्चाओं में से कुछ को चुनकर कथा का रूप प्रदान किया गया है।

कुण्डली चक्र

१—सनकी दार्शनिक ललितसेन और उसकी गम्भीर बहिन रत्नकुमारी के चरित्र तथा विवाह निश्चित करने के लिये कुंडलियाँ मिलाने के जटिल चक्र को लेकर 'कुंडली चक्र' उपन्यास की आधारभूमि तैयार की गयी है। अजित-कुमार ललितसेन की युवती बहिन रत्नकुमारी को पढ़ाता और गायन-शिक्षा देता है। अजित रतन के प्रति आकृष्ट है किन्तु ललित भुजबल नामक एक धूर्त विधुर से रतन का टीपना मिला कर उससे विवाह कर देता है। भुजबल ललित से जमींदार शिवलाल को दस हजार रुपये कुछ गाँवों के मूल्य के रूप में दिलवाता है और स्वयं दलाली के चार हजार रुपये शिवलाल से ले लेता है। शिवलाल गाँवों के विक्रय की पूरी कार्यवाही नहीं करता। भुजबल पहली पत्नी की बहिन, पूनम से दूसरा विवाह गुप्त रूप से करने का प्रयत्न करता है। ललित शिवलाल को धोखाधड़ी के अभियोग में गिरफ्तार कराता है। शिवलाल ललित को भुजबल की धूर्तता तथा दूसरे विवाह करने के दुष्प्रयत्न से अवगत कराता है। ललित को घोर पश्चाताप होता है, वह रतन का विवाह अजित के स्थान पर धूर्त भुजबल से कर देने की भूल अनुभव करता है।

ललित अजित की सहायता से सिंगरावन ग्राम में भुजबल द्वारा पूनम से बलात् विवाह के प्रयत्न में विघ्न डालता है। दूसरे दिन प्रातः काल ललित पूनम और अजित का विवाह करा देता है और अपना एक मकान दोनों को भेंट करता है।

२—दूसरी कथा है अजित के रतन से असफल प्रणय, उसकी कर्तव्य-परायणता तथा पूना से प्रेम और विवाह की। अजित रतन का अध्यापक है। उसके प्रति आकृष्ट है किन्तु ललित द्वारा अपमानित हो घर से निकाला जाता है। भुजबल अजित से मित्रता स्थापित कर उसे अपनी मृत पत्नी के मायके, मऊ सहानिया में घुमाने ले जाता है। वहाँ अजित घूमता फिरता है और उसका भुजबल की साली पूना से साक्षात् होता है। पूना के विवाह की समस्या उसकी वृद्धा माँ और भुजबल, दोनों नहीं सुलझा पाते। पूना किसी को हृदय में आराध्य मान कर तुलसी-पूजन निरन्तर करती रहती है। पूना भुजबल से विवाह नहीं करना चाहती। अजित को पत्र भेजकर रक्षा की प्रार्थना करती है। अजित भुजबल के इस अनुचित प्रयत्न की सूचना ललित को देता है और स्वयं विवाह को रोकने के लिए सिंगरावन को प्रस्थान करता है। पूना देवी की मूर्ति के सामने अश्रु बहाती है और तालाब में डूबने के लिए चल पड़ती है। मार्ग में अजित उससे विवाह करने का वचन देता है। दोनों

गाँव से बाहर एक कोठरी में रात्रि व्यतीत करते हैं। प्रातःकाल ललित दोनों का विवाह भुजबल वाले मण्डप के नीचे करा देता है।

सरकार अजित को उसे मिले घड़े का आधा धन पुरस्कार में देने की घोषणा करती है। ललित पूना को दो गाँव और मकान भेंट करता है। अजित रतन से मिलता है और उसका पुराना फोटो वापिस कर देता है।

३—तीसरी कथा है धूर्त्त भुजबल और उसके कामुक जमींदार-मित्र शिवलाल की। शिवलाल ऋणग्रस्त है। भुजबल रतन से विवाह होने पर शिवलाल को ललित से ऋण दिलाता है और उससे जमीन और धन प्राप्त करने के लिए उसे पूना से विवाह करा देने का मिथ्या आश्वासन देता है। साथ ही पूना के मामा लालसिंह को शिवलाल का भय दिखाकर शीघ्रातिशीघ्र पूना से अपना विवाह कर देने का आग्रह करता है। जमींदारी-विक्रय की कार्यवाही में धोखाधड़ी करने के अभियोग में ललित शिवलाल को गिरफ्तार कराता है। शिवलाल की काम-लिप्सा अतृप्त रह जाती है। जमींदारी के विक्रय को लेकर ललित के साथ धोखाधड़ी करने के अपराध में उसे कई वर्ष के कारावास का दण्ड मिलता है।

४—चौथी कथा है जमींदारों के अत्याचार से पीड़ित निरीह किसान पैलू और बुद्धा की। पैलू और बुद्धा शिवलाल से ऋण माँगने आते हैं। भुजबल लगान न देने पर दोनों की भर्त्सना करता है। एक अन्य अवसर पर वह बुद्धा को न लगान देने के कारण निर्दयतापूर्वक पीटता है। अजित बीच में पड़कर बुद्धा की रक्षा करता है और शुश्रूषा के लिए उसे सिंगरावन ले जाता है। पूना द्वारा अजित को प्रेषित, रक्षा का प्रार्थना-पत्र पैलू सिंगरावन से अजित के पास शहर ले जाता है। पैलू ही शिवलाल को भुजबल के पूना से बलात् विवाह करने के दुष्प्रयत्न की सूचना देता है। पैलू और बुद्धा अजित के इङ्गित पर भुजबल और पूना के विवाह के विरुद्ध ग्रामीणों में प्रचार करते हैं।

× × ×

(अ) रत्नकुमारी के बेमेल विवाह की दुर्घटना 'कुंडली' की वेदी पर बलि हो जाने वाले युवक-युवती की करुण कथा है। पूना-अजित का प्रणय पुनीत साधना का सन्देश देता है। भुजबल धूर्तता का और शिवलाल पतित जमींदार वर्ग का प्रतीक है। बुद्धा, पैलू की दलित किसानों की कहानी है जो आश्रय मिलने पर अपने आप में बल का अनुभव भी करते हैं।

अजित कुमार की प्रासंगिक कथा दूसरे परिच्छेद से प्रारम्भ होकर मुख्य कथा के साथ चलती है। अजित रतन का अध्यापन-कार्य करते हुए उसके

प्रति आकृष्ट होता है, अपमानित होने पर उसके मार्ग से हट जाता है। तत्पश्चात् वह भुजबल की साली पूना के प्रति कुछ आकृष्ट होता है। पूना की प्रार्थना पर भुजबल के कामुक पंजे से रक्षा कर उसे पत्नी के रूप में ग्रहण करता है। पैलू और बुद्धा, सताए हुए किसानों तथा पूना के प्रश्न पर भुजबल से अजित का संघर्ष होता है। अजित का पूना तथा भुजबल के कारण मुख्य कथा से अन्त में पुनः सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। भुजबल अजितकुमार के मार्ग में आ रत्नकुमारी से विवाह करता है और अजित का पूना से परिचय कराता है। पूना से स्वयं विवाह करने का प्रयत्न करता है किन्तु अजित के मध्य में आ जाने के कारण उसे असफलता मिलती है। इस प्रकार ललित और रत्नकुमारी और अजितकुमार की कथा को अग्रसर करने में भुजबल की कथा का मुख्य हाथ है।

शिवलाल तथा भुजबल के अत्याचार से पीड़ित किसान पैलू और बुद्धा की कथा भुजबल तथा अजित में संघर्ष उत्पन्न करने में सहायक है। अजित को पूना के समीप लाने में पैलू और बुद्धा का विशेष हाथ रहता है।

(ब) रत्नकुमारी और भुजबल के अनमेल विवाह की कथा सत्य घटना के आधार पर है किन्तु भुजबल के दूसरे विवाह की बात काल्पनिक है। अजित और पूना के प्रेम की घटना अन्य स्थल की है, उसे मुख्य कथा में जोड़ा गया है। किसान पैलू और बुद्धा की कथा एक अन्य स्थान, भरतपुरा की है। इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर भिन्न समय में ही घटी घटनाओं के आधार पर कथा-सूत्र तैयार किया गया है। ललितसेन और शिवलाल के चरित्र और उनसे सम्बन्धित घटनाएँ काल्पनिक हैं।

प्रेम की भेंट

१—धीरज का सरस्वती से पुनीत प्रेम, धीरज का सरस्वती को एक साड़ी प्रेम की भेंट के रूप में देना और ईर्ष्यालु प्रेमिका उजियारी के कारण धीरज की अकाल मृत्यु की कथा 'प्रेम की भेंट' की मुख्य कथा है। धीरज अपने गाँव में अकाल पड़ जाने के कारण दूर के सम्बन्धी कम्मोद के यहाँ ताल बेहट में शरण लेता है। कम्मोद के साथ एक पुत्री है सरस्वती और दूर के सम्बन्ध की विधवा बहू उजियारी। कम्मोद धीरज को अपने खेतों में साझीदार बना लेता है। शनैः शनैः धीरज को ज्ञात हो जाता है कि उसकी पुस्तकें संवारने और रात्रि में पास में जल का लोटा भरकर रखने वाली और कोई नहीं सरस्वती है। धीरज सरस्वती को हृदय दे बैठता है और उसे कभी भी कष्ट न होने देने का निश्चय करता है। उजियारी छिपकर दोनों के बीच बढ़ते स्नेह को

लक्ष्य कर ईर्ष्या से सुलग उठती है। वह धीरज के समक्ष अपना प्रचंड प्रेम प्रकट करती है। धीरज उसके अप्रत्याशित व्यवहार से चिन्तित हो उठता है।

ईर्ष्यालु उजियारी सरस्वती के लिये खीर बनाती है और उसमें विष डाल देती है। उजियारी के बाहर जाने के बाद धीरज खेत से लौट कर आता है और षड्यन्त्र से अनभिज्ञ सरस्वती के आग्रह पर खीर खा लेता है। अन्त में सरस्वती से स्वयं अन्यत्र चले जाने के लिये विदा माँगता है और रोने लगता है। एकाएक कम्मोद आ जाता है और धीरज पर क्रुद्ध होता है। खीर के विष से धीरज की तबियत बिगड़ने लगती है। सरस्वती को सन्निपात हो जाता है। वह धीरज के प्रति अपना प्रेम प्रकट कर उसके समीप पहुंचने का आग्रह करती है। धीरज अचेतावस्था में स्वप्न में सरस्वती को पा लेता है। अधीरा, अचेत सरस्वती एकाएक पूछती है, 'आ गये वह ?' और उधर धीरज अन्तिम श्वास लेता है।

२—दूसरी कथा है नन्दन के सरस्वती के प्रति, सरल, अपूर्ण प्रेम की। नन्दन कम्मोद के यहाँ आश्रय लेता है। कम्मोद उसे सरस्वती का वर मनोनीत कर आदरपूर्वक रखता है। सरस्वती उसकी उपेक्षा करती है। नन्दन सरस्वता से प्रेम-पत्र में प्रणय याचना करता है। रुग्णा सरस्वती उसके प्रति पूर्णतया उपेक्षा प्रदर्शित करती है और बिल्कुल बात न करने का आदेश देती है। नन्दन मौन साधकर रह जाता है।

× × ×

(अ) धीरज, सरस्वती और उजियारी का प्रेम-त्रिकोण 'प्रेम की भेंट' की मुख्य कथा का आधार बनता है। धीरज और सरस्वती में प्रेम है। उजियारी ईर्ष्या के कारण सरस्वती को विष देना चाहती है किन्तु संयोगवश विषमय खीर धीरज खा लेता है। नन्दन की उपकथा एक और प्रेम-त्रिकोण प्रस्तुत करती है। सरस्वती से धीरज प्रेम करता है और नन्दन भी सरस्वती की मन ही मन आराधना करता है। नन्दन कम्मोद की दृष्टि में सरस्वती का मनोनीत वर है। उसके कारण सरस्वती और धीरज के प्रेम के फलीभूत होने में कम्मोद बाधा डालता है। इस प्रकार नन्दन मुख्य कथा को उलझाने और अग्रसर करने में सहायक है।

(ब) धीरज और सरस्वती के प्रेम की मूल घटना छतरपुर रियासत के एक गाँव की है। गाँव का नाम और घटना का काल अज्ञात है। सूत्र इस प्रकार है, एक सुन्दरी युवती का किसी युवक से प्रेम हो गया किन्तु उसका विकास न हो पाया। युवती के माता, पिता मार्ग की बाधा बने। युवती एकाएक बीमार पड़ी और मर गयी। युवक को इस दुर्घटना का पता न था। उसे

युवती के घर की टहलनी से सूचना मिली। युवक ने कूड़े के ढेर पर पड़े, मृत युवती की चुनरी के टुकड़े को हृदय से लगा लिया। इसके बाद वह पागल हो गया और फिर मर गया। उजियारी की ईर्ष्या की कथा अन्य स्थल की है। नन्दन का प्रसंग काल्पनिक है।

प्रत्यागत

१— बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने के पश्चात् हिन्दू-धर्म में प्रत्यागत; मंगल की कथा 'प्रत्यागत' की मुख्य कथा है। मंगल बाँदा के धर्मभीरु, सम्पन्न ज्योतिषी टीकाराम का लाड़ला पुत्र है। वह युवा होने पर भी कमाता नहीं है। पिता से अनबन हो जाने पर मंगल विदेश में धनोपार्जन के लिये चुपचाप रेलगाड़ी से बम्बई की ओर चल पड़ता है। पूना में मंगल की एक मलाबारी मुसलमान रहमतुल्ला से भेंट होती है। मंगल जीविकोपार्जन तथा खिलाफत-आन्दोलन के आकर्षण में उसके साथ मलाबार पहुंच जाता है। वहाँ एक मस्जिद में उसे बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता है।

मलाबार का उपद्रव शांत हो जाने पर पुलिस की सहायता से मंगल न चाहते हुए भी बाँदा पहुँचा दिया जाता है। हृदय की दुर्बलता के कारण अपने मुसलमान हो जाने की बात वह सब पर प्रकट कर देता है। मङ्गल को पुनः हिन्दू धर्म में लाने की विधि और उसके प्रायश्चित्त का महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है। टीकाराम उसे प्रायश्चित्त की अवधि तक दूसरे मकान में अलग ठहरा देते हैं। मंगल प्रायश्चित्त में पंच-गव्य ग्रहण करने के लिये तत्पर नहीं। पं० नवलबिहारी और उसके दल के लोग मंगल के प्रायश्चित्त की योजना में असहयोग करते हैं। वे लोग सभा करके टीकाराम के सम्पूर्ण परिवार का बहिष्कार करते हैं। मंगल तथा उसके परिवार के प्रायश्चित्त के अन्तिम दिन नवलबिहारी के दल का असहयोग होने पर भी बाबूराम, ठाकुर हेतसिंह तथा पीताराम अहीर के सहयोग से भोज में प्रायः सभी जाति के गण्यमान्य लोगों के पुत्र भाग लेते हैं। मंगल का बहिष्कार चल नहीं पाता।

मंगल नवलबिहारी के निजी मन्दिर में देव-दर्शन का आग्रह करता है। नवलबिहारी के घोर विरोध करने तथा पुलिस बुलाने पर भी मंगल और उसके परिवार का देव-दर्शन तथा चरणामृत-पान सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है। नवलबिहारी मंगल आदि के विरुद्ध दावा दायर कर अपवित्र मङ्गल के बल-पूर्वक देवदर्शन के फलस्वरूप भगवान के कोप और चमत्कार सम्बन्धी मिथ्या बातों का प्रचार करता है। जनमत नवलबिहारी के विरुद्ध हो जाता है। देव-मूर्ति के अपमान का अपराधी निश्चित करने के लिये पंचायत होती है। एक बालक द्वारा पंचायत में पर्ची उठवाने पर नवलबिहारी के लिये निकलता है—

'दोषी'। झगड़ा समाप्त हो जाता है और नवलबिहारी के प्रायश्चित्त की व्यवस्था भी होती है।

२—दूसरी कथा है पं० नवलबिहारी और उसकी रामायणवादिनी सभा के सदस्यों की। सभा में वार्षिक रामलीला के लिये चन्दा देने की समस्या पर हेतसिंह और पीताराम में कहा-सुनी होने पर पीताराम अपने जाति के लोगों की अलग कीर्तन-मंडली की स्थापना करता है। नवलबिहारी का मंगल के प्रायश्चित्त में असहयोग है किन्तु हेतसिंह सहयोग देता है। नवलबिहारी की मंडली मंगल के प्रायश्चित्त जैसे रुचिकर प्रसंग में उलझ जाने के कारण रामलीला के आयोजन में शिथिल पड़ जाती है। दूसरी ओर पीताराम की मंडली रामलीला की जोरदार तैयारी करती है। नवलबिहारी द्वारा एक सर्वजातीय सभा बुलाकर टीकाराम के परिवार का बहिष्कार स्वीकृत कराने पर भी पीताराम की मंडली मंगल के प्रायश्चित्त में सहयोग देती है।

× × ×

(अ) नवलबिहारी और उसकी रामायणवादिनी सभा के सदस्यों की प्रासंगिक कथा है। यह मङ्गल की कथा को उलझाने में कारण बनती है। नवलबिहारी का उपहास करने पर टीकाराम मंगल पर क्रुद्ध होता है और क्षुब्ध मंगल घर छोड़ कर चला जाता है। मंगल की कथा का उत्तरार्द्ध भी उससे प्रभावित होता है। नवलबिहारी मंगल के प्रायश्चित्त कर हिन्दू धर्म में प्रत्यागमन में असहयोग करता है। किन्तु उसके मंडल के सदस्य हेतसिंह और पीताराम आदि मंगल को सहयोग देते हैं। मंगल के नवलबिहारी के मन्दिर में देवदर्शन के हठ और नवलबिहारी द्वारा विरोध से कथा चरम सीमा पर आ जाती है। नवलबिहारी के षड्यन्त्र के उद्घाटन से समस्या सुलझती है और कथा समाप्त हो जाती है।

प्रासंगिक कथा उपन्यास के मध्य में हेतसिंह और पीताराम के परस्पर मनमुटाव को लेकर स्वतन्त्रतापूर्वक चलती है। इस कथांश के द्वारा उपन्यासकार लोगों के जातिगत अभिमान और दुराग्रह का चित्रण करता है।

(ब) मंगल के धर्म-परिवर्तन तथा हिन्दू-धर्म में प्रत्यागमन की घटना ललितपुर की है। उसके प्रत्यागमन का घोर विरोध झाँसी में हुआ था। विरोधी आन्दोलन का अगुआ नवलबिहारी जैसा व्यक्ति था। ये घटनाएँ एक साथ बाँदा में आरोपित की गयी हैं।

बिराटा की पद्मिनी

१—बिराटा की पद्मिनी कुमुद के अद्भुत देवोपम व्यक्तित्व तथा कुमुद और राजकुमार कुंजरसिंह के प्रणय की कहानी 'बिराटा की पद्मिनी'

की मूलकथा है। पालर ग्राम में 'दुर्गा की अवतार' सुन्दरी पुजारिणी कुमुद के दर्शनार्थ लोग दूर-दूर से आते हैं। वहीं डेरा डाले हुए दलीप नगर के राजा नायकसिंह का दासी-पुत्र, युवा कुंजरसिंह राज्य के सरदार लोचनसिंह के साथ कुमुद के दर्शन करने देवी के मन्दिर में आता है। उस क्षणिक दर्शन में कुमुद तथा कुंजर के हृदय में एक दूसरे के लिए स्थान बनता है। उसी अवसर पर मन्दिर के बाहर बैठे हुए कालपी के फौजदार अलीमर्दान के दो मुसलमान सिपाहियों के असभ्यतापूर्ण व्यवहार के फलस्वरूप लोचनसिंह से उनकी मार-पीट हो जाती है। सिपाही भाग जाते हैं। पालर में युद्ध और आशंका के बादल मंडराने लगते हैं। बाद में पालर पर अलीमर्दान के आक्रमण की आशङ्का से सुरक्षा के हेतु कुमुद और उसका पिता नरपतिसिंह दाँगी राजा सबदलसिंह के बिराटा में नदी के समीप स्थित मन्दिर में शरण लेते हैं। वहाँ भी कुमुद की मान्यता तथा पूजा देवी के रूप में प्रबल रूप से चल पड़ती है।

चिरकाल से अस्वस्थ दलीपनगर के सनकी राजा नायकसिंह के देहान्त के उपरान्त मन्त्री जनार्दन शर्मा के षड्यन्त्र से राज्य देवीसिंह नामक राजा के प्रिय एक साधारण ठाकुर को मिल जाता है। पराजित, अदृढ़-चित्त,निराश कुंजरसिंह दलीपनगर-राज्य की पुनर्प्राप्ति के हेतु सहायताप्राप्ति का उद्योग करता घूमता-फिरता बिराटा के मन्दिर में जा पहुँचता है। कुमुद के दर्शन कर उसके हृदय की हूक जग उठती है। कुमुद में कुंजर के प्रति सहानुभूति तो थी उसके मूक हृदय का द्वार भी कुंजर के लिये खुल जाता है। कुंजरसिंह को विराटा के राजा सबदलसिंह से भविष्य में सहायता का शिथिल वचन तथा मन्दिर में टिके रहने की स्वीकृति मिल जाती है।

अलीमर्दान और देवीसिंह की सेनाओं में भयङ्कर युद्ध छिड़ता है। देवी-सिंह को बिराटा की सहायता नहीं मिल पाती वरन् कुंजरसिंह की तोपों के प्रत्युत्तर में उसकी तोपें रामनगर की गढ़ी से बिराटा पर गोलों की भयङ्कर वर्षा करती हैं। उधर अलीमर्दान कुमुद की प्राप्ति के लिये बिराटा पर गोलों की वर्षा कराता है और स्वयं सेना का एक दस्ता ले नदी पार कर बिराटा के मन्दिर पर झपटता है। दूसरी ओर से देवीसिंह की सेना अलीमर्दान का प्रतिरोध करती हुई बिराटा की ओर बढ़ती है। बिराटा के निवासी अन्तिम समय जान 'जौहर' करते हैं। कुंजर कुमुद से अन्तिम विदा लेता है।

कुंजरसिंह से देवीसिंह की मुठभेड़ हो जाती है। कुमुद बेतवा नदी की लहरों में जल समाधि लेने के लिये बढ़ती है और उसके पीछे लपकता हुआ अलीमर्दान। यह देखकर कुंजरसिंह शिथिल पड़ जाता है और दूसरे क्षण ही देवीसिंह की तलवार से उसका सिर कट कर दूर जा

पड़ता है। उधर कुमुद ने ढालू चट्टान के छोर पर पहुँच कर गाया—'उड़ गये फुलवा रह गई बास' और जलराशि की अनन्त गोद में जा समाई। अलीमर्दान मुट्ठी बाँधे खड़ा रह गया। लहरों पर पवन में वह गीत गूंज रहा था—

'उड़ गये फुलवा रह गई बास !'

२—दूसरी कथा है परित्यक्ता गोमती की। पालर मे कुमुद के पड़ोस में गोमती रहती है। गोमती का विवाह देवीसिंह से होने जा रहा था। बरात के मार्ग में ही राजा नायकसिंह की सेना की मुठभेड़ कालपी की सेना से हो जाती है। दूल्हा देवीसिंह मुसलमान सेना से लड़कर असाधारण शौर्य और राज्यभक्ति का परिचय देता है और अन्त में मर्माहत होकर गिर पड़ता है। कालपी की सेना भाग जाती है। घायल देवीसिंह नायकसिंह की सेना के साथ दलीपनगर चला जाता है। गोमती का विवाह जहाँ का तहाँ रह जाता है। पालर में अलीमर्दान के आक्रमण की आशङ्का से गोमती बिराटा में कुमुद के पास मंदिर में शरण लेती है। देवीसिंह के दलीपनगर के राजा हो जाने का समाचार प्राप्त कर गोमती फूली नहीं समाती। दलीपनगर के मृत राजा की विद्रोहिणी छोटी रानी का अनुचर रामदयाल भी अलीमर्दान की काम-लिप्सा की पूर्ति के हेतु कुमुद की खोज में बिराटा के मन्दिर में आ पहुँचता है। काश्याँ रामदयाल स्वयं को देवीसिंह का विश्वस्त अनुचर प्रकाशित कर गोमती का सामीप्य, विश्वास और स्नेह सहज ही प्राप्त कर लेता है। आशाओं से पुलकित गोमती देवीसिंह की अवहेलना का समाचार पा स्तब्ध रह जाती है। एक बार देवीसिंह बिराटा आता है। वहाँ उससे तिरस्कृत हो गोमती अचेतावस्था में गिर पड़ती है। कुमुद संतप्त गोमती को शान्ति प्रदान करने और सुरक्षा की दृष्टि से उसे अन्यत्र भेजने का प्रस्ताव करती है। गोमती को किसी सुरक्षित गाँव में ठहराने का भार रामदयाल को मिलता है। रामदयाल गोमती को अलीमर्दान की छावनी में छोटी रानी के डेरे पर जा ठहराता है। मार्ग में रामदयाल गोमती पर प्रेम प्रकट कर अपने जीवन को सुधारने का सच्चा प्रण करता है। भग्नहृदया गोमती रामदयाल की प्रणय याचना के प्रति निरपेक्ष रहती है। उसका जीवन के प्रति उत्साह समाप्त हो चुका है। वह युद्ध में मारी जाती है।

३—तीसरी कथा है कालपी के फौज़दार अलीमर्दान की कुमुद के प्रति कामलिप्सा तथा देवीसिंह से युद्ध की। अलीमर्दान की सेना की एक टुकड़ी से राजा नायकसिंह से पालर में मुठभेड़ हो जाने पर अलीमर्दान का ध्यान कुमुद और दलीपनगर की ओर आकृष्ट होता है। वह दलीपनगर से प्रतिशोध लेने तथा कुमुद को प्राप्त करने के लिये सेनासहित पालर में डेरा डालता है। युद्ध कई मोर्चों पर होता है। अन्त में दिल्ली से बुलावा आने पर वह

सेना को कई भागों बाँट कर स्वयं कुमुद को ले भागने की योजना बनाता है। उसकी टुकड़ी देवीसिंह की सेना से घमासान करती है और अलीमर्दान बिराटा के मन्दिर पर जा धमकता है। वह नदी की ओर अग्रसर होती हुई कुमुद का पीछा करता है और कुमुद के बेतवा में छलाँग लगाने के पश्चात् स्तब्ध रह जाता है। देवीसिंह से युद्ध नहीं करता वरन् सन्धि करके लौट जाता है।

४—चौथी कथा है नायकसिंह की सहसा प्रवर्तनी प्रचंड छोटी रानी की। राजा नायकसिंह की मृत्यु के उपरान्त जनार्दन शर्मा के षड्यन्त्र से देवीसिंह के राजा हो जाने पर कुंजरसिंह को प्रबल बिरोध करने के लिये प्रोत्साहित करने का वह असफल प्रयास करती है। तदुपरान्त छोटी रानी के जीवन का ध्येय जनार्दन तथा देवीसिंह का नाश मात्र रह जाता है। वह अलीमर्दान को राखीबन्द भाई बनाकर उसके सहयोग से सिंहगढ़ में कुंजरसिंह से जा मिलती है। सिंहगढ के पतन के फलस्वरूप रानी लोचनसिंह द्वारा बन्दी बनाई जाती है। वह पुनः बड़ी रानी के साथ दलीपनगर से भाग कर रामनगर की गढ़ी में देवीसिंह के विरुद्ध मोर्चा स्थापित करती है। रामनगर के पतन के पश्चात् अलीमर्दान की छावनी में शरण लेती है। रामदयाल गोमती को लाकर उसी के पास ठहराता है। जनार्दन-देवीसिंह से प्रतिशोध लेने की धुन में पागल की भांति लड़ती-भिड़ती छोटी रानी लोचनसिंह द्वारा मारी जाती है।

× × ×

(अ) ठाकुर देवीसिंह का चरित्र और अलीमर्दान की प्रासंगिक कथा-पताका मुख्य कथा को उलझा कर विकसित करने तथा परिणाम तक पहुँचाने में योग देती हैं। देवीसिंह जनार्दन शर्मा के षड्यन्त्र द्वारा कुंजरसिंह का अधिकार छीन दलीपनगर का राज्य प्राप्त कर लेता है। देवीसिंह और कुंजरसिंह की परस्पर शत्रुता के कारण ही बिराटा को दलीपनगर की सेनाओं की रक्षा अन्त में प्राप्त नहीं हो पाती। देवीसिंह और कुंजरसिंह में द्वन्द्व होता है और कुंजरसिंह मारा जाता है। अलीमर्दान कुमुद के प्रति अपनी कुत्सित इच्छा के कारण युद्ध-भूमि में उतरता है। वह बिराटा से युद्ध करता है। अलीमर्दान के कारण कुमुद को बेतवा में कूद कर जल-समाधि लेनी पड़ती है।

राजा नायकसिंह पालर में कालपी की सेना से टक्कर ले कर अलीमर्दान को दलीपनगर तथा पालर की देवी कुमुद के प्रति आकृष्ट करता है। कालपी तथा दलीपनगर की सेनाओं की टक्कर के अवसर पर दूल्हा देवीसिंह भी

रङ्गमंच पर प्रकट होता है। उसकी वीरता से प्रभावित हो नायकसिंह देवीसिंह को अपने साथ दलीपनगर ले जाता है। मृत्यु के समय राजा नायकसिंह के अपने उत्तराधिकारी के विषय में स्पष्टरूप से घोषणा न करने के कारण देवीसिंह और कुंजर के मध्य संघर्ष होता है।

छोटी रानी की कथा प्रकरी है। वह अपने प्रचण्ड द्वेष के कारण देवीसिंह को युद्धक्षेत्र में ले जाती है। अलीमर्दान को अपना राखी बन्द भाई बना कर उसके तथा देवीसिंह के मध्य वैमनस्य की जड़ें और भी गहरी करती है। छोटी रानी का विश्वस्त सेवक रामदयाल कुमुद के विषय में अलीमर्दान को सूचना देते रह कर मुख्य कथा को परिणाम की ओर अग्रसर करने में सहायक होता है।

गोमती की कथा को उलझाने में देवीसिंह का हाथ है। कुमुद के पास रहने के कारण गोमती की कथा सोलहवें परिच्छेद से लेकर ८१ वें परिच्छेद तक मुख्य कथा के साथ मिलकर चलती है। गोमती की मृत्यु भी उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद १०६, में मुख्य कथा की समाप्ति के साथ होती है।

(ब) 'बिराटा की पद्मिनी' की कथायें विभिन्न कालों से उठाकर एक सूत्र में गूंथ दी गयी हैं। कुमुद की कथा ऐतिहासिक है, लगभग सन् १७०० की बिराटा गांव [परगना-तहसील मोंठ, ज़िला झांसी] की दस्तूरदेही, मिसिल बन्दोबस्त, सन् १८६२, में इस घटना का उल्लेख है। उर्दू में लिखा हुआ है 'बिराटा में दांगी जाति की 'पद्मिनी' थी। नवाब कालपी के हमले की वजह से उसे बेतवा नदी में समाधि लेनी पड़ी।' उसके पैर के चिह्न पत्थर के बने हुए हैं। वहाँ हर साल मेला लगता है। उस समय कालपी का नवाब अलीमर्दान था। यही बात बिराटा के आसपास इस रूप में प्रचलित है; एक दांगी कन्या थी जिसे आसपास दुर्गा माता का अवतार समझा जाता था। उसके रूप और लावण्य की कीर्ति किसी मुसलमान सरदार के कानों तक पहुँची और वह अपनी कामुकवृत्ति को तृप्त करने के लिये सेना लेकर चढ़ आया। बिराटा के दांगी लोग अपनी देवी की रक्षा के लिये लड़ मरे और तथाकथित देवी ने बेतवा की धारा की शरण ली। बाद में उसके चट्टान पर चरण-चिह्न अंकित करा दिये गये। उस स्थल पर अब भी प्रतिवर्ष मेला लगता है।

इसी कथा में वर्मा जी ने दतिया राज्य की राज्य-प्राप्ति संबन्धी संघर्ष की कहानी ला मिलाई है। नायकसिंह, देवीसिंह तथा कुंजरसिंह आदि उसी प्रसंग की देन हैं। घटना कुमुद के ५५ वर्ष बाद की है।

देवीसिंह का वास्तविक नाम भवानीसिंह था। ये दतिया के महाराजा हुए हैं, महाराज विजय बहादुर सिंह के दत्तक पुत्र थे। उपन्यास के नायकसिंह

और महाराज विजय बहादुर सिंह एक ही व्यक्ति हैं। ये विलासी प्रकृति के थे और अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त भी। सन्तान की इच्छा से इन्होंने दो विवाह किये किन्तु कोई पुत्र न हुआ। हाँ, एक दासी से पुत्र अवश्य हुआ, उपन्यास का 'कुंजरसिंह'। पंचनद ग्राम में इन्होंने प्राण त्यागे। मरते समय उन्होंने कुछ कहना चाहा। राज पुरोहित ने घोषणा की कि उन्होंने देवीसिंह (भवानीसिंह) को राज्य दिया है। छोटी रानी इस षड्यन्त्र के विरुद्ध थी। छोटी रानी ने प्रण किया कि जब तक राजपुरोहित (उपन्यास के जनार्दन शर्मा] का सर काट कर न लाया जायगा तब तक वे अन्न न ग्रहण करेंगी। सर काट कर लाया गया, तभी उन्होंने अन्न ग्रहण किया। यह घटना झांसी के निकट एक ग्राम गोरामछिया की है।[१]

रण-दूल्हा वाली कथा अलग से है। वर्मा जी ने उसे देवीसिंह की कथा में ला पिरोया है। यह घटना बहादुरशाह के काल की है। जिस समय नायकसिंह (विजय बहादुर सिंह) के पिता मुसलमानों से कालपी की रक्षार्थ युद्ध करने गये थे, एक दूल्हा विवाह करके पत्नी सहित लौट रहा था। दूल्हा से यह सब न देखा गया। तलवार लेकर मातृभूमि की रक्षा के लिये मैदान में आ कूदा। खूब लड़ा और मारा गया। उसके रक्तरंजित मौर, शस्त्र तथा विवाह के कपड़े आज भी सेंहुड़े (सिंहगढ़) के किले में सुरक्षित हैं।

गोले उगलती तोपें और रात ही रात नदियों को तैर कर पार करती सेनायें किसी न किसी रूप में रही अवश्य थीं। कुंजरसिंह और देवीसिंह (भवानीसिंह) के बीच राज्य के प्रश्न पर आये दिन युद्ध होते रहते थे। अन्त में देवीसिंह ने कलकत्ते से सहायता प्राप्त कर दतिया का राज्य अधिकृत किया। कुंजरसिंह का वास्तविक रूप अन्त में असफल रहा था किन्तु मारा नहीं गया था। उपन्यास में देवीसिंह के हाथों उसका बध दिखलाया गया है।

विभिन्न काल की उक्त दो घटनायें एक लड़ी में गूँथ दी गयी हैं; ये हैं, कुमूद का अलीमर्दान के कारण जलराशि में तिरोहित होना तथा कुंजरसिंह का राजगद्दी से वंचित होना। कुमुद और कुंजरसिंह के मध्य प्रणय-संबंध स्थापित कर दोनों घटनाओं को घुला-मिला दिया गया है। वर्मा जी ने दोनों पात्रों को समकालीन कल्पित करके कथा में निज की व्याख्या तथा कल्पना को स्थान दिया है। कुंजरसिंह राजा का दासी पुत्र था, बलिष्ठ और सुन्दर रहा होगा। निरन्तर सामाजिक अवहेलना तथा राज्य की उपेक्षा सहने के

१—बुंदेलखंड का इतिहास (पृ० ३७४), बिराटा की पद्मिनी (भूमिका), वर्मा जी के संस्मरणों तथा जन-श्रुतियों के आधार पर कुंजरसिंह का वास्तविक नाम था अर्जुनसिंह।

कारण उसका सांसारिक दौड़धूप से उदासीन हो जाना स्वाभाविक है। कुमुद के रूप तथा नैसर्गिक लावण्य की चर्चा चारों ओर थी। कुंजरसिंह उसके दर्शनार्थ गया होगा। यदि उसके हृदय के किसी कोने में इस दैवी सौंदर्य के प्रति कुछ ममता जाग उठी हो तो क्या आश्चर्य ! कुमुद भी शायद अपने इस भावुक, अभागे भक्त पर और लोगों से अधिक कृपा करती रही होगी।

कुमुद वाली घटना पूर्णतः ऐतिहासिक है। भले ही वह देवी अथवा साधारण नारी, कुछ रही हो। आज भी वहाँ के निवासी उसे देवी मानते हैं। जिस चट्टान से वह नदी में कूदी थी, उस पर अब भी कुमुद के चरण-चिह्न अंकित हैं। ऐतिहासिक परम्परा में कुमुद देवी के रूप में मिली है। वह अविवाहिता थी। अन्धविश्वास और श्रद्धा के अतिरिक्त उसे मनोवैज्ञानिक तथा संभवता के दृष्टिकोण से ग्रहण करना वर्मा जी को अभीष्ट था। इस उपन्यास की मुख्य कला, देव और मनुष्य का, बल और दुर्बलता का अनुपम मिश्रण है। कुमुद और कुंजरसिंह के बीच प्रणय की कल्पना से दो लक्ष्य सिद्ध किये गये हैं। उपन्यास में सजीव, साकार, रोमांस का पदार्पण तथा देवी के पहलू में धड़कते हुये मानवीय हृदय की खोज। वर्मा जी ने उसके हाथों जंगली फूलों की गुंथी माला कुंजरसिंह के गले में डलवा ही दी।

गोमती और देवीसिंह के असफल सम्बन्ध की कल्पना 'गढ़ कुंडार' की देन है। वहाँ के नागदेव और हेमवती यहाँ गोमती और देवीसिंह हैं। रामदयाल काल्पनिक है। यहाँ उस जैसे नीच व्यक्ति को भी नारी (गोमती) के प्रेम से उठता हुआ दिखाना अभीष्ट है।

मुसाहिबजू

१—मुसाहिबजू दलीपसिंह की आर्थिक दुरावस्था,उसकी पत्नी की कर्तव्यपरायणता तथा मुसाहिबजू द्वारा अपने सेवकों की रक्षा की कहानी 'मुसाहिबजू' की मुख्य कथा है। सेवकों के भोजन आदि के व्यय के लिये मुसाहिबजू की पत्नी चरखारीवाली अपनी पहुँचियाँ गिरवी रखा कर रुपया मँगाती है। एक अवसर पर वह अपने पास आवश्यक आभूषण न होने के कारण रनिवास में आयोजित उत्सव में भाग लेने नहीं जा पाती और संतप्त हो एकान्त में रोती है। मुसाहिब के स्वामिभक्त सेवक अपनी स्वामिनी का दुःख टालने के लिये सेठों और उनकी स्त्रियों की बैलगाड़ी को लूटते हैं। लूटे हुए आभूषणों को गढ़े हुए धन की खुदाई से प्राप्त हुआ बताकर चरखारीवाली के पास भिजवा

देते हैं। बैलगाड़ी में बैठी सुभद्रा नाम की स्त्री लुटेरों में से मुसाहिबजू के लल्ली सिपाही को पहचान लेती है। लुटे हुए सेठों की पुकार राजा तक पहुँचती है। राजा मुसाहिब को, उसके लुटेरे सेवकों को दण्ड के लिये प्रस्तुत करने की आज्ञा देता है। मुसाहिब अपने सेवकों के अपराध को स्वयं ओढ़ लेता है। सेवकों को राजा के पास नहीं भेजता वरन् उससे युद्ध की तैयारियाँ करता है किन्तु राजा का कोतवाल संघर्ष को बचाने के लिये युक्तिपूर्वक मुसाहिब को राज्य छोड़कर चले जाने के लिये मना लेता है। मुसाहिब को राज्य छोड़कर जाते देख राजा का हृदय पसीज उठता है। राजा स्वयं जाकर मुसाहिब दलीपसिंह को मनाता और प्रजापालन का उपदेश देता है।

२. दूसरी कथा है मुसाहिब के रसिक सिपाही लल्ली और कुंजी महाजन की पुत्री सुभद्रा की। सुभद्रा विवाहिता होने पर भी ससुराल में अनबन के कारण प्रायः पिता के पास रहती है। लल्ली जब कभी उसके पास आता है रसमय वार्तालाप करने का प्रयत्न करता है। सुभद्रा द्वारा प्रकट की गयी उपेक्षा भी उसे समीप आने का निमन्त्रण-सा देती है। लल्ली बैलगाड़ी की स्त्रियों के आभूषणों की लूट में भाग लेता है। इन स्त्रियों में सुभद्रा भी थी। लूट का माल चरखारीवाली को भेजने के बाद चाँदी के आभूषण लल्ली के पास रह जाते हैं। वह उन आभूषणों को सुभद्रा की भेंट करने जाता है। सुभद्रा उसका तिरस्कार करती है। एकाएक कुंजी सेठ के आ जाने पर लूट की बात स्पष्ट हो जाती है और सेठ लोग राजा से अपराधियों को दण्ड देने की प्रार्थना करते हैं।

× × ×

[अ] मुख्य कथा सामन्तों की सेवकप्रियता और तथाकथित स्वाभिमान की परिचायक है। लल्ली सिपाही और सुभद्रा का प्रसंग कथा में प्रकरी के रूप में प्रयुक्त है। लल्ली डाके में भाग लेता है, सुभद्रा लुटने वालों में से एक थी। लल्ली द्वारा सुभद्रा को डाके के गहने भेंट करते समय रहस्योद्घाटन हो जाता है और मुख्य कथा चरम सीमा की ओर अग्रसर होती है।

[ब] मुख्य कथा की घटना दतिया की है। इसे वर्मा जी ने छोटू नाई से सुना था। सुभद्रा-लल्ली की कथा काल्पनिक है।

कभी न कभी

१. दो मित्रों, देवजू और लछमन के मध्य लीला आती है। पहले देवजू और लीला के विवाह की योजना थी किन्तु लछमन और लीला के

मध्य एक दूसरे के प्रति झुकाव देख देवजू दोनों का विवाह हठपूर्वक करा देता है। सोचता है उसे भी सुख, शान्ति प्राप्त होंगे कभी न कभी, यही 'कभी न कभी' की मुख्य कथा है। बलवन्तनगर में इमारतों पर कार्य करने वाले दो मजदूर हैं, देवजू और लछमन। स्वाभाविक स्नेह और घटनाओं के संयोग से दोनों में प्रगाढ़ मित्रता हो जाती है। दोनों 'पगड़ी-बदल' भाई बन जाते हैं, देवजू बड़ा और लछमन छोटा। काम की खोज में आये हुए एक व्यक्ति हीरालाल और उसकी युवती पुत्री लीला से उनका परिचय होता है। लछमन हीरालाल पर देवजू से लीला का विवाह कर देने का बल देता है। हीरालाल लछमन से ही लीला का विवाह करने के मत पर स्थिर रहता है। लीला भी लछमन के प्रति आकृष्ट होती है। लछमन का विचार बदलने लगता है। लछमन के बदले हुए व्यवहार और विचार को लक्षित कर देवजू को क्लेश होता है। मजदूरों के मेट की ओर से संकट की आशंका से हीरालाल और लीला देवजू-लछमन के डेरे पर आ टिकते हैं। देवजू और लछमन में लीला के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ जाता है। अन्त में देवजू लछमन और लीला का विवाह करा देने का निश्चय करता है और सोचता है उसे भी सुख मिलेगा, कभी न कभी।

२. दूसरी कथा है मेट के लीला के प्रति आकर्षण की। जहाँ लीला आदि काम करते हैं उस काम का निरीक्षक मेट लीला के लछमन के साथ विवाह पर बल देता है। देवजू को वह उपयुक्त वर के रूप में स्वीकार नहीं करता। स्वयं टीपनों को मिलाने का विशेषज्ञ होने का दावा भरता है और किसी न किसी ब्याज से लीला के निकट आने का प्रयत्न करता रहता है। एक सन्ध्या को काम के बहाने लीला को अपने डेरे पर लाकर उसके समक्ष अपना प्रेम प्रकट करता है। लीला उस के प्रति पहले उदासीनता, फिर उपेक्षा प्रकट करती है। इसी बीच देवजू आकर मेट की भर्त्सना कर लीला को साथ डेरे पर ले जाता है।

× × ×

(अ) लीला, लछमन और देवजू का एक प्रेम-त्रिकोण बनता है। लछमन, देवजू की मैत्री समाप्ति के बिन्दु पर आ जाती है किन्तु देवजू त्रिकोण में से स्वयं पीछे हटकर परिस्थिति को सम्भाल लेता है। लछमन तथा लीला के विवाह का आयोजन होता है। मेट लछमन को देवजू की अपेक्षा सरल तथा उदार पाता है। वह लीला तथा लछमन के सम्बन्ध पर बल देता है। लछमन को लीला के प्रति उन्मुख करने में मेट का विशेष सहयोग है।

मेट के लीला को अपने डेरे पर ले जाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करने का प्रसङ्ग स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है। उपन्यासकार ने यहाँ लीला को प्राप्त करने के तीन इच्छुक प्रस्तुत कर दिये हैं, लछमन, देवजू और मेट। देवजू मेट और लीला के वार्तालाप के मध्य पहुँच मेट की भर्त्सना कर लीला को साथ ले आता है। उसके इस कार्य को लेकर देवजू और लछमन की आन्तरिक कटुता विवाद के रूप में उभर आती है। देवजू मेट के अत्याचार की आशंका दिखाकर ही हीरालाल को लीला और लछमन का विवाह तुरन्त कर देने के लिये तैयार करता है। इस प्रकार मेट का प्रसंग कथा को अन्त की ओर अग्रसर करने में सहायक है।

[ब] उक्त दोनों कथायें झाँसी ज़िले में चिरगाँव-रामनगर के मध्य सन् १९४२ में सड़क बनाने वाले मज़दूरों से सम्बन्ध रखती हैं। बलवन्त-नगर झाँसी का पुराना नाम है।

झाँसी की रानी — लक्ष्मीबाई

झाँसी की रानी की मुख्य कथा बालिका मनू के झाँसी की रानी बनने, विधवा होने पर सन् १८५७ में स्वराज्य-स्थापना के दृष्टिकोण से झाँसी में राज्य सम्भालने तथा अन्त में अँगरेज़ों से मोर्चा लेते हुए प्राणोत्सर्ग करने की कहानी है। बिठूर में बाजीराव द्वितीय के आश्रित मोरोपन्त की पुत्री मनूबाई राष्ट्रप्रेम और महत्वाकांक्षाओं से ओतप्रोत है। वह भारत के स्वतन्त्र होने तथा देश के गौरवपूर्ण दिनों के लौटने की आशा में डूबी रहती है। उसका विवाह झाँसी के विधुर प्रौढ़ राजा गंगाधरराव से हो जाता है। मनू का ससुराल में नामकरण होता है, लक्ष्मीबाई। लक्ष्मीबाई की वृत्ति गंगाधरराव के अति रसिक, आलसी, सहजकोपी स्वभाव से मेल नहीं खाती। वह महलों के बन्धन में रहकर भी व्यायाम और घुड़सवारी का नित्य अभ्यास करती रहती है। अपनी दासियों काशी, सुन्दर, मुन्दर आदि को सहेली के रूप में ग्रहण कर प्रोत्साहन दे उन्हें योद्धा बनाती है। गंगाधरराव भयंकर रूप से रोगग्रस्त हो जाने पर दामोदरराव नामक बालक को दत्तक पुत्र स्वीकार कर लेते हैं। राजा की मृत्यु पर रानी धैर्य और दृढ़ता का आश्रय लेती है और अपने बाल-सखाओं तात्या टोपे तथा नाना साहब से समय-समय पर देश को स्वतंत्र करने की योजना पर विचार करती रहती है। अँगरेज़ों द्वारा दत्तक पुत्र की अस्वीकृति तथा झाँसी पर उनके अधिकार स्थापित कर लेने पर वह भविष्य में योजना पूर्ण हो जाने तक शान्त रहने का निश्चय करती है। सहयोगियों का सैनिक-शिक्षण तथा जनता में अँगरेज़ों के विरुद्ध प्रचार कार्य वेग पकड़ता है।

चौथी जून, १९५७ को भारत के अन्य नगरों के समान झाँसी में अँगरेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह के लक्षण प्रकट हुए । रानी झांसी के सभी गण्यमान्य जनों के अनुरोध पर झांसी का शासन-भार ग्रहण कर सुप्रबन्ध स्थापित करती है । टीकमगढ़ के दीवान नत्थे खाँ की विशाल सेना के आक्रमण और विरोधियों द्वारा नगर में उत्पन्न साम्प्रदायिक तनाव आदि अनेक समस्याओं को लक्ष्मीबाई पराक्रम तथा दृढ़ता से हल करती है ।

अँगरेजी सेना का जनरल ह्यू रोज़ विद्रोहियों का दमन करता हुआ झाँसी के समीप आ पहुँचता है । दोनों ओर से तोपों का भयंकर युद्ध प्रारंभ होता है । रानी की स्त्री-सेना अत्यन्त वीरतापूर्वक कार्य करती है जिसका परिचय पा रोज़ भी दाँतों तले उँगली दबा जाता है । दूल्हाजू तोपची अपनी सहायक, नारी-सेना की सदस्या सुन्दर से प्रेम प्रकट करता है किन्तु सुन्दर से तिरस्कृत तथा रानी द्वारा अपमानित होने पर अँगरेजों से जा मिलता है । झांसी किले के ओर्छा फाटक पर वह अँगरेजी सेना को मार्ग दे देता है । पराजय होती है और रानी को कुछ चुने हुए सहायकों के साथ लड़ते हुए झांसी को त्याग कर कालपी में तात्या टोपे और रावसाहब की छावनी में शरण लेनी पड़ती है ।

रावसाहब आलसी और विलासी योद्धा है । लक्ष्मीबाई के अनेक बार चेतावनी देने तथा विजय के पर्याप्त साधनों के होने पर भी अपनी अक्षमता के कारण अँग्रेजों से पराजित हो कालपी छोड़कर भागता है । रानी अपनी योजना, उत्साह तथा परिश्रम से रावसाहब को ग्वालियर पर विजय प्राप्त करने में भारी सहयोग देती है । रावसाहब वहाँ सम्पूर्ण समय उत्सव मनाने तथा नाचरंग में व्यतीत करता है । चेतावनियों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । रानी निराश हो ग्वालियर के आसपास घूमती हुई बाबा गंगादास नामक उच्चकोटि के संन्यासी से भेंट करती है । गंगादास गीता के 'कर्मयोग' संबंधी उपदेश पर बल देकर उसे बिना किसी प्रकार की आशा-निराशा हृदय में रखे अविरत प्रयत्न का उपदेश देते हैं । रानी की निराशा विदा ले जाती है । वह उसी परिस्थिति में जीवन-पर्यन्त भरसक उद्योग करने का निश्चय करती है । अँगरेजी सेना का ग्वालियर पर प्रबल आक्रमण होने पर ग्वालियर राज्य की सेनाएँ रावसाहब से विमुख हो जाती हैं । रानी के थोड़े से सैनिक असाधारण पराक्रम प्रदर्शित करते हैं । पराजय अवश्यम्भावी थी, रानी को पलायन करना होता है । पीछा करते अँगरेजो से लड़ते-भिड़ते वह मर्माहत होती है और बाबा गंगादास की कुटी पर पहुँच कर रानी की गौरवमय इहिलोक-यात्रा समाप्त हो जाती है ।

२—दूसरी कथा है मोतीबाई तथा खुदाबख्श के प्रेम और उनके झाँसी के स्वातन्त्र्य-संग्राम में सहयोग की। राजा गंगाधरराव की नाटकशाला में मोतीबाई प्रतिभा सम्पन्ना सुन्दरी अभिनेत्री है। गंगाधरराव उसके तथा अपने सरदार खुदाबख्श के मध्य आकर्षण देख खुदाबख्श को देश-निष्कासन की आज्ञा देता है। खुदाबख्श के हृदय में फिर भी राजा या झाँसी के लिए कोई दुर्भावना नहीं आती। मोतीबाई और खुदाबख्श में प्रेम था। मोतीबाई उसकी स्वामिभक्ति की परीक्षा ले उसे रानी के विश्वासपात्र सहायकों में सम्मिलित कर लेती है। दोनों राज्य की स्वतन्त्रता-प्राप्ति होने तक विवाह न करने का निश्चय करते है। सागरसिंह डाकू का दमन करने के लिये गया हुआ खुदाबख्श घायल हो जाता है। रानी स्वयं जाकर सागरसिंह को बन्दी बनाती और खुदाबख्श को 'कुँवर' की उपाधि प्रदान करती है।

अंगरेजों के ओर्छा फाटक से झाँसी के किले में प्रविष्ट होने के समय खुदाबख्श तोपों से गोलों की भयङ्कर वर्षा करता है और अँगरेजों की गोली से मारा जाता है। मोतीबाई भी तोपों पर लड़ती हुई गोली खाकर रानी की गोद में प्राण छोड़ती है।

३—तीसरी कथा है ब्राह्मण नारायण शास्त्री तथा मेहतरानी छोटी के वर्णाश्रम विरुद्ध प्रेम तथा देश-प्रेम की। गंगाधरराव के समय में झाँसी के सवर्ण जाति के लोग जनेऊ धारण करने का आन्दोलन छेड़ते हैं। विद्वान् नारायण शास्त्री उनका पक्ष लेता है। नारायण शास्त्री तथा छोटी भंगिन में प्रेम था। आन्दोलन के विरोधीजनों द्वारा इस वर्णाश्रम-विरुद्ध प्रेम की सूचना पा राजा गंगाधरराव दोनों को देश-निष्कासन का दण्ड देता है।

छोटी अँगरेजों के भारतीय सैनिकों की छावनी में नाचती गाती है और उन्हें अँगरेजों के विरुद्ध उभारती है। ग्वालियर हस्तगत कर लेने पर रावसाहब द्वारा किये गये नृत्य-गान के आयोजन में छोटी भी भाग लेने पहुँचती है। रावसाहब उसके सौन्दर्य और सीधे-सादे नृत्य-गान पर मुग्ध हो जाता है किन्तु छोटी और नारायण शास्त्री की जाति-पाँति और सम्बन्ध का बोध होने पर छोटी के देश-निष्कासन की आज्ञा देता है। नारायण और छोटी जाति-पाँति के जटिल बन्धन के मुक्ति-प्राप्ति के हेतु वैष्णव हो जाने का संकल्प कर ग्वालियर त्याग देते हैं।

४—चौथी कथा है तात्या टोपे के स्वातन्त्र्य-संग्राम सम्बन्धी कार्य तथा जूही के उसके प्रति असफल प्रेम की। तात्या बाजीराव द्वितीय का सेवक था और रानी लक्ष्मीबाई से उसकी बाल्यावस्था से परिचित था। तात्या

टोपे स्वातन्त्र्य-युद्ध की योजना सम्बन्धी मन्त्रणा करने तथा देश के समाचार देने के लिये अनेक बार लक्ष्मीबाई से मिलने आता है।

रानी की स्त्री-सेना की सदस्या जूही छावनियों में नृत्य, गान कर सैनिकों को अँगरेजों के विरुद्ध भड़काने का कार्य करती है। जूही तात्या से प्रेम करने लगती है। उससे बात करने के लिये, प्रोत्साहन के दो शब्द सुनने के लिए जूही लालायित है। अपने लक्ष्य-पूर्ति की धुन में ही खोये रहने वाले तात्या को इन विषयों पर मनन करने का अवकाश नहीं है किन्तु मोतीबाई द्वारा जूही को प्रोत्साहित करने की प्रार्थना को स्वीकार कर वह उससे स्नेहपूर्वक बात कर लेता है। जूही को मानो सब कुछ मिल गया। झाँसी का अंगरेजों से युद्ध छिड़ जाने पर जूही काशीबाई के साथ तात्या को झाँसी की सहायता का संदेश देने जाती है। तात्या झाँसी की सहायता के लिए नहीं पहुँच पाता। मार्ग में ही पराजित हो सेना सहित लौट जाता है।

रानी के कालपी में रावसाहब की छावनी में शरण लेते समय साथ जूही भी रहती है। रावसाहब तात्या द्वारा जूही को अपनी मण्डली में नृत्य करने का सन्देश भिजवाता है। स्वाभिभक्त तात्या जूही की कोमल भावनाओं का बिना कोई विचार किए हुए उससे नृत्य के लिए चलने का आग्रह करता है। स्वाभिमनिनी जूही के हृदय को ठेस लगती है। वह स्पष्ट रूप से आग्रह को ठुकरा देती है। ग्वालियर में रावसाहब राग-रङ्ग में डूब जाता है। तात्या की दबी हुई वासना भी उभर आती है। वह नर्तकियों पर नेत्र गड़ा कर प्रशंसा में सिर हिलाता है। जूही ग्लानि और अभिमानवश वहाँ से उठ आती है। ग्वालियर में अंगरेजों से अन्तिम युद्ध में कुंठिता जूही तोपों से गोलों की भयानक वर्षा करती है और शत्रु की तलवार द्वारा समाप्त हो जाती है।

५—पाँचवीं कथा है दीवान रघुनाथसिंह तथा मुन्दर के प्रणय और स्वातन्त्र्य-युद्ध में प्राणोत्सर्ग की। गंगाधरराव के देहान्त तथा अँगरेजों द्वारा झाँसी पर अधिकार प्राप्त कर लेने के उपरान्त रघुनाथसिंह रानी लक्ष्मीबाई से स्वराज्य-प्राप्ति विषयक मन्त्रणा करने आता है। दीवान नत्थेखाँ द्वारा झाँसी पर आक्रमण के समय रघुनाथसिंह पीछे से सेना सहित आकर उसके पैर उखाड़ देता है। रानी लक्ष्मीबाई पुरस्कार के रूप में उसे अपनी सहेली मुन्दर के हाथों लड्डू खिलवाती है। अँगरेजों से युद्ध के समय तोपखाने में रघुनाथसिंह और मुन्दर साथ कार्य करते हैं। दोनों में एक दूसरे के प्रति प्राणोत्सर्ग की भावना उमँगती है। ग्वालियर के अन्तिम युद्ध में दोनों शीघ्र ही स्वर्ग में मिलने की कामना करते हैं। मुन्दरबाई युद्ध करते हुए एक अँगरेज

की पिस्तौल की गोली से मारी जाती है। रघुनाथसिंह रानी लक्ष्मीबाई के शव के साथ मुन्दरबाई के शव का दाह गंगादास की कुटी में करने के पश्चात् अंगरेजों के एक रिसाले से टक्कर लेता हुआ प्राण छोड़ता है।

६—छठी कथा है डाकू सागरसिंह के रानी के सरदार बनने तथा अंगरेजों से युद्ध करते हुए प्राण देने की। अँगरेजों के शासनकाल में सागरसिंह झाँसी के जेल में बन्दी बना कर लाया जाता है किन्तु दरोगा बख्शिश अली की असावधानी के कारण निकल भागता है। रानी अपने शासन-काल में स्वयं सागरसिंह को बन्दी बना क्षमा प्रदान कर उसे अपनी सेना में स्थान देती है। अँगरेजों के युद्ध के समय सागरसिंह उनके प्रवाह को रोकने के लिये अपने साथियों सहित किले के बाहर निकल कर प्रतिरोध करते हुए मारा जाता है।

+ + +

(अ) रानी लक्ष्मीबाई की बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु तक की कथा—सम्पूर्ण जीवन वृत्त-को लेकर उपन्यास की रचना की गयी है। उपन्यासकार ने इसे जीवन चरित् न बनाकर उपन्यास का स्वरूप प्रदान किया है। उपन्यास का ध्येय या 'कार्य' रहता है—स्वराज्य-प्राप्ति। मनूबाई बचपन से देश की स्वतंत्रता के स्वप्न देखती है। झाँसी के राजा से विवाहित होने तथा झाँसी का राज्य संभालने पर भी उसकी दृष्टि से वह महान् लक्ष्य ओझल नहीं होता है। उसके लिये झाँसी की राज्य-प्राप्ति स्वर्ग की सीढ़ी नहीं है वरन् देश में स्वराज्य-स्थापना की दिशा में एक पग मात्र है। रानी लक्ष्मीबाई अनेक कठिनाइयों का सामना कर झाँसी के राज्य-भार को वहन करती है। अँगरेजों से युद्ध होता है और अन्त में रानी झाँसी से पलायन करती है। यहाँ जान पड़ता है कि झाँसी की रानी, लक्ष्मीबाई द्वारा झाँसी छोड़ने पर कथा की चरम सीमा आ गयी है किन्तु यदि उपन्यास की कथा के 'कार्य' को दृष्टि में रखा जाए तो कथा की चरम सीमा अभी दूर है। रानी तो झाँसी की विदेशी शासन से मुक्ति के द्वारा जन-जन में स्वराज्य की वांछा और उसके लिए तत्पर होने की शक्ति जगाना चाहती थी। उसका लक्ष्य झाँसी छोड़कर भी अक्षुण्ण रहता है। वह रावसाहब के साथ अँगरेजों से टक्कर लेती है और ग्वालियर पर अधिकार प्राप्त कर लेती है। रावसाहब आदि अपने सहयोगियों के आलस्य, विलास और निश्चिन्तता को देखकर रानी के हृदय में निराशा जाग्रत होती है। वह स्वयं को असमर्थ और लक्ष्य से दूर पाकर साहस खो बैठती है। कहीं पाठक लक्ष्मीबाई को असफल न कह बैठें, उसकी महान् साधना को कहीं दुस्साहस मात्र कहकर निःश्वास न छोड़ें, अतः उपन्यासकार आगे उसे बाबा गंगादास के सम्पर्क में लाता है। झाँसी के पतन को रानी की उद्देश्य-पूर्त्ति में असफलता कहना भ्रम

होगा। झाँसी तो उसके महान उद्देश्य की दिशा में एक पग था, केवल एक प्रयोग। रानी ने तो उस महान् उद्देश्य की माला में अपने प्रयत्न का पुष्प गूँथ दिया। यह उसकी सफलता ही थी। बाबा गंगादास के रानी से वार्तालाप द्वारा उक्त विचार स्पष्ट हो जाता है।

रानी—'हम लोग कैसे स्वराज्य स्थापित कर पावेंगे।'

बाबा—'गड्ढे कैसे भरे जाते हैं? नींव कैसे पूरी जाती है? एक पत्थर गिरता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और चौथा, इसी प्रकार और। तब उसके ऊपर भवन खड़ा होता है। नींव के पत्थर भवन को नहीं देख पाते। परन्तु भवन खड़ा होता है उन्हीं के भरोसे—जो नींव में गड़े हुये है। वह गड्ढा या नींव एक पत्थर से नहीं भरी जाती। और, न एक दिन में। अनवरत प्रयत्न, निरन्तर बलिदान आवश्यक है।'

रानी—'हम लोगों के जीवन काल में स्वराज्य स्थापित हो जायगा?'

बाबा—'यह मोह क्यों? तुमने आरम्भ किये हुये कार्य को आगे बढ़ा दिया है। अन्य लोग आयेंगे। वे इसको बढ़ाते जायेंगे। अभी कसर है। स्वराज्य स्थापना के आदर्शवादी अपने-अपने छोटे-छोटे राज्य बनाकर बैठ जाते हैं। जनता और उनके बीच का अन्तर नहीं मिटता—घटता ही बहुत कम है। जनता त्रस्त बनी रहती है। जब जनता का पूरा सहयोग राज्य को प्राप्त हो जाय और राजा टीम टाम तथा विलासता का दासत्व छोड़कर प्रजा का सेवक बन जाय तब जानो स्वराज्य की नींव भर गई और भवन बनना आरम्भ हो गया। शाश्वत धर्म का रूप बिगड़ गया है। इसके सुधार के बिना वह भवन खड़ा न हो पायगा।'

रानी—'हम लोग प्रयत्न करते रहें?'

बाबा—'अवश्य। तुम तो भगवान कृष्ण और गीता की भक्त हो।'—

अन्त में रानी स्वराज्य के लिये अंगरेजों से वीरतापूर्वक लड़ती हुई घायल होती है। रानी के होठ हिल रहे थे। लोगों की समझ में केवल ये शब्द आये—'···दह···ति···नैं···यं···पावक···' रानी की इहिलीला समाप्त हो गयी।

बाबा गंगादास ने कहा, 'प्रकाश अनन्त है। वह कण कण को भासमान कर रहा है। फिर उदय होगा। फिर प्रत्येक कण मुखरित हो उठेगा।' बाबा ने विषादग्रस्त सरदारों को सचेत किया—'झांसी की रानी के सिधार जाने को अस्त होना कहते हो। यह तुम्हारा मोह है। वह अस्त नहीं हुई। वह अमर हो गई।'

यहाँ रानी की जीवन-लीला समाप्त होती है और उसकी सफलता के विषय

में उठी हुई शंका का समाधान हो जाता है। पाठक की भावना के साथ कथा इस स्थल पर आकर खिंचते हुए ऊपर जा तनती है और उपन्यास समाप्त। यही कथा का चरम स्थल है।

उपन्यास, झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई के प्रबल व्यक्तित्व के चारों ओर घूमने के कारण रानी की कथा के अतिरिक्त अन्य किसी पुष्ट प्रासंगिक कथा को जन्म नहीं दे सका है। नाना साहब, रावसाहब तथा टोपे के स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेने की एक क्षीण प्रासंगिक कथा दीख पड़ती है। मनू इनके साथ पलती और भारतीय एकता तथा स्वातंत्र्य के स्वप्न देखती है। लक्ष्मीबाई के झांसी पहुंचने पर नाना और तात्या उससे प्रायः मिलने आते हैं और योजना के संबंध में मंत्रणा करते है। अन्त में झांसी छोड़ने के उपरान्त रानी राव-साहब और तात्या के साथ ही अंगरेज़ों से युद्ध करती है। प्रासंगिक कथा मुख्य कथा से प्रारंभ और अन्त में मिलने पर भी अत्यन्त क्षीण है। उपन्यास के मध्य में यह प्रायः लुप्त रहती है। इसका विकास स्वतंत्र रूप से नहीं होता। केवल लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व और कथा की पूर्ति के लिये ही इसका प्रयोग हुआ है।

मोतीबाई-खुदाबख्श, नारायण शास्त्री-छोटी, रघुनाथसिंह-मुन्दर की प्रणय कथाएँ, तात्या के प्रति जूही के आकर्षण, तथा सागरसिंह की वीरता तथा राव साहब की असफलता की घटनाओं का मुख्य कथा में प्रकरी के रूप में प्रयोग हुआ है। मोतीबाई-खुदाबख्श के आकर्षण और क्षुब्ध गंगाधरराव द्वारा खुदाबख्श के देश-निष्कासन का प्रसंग मुख्य कथा के प्रारंभ से पूर्व आता है। लक्ष्मीबाई द्वारा झाँसी का शासन भार संभालने पर दोनों स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए परस्पर निकट आते हैं। ७६ वें परिच्छेद में कथा समाप्त हो जाती है। नारायण शास्त्री और छोटी के प्रेम तथा उनके झांसी से निष्कासन की कथा ६,११,१२ परिच्छेद में आने के अनन्तर उनके दर्शन केवल ४२ तथा ८६ वें परिच्छेद में होते हैं। दोनों के अमर प्रेम का परिचय मिलता है। झांसी छोड़ने पर भी झांसी और स्वराज्य के प्रति दोनों के हृदय में मोह है। प्रेम जाति-पाँति को नहीं देखता किन्तु समाज की निष्ठुर और लोलुप प्रवृत्ति उसे फूटी आँख नहीं देख सकती। घटना समस्यामूलक, तत्कालीन सामाजिक मनोवृत्ति की परिचायक तथा झाँसी के जन-मन के स्वातंत्र्य-प्रेम की द्योतक है।

रघुनाथसिंह तथा मुन्दर की प्रेमकथा खुदाबख्श और मोतीबाई की कथा की भाँति उपन्यास मे रोमाँस की सृष्टि करती है। प्रेम की प्रेरणा इन सब को झाँसी के लिये जूझ मरने को उकसाती है। झाँसी में स्वराज्य-स्थापन के

उपरान्त ही वे 'अपना संसार' बसाने की सोचते हैं। रानी के सरदारों की अपूर्व कर्तव्य-भावना का इन कथाओं से परिचय मिलता है। सागरसिंह का स्वाभिमानी, वीर पुरुष के रूप में चित्रण हुआ है। ये सब स्वातंत्र्य-संग्राम के सेनानी हैं। मुख्य कथा के विकास के अनुसार इनकी कथायें बीच-बीच में आती हैं। रावसाहब की अकर्मण्यता और विलास का प्रसंग मुख्य कथा को निखार कर चरम सीमा पर ले आता है।

(ब) झाँसी के पूर्व इतिहास, मनू (लक्ष्मीबाई) की बाल्यावस्था, झाँसी में लक्ष्मीबाई, झाँसी के पतन और लक्ष्मीबाई के प्राणान्त से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटनाओं को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। लेखक का ध्यान सब ओर से सिमट कर केवल लक्ष्मीबाई में केन्द्रित है। अन्य कथायें भी घूम-फिर कर लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व की ओर ही इङ्गित करती हैं। अतः उपन्यास में जीवनी, और जीवनी में इतिहास उभर कर छा गया है। उपन्यास, इतिहास को सजीव बनाने के लिए अपनाया गया। उपन्यास इतिहास का रंग देकर नहीं सजाया गया है वरन् इतिहास को उपन्यास का रूप देकर संवारा गया है।

उपन्यास के प्रारम्भ में 'प्रस्तावना' शीर्षक से दो परिच्छेदों के ८ पृष्ठों में झाँसी-राज्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। बाजीराव पेशवा प्रथम ने झाँसी-राज्य शिवराव भाऊ को सौंपा था। शिवराव भाऊ के तीन पुत्र थे, कृष्णराव, रघुनाथ राव तथा गंगाधर राव। कृष्ण राव के पश्चात् उसका पुत्र रामचन्द्र राव गद्दी पर बैठा। रामचन्द्र राव की माता सखूबाई स्वयं शासन करना चाहती थी और स्वभाव से अत्यन्त निर्मम थी। उसने राज्यलिप्सा के कारण अपने पुत्र की हत्या का षड्यंत्र रचा। षड्यन्त्र अफसल रहा। सखू कैद कर ली गई। आगे चल कर रामचन्द्रराव की असामयिक मृत्यु हो गई। वह निस्संतान था। गद्दी रघुनाथराव को मिली किन्तु उसकी निष्क्रियता के कारण राज्य 'कोर्ट' हो गया। रघुनाथराव भी निस्सन्तान मरा। गद्दी के कई दावेदार हो गये किन्तु कम्पनी सरकार ने गंगाधरराव का पक्ष ग्रहण किया। गंगाधरराव को गद्दी तो मिली परन्तु राज्य पर कुप्रबन्ध और ऋण का इतना बोझ था कि फिर 'कोर्ट' हो गया। शासन का अधिकार गंगाधर को विवाह के बाद ही मिला था। ये सब तथ्य ज्यों के त्यों इतिहास से ग्रहण किये गये हैं।[1]

उपन्यास में चित्रित लक्ष्मीबाई के व्यक्तिगत जीवन की कुछ मार्मिक घट-

---

१. **श्री दत्तात्रय बलवंत पारसनीस द्वारा मराठी में रचित, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' के हिंदी अनुवाद के पहले अध्याय में पृष्ठ ६ से १८ तक ,झाँसी का वर्णन' में ये तथ्य विस्तारपूर्वक दिये गए हैं।**

नायें इतिहास में उसी रूप में मिलती हैं। लक्ष्मीबाई का बाल्यावस्था का नाम मनू था। मनू ने हाथी पर चढ़ने का हठ किया किन्तु नानासाहब ने उसे न बिठाया। मनू का हठ फिर भी न छूटा, उसके पिता मोरोपंत को क्रोध आ गया। बोले—'क्या तेरे भाग्य में हाथी बदा है ?—क्यों निरर्थक हठ करती है ?' मनू ने चपलता पूर्वक उत्तर दिया, 'हाँ, मेरे भाग्य में एक छोड़ दस हाथी बदे हैं।'

दूसरी घटना है विवाह के समय की। जिस समय भाँवरें पड़ रही थीं और वर, कन्या के दुपट्टों की गाँठ पुरोहित बाँध रहा था, मनू ने कहा—'पुरोहितजी जरा गाँठ खूब मजबूत बाँधना।'

गंगाधर राव की मृत्यु के उपरान्त उनका दत्तक पुत्र कम्पनी सरकार ने स्वीकार नहीं किया। झाँसी को अंगरेजी राज्य में मिला लेने का समाचार मेजर एलिस ने लक्ष्मीबाई को सुनाया। लक्ष्मीबाई के मुँह से निकला, 'मैं झाँसी न दूँगी।'

इसी प्रकार गंगाधरराव द्वारा राजेन्द्र बाबू के ताज़ीम न करने पर उसे दंड देने की घटना है।[1]

लक्ष्मीबाई के पिता मोरोपंत बाजीराव द्वितीय के बिठूर में आश्रित थे। मनू बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब तथा उसके भाई राव साहब के साथ पली। तात्या दीक्षित के प्रयत्नों के फलस्वरूप उसका विवाह झाँसी के शासक गंगाधरराव से हुआ। गंगाधरराव का स्वभाव बहुत अच्छा न था। गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् उनका दत्तक पुत्र अंगरेजों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। झाँसी राज्य कम्पनी के अधिकार में चला गया। सन् १८५७ में देश भर में विद्रोह की ज्वाला भड़की, रानी भी उसमें सम्मिलित हो गई। झाँसी का शासन उसने किया। दूल्हाजू नामक व्यक्ति के विश्वासघात के कारण अँगरेज किले में घुस आये। रानी ने राव साहब की सेना में शरण ली। कालपी में सेनायें ठहरीं। राव साहब की निष्क्रियता के कारण कालपी अंगरेजों के हाथ में चली गयी। फिर रानी की सूझ तथा शौर्य के कारण ग्वालियर विद्रोहियों के हाथ आया। यहाँ भी राव साहब की शिथिलता और मूर्खता के कारण मैदान अंगरेजों के हाथ रहा। रानी को भागना पड़ा। अन्त में रानी नाले के पास घोड़े के बिदकने के कारण समाप्त हो गई। उसका शव बाबा गंगादास की कुटी में लाया गया। वही चिता बनी और समाधि भी। समस्त घटनायें इतिहास-सम्मत हैं।

१. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई [पारसनीस] देखिए क्रमशः, पृ० ४, ६, २२ तथा ६४

उनको सजीवता प्रदान करने के लिये औपन्यासिक स्पर्श अवश्य दिया गया है किन्तु तथ्य ज्यों के त्यों हैं।[1]

रानी के सरदारों, मोतीबाई-खुदाबख्श; मुन्दर-रघुनाथसिंह तथा जूही-तात्या के बीच लेखक ने भुकाव दिखाया है। पात्र एक काल के हैं। इतिहास में साथ ही कार्य करते दीख पड़ते हैं। लेखक ने इसी से लाभ उठा कर उपन्यास में रोमाँस प्रविष्ट कराया है। ये सम्बन्ध जाति-पाँति की रूढ़ियों पर भी चोट करते हैं। उक्त उपन्यास में नारायण शास्त्री और छोटी मेहतरानी का प्रेम भी प्रदर्शित किया गया है। उन दोनों के बीच प्रेम की आश्चर्यजनक घटना ऐतिहासिक है।

इस विषय में वर्मा जी के वक्तव्य का उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा। 'लक्ष्मीबाई में जूही-तात्या की प्रेम कहानी वास्तविक घटना है, मुन्दर-रघुनाथसिंह और मोतीबाई-खुदाबख्श की प्रेमवाली बात मेरी कल्पना है। जूही तात्या की प्रेम कहानी, रही उतनी ही जितनी मैंने बतलाई है। शारीरिक सम्पर्क उन दोनों का कभी नहीं हुआ'[2] झाँसी के किले में मोतीबाई खुदाबख्श की कब्रें मिली हुई हैं। कदाचित उक्त कल्पना की आधार यह कब्र रही हो।

वर्मा जी ने अपने उपन्यास का आधार पारसनीस लिखित 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' ऐतिहासिक ग्रन्थ को भी अंशतः बनाया है। उन्हें इतिहास के कथन के साथ पाठकों के समक्ष उस वीर नारी का आदर्श रखना था। वह उसे भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम की अग्रणी के रूप में चित्रित करना चाहते थे। उनकी लक्ष्मीबाई का क्षेत्र झांसी राज्य की संकीर्ण परिधि के कहीं परे सम्पूर्ण भारत था। लक्ष्मीबाई देश के लिये लड़ी। वह स्वयं लड़ी, उसके लड़ने के पीछे स्वराज्य-प्राप्ति की महान् योजना थी।

वर्मा जी द्वारा उपर्युक्त दृष्टिकोण अपनाये जाने के कारण वे पारसनीस से तीन बातों में भिन्न हैं—

१—रानी के सामने देश के स्वराज्य का प्रश्न था। वे अँगरेजों के विरुद्ध योजना के लिये लड़ीं। झांसी-राज्य तो इस दिशा में केवल एक साधारण कारण था।

२—रानी स्वभाव से अबला नहीं थीं। उन्होंने झांसी का राज्य अत्यन्त योग्यता से किया। उनका शासन आदर्श शासन था।

३—रानी ने नारियों की सेना संगठित की थी।

---

१. पारसनीस के ग्रंथ में इन समस्त घटनाओं का ब्यौरा है।

२. वर्मा जी का पत्र, १२-७-५१

पारसनीस ने अपने ग्रन्थ में बराबर इसी बात पर बल दिया है कि रानी को विवश होकर अँगरेजों के विरुद्ध तलवार संभालनी पड़ी। वास्तव में वह झांसी के पूर्व शासकों की भाँति अँग्रेजी शासन के प्रति सहृदय थी किन्तु पारस्परिक भ्रम के कारण अँगरेजों ने उसे विद्रोही समझा। विद्रोही घोषित हो जाने पर रानी और करती भी क्या? उन्होंने रानी द्वारा अँगरेजों को भेजे गये पत्रों को उद्धृत करते हुए लिखा है—'उक्त लेखों से महारानी लक्ष्मीबाई के शुद्ध हृदय का पूरा परिचय मिलता है। यह हम लोगों के दुर्भाग्य की बात है कि उस समय के अँग्रेज़ अफसरों ने बिना कुछ समझे बूझे और बिना कुछ पूछताछ किये ही एक हिन्दू राजघराने की अबला स्त्री को जो सदा ब्रिटिश सरकार से स्नेह रखने का यत्न करती थी, दुष्ट बागियों और हत्यारों की पंक्ति में बैठा दिया। इसी मिथ्या भ्रम के वश में होकर अँगरेजों ने निरपराधिनी लक्ष्मीबाई के साथ घोर संग्राम करने का निश्चय किया। जब इस बात पर हम ध्यान देते हैं कि महारानी लक्ष्मीबाई अँगरेजों के विरुद्ध नहीं थीं, किन्तु वे अँगरेजों की आज्ञा से और अँगरेजों ही के लिए झाँसी के राज्य का प्रबन्ध कर रही थीं, और इस बात की सूचना भी वे समय-समय पर पत्र लिखवा कर सरकार को दिया करती थीं तो भी उनकी सदिच्छा फलीभूत न हुई। उनसे शुद्ध हृदय और सरल व्यवहार का परिचय अँगरेज़ सरकार को न मिला। उन्हें अपने निष्कपट श्रम का उचित फल प्राप्त न हुआ, और अन्त में प्रबल अँगरेजों से युद्ध करना पड़ा। तब यही कहा जा सकता है कि दैव की गति विलक्षण है—भावी बलवान है।'[१]

पारसनीस ने अपनी पुस्तक अँगरेजों के शासनकाल में लिखा। उस समय के लेखकों में प्रायः प्रवृत्ति रही है कि वे शासक के खुल्लमखुल्ला विरोध से तनिक बच निकल कर अपनी बात कहते थे। ब्रिटिश सरकार से रानी के स्नेह रखने की कल्पना उक्त प्रवृत्ति की ही देन जान पड़ती है। जहाँ तक रानी द्वारा अँगरेजों को भेजे गये खरीतों का प्रश्न है, जिनमें रानी ने अपने सद्व्यवहार, मित्रभाव और शुद्ध हृदय का परिचय दिया था, वे सब कूटनीति मात्र भी हो सकते है। वर्मा जी ने उक्त तथ्य की इसी प्रकार व्याख्या की है। जिस समय झाँसी पर नत्थे खाँ नामक सरदार चढ़ आया रानी के वयोवृद्ध मन्त्री नाना भोपटकर ने यही कूटनीतिक सलाह दी कि उन सब को ऊपर ऊपर से अँगरेजों के प्रति स्नेही बने रहना चाहिये।

—'भोपटकर ने कहा, 'हमारे यहाँ अँगरेज झंडा, यूनियन जैक रक्खा हुआ है। अपने झंडे के साथ हम उसको भी खड़ा करेंगे। किले में जो अँगरेज़

---

१ पारसनीस···पृ० ९९

बन्द हो गये थे उनमें से मार्टिन नाम का व्यक्ति, फौज वालों के हाथ से भाग निकला था। वह आगरा में है। एक चिट्ठी मैं उसको इस प्रकार की लिखूंगा कि हम लोग नत्थे खाँ के विरुद्ध अँगरेजों की ओर से लड़ रहे हैं। मेरी राजनीति को इस चिट्ठी से सहायता मिलेगी।'

रानी बोलीं, 'परन्तु यह राजनीति चलेगी कितने दिनों ? हमको अन्त में, सारे देश में स्वराज्य स्थापित करना है। यूनियन जैक झण्डे के नीचे स्वराज्य की स्थापना असम्भव है। चिट्ठी चाहे जिसको मनमानी लिखो, परन्तु झण्डा तो चिट्ठी से बहुत बड़ा होता है।'

'सरकार', भोपटकर ने कहा, 'चिट्ठी और झण्डे का सामंजस्य है। हम कुछ समय तक अपने आदर्शों को ढका मुंदा रखना चाहते हैं। यदि स्वराज्य का प्रयत्न देश भर में ३१ मई को एक साथ ही हो गया होता, तो राजनीति की दिशा कुछ और होती, परन्तु अब उसमें परिवर्तन आवश्यक है।'

लालाभाऊ बख्शी बोला, 'सरकार देखने के दांत कुछ और खाने के कुछ और। भोपटकर साहब का यही तात्पर्य है।'[1]

अंगरेजों के सैनिक विभाग की खोज के गोपनीय निष्कर्ष वर्मा जी की धारणा एवं व्याख्या की पुष्टि करते हैं। उन लोगों का विश्लेषण है कि रानी अँगरेजी शासन की निष्ठुरता से क्षुब्ध थी। उसे अपनी पेंशन से पति का ऋण चुकाना पड़ा था। दत्तक पुत्र की शासन द्वारा अस्वीकृति, झांसी में पशुवध (गोवध) की आज्ञा तथा लक्ष्मी के मन्दिर को दान में लगे दो गांवों पर पुनः लगान जारी करने, आदि घटनाओं ने उसे अंगरेजों के शत्रुरूप में परिणत कर दिया था।[2] रानी ने जबलपुर के कमिश्नर स्कीन को जो मैत्रीपूर्ण पत्र लिखे थे उन्हें अँगरेज इतिहासकार धोखाधड़ी मानते हैं। उनका मत है रानी में मरहठा प्रवृत्ति थी। वह अंग्रेजों का तख्ता पलटने के षड्यंत्र में संलग्न थी।[3] भारतीय इतिहासकार प्रोफे० लूनिया सन् १८५७ के विद्रोह को साधारण उथल-पुथल नहीं, महान् राष्ट्रीय जागरण मानते हैं। उनके मत में इस विद्रोह का लक्ष्य था अँगरेजों का देश से निष्कासन और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति।[4]

---

१. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई···पृ० ३०४, ३०५**

२. **दि रिवोल्ट आफ़ सैंट्रल इंडिया [१८५७-१८५९] [फ़ार आफ़ीशल यूस ओन्ली] कम्पाइल्ड इन दि इंटेलीजेंस ब्रांच, डिवीजन आफ़ दि चीफ़ आफ़ स्टाफ़, आर्मी हैड क्वार्टर्स [इंडिया] शिम्ला गवर्नमेंट।**

३. **केज हिस्ट्री आफ़ सीपोय वार इन इंडिया, वाल्यूम थर्ड···पृ० ३६४**

४. **एवोल्यूशन आफ इंडियन कल्चर···ले० प्रोफे० बी० एन० लूनिया [अध्यक्ष इतिहास विभाग, होल्कर कालिज, इन्दौर]···पृ० ५५८**

रानी लक्ष्मीबाई भी इस स्वातंत्र्य युद्ध के सेनानियों में एक थी।

वर्मा जी ने इन चिट्ठियों को राजनीति में सहायक मात्र माना है। साथ ही रानी की स्वराज्य-स्थापना की बात भी कह दी है। उन्होंने उपन्यास की भूमिका में अपनी स्वराज्यवाली व्याख्या का आधार स्पष्ट किया है।

—'सवाल था रानी स्वराज्य के लिए लड़ीं, या अँगरेजों की ओर से झाँसी का शासन करते-करते उनको जनरल रोज़ से विवश होकर लड़ना पड़ा।

'रानी ने बानपूर के राजा मर्दनसिंह को जो चिट्ठी युद्ध में सहायता करने के लिये लिखी थी उसमें 'स्वराज्य' का शब्द आया था। यह चिट्ठी इस प्रश्न का सदा के लिए स्पष्ट उत्तर देती है।···

···'कलक्टरी में कुछ सामग्री मिली। १८५८ में लोगों के बयान लिये गये थे। इनको पढ़कर मैं अपने विश्वास में और दृढ़ हुआ—रानी 'स्वराज्य' के लिये लड़ी थी।'—

झांसी में स्थित अंगरेजों के अधीन विद्रोही सैनिकों ने किले के अँगरेजों का जो नृशंसतापूर्ण वध किया उसमें रानी का असहयोग ही नहीं वरन् विरोध भी था। इस तथ्य को पारसनीस तथा वर्मा जी दोनों ने स्वीकार किया है।

पारसनीस ने रानी को अनेक स्थलों पर 'अबला' कहा है। उनका रानी को बारम्बार 'अबला' कहकर पुकारना उनके पारम्परिक संस्कारों का द्योतक जान पड़ता है। नारी को अबला कहा जाता है। रानी को अबला कहकर उसके प्रति विशेष सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। स्वयं पारसनीस ने अपने ग्रन्थ में रानी के जिस बल, शौर्य तथा सैन्य-चातुर्य का उल्लेख किया है वह तात्या टोपे जैसे विकट योद्धाओं से टक्कर लेता हुआ है। किन्तु उसके बाल-हृदय में अंकुरित संस्कारों का दिग्दर्शन न कराने के कारण वह चित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधूरा सा लगता है। रानी विद्रोह से पूर्व अबला रही। केवल अश्रु टपकाने वाली, पर्दे में ढकी रहने वाली निरीह नारी। फिर विद्रोह में वह एकाएक विकट सैनिक सरदार के रूप में प्रकट हो गई। उसके युद्ध कौशल से विपक्षी थर्रा उठे। मरते समय भी वह अपने घातक को तलवार के घाट उतार गयी। ये दो विरोधी पक्ष रानी का चित्र स्पष्ट करने में सहायता प्रदान नहीं करते। वर्मा जी ने मनूबाई का चित्र रेखांकित करके लक्ष्मीबाई के महान् व्यक्तित्व की स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक पीठिका प्रस्तुत की है। उनकी लक्ष्मीबाई पुरुषों के वातावरण में पली है। वीर पुरुषों की गौरव गाथायें उसके चित्त में व्याप्त हैं। अपने पिता मोरोपंत से कहती है—'मैं डरपोक कभी नहीं हो सकती। आप कहा करते हैं—मनू तू ताराबाई बनना, जीजाबाई और सीता होना। यह सब

डरपोक थीं।[1] बाल्यावस्था में ऐसे दृढ़ संस्कार लेकर उगने वाली वीर नारी ही जीवन के कटुतम क्षणों में होती हुई प्राण छोड़ते समय टूटे-फूटे स्वर में कह सकेगी।—

'द···ह···ति···नै···यं···पावकः'

पारसनीस लिखते हैं—'इस समय लक्ष्मीबाई के पास राज्य सम्बन्धी विषयों पर विचार करने वाले राजनीति-निपुण और राज्य का प्रबन्ध करने वाले कुशल कार्यकर्त्ता लोगों का अभाव था। उनके सब प्राचीन सेवक झाँसी से चले गये थे। यद्यपि लक्ष्मीबाई स्वयं बड़ी चतुर और बुद्धिमती थीं तथापि वे राजमहलों में रहने वाली एक अबला ही थीं। लक्ष्मीबाई के मन में यही विश्वास था कि मेरी इच्छा और आज्ञा के अनुसार दरबार के लोग अंगरेज सरकार को पत्र आदि भेजते होंगे। परन्तु जब हम उस समय के दरबारियों की स्थिति का विचार करते हैं तब यही कहना पड़ता है कि लक्ष्मीबाई की इच्छा और आज्ञानुसार कोई कार्यवाही ठीक-ठीक न होती थी।'[2]

ग्वालियर के किले को हथियाने की सूझ रखने वाली तथा उसे विजय करने वालों में अग्रणी लक्ष्मीबाई का निरीह हिन्दू विधवा जैसा चित्रण कर पारसनीस ने कदाचित् अँगरेजों को रानी की सफाई देने का प्रयत्न किया है। वर्मा जी ने इस प्रश्न को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा है। दरबारियों के हाथ में कठपुतली बनी रहने वाली रानी इतने दिनों झांसी का शासन तथा युद्ध का संचालन नहीं कर सकती थी। उन्होंने उसे सफल शासक और सेनानी के रूप में चित्रित किया है।

रानी के विपक्षी, अँगरेज स्वयं उसके पौरुष का लोहा मानते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि रानी विद्रोह के लिये तैयार थी और अपनी योजना को कार्यान्वित करने के पूर्णतया योग्य थी।[3]

वर्मा जी ने उपन्यास में दिखाया है कि रानी ने नारी-सेना संगठित की थी। स्त्रियाँ तलवार भांजने और जासूसी से लेकर तोप चलाने तक का कार्य करती थीं। इस विषय में पारसनीस मौन हैं। एक-आध स्थल पर अवश्य

१. झाँसी की रानी···पृ० १६

२. पारसनीस···पृ० ६६ तथा ६७

३. '···दि रानी वाज दस रेडी टु टेक एनी अपौरचूनिटी ऑफ ग्रेटीफायिंग हर रेवेंज एण्ड बीइंग, लाइक मैनी मरहठा वीमैन ऑफ रैंक, पजेज्ड आफ ए मेसक्यूलिन स्पिरिट, शी वाज वैल फ़िटेड टु कैरी आउट हर डिजाइंस एण्ड वाज राइप फार रिबेलियन ह्वेन दि आउटब्रेक अकर्ड इन १८५७।

—दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया···पृ० १६

इसके सूत्र दृष्टिगोचर होते हैं। वह ह्यू रोज़ का हवाला देते हुए लिखते हैं— 'मोरचा बांधने और बारूद गोला ढोने का काम स्त्रियाँ करती थीं।[२] झाँसी छोड़ने के उपरान्त रानी के साथ उनकी दासियाँ सैनिक-वेश में थीं, उसका भी उल्लेख पारसनीस ने किया है।

अंगरेज़ों ने मुख्य गोलन्दाज़ (गुलाम गौस खाँ) को श्रेष्ठ तोपची माना है। उसकी अध्यक्षता में गोलन्दाज़ों की दो टुकड़ियाँ थीं। कुछ तोपों से मुकाबले की बौछार हो रही थी। दूरबीन से उन्होंने स्त्रियों को तोपों पर कार्य करते और हथियारों को ले जाते देखा है।[२]

कचनार

१—'कचनार' की मुख्य कथा है राजा दलीपसिंह की स्मृति के लोप, उसकी पुनर्प्राप्ति तथा कचनार के दलीपसिंह के प्रति प्रेम की। धामोनी के युवा राव दलीपसिंह स्वभाव से सहजकोपी है। दलीपसिंह के अस्वस्थ होने के कारण उसका सम्बन्ध में लघु भ्राता मानसिंह उसकी ओर से कलावती को विवाह कर लाता है। दहेज में वधू के साथ दो कुमारी दासियाँ भी आती हैं, कचनार और ललिता। कलावती प्रारम्भ से मानसिंह के प्रति आकृष्ट हो जाती है। दलीपसिंह और कलावती में पूर्ण स्नेह-सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। दलीपसिंह गम्भीर स्वभाव वाली सुन्दरी कचनार पर मोहित हो जाता है। उसे अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता है किन्तु कचनार तभी समर्पण करेगी जब दलीपसिंह उसे पत्नी के रूप में ग्रहण कर लेगा। धामोनी पर सागर की सेना का आक्रमण होता है। दलीपसिंह उन्हें परास्त कर लौटते समय घोड़े से गिर मस्तिष्क में घातक चोट खाने के कारण स्मरणशक्ति खो बैठता है। उसकी चिकित्सा होती है। कचनार अत्यन्त मनोयोग से उसकी सेवा करती रहती है किन्तु मानसिंह द्वारा अत्यन्त उष्ण औषधि पाने के कारण दलीपसिंह को तीव्र ज्वर आता है और नाड़ी की गति लुप्त हो जाती है।

श्मशान में दलीपसिंह के दाह के आयोजन के समय घोर वर्षा होने के कारण मानसिंह आदि धामोनी के निवासीगण शव को अर्थी से बँधा छोड़ वृक्षों की छाया में जा आश्रय लेते हैं। उधर से ऊँट पर सवार महन्त अचलपुरी अपने सहायक मंटोलेपुरी के साथ निकलता है। शीतल वायु तथा जल से दलीपसिंह की उष्णता शान्त हो गयी थी, उसके शरीर में

---

१. पारसनीस···पृ० १२७

२. दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया···पृ० १०८

चेतना आती है। महन्त दलीपसिंह को अर्थी से खोल कर अपने डेरे पर ले जाता है। वहां स्वस्थ होने पर स्मरणशक्ति खो बैठने के कारण दलीपसिंह बालक जैसा व्यवहार करता है। महन्त उसकी उपस्थिति पूर्णतया गुप्त रखकर उसे स्मरणशक्ति की पुनर्प्राप्ति कराने का प्रयत्न करता है। उसका नाम रखता है सुमन्तपुरी। मानसिंह कलावती से पुनर्विवाह कर लेता है। कचनार मानसिंह के चंगुल से निकल महन्त अचलपुरी के डेरे पर आश्रय लेती है। उसका नामकरण होता है कंचनपुरी।

कंचनपुरी शरीर तथा मन को नियन्त्रित कर कठोर योग-साधना करती है। मंटोलेपुरी तथा सुमन्तपुरी के साथ अचलपुरी के सत्संग में भाग लेती है। सुमन्तपुरी अपनी भोलीभाली बेसिर-पैर की बातों से कंचनपुरी का स्नेह दया, आश्चर्य तथा उलझन संचित करता है। महन्त, सुमन्तपुरी के इतिहास का परिचय कंचनपुरी को नहीं देता। महन्त दलबल सहित धामोनी पर आक्रमण कर उसे अधिकार में ले लेता है। इस युद्ध में दलीपसिंह फिर सिर के बल गिर कर पहले स्थल पर चोट खाने के कारण खोई स्मरण-शक्ति पुनः प्राप्त कर लेता है। वह मानसिंह तथा कलावती को क्षमा कर उन्हें जीवन-यापन के हेतु जागीर देकर अन्यत्र भेज देता है। अचलपुरी मंटोलेपुरी को महन्त की गद्दी सौंप कर स्वयं संन्यास ले लेता है। दलीपसिंह धामोनी का राज्यकार्य सम्भालता है और कचनार से विधिवत् विवाह कर लेता है।

२—दूसरी कथा है कलावती तथा मानसिंह के प्रेम और विवाह की। मानसिंह दलीपसिंह की ओर से कलावती को विवाह कर लाता है। दोनों के हृदयों में परस्पर आकर्षण जड़ें जमा लेता है। 'सुहागरात' के अवसर पर भी कलावती तथा दलीपसिंह में पटती नहीं। दलीपसिंह के आहत होने पर मानसिंह उसे घातक औषधि से समाप्त कर स्वयं धामोनी का राज्य भार सम्भाल लेता है। वह कलावती से विवाह कर लेता है। ललिता भी उस के चंगुल में आ जाती है। कचनार पर उसकी गृद्ध-दृष्टि जाती है। कचनार गुसाइयों के अखाड़े में शरण ले अपनी रक्षा करती है। धामोनीपतन के पश्चात् कलावती प्राण देकर भी मानसिंह से सम्बन्धनिर्वाह का निश्चय प्रकट करती है। दलीपसिंह से क्षमादान प्राप्त कर दोनों धामोनी छोड़कर अन्यत्र निवास करने के लिये चले जाते हैं।

३—तीसरी कथा है डरू द्वारा सोनेसाह के वध तथा उसकी उद्दंडता की। डरू और उसका अनुज बैजनाथ, दलीपसिंह की बरात में मानसिंह के साथ जाते हैं। दलीपसिंह के काका सोनेसाह से उनकी नहीं पटती। डरू मानसिंह का अभिन्न मित्र है। लगान देने के विषय में उग्र विवाद हो जाने पर डरू सोने-

साह का वध कर धामोनी छोड़ भाग जाता है। दलीपसिंह क्रुद्ध हो बैजनाथ का वध कर डरू की चल-अचल सम्पत्ति राज्याधिकार में ले लेता है फिर कचनार के निष्पक्ष विचारों से प्रभावित हो वह सम्पत्ति को राज्याधिकार से मुक्त कर देता है। डरू सागर की सेना में सूबेदार हो जाता है और कभी कभी गुप्त रूप से पत्नी मन्ना से मिलने धामोनी आता है। डरू की अनुपस्थिति में मानसिंह मन्ना पर डोरे डालने का प्रयास करता है किन्तु असफल रहता है। डरू अभिमानवश अचलपुरी के अखाड़े में सुमन्तपुरी से लक्ष्य-वेध में होड़ करता है और पराजित होता है। सागर की लूट में भाग लेकर वह धामोनी पर आक्रमण करता है और बन्दी बनाया जाता है। डरू के असभ्यतापूर्ण व्यवहार से क्रुद्ध हो महन्त अचलपुरी उसे प्राणदण्ड देता है किन्तु दलीपसिंह उसकी रक्षा कर बैजनाथ के वध का प्रायश्चित्त करता है।

४—चौथी कथा है महन्त अलचपुरी और उसके गुसाँई-समाज की। महन्त, दलीपसिंह की श्मशान में रक्षा करता है और उसे तथा कचनार को अपने अखाड़े में आश्रय देता है। वह कंचनपुरी, सुमन्तपुरी और मंटोलेपुरी से समय-समय पर दार्शनिक चर्चा करता रहता है। महन्त अचलपुरी धामोनी पर विजय प्राप्त कर स्वयं संन्यास ले दलीपसिंह को राज्य सौंप उसका कचनार से विवाह करा देता है।

५—पाँचवीं कथा है सागर राज्य और पिंडारियों की शत्रुता की। सागर की सेना गुसाँइयों सहित पिंडारियों पर आक्रमण करती है किन्तु वर्षा के कारण उनका कुछ बिगाड़ नहीं पाती। बाद में अमीर खाँ, पिंडारियों का सरदार, डरू से सागर पर आक्रमण करने की संधि करता है। पिंडारी सागर को लूट कर उसमें आग लगा देते हैं। डरू उन्हें सागर को लूटने में सहायता करता है। पिंडारी डरू के धामोनी पर आक्रमण करने में सहायक बनते हैं।

× × ×

(अ) दलीपसिंह का विवाह होता है कलावती से किन्तु वह आकृष्ट होता है कचनार के प्रति। कचनार को अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता है। क्रूर स्वभाव का है, बैजनाथ का निर्ममता से वध करता है। चोट खाने तथा औषधि में विषपान के फलस्वरूप मृतप्रायः दशा में गुसाँइयों के हाथ पड़ता है। स्मरण-शक्ति खो बैठने के कारण उसकी प्रवृत्ति का विकास नये सिरे से प्रारंभ होता है। अचलपुरी के उदार और कचनार के स्नेहसिक्त व्यवहार का उस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अन्ततोगत्त्वा स्मृति की पुनः प्राप्ति करने पर

दलीपसिंह में असाधारण परिवर्तन आता है। उसकी क्रूरता और विषय-लोलुपता उससे विदा ले जाती है। वह डरू को क्षमा कर और कचनार को अर्धांगिनी के रूप में ग्रहण कर अपनी उदार तथा स्नेहमयी प्रकृति का परिचय देता है। दलीपसिंह के घटनाचक्र में पड़ कर कचनार से प्रभावित हो सुधरने की, 'कचनार' की मुख्य कथा है।

कलावती तथा मानसिंह के प्रेम और विवाह की कथा प्रासंगिक है। दलीपसिंह कलावती से विवाहित होने पर भी कचनार से प्रेम करता है। जटिल प्रेम-त्रिकोण का निवारण करने के लिए कलावती और मानसिंह के मध्य प्रेम पनपाया गया है। दलीपसिंह और कलावती के स्वभाव परस्पर मेल नहीं खाते। मानसिंह दलीपसिंह की मृत्यु और उसके गुसाँइयों के हाथ पड़ जाने का कारण बनता है। कचनार के धामोनी छोड़ कर गुसाँइयों के अखाड़े में शरण लेने का कारण भी मानसिंह है। यहाँ तक यह प्रासंगिक कथा मुख्य कथा को पूर्णतया प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, पहले परिच्छेद से लेकर लगभग ३५ वें परिच्छेद तक उपन्यास की कथा का मुख्य भाग, मानसिंह और कलावती की कथा ही घेरती है। या यों कहिये यह प्रासंगिक कथा इन परिच्छेदों तक मुख्य कथा जैसी जान पड़ती है। फिर ४६ वें परिच्छेद को छोड़कर ५३ वें परिच्छेद तक उपन्यास से अदृश्य रहती है दलीपसिंह से क्षमादान मिलने पर मानसिंह कलावती के साथ अन्यत्र चला जाता है। ५३, ५४ तथा ७२ वें परिच्छेद में आया हुआ मानसिंह-कलावती का प्रसंग उनके परिणाम की सूचना मात्र देता है।

महन्त अचलपुरी और उसके गुसाँई-समाज की कथा भी प्रासंगिक है। यह ३१ वें परिच्छेद के बाद ७२ वें परिच्छेद तक कचनार और दलीपसिंह के साथ बँध कर चलती है।

डरू और उसकी पत्नी मन्ना, दलीपसिंह और मानसिंह के स्वभाव की कसौटी बन कर उपन्यास में आते हैं। मानसिंह मन्ना पर कुदृष्टि रखता है और उसे अपने चंगुल में लाने का कई बार प्रयास करता है। डरू दलीपसिंह की क्रूरता के कारण धामोनी से भागता है। गुसाँइयों के अखाड़े में दलीपसिंह से उसकी लक्ष्य-बेध की क्रिया में होड़ होती है। दलीपसिंह कचनार की प्रेरणा और प्रोत्साहन के फलस्वरूप विजयी होता है। यहाँ दलीपसिंह पर कचनार के सद्प्रभाव को प्रकट करने में डरू सहायक है। महन्त धामोनी-विजय के पश्चात् डरू से क्रुद्ध हो उसको प्राण-दण्ड देने पर कटिबद्ध हो जाता है किन्तु स्वभाव में पूर्णतया परिवर्तित उदार दलीपसिंह क्रोधान्ध महन्त से उसकी रक्षा करता है। यहाँ डरू महन्त के क्रोधजन्य अविवेक और दलीपसिंह के औदार्य का परिचायक है।

पाँचवाँ है सागर-राज्य और पिंडारियों की शत्रुता का प्रसंग गुसाँइयों तथा डरू की कथा में प्रकरी का कार्य करता है। सागर की सेना पिंडारियों पर आक्रमण करती है किन्तु वर्षा के कारण विजय प्राप्त नहीं पर पाती। बाद में पिंडारियों का सरदार सागर का विध्वंस कर डरू की सहायता से वहाँ लूट-पाट करता है, डरू को धामोनी में गुसाँइयों पर आक्रमण करने में भी सहायता देता है। यह कथा ४२, ४६ तथा ६५, केवल इन तीन परिच्छेदों में आती है। इसका मुख्य कथा से विशेष सम्बन्ध नहीं है। जान पड़ता है तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति तथा कुख्यात पिंडारियों का परिचय देने के लिए इस प्रसंग को उपन्यास में ला रखा गया है।

(ब) 'कचनार' की घटनायें टीपू सुल्तान की समकालीन हैं। इनका काल सन् १७९० के लगभग है। धामोनी के आसपास परम्परा में प्रचलित है कि उस काल में एक गोंड सरदार का वंशज धामोनी का राव था। तत्कालीन अस्थिर राजनीति से अन्य गढ़पतियों की भाँति उसने भी लाभ उठाया था। वह नाम भर के लिये नागपुर के भोंसले के अधीन था। भोंसले द्वारा प्रदत्त रावसाहबी से उसे सन्तोष था किन्तु व्यवहार में वह स्वतन्त्र गढ़ीबन्दों जैसा ही था। अपने झंझटों में उलझा हुआ पड़ोसी सागर-राज्य भी उसका कुछ बना-बिगाड़ नहीं पाता था। वैसे, राव के सागर वालों से प्रायः युद्ध हुआ करते थे। राव के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि उसकी अपनी एक दासी पर विशेष अनुरक्ति थी।

उपन्यास में धामोनी की राजनीतिक परिस्थितियाँ इसी प्रकार की है। राव के दासी के प्रति प्रेम के सूत्र को ही मुख्य कथा का आधार कहा जा सकता है। उपन्यास में राव को नाम दिया गया है दलीपसिंह। दलीपसिंह विवाह के अवसर पर दहेज में मिली दासी कचनार के प्रति आकृष्ट हो उससे प्रेम करने लगता है। प्रारम्भ में निष्ठुर दलीप की कल्पना की गयी है। दलीप के कठोर स्वभाव के परिष्कार तथा उसके कचनार के प्रति प्रेम के क्रमिक विकास का चित्रण प्रस्तुत करने में दलीप की स्मृति के लोप और उसकी पुनर्प्राप्ति की कल्पना की गयी है। राव दासी पर अनुरक्त था, उसका अपनी विवाहिता पत्नी के प्रति उदासीन होना अनुमानित किया गया है। उपन्यास में, दलीपसिंह की विवाहिता पत्नी कलावती से नहीं बनती। कलावती के चरित्र को रोचक मोड़ देने के लिये मानसिंह तथा उससे सम्बन्धित घटनाओं की कल्पना की गयी है।

डरू की घटना जो उसके भाई के वध से सम्बन्ध रखती है धामोनी की नहीं कुंडार के समीप ओरछा-राज्य में स्थित उबोरा ग्राम की है। उससे

सम्बन्धित अन्य घटनाएँ विभिन्न व्यक्तियों के चरित्रों से ग्रहण की गयी हैं। इस प्रकार डरू का दलीपसिंह की घटनाओं से कोई ऐतिहासिक सम्बन्ध नहीं है।

उस युग की परिस्थितियों की परिचायक दो कथाएँ उपन्यास में आयी हैं—१—महन्त अचलपुरी और गुसाँई-समाज २—सागर-राज्य से पिंडारियों की शत्रुता। उस काल में गुसाँई सैनिकों के समूह पराक्रम-विकास और धनोपार्जन की लालसा से देश के मध्य भाग में घूमा करते थे। गुसाँई-समाज का महन्त अचलपुरी वर्मा जी की ननसाल, सिधौरा [टीकमगढ़] के एक महन्त का प्रतिबिम्ब है। और, पिंडारियों की इतिहास प्रसिद्ध लूटमार और अत्याचार सर्वविदित है ही।

अचल मेरा कोई

कुन्ती नयी रोशनी की युवती है, नारी-स्वतंत्र्य की दावेदार। पति सुधाकर उसे अचल से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने से रोकता है। मानिनी कुन्ती आत्म-हत्या कर लेती है और लिखा छोड़ जाती है, 'अचल मेरा कोई—' आगे वह लिख नहीं पाती। यही 'अचल मेरा कोई—' की मुख्य कथा है। नवयुवक मित्र अचल और सुधाकर, जो राजनीतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में बन्दी थे, जेल से मुक्त किये जाते हैं। उनसे परिचित युवतियाँ कुन्ती तथा निशा जेल से बाहर उनका स्वागत करती हैं। कुन्ती अचल से संगीत सीखने उसके घर आती है। कुन्ती और अचल में सामीप्य बढ़ता है किंतु दोनों में स्पष्ट रूप से कोई बात नहीं होती। कुन्ती का विवाह सुधाकर से पक्का हो जाता है। कुन्ती के सुधाकर से विवाह पक्का हो जाने के समाचार से अचल अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। कुन्ती उसके प्रेम को लक्ष्य कर अचल से ही विवाह करने का निश्चय प्रकट करती है। किन्तु संतुलित बुद्धि और दृढ़ निश्चय वाला अचल सुधाकर और कुन्ती के मध्य में न आने का निश्चय कर स्थिर हो जाता है। कुन्ती अपने भावों को जैसे-तैसे समेट कर लौट जाती है।

कुन्ती और सुधाकर का विवाह हो जाने पर दोनों में प्रेम का तीव्र ज्वार उठता है। सुधाकर कुन्ती पर प्रेम की वर्षा करता है। उसे अपने मित्रों के क्लब में होने वाले नाटक में भाग लेने देता है। कुन्ती बन्दूक भी चलाना सीखती है। सुधाकर की एक मात्र बड़ी-बूढ़ी उसकी बूआ को कुन्ती के ये लक्षण और स्वतन्त्रतापूर्वक घूमना-फिरना फूटी आँख नहीं सुहाते। नित्यप्रति बूआ और कुन्ती में कहा-सुनी होने पर घर का वातावरण क्लेशमय हो उठता

है। उधर कुन्ती और सुधाकर के जीवन में संयम के अभाव के फलस्वरूप दोनों की वासना की आँधी थम जाने पर आपस का आकर्षण विदा लेने लगता है। एक दूसरे से ऊब उठते हैं। कुन्ती उस वर्ष बी० ए० की परीक्षा देने का निश्चय कर संगीत सीखने के लिये अचल के पास जाने लगती है। कुन्ती तथा सुधाकर के मध्य दिन-प्रतिदिन खाई बढ़ती जाती है। कुन्ती विधवा निशा से अचल का आग्रहपूर्वक विवाह करा देती है।

कुन्ती के निरन्तर घर से अनुपस्थित रह कर अचल के पास उठने बैठने तथा अपनी बूआ और नौकरानी के तत्सम्बन्धी उलाहनों से ऊब कर सुधाकर कुन्ती का नियन्त्रण करने का निश्चय करता है। वह अनशन कर कुन्ती से भविष्य में कहीं न जाने का प्रण कराता है। कुन्ती और सुधाकर दोनों नारी-स्वातन्त्र्य के प्रारम्भ से दावेदार थे। कुन्ती को यह प्रण स्वाभिमान, चरित्र और अपने नारीत्व पर प्रहार के समान लगता है। अनबन और असन्तोष चरम सीमा पर आ पहुंचते हैं। कुन्ती बन्दूक की गोली से आत्महत्या कर लेती है। पास में उसका लिखा एक कागज था, 'अचल मेरा कोई—' आगे हाथ काँप गया था, केवल एक बिगड़ी हुई लकीर थी।

२—दूसरी कथा है निशा के विवाह, वैधव्य और अचल से पुनर्विवाह की। निशा कुन्ती के साथ अचल और सुधाकर के जेल से मुक्त होने पर उसका स्वागत करने जाती है। सुधाकर तथा अचल, दोनों द्वारा स्वयं से विवाह की अस्वीकृति का समाचार सुन निशा एकान्त में एक आह खींचकर रह जाती है। सोचती है, 'मुझ में ऐसी कौन सी कमी है।' उसका विवाह लखनऊ में लवकुमार से हो जाता है। ससुराल से निशा स्वस्थ और सन्तुष्ट लौटती है। उसका दृष्टिकोण संतुलित है। कुन्ती उससे अपनी दशा की तुलना कर असतुष्ट होती है।

साम्प्रदायिक दंगों में निशा के पति लवकुमार की हत्या हो जाती है। कुन्ती अचल से आग्रह कर उसका निशा से विवाह करा देती है। दोनों संतुलित वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं।

३—तीसरी कथा है ग्रामीण पंचम और गिरधारी की देहाती राजनीति की। दोनों क्रमशः मारपीट तथा चोरी के अभियोग में जेल का दण्ड भोगकर सुधाकर, अचल के साथ मुक्ति पाते हैं। गाँव पहुँच कर अपने विरोधी थोबन माते के नाश का संकल्प कर काँग्रेस-सेवादल में भर्ती हो जाते हैं। दोनों काँग्रेस दल में भर्ती हो जाने पर भी हिंसात्मक साधनों को अपनाने का निश्चय करते हैं। थोबन माते से उनकी प्रायः लाग-डाट रहती है। थोबन की पृष्ठपोषिका सरकार थी। नया थानेदार पंचम-गिरधारी के दल के विरुद्ध सूत्र एकत्र करने

के लिए स्त्री पुरुषों पर अत्याचार करता है। अचल के साथ जाकर कुन्ती वीरतापूर्वक स्त्रियों को स्वयं मुक्त करती है। थानेदार की एक नहीं चलती; पंचम आदि ग्रामीणजन, अन्यायियों का बलपूर्वक प्रतिरोध करने का निश्चय करते हैं।

× × ×

(अ) मुख्य कथा कुन्ती, सुधाकर और अचल के प्रेम-त्रिकोण से सम्बन्ध रखती है। कुन्ती के प्रति सुधाकर और अचल दोनों आकृष्ट हैं। दूसरी कथा है निशा की। निशा से विवाह की अस्वीकृति अचल और सुधाकर दोनों प्रकट कर देते हैं। उसका विवाह अन्यत्र हो जाता है किन्तु साम्प्रदायिक दंगों में पति की हत्या हो जाने के फलस्वरूप विधवा के रूप में रंगमंच पर पुनः प्रकट होती है। कुन्ती उसका अचल से विवाह कराती है। ये पति-पत्नी सन्तुलित वैवाहिक जीवन व्यतीत कर परस्पर सन्तुष्ट रहते हैं।

उपन्यासकार इन दोनों कथाओं द्वारा नई रोशनी के युवक, युवतियों की स्त्री-स्वातन्त्र्य सम्बन्धी अधकचरी धारणा तथा उनके असंयमी वैवाहिक जीवन की सन्तुलित और संयमित वैवाहिक जीवन से तुलना करना चाहता है। इन दोनों उदाहरणों को प्रस्तुत करने के लिए उसे घटनाओं और चरित्रों की तोड़ मोड़ करनी पड़ी है। ऐसी घटनायें निम्नलिखित हैं—

१—अचल का स्वय प्रेम-त्रिकोण से अकस्मात् पलायन। कुन्ती सुधाकर से अपना विवाह निश्चित होने पर भी अचल के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है किन्तु अचल सुधाकर और कुन्ती के मार्ग से हट जाने की तुरन्त घोषणा करता है। अचल का कुन्ती के प्रति अपने प्रेम को निरन्तर गुप्त रखना तथा क्षण भर में कुन्ती को त्याग देने का निश्चय उसके चरित्र को असाधारण बना देता है। अचल की यह असाधारणता उपन्यासकार की देन है। वह अचल को उसके पैरों पर चलने न देकर उसकी गति को स्वयं नियन्त्रित करता है। अचल के एकाएक निश्चय के कारण कथा में 'अतिनाटकीयता' आ गई है। उपन्यासकार को सुधाकर और कुन्ती का विवाह करा के उनकी वैवाहिक असफलता को सामने लाना था।

२—निशा के पति लवकुमार की साम्प्रदायिक दंगों में हत्या तथा निशा और अचल के परस्पर विवाह की स्वीकृति की घटनायें बलपूर्वक संजोयी गयी हैं। अचल तथा निशा का विवाह करा उनके संयमित और संतुलित वैवाहिक जीवन का प्रदर्शन करने की धुन में घटनाओं के समुचित विकास के प्रति उपन्यासकार आँखें मूँद लेता है। निशा का आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रण किया गया है किन्तु लवकुमार की हत्या के बाद उसकी अचल से विवाह

करने की तत्परता कथा को अतिनाटकीय और निशा के चरित्र को अस्वाभाविक बना देती है। अचल को भी मानो विधवा निशा से विवाह करा उस जीवन में सन्तुष्ट रहने को विवश किया गया है।

उपन्यास में प्रासंगिक कथा है पंचम और गिरधारी के गाँव में राजनीतिक आन्दोलन की। दोनों अचल तथा सुधाकर के साथ जेल से छूटते हैं। तदोपरान्त गाँव की राजनीतिक सरगर्मी के सम्बन्ध में अचल से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखते हैं। अचल का राजनीतिक दृष्टिकोण तथा तत्सम्बन्धी गतिविधि इन दोनों के सम्पर्क में आने के कारण ही व्यक्त रहते हैं। उपन्यासकार इनके माध्यम द्वारा भारतीय ग्रामीण जन-मन की सूझ-बूझ तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा में उसकी कार्य-प्रणाली का चित्रण करना चाहता है। पंचम और गिरधारी कुन्ती तथा अचल के मध्य ५ वें तथा १२ वें परिच्छेद में पहुँच कर उनकी दृढ़ता और गम्भीरता की कसौटी बन जाते हैं। नये थानेदार के अत्याचारों से त्रस्त उन ग्रामीणों की रक्षा में वीरतापूर्वक भाग लेकर कुन्ती को अपने वीरांगना-स्वरूप को प्रकट करने का अवसर मिलता है। इन सब बिन्दुओं पर मुख्य कथा को इस गौण कथा से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु यह कथा है बिल्कुल स्वतंत्र।

(ब) मुख्य कथा की घटनाएँ कानपुर में बीती थीं। बात सन् १९४५ तथा १९४८ के मध्य की है। कानपुर के एक रईस काँग्रेसी कार्यकर्त्ता थे। उनकी पत्नी ग्रेजुएट थी, स्त्री-स्वातन्त्र्य की दावेदार। उपन्यास में वह रईस, सुधाकर है और उसकी पत्नी, कुन्ती। कुन्ती कुमारावस्था में एक अध्यापक से शिक्षा पाती थी। उसके प्रति कुछ आकृष्ट भी थी। बाद में अध्यापक ने किसी विधवा से विवाह कर लिया था। सुधाकर को कुन्ती के बेरोक-टोक घूमने पर आपत्ति थी। उसने पत्नी को नियंत्रण में लाने के लिये अनशन का साधन अपनाया। बात बढ़ गयी, स्वाभिमानिनी पत्नी ने आत्महत्या कर ली। अध्यापक और उसकी विधवा पत्नी क्रमशः उपन्यास के अचल और निशा हैं। अचल का व्यक्तित्व कल्पित है। साथ ही निशा के विवाह, वैधव्य आदि की घटनाएँ भी कल्पना के आधार पर खड़ी की गयी हैं।

गिरधारी और पंचम की देहाती राजनीति से सम्बन्धित घटनाओं के मूल में झाँसी जिले में यत्र-तत्र दीख पड़ने वाली हलचलें हैं।

मृगनयनी

१—मृगनयनी की कथा है निन्नी—मृगनयनी—के असाधारण प्रतिभाशील व्यक्तित्व तथा उसके और राजा मानसिंह के सफल वैवाहिक जीवन की। राई

सोना

१—'सोना' की मुख्य कथा है सोना और चम्पत के असफल प्रेम, सोना के राजा धुरन्धरसिंह से विवाह तथा दोनों के कृत्रिम जीवन की। सोना और चम्पत परस्पर आकृष्ट हैं। सोना की बहिन रूपा उससे ईर्ष्या करती है। दोनों बहिनें आपस में लड़ती हैं। रूपा का विवाह अनूपसिंह, निर्धन युवक से हो जाता है और सोना का विवाह लंगड़े विधुर राजा धुरन्धरसिंह से होता है। विवाह के अवसर पर आयोजित नृत्य गान के समारोह में सोना का निराश प्रेमी चम्पत मर्मस्पर्शी करुण गान प्रस्तुत करता है। वह राई मंडली में सम्मिलित हो जाता है।

सोना का चित्त प्रौढ़, निर्जीव पति से घूमकर हीरे जवाहरात तथा भूषणों की पिपासा पर केन्द्रित हो जाता है। राजा आलसी है, उत्साहरहित। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। लालों का हार बनवाने के लिए धन की प्राप्ति के हेतु सोना चीलों को नित्य मंगोड़े खिलाने का अनुष्ठान करती है। हार बन जाता है किंतु सोना द्वारा पति से हीरों के आभूषणों की माँग बनी रहती है। आयवृद्धि के लिये राजा दूधई गांव में मेले का आयोजन करता है। वहाँ भी सोना अपने अनुष्ठान का क्रम अखण्ड रखती है। मेले में सम्पत की मंडली नृत्य, गान प्रस्तुत करती है।

सोना का टँगा हुआ हार एक चील उड़ा कर ले जाती है। चील से प्राप्त कर हार सोना को भेंट करने के ब्याज उससे दो बातें करने का इच्छुक चम्पत हार की खोज में चल पड़ता है। इस प्रयत्न में उसे सफलता नहीं प्रत्युत अपमान मिलता है। मेले में राजा को विशेष आय नहीं होती। सोना की सुन्दर अलंकारों और वस्त्रों की पिपासा बढ़ चलती है। धन-प्राप्ति के लिए राजा स्वयं उलूक-पूजा के अनुष्ठान का प्रारम्भ करता है। उधर निराश चम्पत की सनक बढ़ जाती है। वह गेरुए वस्त्र धारण कर भौहें मुड़ा लेता है।

राजा सोना का ध्यान अलंकार, वस्त्रों से हटाने के लिए एक मन्दिर का निर्माण-कार्य प्रारम्भ करता है। घर में धन की समाप्ति पर किसी मन्दिर में श्रम करने की प्रेरणा होने से रूपा गुप्त रूप से राजा धुरन्धर सिंह के मन्दिर में मजदूरिन के रूप में कार्य करती है। दशहरे के अवसर पर चम्पत का महल में अभिनय और गान होता है। सोना पर चम्पत अपने चिर प्रेम को अभिव्यक्त करता है किन्तु प्रत्युत्तर में उसे मिलती है अवहेलना। राजा बगीचे में घिरी रूपा को प्रलोभन दे वासनापूर्ति का प्रयत्न करता है किन्तु चम्पत की सूचना पर सोना के एकाएक वहाँ पहुँच जाने से रूपा की वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। राजा की वासना पूरी नहीं हो पाती। राजा चम्पत की

भर्त्सना कर उसे राज्य से भगा देता है। अनूप रूपा को लेने राजमहल आता है। वह सोना और राजा को धनप्राप्ति के लिए अनुष्ठानों के भ्रम से मुक्त हो श्रम करने की सम्मति देता है।

२—दूसरी कथा है रूपा और अनूपसिंह के विवाहित जीवन तथा उनके द्वारा श्रम के महत्व को स्वीकार करने की। रूपा का विवाह हँसमुख निर्धन युवक अनूपसिंह से हो जाता है। अनूप परिहासप्रिय होने के कारण गाँव वालों को नित नयी शरारतों द्वारा हँसाता, चिढ़ाता रहता है। उसकी शरारतों के दण्ड-स्वरूप गाँव वाले उसके घर के सामने अपने घरों का कूड़ा-कचरा एकत्र कर देते हैं। सोना का हार चील कूड़े के ढेर पर छोड़ वहाँ पड़ा मृत सर्प उठा ले जाती है। रूपा हार को उठा उसे रात्रि को मानिक के रूप में सजाये राजा के पास ले जाती है। हार की ठोह में लगा हुआ चम्पत उसे मार्ग में से उड़ा ले जाता है किंतु हार की खोज का श्रेय रूपा को मिलता है। पुरस्कारस्वरूप रूपा राजा से दीपावली की रात्रि को अपने गृह के अतिरिक्त सर्वत्र अंधकार रखने की आज्ञा प्राप्त करती है। दीपावली को एक मात्र रूपा, अनूप के घर में लक्ष्मी-पूजन होता है। उसी रात्रि गृह के आंगन की खुदाई में सोने, चाँदी तथा हीरे जवाहरात के घड़े निकलते हैं।

अनूप और रूपा का वैभव चोटी पर जा पहुँचता है। अनूप में अहंकार आने पर उसका हँसमुख स्वभाव उससे विदा ले जाता है। बुद्धिमती रूपा निरन्तर स्वच्छन्द तथा सादे जीवन के पालन पर बल देती रहती है किन्तु माया के चमत्कार से भ्रमित, मिथ्याभिमानी अनूप उसकी एक नहीं सुनता। सोने चाँदी के घड़े चुक जाते हैं और हीरे जवाहरात कृत्रिम सिद्ध होते हैं। दोनों की आर्थिक चिन्ता बढ़ती है। रूपा को दीपक स्वप्न में श्रम का महत्व बताता है। उसे परिवार में समृद्धि स्थापित रखने के लिये किसी मन्दिर के निर्माणकार्य में एक पखवारे के लिये गारा चूना ढोने का आदेश देता है। रूपा चुपचाप घर से पलायन कर देवगढ़ में बन रहे राजा धुरन्धरसिंह के मन्दिर में गारा-चूना ढोने का कार्य करती है। वहाँ चम्पत और राजा दोनों उसे अपने कुचक्र में लाना चाहते हैं। अन्त में सोना के ठीक समय पर आ पहुँचने के कारण रूपा राजा के चंगुल से छुटकारा प्राप्त करती है। अनूपसिंह उसे घर ले जाता है। वह अनूप को विश्वास दिलाती है, 'लक्ष्मी जी का वरदान तुम्हारे जैसों की हँसी और मेरी जैसियों की मिहनत से ही मिल सकता है।'

× × ×

(अ) उपन्यास में दो कथायें परस्पर कन्धा भिड़ाकर चलती हैं, सोना

और रूपा की। सोना का राजा धुरन्धरसिंह से विवाह होने के बाद उसकी गहनों तथा हीरे जवाहरात की पिपासा के फलस्वरूप दोनों के उत्साहरहित कृत्रिम जीवन की कथा प्रमुख है। दोनों की दृष्टि में शारीरिक श्रम या उद्योग का कोई महत्त्व नहीं है। राजा तथा सोना की पिपासित, उत्साहरहित, उद्योगविहीन जीवनचर्या के साथ रूपा तथा अनूपसिंह के क्रियात्मक जीवन का विकास होता चलता है। रूपा विवाह कर अनूप के घर पहुंचने पर उसे जीविकोपार्जन के हेतु श्रम करने के लिये निरन्तर प्रोत्साहित करती है। दोनों घर में कहीं गड़े गुप्तधन की खोज में ज़मीन की खुदाई और लक्ष्मीपूजन का कार्य प्रारम्भ करते हैं। यहाँ तक यह प्रासंगिक कथा मुख्यकथा से अलग चलती है।

चील द्वारा सोना का हार अनूप के घर पर डाले जाने के पश्चात् रूपा के हार को राजा के पास ले जाने तथा मार्ग में हार को चम्पत द्वारा उड़ा ले जाने के फलस्वरूप रूपा और सोना की कथायें इस स्थल पर आ मिलती हैं। दोनों, रूपा-अनूप, सोना तथा राजा से होड़ लेने के लिये शृङ्गार तथा वैभव के भाँति-भाँति के साधन जुटाते हैं। धन चुकने को होता है किन्तु अनूप के नेत्रों से भ्रम का पर्दा नहीं हटता। इस प्रश्न पर रूपा का अनूप से तीव्र मतभेद होता है। रूपा को स्वप्न में दीर्घ शारीरिक श्रम का महत्त्व बताकर किसी मन्दिर के निर्माण-कार्य में शरीर से योग देने का आदेश देता है। यहाँ तक प्रासंगिक कथा फिर स्वतन्त्र रूप से चलती है।

रूपा देवगढ़ में राजा के मंदिर पर सोना गारा ढोने का कार्य करती है। राजा षड्यंत्र रचकर उसे अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाना चाहता है। उस अवसर पर सोना एकाएक प्रकट होकर रूपा को राजा के कामुक पाश से मुक्त करती है। अन्त में यहाँ दोनों कथाओं का पुनः संगम हो जाता है। रूपा की कथा प्रासंगिक होते हुए भी कलेवर में सोना की कथा की अपेक्षा अधिक विशाल है। यह ३३ परिच्छेदों में फैली हुई है जबकि सोना की कथा केवल २५ परिच्छेदों में है। १६ वें परिच्छेद से लेकर प्रायः अन्त तक रूपा की कथा उपन्यास में प्रमुख स्थान ग्रहण किये रहती है।

(ब) 'सोना' में उत्तरी भारत में दीपावली की रात्रि को लक्ष्मी-साधना से सम्बन्धित कही जाने वाली कथा का उपयोग किया गया है। यह लोक-कथा थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ सर्वत्र कही-सुनी जाती है। कथा-सूत्र इस प्रकार है। एक साहूकार की पुत्री ऊँचे महल में रहने वाले निर्धन के पुत्र को विवाह दी जाती है। पुत्री विवाह में मिला दान-दहेज पिता को वापिस करा देती है और ससुराल में भोजन के हेतु जलने वाले आठ चूल्हों

में केवल एक रहने देती है। उसी चूल्हे पर सबका सम्मिलित भोजन बनता है। वह अपने श्वसुर को मार्ग में पड़े मृत सर्प आदि को लाकर छत पर डालने की बात सुझाती है। छत पर पड़े ऐसे ही एक साँप को उठा ले जाते समय चील रानी का बहुमूल्य हार छत पर छोड़ जाती है। हार रानी को पहुँचा दिया जाता है। पुरस्कार के रूप में साहूकार की पुत्री— निर्धन की पुत्रवधू राजा से दिवाली का दिया माँग लेती है अर्थात् दीपावली की रात्रि को राज्य भर में निर्धन के महल को छोड़कर सर्वत्र अंधकार रहे। दीपावली की रात्रि को चारों ओर के अंधकार से विचलित हो निर्धन के आलोकित महल में प्रवेश पाने के लिये लक्ष्मी द्वार खटखटाती है। गृहवधू चंचला लक्ष्मी से महल में सदैव निवास का वचन लेकर ही उसे प्रविष्ट होने देती है। इस लोककथा में कर्मठता और बुद्धिमत्ता के चमत्कार का उद्घाटन है। ब्रजलोक कथाओं में दीपावली की कथा का उक्त सूत्र इस प्रकार मिलता है, 'भाट और भाटिनी ने राजा से यह वरदान मांग लिया कि दिवाली के दिन उन्हीं के घर में दीपक जलेगा और किसी के घर नहीं जलेगा। सर्वत्र अंधेरा था केवल भाट के घर में प्रकाश था। लक्ष्मी सर्वत्र अंधकार देखकर भाट के यहाँ आई। भाट ने उसे उस समय तक घर में नहीं प्रवेश करने दिया जब तक कि लक्ष्मी ने यह वचन न दिया कि वह उनके घर जीवन-पर्यन्त रहेगी।'[1]

वर्मा जी ने रूपा-अनूप की कथा में उक्त लोककथा का प्रयोग किया है। उनकी पुनः निर्धनता तथा रूपा की मज़दूरी का प्रसंग शारीरिक श्रम के महत्त्व को स्पष्ट करने के हेतु रखा है। चम्पत का असफल प्रणय कल्पित है और सोना तथा राजा धुरन्धर की कथा रूपा-अनूप की कथा को प्रभावशाली बनाने के लिये तुलना में रखी गयी है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यहाँ लोक-कथासुलभ दैवीतत्त्व को हटाकर घटनाओं को मनोविज्ञानसम्मत, स्वाभाविक रूप प्रदान किया गया है।

अमरबेल

१—अनीति से धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति समाज में घुन की भाँति लगे हुए हैं जैसे हरे-भरे पेड़ पर अमरबेल। ज़मीदार देशराज, उसकी प्रेयसी अंजना, नाहरगढ़ के राजा बाघराज तथा डाकू कालीसिंह के अफ़ीम के अवैध व्यापार तथा उनके पराभव की कहानी 'अमरबेल' की मुख्य कथा है। सुहाना और बांगुर्दन गाँवों का ज़मीदार, देशराज ज़मींदारी-उन्मूलन के बाद अपनी प्रेयसी

---

१. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन (डा० सत्येन्द्र) ...पृ० ४६०

अंजना सहित अफ़ीम के अवैध व्यापार में लग जाता है। वे अफ़ीम एकत्र कर नाहरगढ़ के बाघराज के हाथों बेचते हैं। अफीम विदेश भेजने के लिए बन्दरगाह तक उसे पहुँचाने में डाकू कालीसिंह बाघराज की सहायता करता है। देशराज के पुराने ज़मीदारी ढंगों के विरुद्ध गाँव के कार्यकर्तागण सक्रिय आन्दोलन छेड़ते हैं; वह अपनी प्रभाव-वृद्धि के लिए सुहाना की सहकारी समिति का प्रधान-पद ग्रहण करता है किन्तु उस योजना के लिये उसके हृदय में कोई स्थान नहीं है।

देशराज तथा अंजना अफीम एकत्र करने के लिये लखनऊ, बनारस आदि शहरों मे अनेक रूप धारण कर प्रपंच रचते, पुलिस की आँखों मे धूल झोंकते यात्रा करते हैं। पराभव प्रारम्भ होता है। बन्दरगाह पर बाघराज द्वारा भेजी गयी अफीम की दो पेटियाँ पकड़ी जाती हैं। मार्ग में अंजना की अफ़ीम की पेटियाँ पुलिस द्वारा पकड़ी जाती है। वह जैसे तैसे बचकर निकल पाती है। बाघराज एक संगीत सम्मेलन का आयोजन कर उसमें अनेक गायिकाओं को एकत्र करता है। वहाँ अंजना और देशराज भी आमंत्रित होते थे। रात्रि में वापिसी के समय बाघराज के संकेत पर कालीसिंह उन सब को लूट लेता है। दुखी और क्रुद्ध देशराज गाँव आकर पुलिस को सारा हाल बता देता है। बाघराज को अवैध अफ़ीम के व्यापार और डाकुओं से सम्बन्ध रखने के अभियोग में लम्बी सजा होती है। संतप्त देशराज छलिनी, मायाविनी अंजना का साथ छोड़ देता है। डाकू कालीसिंह देशराज से वैर चुकाने के लिये रात्रिको आक्रमण कर उसे घर में जला देने का प्रयत्न करता है। गाँव के कार्यकर्ताओं तथा रक्षकदल के पराक्रम के फलस्वरूप कालीसिंह मारा जाता है और उसका दल छिन्न-भिन्न हो जाता है। देशराज मे घोर परिवर्तन होता है वह गाँव के निर्माण-कार्य में हृदय से योग देने का निश्चय करता है।

२—दूसरी कथा है गाँव में सहकारिता-आन्दोलन के क्रमशः पनपने तथा उत्साही कार्यकर्त्ताओं, टहलराम तथा डा० सनेहीलाल, के अनवरत उद्योग की। टहल पढ़ा-लिखा उत्साही कार्यकर्त्ता है। डाक्टरी पास करके सेवा के ध्येय से गाँव मे बस जाने वाला सनेहीलाल भी सहकारिता-आन्दोलन द्वारा गाँवों के रूप को बदलने वाले कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में से है।

टहल देशराज की ग्रामीणों के प्रति कुटिल नीति के विरोध में जलूस निकलवाता है; समय-समय पर उनका तीव्र विरोध करता रहता है। सुहाना गाँव की सहकारी समिति की स्थापना तथा संचालन में अटल का मुख्य हाथ है। डाकू कालीसिंह टहल तथा उसके सहयोगी बटोले पर रात्रि में आक्रमण करता है। टहल की जाँघ में गोली लगती है। उसकी परिचर्या के हेतु डा०

सनेहीलाल अपनी पत्नी सहित जिले के अस्पताल में रहता है। अटल और सनेही में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

गाँव में रक्षक दल की स्थापना होती है। श्रमदान से नहर खोदी जाती है, खादर वाली भूमि मिट्टी भरकर समतल की जाती है। सनेही स्वयं को इस सब प्रगति का कर्णधार समझ अहंकार से भर उठता है। उसका टहल से वैमनस्य बढ़ता है किन्तु यह भाव परस्पर के स्नेह के कारण अधिक टिक नहीं पाता। सनेही अहंकार त्याग देता है। गाँव समृद्धशाली होता है। पंचायत के चुनाव में समाज विरोधी तत्व मुँह की खाते हैं। कालीसिंह द्वारा टहल और देशराज के घर पर आक्रमण के समय गाँव का रक्षकदल और सनेहीलाल अत्यन्त वीरतापूर्वक टक्कर लेते हैं। सनेहीलाल टहलराम का विधवा हरको से विवाह कराता है।

३—तीसरी कथा है गाँव में फैले घातक समाज-विरोधी तत्वों की। धूर्त स्वार्थी बनमाली तथाकथित नेता है। वह महत्वाकांक्षा, आत्महीनता तथा हीनता की भावना से ग्रस्त है। देशराज-विरोधी जलूस में वह तनिक भाग लेता है फिर देशराज से सन्धि कर उसकी पड़ती का एक भाग अपने नाम करा लेता है। पड़ती के वास्तविक अधिकारियों से मारपीट और मुकदमेबाजी होती है। छदामी चमार को वोट पाने के लोभ में वह पन्द्रह रुपये उधार देता है। एक अन्य अवसर पर छदामी को अपने भूसे की चोरी करते पकड़ उससे पच्चीस रुपये के ऋण तथा भूसे की चोरी का इकबाली बयान लिखाता है तथा आने वाले चुनाव में उससे अपने तथा अपने प्रभाव के सब लोगों को वोट देने के वचन का अँगूठा कागज पर लगवाता है। बनमाली समय-समय पर गाँव की सहकारी समिति में अपना प्रभाव बढ़ाने तथा उसकी प्रगति में रोड़े अटकाने के प्रयत्न करता रहता है। पंचायत-चुनाव में प्रयत्न करने पर भी उसे असफलता मिलती है।

धरनीधर महाजन है। दो पैसा, रुपया ब्याज पर ऋण देता है, समाज-सुधारक होने का दावा भरता है। देशराज का वह चिर विरोधी है। अंजना और देशराज कालीसिंह द्वारा उसके यहाँ डाका डलवाकर वैर चुकाते हैं। वह लाभार्जन के साथ गाँव का नेता बनना चाहता है किन्तु जनसेवा की भावना उसे छूकर नहीं गयी है। सहकारिता-आन्दोलन से उसे कोई सहानुभूति नहीं है। जनता से उसकी स्वार्थपरता छिपी नहीं रहती। वह गाँव पंचायत के चुनावों में पराजित होता है।

किसान विक्रम जमींदार की चापलूसी, छल कपट तथा डाकुओं से मेल-जोल में विश्वास रखता है। वह बनमाली के साथ दूसरों की पड़ती अपने

नाम लिखाकर देशराज के षड्यंत्र में भाग लेता है । मारपीट होती है मुकदमा चलता है । फसल के दिनों में वह अपने मवेशियों को दूसरों के खेत में 'पसर' चराता है । बटोले उसकी इस नीचता पर उसे बुरी तरह पीटता है । बटोले तथा उसके सहायक टहलरामसे वैर चुकाने के लिये वह डाकू कालीसिंह को दोनों के यहाँ डाका डालने के लिये आमंत्रित करता है । पुलिस की हवालात से भागे हुए विद्यार्थी जनकलाल को घर पर भोजन के लिए निमन्त्रित कर उसे छल से पुलिस के हवाले कर पुरस्कार पाने की योजना बनाता है । अन्त में भी सहकारी समिति के विरुद्ध दमरू को उभारता है ।

४—चौथी कथा है उद्दण्ड उत्साही विद्यार्थी जनकलाल के सुधार की । जनकलाल टहल के प्रिय विद्यार्थियों में से है, स्वभाव से उद्दण्ड तथा जनकार्य में भाग लेने के कारण अहंकारी । गाँव के तालाब की मरम्मत कराने वाले ठेकेदार से मारपीट कर बैठता है । बीच में आये पुलिस के सिपाहियों को भी नहीं छोड़ता। पुलिस उसे गिरफ्तार कर सदर ले जाती है । वहाँ मार्ग में उन्हें धोखा देकर भाग जाता है । सरकार उसे पकड़ाने वाले को सौ रुपये पुरस्कार में देने की घोषणा करती है । भूख-प्यास और निरन्तर आशंका से ऊबकर जनक पुलिस के हाथों समर्पण करने का निश्चय करता है । वह जेल भुगते हुए दमरू को पुरस्कार में सौ रुपये दिलवाने के लिये उसे साथ लेकर गाँव की पुलिस चौकी पर जा पहुँचता है । मुकदमे के उपरान्त छूटने पर जनक में घोर परिवर्तन आता है । अंहकार और उद्दण्डता उससे विदा ले जाते हैं । वह टहल और सनेही के नेतृत्व में उत्साहपूर्वक गाँव के विकास-कार्य में भाग लेता है ।

५—पाँचवीं कथा है हरको पर उसके पति जोधा के अत्याचार तथा हरको के टहल से पुनर्विवाह की । मंद्द की बहन हरको—हरि कुंवरि—की ससुराल में नहीं पटती । वह प्रायः अपने भाई के पास सुहाना में रहती है । गाँव की स्त्रियाँ उस पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा करने से नहीं चूकती किन्तु हरको चित्त नहीं गिराती । एक बार हरको का पति जोधा उसे बलपूर्वक अपने घर ले जाता है । ससुराल में जेठानी, सास और पति के अत्याचार से पीड़ित हो वह घर भाग आती है । देशराज के खेत पर काम करते हुए दमरू के हाथों हरको का पति जोधा मार खाकर प्राण त्याग देता है । जोधा की मृत्यु पर हरको द्वारा उसके क्रियाकर्म में पूर्णतया भाग न लेने के दण्डस्वरूप मंद्द को जाति को पंगत देनी होती है । हरको टहल की रात्रि-पाठशाला में उत्साहपूर्वक अध्ययन के लिए आती है । दोनों में परस्पर आकर्षण का उदय होता है । सलूनों के उत्सव पर डा० सनेहीलाल दोनों का गठबन्धन स्वयं करता है ।

× × ×

[अ] 'अमरबेल' की मुख्य कथा अफ़ीम के अवैध व्यापार से सम्बन्ध रखती है। दुर्जनों की पारस्परिक प्रीति केवल स्वार्थ के आधार पर होती है। सामने अन्य लक्ष्य न रहने पर वे एक दूसरे को ही अपनी दुष्टता का ग्रास बनाते है। व्यापार में असफलता मिलने पर बाघराज देशराज, अंजना को लुटवाता है। दुर्जनों के परस्पर प्रहार की इस घटना पर आकर कथा की चरम परिणति हो जाती है। देशराज पुलिस के समक्ष बाघराज का भेद खोल देता है। बाघराज को सजा होती है, देशराज सुधरता है, अंजना की योजना छिन्न-भिन्न हो जाती है और देशराज मे प्रतिशोध की धुन में कालीसिंह डाकू मारा जाता है।

प्रासंगिक कथा है उत्साही कार्यकर्त्ताओं टहलराम तथा सनेहीलाल के उद्योग से गाँव में सहकारिता आन्दोलन के पनपने की। देशराज अपने गाँव बाँगुर्दन की सहकारी समिति का प्रधान चुना जाता है और उसके कार्य में प्रदर्शन मात्र के लिए साथ भी देता है। सनेहीलाल और सहकारिता का अधिकारी राघवन, समय-समय पर उसे इस दिशा में आकृष्ट करते है। कालीसिंह द्वारा देशराज के घर में आग लगा कर उसे वहीं जला डालने के प्रयास को असफल बनाने में सनेहीलाल आदि कार्यकर्त्ताओं का प्रमुख हाथ है। अन्त में देशराज अपनी कुटिलता और मृगतृष्णा को छोड़कर उन्ही के मार्ग पर आ लगता है।

गाँव मे सहकारिता आन्दोलन छिड़ता है किन्तु टहल और सनेही का कार्यक्षेत्र दूर-दूर रहता है उन्हे समीप लाने तथा उनके आन्दोलन में अपेक्षाकृत अधिक गति लाने का उत्तरदायी विक्रम है। विक्रम के इङ्गित पर कालीसिंह डाका डालता है। मुठभेड़ में टहल घायल हो जाता है। टहल की सेवा-शुश्रूषा के सिलसिले मे सनेही उसके समीप आता है। दोनों ग्रामसुधार-कार्य में उत्साहपूर्वक जुट जाते है। सनेही के अहंकार के कारण दोनों में तनाव उत्पन्न हो जाता है किन्तु जनकलाल की घटना के कारण वे पुनः समीप आ जाते है।

बनमाली, धरनीधर तथा विक्रम समाज विरोधी तत्वों की कथायें मुख्य तथा प्रासङ्गिक कथा मे प्रकरी का कार्य करती हैं। जनकलाल उत्साही कर्मठ विद्यार्थियों की उद्दण्डता का परिचायक है। वह सहकारिता आन्दोलन का उत्साही कार्यकर्त्ता है। उसके स्वभाव के परिष्कार की घटना प्रासङ्गिक कथा में खपती है।

हरको और उसके अत्याचारी पति जोधा की कथा अन्य कथाओं से बचकर चलती है। हरको अपनी ससुराल तथा पति के अत्याचारों से त्रस्त है। जोधा की मृत्यु के बाद उसका टहल से विवाह हो जाता है। इस कथा के द्वारा ग्रामीण स्त्रियों पर ससुराल में किये गये अत्याचारों का चित्रण किया गया है। साथ ही उपन्यास के अन्त में ग्रामसुधार-आन्दोलन की सफलता तथा मङ्गलपूर्ण अन्त के प्रतीकस्वरूप टहल तथा हरको का विवाह कराया गया है।

(ब) मुख्य कथा का सम्बन्ध अफीम के अवैध व्यापार से है। देशराज का वास्तविक स्वरूप अनपढ़ था। उससे सम्बन्धित कुछ घटनायें झाँसी जिले के दरौना, नैनवारा गाँवों में घटित हुई थीं। इन ही गाँवों में उपन्यास के सहकारिता आन्दोलन का बहुत कुछ रूप देखने में आया था। अंजना सम्बन्धी घटनायें कल्पित हैं। कालीसिंह झाँसी जिले के कुख्यात डाकू देवीसिंह का प्रतिबिम्ब है। कालीसिंह की मृत्यु दिखाई गयी है किन्तु देवीसिंह अभी जीवित है। राजा बाघराज द्वारा कलाकारों को मार्ग में लुटवाने की घटना मध्यभारत की है।

टहल और सनेहीलाल की कथा कल्पित है। समाज-विरोधी तत्त्व बनमाली धरनीधर तथा विक्रम के चरित्र झाँसी जिले के विभिन्न ग्रामों से संचित हैं। उद्दण्ड विद्यार्थी जनकलाल की कथा भी अन्यत्र की है। हरको-जोधा की कथा झाँसी जिले के अन्य गाँव की है। हरको की पति से नहीं बनती थी। पति ने उसको छोड़ दिया था। हरको को घर पर शान्ति नहीं मिली। अन्त में वह पति के घर पहुँच गई। उपन्यास में हरको, जोधा के मनमुटाव के बाद जोधा की हत्या तथा हरको के टहल से पुनर्विवाह की कल्पना की गई है।

टूटे काँटे

१—सुन्दरी नर्तकी तूरबाई सैनिक मोहन की सहायता से शाही दरबार के अस्वस्थ घृणित वातावरण से मुक्ति पाती है। तूरबाई द्वारा हृदय में टूटे काँटे जैसे कसकती हुई जीवन की मनधारा को नया मोड़ देने की कहानी 'टूटे काँटे' की मुख्य कथा है। फतहपुर सीकरी का किसान मोहनलाल अपने दारिद्रय, शासन के अत्याचार और पत्नी के कर्कश व्यवहार से ऊबकर मुगल बादशाह मुहम्मदशाह के मीर बख्शी सादतखाँ की सेना में भर्ती हो जाता है। कुछ दिन मराठा सेना में रहकर शाही दस्ते के सिपाही के रूप में दिल्ली रहता है। अपनी पत्नी रोनी और भाई लोना के साथ भरतपुर चले जाने का

समाचार प्राप्त कर निराश-हृदय मोहन सब कुछ छोड़ जीवन के शेष दिन मथुरा, वृन्दावन में व्यतीत करने का निश्चय करता है।

नादिरशाह के भारत पर आक्रमण तथा धन की भारी माँग पर मुगलशाह मुहम्मदशाह उसे नर्तकी नूरबाई भेंट करके विपत्ति टालने का विफल प्रयत्न करता है। नूरबाई नादिरशाह के साथ ईरान नहीं जाना चाहती। वह एक दासी के साथ क़िले से निकल भागती है। पहरे पर मोहन मिलता है। दोनों अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए मथुरा, वृन्दावन में जा बसने के लिये चल पड़ते हैं। वे पति-पत्नी के रूप में एक गाँव में चिन्तामन नामक जाट के यहाँ जा ठहरते हैं। चिन्तामन लुटेरों का सरदार है। वह मराठा राजदूत के दल पर छापा मार शुबराती नामक घायल मराठा सिपाही को पकड़ लाता है। शुबराती मोहन का मित्र था। मोहन नूरबाई के धन से चिन्तामन को हर्जाना दे शुबराती को मुक्त कराता है। मोहन, नूरबाई घायल शुबराती को बैलगाड़ी में लेकर मथुरा के लिये प्रस्थान करते हैं। मार्ग में चिन्तामन दलसहित मोहन पर आक्रमण करता है। नूरबाई कमर में बंधी जवाहरात की थैली लुटेरों के सामने फेंक मोहन की रक्षा करती है। उसके हृदय में नर्तकी के घृणित व्यवसाय द्वारा अर्जित उस धनराशि के प्रति कोई मोह नहीं रह गया है। वृन्दावन में मोहन तथा नूर एक पंडे के यहाँ जा ठहरते हैं। दोनों मन्दिरों का दर्शन कर कन्हैया के प्रेम में डूब जाते हैं। वृन्दावन में भ्रमणार्थ आये हुए तोता और रोनी भी उन्हें वहाँ आ मिलते हैं। रोनी अपनी कर्कशता तथा दुर्व्यवहार के लिये मोहन से क्षमा माँगती है और उसके साथ रहती है।

मोहन वृन्दावन में घर बसा लेता है। वह अपने साथियों का संग्रह कर एक रात्रि में चिन्तामन जाट को जा घेरता है और नूरबाई के जवाहरात की थैली वापिस ले आता है। दूसरे दिन यमुना के किनारे एकान्त में मोहन एक हीरा नूरबाई के बालों में लगा देता है। नूरबाई अपने हृदय में टूटे कांटे से कसकते गत घृणित जीवन के प्रतीक उस हीरे को जल में फेंक उन भूलों का प्रायश्चित्त करती है। उसके तथा मोहन के हृदय में नये जीवन के लिये आशा और उत्साह है।

२—दूसरी कथा है मोहन की विवाहिता पत्नी कर्कशा रोनी की। रोनी अपने पति मोहन तथा नाते के देवर तोता से अत्यन्त कर्कश व्यवहार करती है। सतत मोहन घर छोड़ कर चला जाता है। मोहन की मृत्यु का कल्पित समाचार मिलने पर रोनी तोता सहित भरतपुर में एक जाट के यहाँ जा ठहरती है। वहाँ रोनी का तोता के प्रति स्नेह बढ़ता है। उसकी धनलोलुपता से विवश हो तोता डाके तथा बटमारी के कार्य में प्रवृत्त होता है।

जीवित मोहन के जहाँ-तहाँ से समाचार प्राप्त कर दोनों उसके प्रेत के अस्तित्व की कल्पना कर अत्यन्त चिन्तित होते हैं। मथुरा, वृन्दावन के दर्शन कर मोहन के प्रेत को शान्ति प्रदान कर ही वे आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय करते हैं। वृन्दावन में मोहन से भेंट होने पर रोनी का पूर्व निश्चय बदल जाता है। वह मोहन के पास रहती है और अपने कर्कश स्वभाव को नम्र बनाने का भरसक प्रयत्न करती है।

३—तीसरी कथा है मराठा सैनिक शुबराती की। युद्ध की मारकाट में सम्पर्क होने पर मोहन तथा शुबराती की अभिन्न मैत्री स्थापित हो जाती है। सतारा पहुँचकर शुबराती मोहन को अपने घर ले जाता है। वहाँ वह मोहन को कर्कशा पत्नियों को सुधारने की एक अत्यन्त विनोदपूर्ण विधि बताता है। घर के आंगन में पति अपना काठ का एक पुतला रखदे और अपनी क्रोधी पत्नी को उसमें नित्य पाँच जूते लगाने दे। इसी विधि का प्रयोग शुबराती ने अपनी पत्नी पर करके सफलता पायी थी।

शुबराती मराठे राजदूत के साथ महाराष्ट्र जाते समय मार्ग में चिन्तामन के गिरोह के हाथ पड़ जाने के कारण आहतावस्था में चिन्तामन के घर पर मोहन से जा मिलता है। मोहन उसे चिन्तामन के बंधन से छुड़ा कर वृन्दावन ले आता है। वृन्दावन में रोनी, नूर और मोहन को एक साथ प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश कर वह दक्षिण चला जाता है।

४—चौथी कथा है सादत खाँ के नूरबाई के प्रति असफल प्रेम और आत्म-हत्या की। सादत नर्तकी नूरबाई पर मुग्ध हो उससे प्रेम करने लगता है। सादतखाँ के धन और प्रेम की वर्षा से नूर सन्तुष्ट नहीं हो पाती। उसकी बादशाह के समक्ष कला-प्रदर्शन की आकांक्षा है। सादतखाँ के न चाहते हुए भी नूर बादशाह के हरम में पहुंच जाती है। शाह से जलभुन कर सादत-खाँ तथा मुगल दरबार के कुछ बिगड़े हुए सरदार ईरान के नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण देते हैं। नादिरशाह मुहम्मदशाह को घेर लेने के बाद सादतखाँ पर बादशाह से 'हर्जाना' के रूप में बीस करोड़ रुपये दिलाने का कड़ा अनुरोध करता है। मुहम्मदशाह नादिर की कृपा प्राप्त करने के लिये नूरबाई के संगीत, नृत्य का विशेष प्रदर्शन कराता है। नादिर उस पर मुग्ध हो नूर को ईरान साथ ले जाने की घोषणा करता है। सभा में उपस्थित सादतखाँ इस घोषणा को सुन क्लेश के कारण अचेत हो जाता है। नादिरशाह के निर्मम हर्जाना सम्बन्धी अनुरोध और नूरबाई के सदैव के बिछोह के दुःख से सादत की पीड़ा चरम सीमा पर आ पहुँचती है। वह छुरी का प्रहार कर आत्म-हत्या कर लेता है।

५—पाँचवाँ कथा है शासन के अयोग्य, विलासी बादशाह मुहम्मदशाह तथा उस पर नादिरशाह के अत्याचार की। मुहम्मदशाह सदैव राग-रंग में मस्त रहता है। शासनप्रबन्ध और प्रजा की रक्षा से उसका कोई सरोकार नहीं है। वह दिल्ली की ओर अग्रसर होते हुए नादिरशाह का प्रतिरोध करने के लिये थानेश्वर की ओर बढ़ता है और अपनी विलासता तथा अकर्मण्यता के कारण उसकी सेना से घिर जाता है। मूर्ख मुहम्मदशाह नादिर को नूरबाई के नृत्य, संगीत में उलझा कर छुटकारा पाना चाहता है। दिल्ली के बाजार के झगड़े के फलस्वरूप क्रुद्ध नादिर सार्वजनिक वध कराता है और मुहम्मदशाह से एक अरब रुपया तथा तख्ततताऊस लेकर ईरान लौट जाता है।

६—छठी कथा है बाजीराव और मस्तानी की। महाराष्ट्र का बाजीराव मुगल साम्राज्य में लूटमार मचाता दिल्ली पर विजय प्राप्त करने बढ़ता है। आक्रमण के फलस्वरूप दिल्ली के केन्द्रीय शासन के उठ जाने पर विदेशियों द्वारा भारतभूमि पद-दलित होने की आशंका से वह अपना निश्चय बदल देता है। बाजीराव की मुसलमान प्रेमिका मस्तानी योद्धावेश में उसके साथ रहती है। बाजीराव की टक्कर निजाम से भूपाल में होती है। निजाम किले में बन्द होकर लड़ता है किन्तु बुरी तरह घिर जाने के कारण उससे सन्धि करता है। पहली पत्नी के कनिष्ट पुत्र के यज्ञोपवीत संस्कार के समय बाजीराव अपनी तथा मस्तानी की उपस्थिति से वहाँ कोई अरुचिकर परिस्थिति खड़ी नहीं करना चाहता। वह निजाम से भिड़ने के लिये पूना से चल पड़ता है। मस्तानी पूना में ही रहती है। बाजीराव का भाई और ज्येष्ठ पुत्र, मिल कर मस्तानी को बन्दी बना लेते हैं। इस समाचार से बाजीराव अत्यन्त पीड़ित होता है, उसका मदिरा-पान बढ़ जाता है। कुछ ही दिनों में अल्पकालीन ज्वर के फलस्वरूप उसका देहान्त हो जाता है। बाजीराव के निधन का समाचार सुन उसके विरह में मस्तानी भी प्राण त्याग देती है।

७—सातवीं कथा है लुटेरे जाट चिन्तामन और उसकी चालाक पत्नी की। चिन्तामन दिल्ली से भागे हुए मोहन और नूरबाई को आश्रय देता है। वह मराठा राजदूत के दस्ते पर छापा मार कर आहत शुजराती को धन प्राप्ति के लोभ से उठा लाता है। चिन्तामन अपने साथियों को घर पर मोहन तथा नूर को लुटने नहीं देता किन्तु वृन्दावन के मार्ग में उन्हें लूट लेता है। मोहन के वृन्दावन में बसने पर चिन्तामन नूरबाई को उठा लाने के लिए 'कुटने' भेजता है। क्रुद्ध मोहन रात्रि में धावा बोलकर चिन्तामन को अपमानित कर उससे नूरबाई बाजी जवाहरात की थैली छीन लाता है।

× × ×

(अ) सुन्दरी नर्तकी नूरबाई को शाही दरबार में विशेष सम्मान प्राप्त है। मुहम्मदशाह आक्रमणकारी नादिरशाह रूपी विपत्ति का बिना अधिक व्यय किए निवारण करने के लिए नूरबाई को उसे भेंट-स्वरूप देना चाहता है। नूरबाई ईरान जाने के संकट से मुक्ति पाने के लिए मोहन की सहायता से अनेक कठिनाइयों को दृढ़तापूर्वक सहन करती हुई वृन्दावन जा पहुँचती है। मार्ग में वह अपने प्रिय मोहन की रक्षार्थ लुटेरों को नर्तकी के व्यवसाय द्वारा अर्जित हीरे-जवाहरात सौंप कर हृदय में चुभे हुए गत जीवन के टूटे काँटे को निकाल फेंकती है। यह मुख्य कथा है।

प्रासङ्गिक कथा है मोहन की कर्कशा पत्नी रोनी की। रोनी के अत्याचारों से संतप्त हो मोहन मुगल सेना में जा भर्ती होता है। इसके उपरान्त रोनी की कथा मुख्य कथा से दूर जा पड़ती है मोहन के प्रेत की अनेक लीलाओं के सम्बन्ध में सुनकर रोनी तोता के साथ वृन्दावन में देव-मन्दिरों के दर्शनार्थ पहुँचती है। वहाँ मोहन तथा नूरबाई से उसकी भेंट होती है और वह शान्तिपूर्वक मोहन के पास रहने का प्रयत्न करती है। रोनी की कथा मुख्य कथा को केवल प्रारम्भ तथा अन्त में स्पर्श करती है।

मराठा सैनिक गुवराती की कथा मोहन के मैत्री-निर्वाह के गुण पर प्रकाश डालती है। वह मोहन को कर्कशा पत्नियों को सुधारने की एक मनोरंजक विधि बताता है। कर्कशा पत्नी की समस्या से ही उपन्यास प्रारम्भ होता है।

सादतखाँ तथा मुहम्मदशाह की गौण कथायें मुख्य कथा को विकसित करने में सहयोग देती हैं। नूरबाई को अपनी कला के चमत्कार-प्रदर्शन का अवसर सर्वप्रथम सादतखाँ के यहाँ मिलता है। वहाँ की ख्याति के आधार पर ही उसे मुहम्मदशाह के 'हरम' में प्रवेश प्राप्त होता है। सादतखाँ मुहम्मदशाह की कुटिलता से क्षुब्ध हो नादिरशाह को भारत पर आक्रमण का निमंत्रण देने वालों में एक बन जाता है। नादिरशाह नूरबाई के सौन्दर्य और कलाप्रदर्शन पर रीझ कर उसे अपने साथ ईरान ले जाने की घोषणा करता है। नूरबाई स्वदेश छोड़कर ईरान जाने के लिए किसी भी मूल्य पर तत्पर नहीं होती। उसका चित्त शाही हरम के वातावरण से ओतप्रोत घृणित जीवन से ऊब उठता है। उसके विचारों में क्रान्ति होती है। वह शाही हरम के जंजाल से मुक्त होने के लिए निकल पड़ती है और मोहन के साथ अनेक कठिनाइयाँ सहनकर हृदय में चुभे हुए विगत नारकीय जीवन के टूटे काँटे को निकाल फेंकती है।

बाजीराव और उसकी प्रेयसी मस्तानी की कथा मुख्य कथा से विशेष

सम्बन्ध नहीं रखती, बाजीराव की प्रेयसी तथा मराठी सेना का इतिहास प्रसिद्ध और मनोरंजक प्रसङ्ग होने के कारण उसे उपन्यास में स्थान मिल है। मुगल सेना तथा निजाम से बाजीराव की टक्कर तथा मोहन को उसकी सेना में भर्ती दिखाकर बाजीराव की कथा को कथानक में खपाने का प्रयत्न किया गया है।

लुटेरे चिन्तामन जाट की कथा तत्कालीन बटमार गिरोहों का परिचय देती है। चिन्तामन के यहाँ रहकर मोहन तथा नूरबाई को विवश हो परस्पर समीप आने का अवसर मिलता है। उसकी धन-लोलुपता के कारण मोहन की शुबराती के प्रति मैत्री तथा नूरबाई की घृणित व्यवसाय से अर्जित धन के प्रति निस्पृहता स्पष्ट होती है। मोहन उससे प्रतिशोध लेकर अपने सैनिक स्वभाव का परिचय देता है।

(ब) नूरबाई और मोहन की कथा में नूरबाई के सादतखाँ के यहाँ नृत्य, गान तथा मुहम्मदशाह के हरम में रहने की घटनायें ऐतिहासिक हैं। नूरबाई के ईरान जाने की अनिच्छा के फलस्वरूप हरम से भाग निकलने के बाद की कथा कल्पित है। मोहन का चरित्र तथा उससे सम्बन्धित घटनायें भी कल्पित हैं। नूरबाई की चर्चा ख्वाजा अब्दुल करीमखाँ काश्मीरी के ग्रन्थ 'बयाने वुकाय' में है। यह ग्रन्थ अङ्गरेजी में अनूदित है।[1] अंग्रेज इतिहास-कार अर्विन ने नूरबाई का इस प्रकार उल्लेख किया है—'विजेता (नादिरशाह) ने कठोर अभियान के उपरान्त कुछ अवकाश मनोरंजन के लिए निकाला। उसके सामने नृत्य और गान हुए। नूरबाई नाम की एक भारतीय नर्तकी ने अपनी सङ्गीत-शक्ति और उसके यशगान से उसे इतना मुग्ध कर दिया कि उसने (नादिर) नूरबाई को चार हजार रुपये देने तथा उसको (नूर को) ईरान ले जाने का आदेश दिया। इस अन्तिम कृपा (ईरान-गमन) से नूरबाई ने अत्यन्त कठिनाई से अपने को बचा पाया।'[2] नूरबाई को अपना देश और ब्रजभूमि विशेष प्रिय रहे होंगे तभी उसने नादिर की 'अन्तिम कृपा' से अपने को बचाया। लाल किले से भागते समय उसने पहरेदारों की सहायता ली होगी। पहरेदारों में उस समय राजपूत जाट भी थे। उनमें से नूरबाई का सहायक 'कोई' जाट सैनिक उपन्यास का मोहन है। नूरबाई के किले से निकल भागने के मूल में जो प्रेरणा रही थी उसने नर्तकी-गायिका नूर के हृदय को

१. हिस्ट्री आफ़ इन्डिया एज टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स (आठवाँ खण्ड)—इलियट एण्ड डाउसन···पृ० १२४ से १३६

२. लेटर मुग़ल्स (द्वितीय खण्ड)···पृ० ३७१

संसार के प्रति विरक्ति और व्रजभूमि के पारम्परिक आराध्य तथा कवि सूरदास, नन्ददास, रसखान के पदों के प्रिय नायक 'कन्हैया' में आसक्ति दी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वह दिल्ली से भाग कर कदाचित् वृन्दावन की कुंजों में गाती, नाचती अपने आप में खो गयी हो। ये सब व्याख्यात्मक सूत्र नूरबाई की कथा का निर्माण करते हैं।

मोहन की कर्कशा पत्नी रोनी, शुबराती तथा लुटेरे जाट चिन्तामन की कथायें कल्पित हैं।

निराश प्रेमी सादतखाँ नादिरशाह की लूट तथा बाजीराव और मस्तानी के प्रेम की कथायें इतिहास-प्रसिद्ध हैं। सादतखाँ दिल्ली सम्राट मुहम्मदशाह का मीर बख्शी था। नूरबाई पहले सादत की महफ़िल में थी। नूर की कीर्ति शहंशाह के कानों तक पहुँची और वह शाही हरम में दाखिल करली गयी। सादत को मुहम्मदशाह की यह मनमानी अखर गई। नादिरशाह को भारत पर आक्रमण के लिए आमन्त्रित करने वालों में वह भी था। बाद में नादिर के दुर्व्यवहार से तङ्ग आकर उसने आत्मघात किया था।

मुहम्मदशाह नादिरशाह द्वारा कर्नाल के निकट मानमर्दित हुआ था। नादिरशाह मुहम्मदशाह का 'मेहमान' बनकर दिल्ली के लाल किले में उसके साथ आया। उसने हर्जाने के रूप में बीस करोड़ रुपये चाहे। मुहम्मदशाह ने उसे नूरबाई भेंट की और चार हजार सुन्दर दासियाँ भी। नादिर ने भेंट स्वीकार कर ली किन्तु रुपयों की बात उसके ध्यान से नहीं उतरी। इन ही दिनों दिल्ली की प्रजा ने बलवा किया और नादिर के कुछ सिपाही मारे गये। नादिरशाह ने 'कत्लेआम' कराया और ५७ दिन दिल्ली में प्रलय का सा दृश्य उपस्थित कर ५ मई सन् १७३९ के दिन ईरान के लिए चल दिया। साथ में सत्तर करोड़ का सोना, जवाहर इत्यादि, तख्तताऊस, चार हजार दासियाँ, १३० मुन्शी, ३०० राज कारीगर, २०० लुहार, २०० बढ़ई और सङ्गतराश लेता गया। मार्ग में चिनाव नदी के किनारे पहुंचते-पहुँचते घोर वर्षा हुई। नदी में बाढ़ आई दो हजार ईरानी सिपाही बाढ़ में डूब मरे। आगे की यात्रा असम्भव हो गई। दास, दासियाँ इस गड़बड़ से लाभ उठाकर भाग निकले। ये तथ्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक दिए गये हैं।[1] उपन्यास में ये तथ्य ज्यों के त्यों ग्रहण किये गए हैं।

---

१. दि इम्पोरियल ट्रेजरी आफ़ दि इंडियन मुग़ल्स—अब्दुल अजीज—···पृ० ५५२ से ५५७, तथा हिस्ट्री आफ़ इंडिया···पृ० ७६ से ९८

अहिल्याबाई

१—इतिहास-प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर की तिरसठ वर्षीया विधवा पुत्रवधू अहिल्याबाई इन्दौर का शासन भार सम्भाले है। वह न्यायप्रिय, धर्मप्रिय और कार्य-तत्पर है। उसकी एक दुर्बलता है—दूर के सम्बन्धी तुकोजी-राव के उच्छृंखल पुत्र मल्हारराव पर अत्यधिक स्नेह। वह मल्हार को अपना योग्य उत्तराधिकारी बनाने का निरर्थक स्वप्न देखती है।

अहिल्याबाई राज्यकार्य में कभी ढील नहीं डालती। उसका व्यक्तित्व बहुतों को सत्कर्म की प्रेरणा देता है। रामपुरा-भानपुरा के चन्द्रावत राज-पूतों के विद्रोह का दमन करने अहिल्या स्वयं जाती है किन्तु वे पहले ही पराजित हो जाते हैं। अहिल्या वहीं धमनार की पहाड़ी की गुफाओं में स्थित बौद्ध विहार, मन्दिर और नवाली के मन्दिरों के दर्शन करती है। महेश्वर लौटने पर अपनी गूँगी सेविका सिन्दूरी की परिचर्या करती है और अपना धोती-जोड़ा उसे दान कर देती है। अहिल्या पुनः मान्धाता और ओंकारनाथ तीर्थों की यात्रा करती है। उसे अपनी दामाद की मृत्यु और पुत्री के सती होने का भारी आघात लगता है। वह दुष्ट मल्हार को बन्दी बनाकर कुशलगढ़ में रखती है। अहिल्या इस प्रकार की अनेक विषम परिस्थितियों से वीरता पूर्वक जूझती हुई परलोक सिधारती है।

२—मल्हारराव महत्वाकांक्षी, दुराचारी और दुष्ट युवक है। वह आत्म-हत्या का प्रपञ्च रच अहिल्याबाई की विशेष कृपा का भागी बनने का प्रयत्न करता है। बट्टूसिंह तथा आनन्दी की सहायता से लूटपाट की योजना बनाता है किन्तु उसे असफलता मिलती है। महेश्वर पहुँचकर अपनी माता रुक्माबाई से झगड़ता है और अहिल्या का कोपभाजन बनता है। सिन्धिया से टक्कर लेने जाता है किन्तु पराजित होकर लौट आता है। अहिल्या की सेविका सिंदूरी को छेड़ता है, उसे अहिल्या के भय के कारण भागना पड़ता है। अहि-ल्या की आज्ञा से वह बन्दी बनाया जाता है, इस प्रसङ्ग में आनन्दी उसके हाथों मारी जाती है। मल्हार को अपने इस हत्या-कर्म पर पश्चाताप होता है।

३—बट्टूसिंह, डाकू गनपतराव के नाम से डाके डालता है। जामघाट पर वह 'हाथ भुलाई कर' के रूप में यात्रियों से धन लेता है। वह मल्हार का सहयोगी बनता है किन्तु लूट के उद्योग में दोनों को सफलता प्राप्त नहीं होती उनमें परस्पर मनमुटाव हो जाता है। गनपत अहिल्याबाई के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित हो उसकी शरण में जा अपने गत पापों का प्रायश्चित्त

करता है। उसमें असाधारण परिवर्तन होता है। अन्त में वह ओंकारनाथ तीर्थ में ईश्वर का स्मरण करते हुए प्राण त्यागता है।

४—आनन्दी गनपतराव के साथ वन में रहती थी। मल्हार के सम्पर्क में आने पर वह उसके प्रति आकृष्ट होती है किन्तु उपेक्षिता होने पर उसकी शत्रु बन जाती है। गनपत उसके (आनन्दी के) विवाह का उपक्रम करता है। वैवाहिक प्रथा के मतभेद पर विवाह स्थगित हो जाता है। वह विवाह नहीं करती। एक बार चोरी का माल बेचती हुई आनन्दी पकड़ी जाती है और मल्हार की निष्ठुरता के कारण दण्डित होती है। वह मल्हार को बन्दी बनाने में सहायता देती है और उस पर आक्रमण करने का अभिनय करती है। वास्तव में उसके हृदय में मल्हार के लिए अब भी स्थान है। इस घटना में वह मल्हार के हाथों मारी जाती है।

× × ×

(अ) मुख्य कथा के विषय में पहले चर्चा की जा चुकी है, इस कथा में अहिल्या के चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने वाली परस्पर असम्बद्ध अनेक घटनायें संकलित हैं। इनसे अहिल्या की न्यायप्रियता, प्रबन्धपटुता, प्रभावशीलता, उदारता, अन्धविश्वास, दुष्टों को दण्ड देते समय उग्रता, अतिवात्सल्यजन्य दुर्बलता आदि विशेषताओं का परिचय मिलता है। उपन्यास का यदि कोई ध्येय है तो यही कि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों में एक स्त्री का व्यक्तिगत गुणों और संस्कारगत दुर्बलताओं के साथ भी अपूर्व शासनकार्य का प्रदर्शन। कथा में घटनाओं का संकलन मात्र है। उसमें 'अन्त' को दृष्टि में रखते हुए किसी सुनिश्चित योजना का अभाव है। कथा सुयोजित न होने के कारण उसकी चरम परिणति कहीं नहीं हो पाती और न उसके अन्त की घटना या दृश्य में पाठकों को प्रभावित करने की कोई शक्ति है। अन्तिम दृश्य अहिल्या के देहावसान का है, किसी घटना की सूचना मात्र जैसा।

मल्हारराव की कथा उच्छृंखल, दुराचारी युवक का चित्र प्रस्तुत करती है। मल्हार को आनन्दी की हत्या पर खेद करते दिखा कर उसकी कथा को 'अन्त' का स्पर्श देने का प्रयत्न किया गया है। यह कथा अहिल्या की वात्सल्य सम्बन्धी दुर्बलता को प्रकाश में लाती है और आनन्दी की कथा का आधार प्रस्तुत करती है।

बट्टूसिंह की कथा एक डाकू के हृदय-परिवर्तन की द्योतक है। उसके हृदय-परिवर्तन की घटना में स्वाभाविक विकास का अभाव है। इस चरित्र-

परिवर्तन की अतिनाटकीयता पर आगे चलकर प्रकाश डाला गया है। बट्टूसिंह अहिल्या की प्रभावशीलता और प्रेरकशक्ति को स्पष्ट करने में सहायक है।

आनन्दी की कथा मल्हार से सम्बन्धित है और उसकी कथा को अन्तिम मोड़ प्रदान करती है।

(ब) अहिल्याबाई की जीवन सम्बन्धी घटनायें इतिहास-विख्यात हैं। अहिल्या के मन्दिर-निर्माण और अन्य धर्मकार्यों के महत्व के विषय में इतिहास-कारोंमें मतभेद है। एक लिखते हैं कि इन कार्यों में अहिल्या ने अन्धाधुन्ध व्यय किया, और सेना नये ढङ्ग पर संगठित नहीं की। तुकोजी होल्कर की सेना को उत्तरीय अभियानों में अर्थ संकट सहना पड़ा, कहीं कहीं यह आरोप भी है।[१] किन्तु एक अन्य इतिहासकार ने प्रमाण देते हुए लिखा है कि तुकोजी-राव होल्कर के पास बारह लाख रुपये थे जब वह अहिल्या से रुपये की माँग कर रहा था और संसार को दिखलाता था कि वह रुपये पैसे से तङ्ग है।[२] उपन्यास में दूसरे मत को मान्यता दी गई है।

तत्कालीन अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का वर्णन उपन्यास में आया है। इनमें एक विश्वास था मान्धाता के निकट नर्मदा नदी के समीप स्थित पहाड़ी से कूदकर मोक्ष के इच्छुकों का प्राण त्याग करना।[३] दूसरा विश्वास था उज्जैन स्थित सिद्धवट पर मनोरथ की सिद्धि के लिये बलि चढ़ाना। अहिल्या को प्रेषित उसकी पुत्री के पत्र में उल्लेख है कि उसके आदेशानुसार अवन्तिका जाकर सिद्धवट पर बलि चढ़ा दी गई।[४]

मल्हार से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख 'इतिहासाचीं साधनें', के अठ्ठारह पत्रों में मिलता है (पत्र-क्रम-संख्या २६०, २६२, २६८, २७३, २७७, २७६, २६५, ३०१, ३०३, ३१५, ३१७, ३३२, ३३६, ३४७, ३६१, ३६६, ४०२, ४०३) इसी ग्रन्थ के पत्रों में अहिल्याबाई की शासन-व्यवस्था, दानशीलता और विनय का परिचय मिलता है।

गनपतराव ऐतिहासिक चरित्र है। अपने दुष्कर्मों के प्रायश्चित्त स्वरूप

१. न्यू हिस्ट्री आफ़ दि मराठाज़ (खण्ड ३) श्री जी० एस० देसाई—पृ० २११

२. लाइफ़ एण्ड लाइफ़ वर्क आफ़ देवी अहिल्याबाई होलकर—बी० वी० ठाकुर—पृ० १५५

३. तपोभूमि—पृ० ३०६

४. इतिहासाचीं साधनें, भाग १···मुक्ताबाई का पत्र अहिल्याबाई को—क्रम सं० २३०, ता० १६।४।१७८६

उसने जामघाट पर जो धर्मशाला बनवाई थी उसका स्थानीय इतिहास में उल्लेख है।[1] सिन्दूरी, आनन्दी की घटनायें वास्तविक हैं किन्तु उपन्यास में उनके नाम बदल दिए गये हैं।

कुछ निष्कर्ष

समस्त कथाओं पर विस्तारपूर्वक विचार के उपरान्त कुछ निष्कर्ष सामने आते है। किसी एक समस्या को लेकर उपन्यासों में मुख्य कथा चलती है। कथा में पदार्पण करते ही समस्या का स्वरूप निखरने लगता है, शनैः शनैः समस्या सम्बन्धी धाराओं का संघर्ष घनीभूत हो उठता है और कथा किसी निश्चित बिन्दु पर तन कर परिणाम की ओर शीघ्रता से दौड़ती है। कथा की चरम परिणति उस निश्चित बिन्दु या परिणाम पर पहुंच कर होती है। समस्या से बन्धे रहने के कारण कथा का स्वरूप सुगठित रहता है। कथा के प्रारम्भ में पाठक की जिज्ञासा-तृप्ति, मध्य में घटनाओं तथा संघर्ष के वेग से उत्पन्न उत्सुकता, संशय तथा अन्त में हृदयस्पर्शी प्रभाव रहता है। दुःखान्त कथानकों के अन्त में एक चमत्कार है, घटनाओं के पट से क्षण भर कौंध कर कल्पना-नेत्रों में छा जाने वाली बिजली जैसा। गढ़ कुण्डार, प्रेम की भेंट, बिराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी, अचल मेरा कोई, के 'अन्त' से पाठक का सहज ही साधारणीकरण हो जाने के कारण वह उन कथाओं की अनुभूति की तीव्रता में जकड़ कर रह जाता है। बुन्देलों द्वारा खंगार-नाश, नदी किनारे मुस्कराती चाँदनी में तारा, दिवाकर का अमर मिलन, अन्तिम श्वासें गिनता धीरज, गीत की अन्तिम पंक्ति, 'उड़ गये फुलवा रह गयी बास' गाकर चट्टान से कूद कर बेतवा में समाती कुमुद के पजनों की छम्म, अनेक संघर्षों में जूझकर इहिलोक की यात्रा समाप्त करती लक्ष्मीबाई के ओठों से प्रस्फुटित 'दहति···नैयं···पावकः···' शब्द, और कुंठिता कुन्ती की आत्मघात में चलाई बन्दूक की धाँय—ये सब के सब अपना तीक्ष्ण प्रभाव उसके हृदय पर पत्थर पर की लकीर जैसा छोड़ जाते हैं। वे दृश्य, वे ध्वनि, वे मुद्रा और वह अनुभूति कथा भुला देने भी पर एक कौंध, एक झलक बनकर पाठक के हृदय-कोष में सुरक्षित रह जाती हैं।

वर्मा जी के पास कहने के लिए अनेक नवीन कथायें हैं। किन्तु समान बीजों के आधार पर विभिन्न चरित्रों तथा विभिन्न परिस्थतियों में विकसित कथाओं को भी उपन्यासों में स्थान मिला है। उन समान कथाओं में प्रत्येक

१—इंदौर गजेटियर···पृ० २८५

स्थल पर कुछ न कुछ नयापन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है मौलिकता बहुत कुछ कथा प्रस्तुत करने की विधि पर निर्भर करती है क्योंकि कथा-सूत्र मूल रूप से नवीन कम ही होते हैं।

लगन, प्रेम की भेंट, प्रत्यागत, मुसाहिबजू, कभी न कभी के अतिरिक्त शेष सभी उपन्यासों के कथानक पेचीदा हैं। मुख्य कथा के साथ एक या एक से अधिक प्रासङ्गिक-पताका चलती है। इन दोनों कथाओं में रङ्ग भरने के लिए प्रकरी कथायें भी रहती हैं। इन सब कथाओं का परस्पर सम्बन्ध प्रायः सुयोजित रहता है। घटनायें सम्भवता के क्षेत्र का उल्लंघन नहीं कर पातीं फिर भी उनमें कुतूहल और 'अप्रत्याशित' का समावेश रहता है। उनकी रोचकता बनी रहती है। कथाओं की रोचकता का सर्वाधिक श्रेय है उनके वेग तथा तल में पैठी अनुभूति की तीव्रता को। कथा का क्षेत्र एक निश्चित परिधि में रहने के कारण ये गुण उसमें स्वतः निखर उठते हैं।

यहाँ उपन्यासों में समान कथाओं का विश्लेषण कर लेना श्रेयस्कर होगा।

समान कथा सूत्र

[अ] प्रणय-कथायें

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रणय-कथाओं को मुख्य स्थान मिला है। प्रेमी प्रेमिका में परस्पर प्रणय की कथायें प्रायः उनके सभी उपन्यासों की स्पन्दन हैं, उन्हें गति प्रदान करती है। मानव-हृदय अपने आप में एक सृष्टि संजोये हुए है जो बाह्य प्रभावों और प्रहारों से पूर्णतया स्वतन्त्र है। भले ही किसी के शरीर पर अधिकार प्राप्त कर लिया जाय किन्तु उसके हृदय को बलात् वश में करना असम्भव है। हृदय पर छा जाने, उसे वश में कर लेने का सौभाग्य बिरलों को ही प्राप्त होता है। कोई नैसर्गिक शक्ति ही अपने वरद् हस्त की छाया में किसी सौभाग्यशाली को हृदय-मन्दिर में प्रवेश करा 'प्रिय' के दुर्लभ आसन पर प्रतिष्ठित कराती है। प्रेमी और प्रेमिका परस्पर आकृष्ट हों भले ही वे किसी धर्म, जाति या वर्ग के हों एक दूसरे के हृदय-राज्य पर छा जायें, अधिकार प्राप्त कर लें यही उनकी सफलता है। हृदय का असीम राज्य प्राप्त कर लेने के बाद शरीर के सीमित मिलन का क्या मूल्य। साधारण भौतिक जीवन के धरातल से तनिक उठकर भावनाओं को छूते हुए स्तर पर प्रेमी, प्रेमिका के चिर हृदय-मिलन तथा आत्मिक सम्बन्ध की कथायें इन उपन्यासों की प्राण हैं।

ऐसी समान कथाओं का ९ उपन्यासों में १४ स्थलों पर प्रयोग किया गया है। 'गढ़ कुण्डार' में तारा और दिवाकर के प्रणय की कथा २६ वें परिच्छेद

से लेकर उपन्यास की मुख्य कथा को काटती-पीटती उससे बचती-सिमटती अन्त के ७७ वें परिच्छेद तक चलती है। दिवाकर कायस्थ है और तारा ब्राह्मण पुत्री है। मन्दिर और पूजन के पवित्र वातावरण में दोनों के हृदय में पुनीत प्रेम का उदय होता है। दोनों में एक दूसरे के लिए प्राणोत्सर्ग करने की होड़ घर कर जाती है। घटनाचक्र के कारण दूर पड़ जाने पर भी उनके हृदय का छलकता हुआ प्रेम और पावन स्मृति की टीस उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। और दोनों इस समाज के कठोर बन्धनों से बच योग-साधना के लिए अन्यत्र चले जाते हैं। उनके लिए शारीरिक मिलन गौण है। यह कथा केवल १५ परिच्छेदों में है अर्थात् सम्पूर्ण उपन्यास के पाँचवें भाग से भी कम कलेवर में इसका विस्तार है। कथा के संक्षिप्त कलेवर तथा उसके उपन्यास के उत्तरार्द्ध में विकसित होने का मुख्य कारण उपन्यास का उद्देश्य है। 'गढ़ कुण्डार' का 'उद्देश्य' है खंगारों के अधिकृत कुंडार का पतन। खंगारों के पतन का कारण है खंगार राजकुमार नागदेव के विवाह के प्रश्न पर खंगारों तथा बुन्देलों में घोर मतभेद। नागदेव के बुंदेला पुत्री हेमवती के प्रति असफल प्रेम की कथा को स्वभावतः उपन्यास में प्रमुख स्थान मिलता है। उसका प्रारम्भ चौथे परिच्छेद से है। नागदेव के साथ उसके मित्र अग्निदत्त के असफल प्रेम की कथा है। अग्निदत्त में तत्कालीन समाज के कठोर बन्धनों की प्रतिक्रिया है और वह नागदेव के नाश का कारण बनता है। अग्निदत्त की कथा उपन्यास में प्रासंगिक है। अतः उसके प्रेम का संकेत तीसरे परिच्छेद में मिल जाता है और कथा का विकास २२ वें परिच्छेद से प्रारम्भ होता है। तारा और दिवाकर की कथा के द्वारा प्रेम के आदर्श स्वरूप की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। मुख्य कथा, प्रासंगिक कथा से इस प्रसंग का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः उपन्यास में इसका प्रसार २६ वें परिच्छेद से किया गया है। साथ ही यह कथा उपन्यासकार की प्रिय तथा उसके आदर्श से सम्बन्धित होने के कारण अन्त तक चलती है और अन्तिम परिच्छेद में समाप्त होकर पाठकों के हृदय पर गहरे चिह्न छोड़ जाती है।

दूसरी प्रणय कथा है 'लगन' उपन्यास में रामा और देवीसिंह की। रामा और देवीसिंह का विवाह हो जाने पर भी दोनों के पिताओं के लोभ और मतभेद के कारण उनका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियों के मनमुटाव तथा वर और बधू की एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन पर उपन्यास की कथा आधारित होने के कारण रामा और देवीसिंह के प्रणय को उपन्यास में प्रधानता मिली है। यह कथा दूसरे परिच्छेद से लेकर उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद २३ तक चलती है।

'कुण्डली चक्र' में पूना तथा अजित की प्रेमकथा ८ से लेकर ७१ वें परिच्छेद तक चलती है। अजित रत्नकुमारी से प्रेम में सफलता न मिलने के कारण निराश मन रहता है। पूना से भेंट होने पर उसके हृदय मे अनुराग तुरन्त उत्पन्न नही होता। पूना मन ही मन अजित को अपना आराध्य बना चुकी है। भुजबल बलात् पूना से विवाह करना चाहता है वह रक्षा के लिए अजित के पास सन्देश भेजती है। पूना तथा अजित के एकान्त में मिलने पर दोनों के हृदय में प्रेम की धारा प्लावित हो उठती है। अन्त में उनका विवाह हो जाता है। ७ वें परिच्छेद में उनकी भेंट होने पर भी प्रणय का विकास उपन्यास के उत्तरार्द्ध में हो पाता है।

सरस्वती और धीरज का प्रणय 'प्रेम की भेंट' की कथा का मुख्य आधार है। धीरज सरस्वती के प्रति शनैः शनैः आकृष्ट होता है, सरस्वती भी अपने हृदय में धीरज को आसीन कर लेती है चुपचाप। उजियारी की विषमयी खीर खाकर मृतप्रायः धीरज अचेतावस्था में प्रेम-प्रलाप करता है। सरस्वती की अवस्था भी गम्भीर हो उठती है। उसे सन्निपात हो जाता है। उस अवस्था में वह निस्संकोच धीरज के प्रति अपने प्रेम को प्रकट कर देती है। यह कथा उपन्यास में पहले परिच्छेद से लेकर अन्तिम परिच्छेद, ३२ तक चलती है।

'विराटा की पद्मिनी' में कुमुद और कुंजरसिंह के प्रणय की कथा प्रमुख है। कुमुद को लोग देवी के अवतार के रूप मे स्वीकार करते है। वह स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर है। संसार से निराश और जीवन में असफल कुंजरसिंह के हृदय में कुमुद के प्रति प्रेम का उदय होता है। उसके अन्तर में केवल एक कामना है कुमुद के लिए प्राणों को न्योछावर कर देने की। चारों ओर से आक्रमण की विपत्ति के बादल घिर आने पर उनके जीवन के कुछ क्षण शेष रह जाते है। इस अवसर पर कुमुद कुंजर के गले में माला डाल कर अपना प्रेम प्रकट करती है। कुंजरसिंह को मानो विश्व का साम्राज्य मिल गया। कुंजरसिंह देवीसिंह के हाथों मारा जाता है और कुमुद जल-समाधि लेती है। उपन्यास में प्रेम की यह सूक्ष्म कथा कौशल से पिरोयी गयी है। इसका प्रारम्भ दूसरे परिच्छेद से होकर अन्त अन्तिम परिच्छेद १०६ में होता है। किन्तु कथासूत्र केवल १० परिच्छेदों (२, ३, ५, ४६, ५४, ६७, ८४, ९३, १०५ तथा १०६ परिच्छेद) में फैला हुआ है। कुमुद में दैवी तत्वों का भी आरोप है। ऐसी अवस्था में कुंजर-कुमुद के प्रेम का विकास यदि पहले कर दिया जाता तो कमुद के गम्भीर, गूढ़ व्यक्तित्व की रक्षा कठिन हो जाती।

'झाँसी की रानी' में तीन प्रणय-कथायें हैं, मोतीबाई-खुदाबख्श, नारायण शास्त्री-छोटी तथा रघुनाथसिंह-मुन्दर की। नारायण शास्त्री ब्राह्मण है और छोटी महतरानी। इस चौंका देने वाले वर्णाश्रम-विरुद्ध सम्बन्ध की सूचना से अचकचा कर राजा गंगाधरराव दोनों को देश-निष्कासन की आज्ञा देता है। समाज द्वारा निष्कासित होने पर भी दोनों साथ रहकर सन्तुष्ट है। जीवन की कोई भी बाधा उन्हें उनके पथ से विचलित नहीं कर पाती। मोतीबाई-खुदाबख्श तथा रघुनाथसिंह-मुन्दर में, एक दूसरे के हृदय में स्थान पा जाने का सन्तोष है। झाँसी के स्वतंत्रय-संग्राम में जूझ मरने के लिये प्रणय उन्हें प्रेरित करता रहता है। उनका अन्त भी युद्ध में होता है। ये तीनों कथायें मुख्य कथा में प्रकरी के रूप में प्रयोग की गयी है। इन का संकेत मात्र उपन्यास में यत्र-तत्र मिलता है।

'कचनार' में कचनार-दलीपसिंह तथा कलावती-मानसिंह के प्रणय की कथायें है। कचनार दलीपसिंह को विवाह के दहेज मे दानस्वरूप मिली है। पहले दलीपसिंह उसे वासना की सामग्री समझता था किन्तु घटनाचक्र में पड़कर वह अनेक विपत्तियाँ उठाने पर कचनार के अपने प्रति प्रेम का मूल्यांकन कर पाता है। यह प्रणय कथा उपन्यास की मुख्य कथा है किन्तु मानसिंह-कलावती की प्रासंगिक कथा के उपन्यास के पूर्वार्द्ध में प्रमुख रहने के कारण इसका प्रारम्भ चौथे परिच्छेद में होने पर भी, विधिवत् विकास कचनार तथा दलीपसिंह के गुसाँइयों के अखाड़े में पुनः मिलने पर ३२ वें परिच्छेद से होता है और कथा अन्तिम परिच्छेद ७३ तक चलती है। कलावती दलीपसिंह की विवाहिता है। उसे विवाह कर लाने के लिये दलीपसिंह की कटार के साथ मानसिंह जाता है। कलावती तथा मानसिंह के हृदय में अनुराग जन्म लेता है और गहरी जड़ें पकड़ लेता है। दलीपसिंह के देहान्त के पश्चात् कलावती मानसिंह से पुनर्विवाह कर लेती है। यह कथा पहले परिच्छेद से प्रारम्भ होकर २६ वें परिच्छेद तक पूर्णतया विकसित हो जाती है। दलीपसिंह की प्रेम कथा के हेतु परिस्थितियाँ प्रस्तुत करने के लिये उपन्यासकार कलावती—मानसिंह की कथा को उससे पूर्व भूमिका के रूप में स्थान प्रदान करने के लिये बाध्य हो जाता है।

'मृगनयनी' में अटल और लाखी के प्रेम की कथा है। अटल गूजर है और लाखी अहीरिन। दोनों के अन्तर्जातीय सम्बन्ध के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधायें आती हैं। अन्ततोगत्वा दोनों का विवाह हो जाने पर भी मरते समय लाखी के हृदय में समाज द्वारा मिला त्रास तथा अवमान शूल की भाँति चुभता रहता है। इस कथा के द्वारा उपन्यासकार तत्कालीन सामाजिक रूढ़ि-

वादिता तथा निष्ठुरता का चित्रण करना चाहता है। उपन्यास के उद्देश्य की एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण अटल और लाखी की प्रासंगिक प्रणय कथा को 'मृगनयनी' में प्रमुख स्थान मिला है। यह दूसरे परिच्छेद से प्रारम्भ हो उपन्यास के पूर्वार्द्ध में यथेष्ट प्रसार पाती है। और समाप्त भी उपन्यास के अन्त से कुछ पूर्व ६८ वें परिच्छेद में होती है।

'टूटे कांटे' में परिस्थितियों से विवश हो सुप्रसिद्ध नर्तकी नूरबाई को साधारण सिपाही मोहन का साथ करना पड़ता है। शनैः शनैः दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं और उनका प्रणय आत्मिक मिलन के स्तर को छू-छू लेता है। नूरबाई पत्नी के रूप में मोहन के साथ वृन्दावन में रहती है। मोहन तथा नूरबाई के मिलन की भूमिका उपन्यासकार को प्रस्तुत करनी पड़ती है। मोहन अपनी कर्कशा पत्नी रोनी से संतप्त हो धनोपार्जन की चिन्ता में घर-बार छोड़ सेना में भर्ती होता है। फिर वह जीवन से ऊबा हुआ वृन्दावन, पावन तीर्थ के अंचल में शेष दिनों को व्यतीत करने के स्वप्न देखता है। उधर नूरबाई ईरान में नादिरशाह के कठोर चंगुल में बन्दिनी चिड़िया की भाँति फड़फड़ाने की आशंका से हरम को छोड़ निकल भागती है। उसकी केवल एक ही साध है, जीवन के शेष दिनों में इस धमाचौकड़ी वाले संसार से दूर किसी कोने में बैठ विगत जीवन के कलुषित पृष्ठों को सदा के लिये पलट कर किसी शान्तिमय नवीन परिच्छेद को खोले। अपने बीते दिनों से असंतुष्ट, किसी आशामय भविष्य की कल्पनाओं में खोये हुए मोहन और नूरबाई की भेंट होती है। दोनों को अपनी कल्पना का सुनहरा संसार ढूँढ़ निकालने में बिलम्ब नहीं लगता। मोहन तथा नूरबाई के प्रणय की आधारभूमि तैयार करने के कारण उनकी कथा उपन्यास में ३७ वें परिच्छेद से प्रारम्भ होकर उपन्यास के उत्तरार्द्ध में छायी रहती है।

'टूटे काँटे' में मस्तानी तथा बाजीराव के प्रेम की भी कथा है। इसे कथा की अपेक्षा प्रसंग या चर्चा कहना अधिक उपयुक्त होगा। उपन्यास के कथानक से इसका सम्बन्ध न होने के कारण इसका संकेत मात्र १३ तथा ६४ वें परिच्छेद में मिलता है। मस्तानी का बाजीराव से प्रेम है। वह बाजीराव की प्रेरणा शक्ति है। अन्त में मस्तानी के बन्दी हो जाने पर बाजीराव निराश हो असमय काल-कवलित हो जाता है और चिर वियोग में मस्तानी प्राण त्याग कर अपने प्राणप्रिय से परलोक में जा मिलती है।

[ब] असफल, एकांगी प्रेम की कथायें

असफल प्रेमी तथा प्रेमिकाओं के एकांगी प्रेम की १० कथायें ६

उपन्यासों में आयी हैं। इनमें एक पक्ष दूसरे के लिये हृदय और आँखें बिछाये उसे अपना सब कुछ समर्पण करने के लिये तत्पर बैठा है। केवल अपने प्रिय को प्राप्त करने या प्रिय की एक मृदुल मुस्कान पर उसके सुख का संसार निर्भर है। उसका अन्तर बार-बार कहता है कि प्रिय कभी न कभी इस सूने हृदय-मन्दिर में आयेगा। वह उसके स्वागत में आशाओं और कल्पनाओं के कोमल, मनोहर फूल बिछाये धड़कते हृदय से प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिनता रहता है किंतु अपने मन कुछ और कर्ता के कुछ और ! अभागे प्रेमी की प्रतीक्षा, प्रतीक्षा ही रह जाती है। प्रिय उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखता, एक प्यारी चितवन भी उस पर डालकर उसे अनुगृहीत नहीं करता। वह अपनी धुन में मस्त, अपनी परिस्थितियों में उलझा हुआ स्वागत में प्रेमी द्वारा बिछाये हुए फूलों को कुचलता, मसलता आगे बढ़ जाता है। प्रेमी की आशाओं के भग्न खंडहरों से उसे क्या लेना ! असफल निराश कुंठित प्रेमी कभी भयंकर हो प्रतिक्रिया करता है। कभी रो-रो कर जीवन काटता है और कभी आत्म-हत्या कर अपने विषादमय जीवन की पूर्णाहुति दे देता है।

'गढ़ कुंडार' में नागदेव हेमवती के सौंदर्य को निरख, और उसके द्वारा प्रेम की स्वीकृति मिल जाने के भ्रमवश आशा और उमग के ज्वार में डूब जाता है। उसे आसपास की प्रत्येक वस्तु गाती-गुनगुनाती, खिलखिलाती जान पड़ती है। किंतु अभागे नागदेव की आशा अंधकारमयी रात्रि जैसी है जो हेमवती की अवहेलना रूपी सूर्य के उदय पर छिन्न-भिन्न हो जाती है। कहाँ नीच जाति का खंगार नागदेव और कहाँ बुन्देला पुत्री हेमवती ! नागदेव को अपने पैरों के नीचे की धरती खिसकती-सी जान पड़ती है। नागदेव की उमंग, उत्साह और सौजन्य क्षण भर में तिरोहित हो जाते हैं। विवेक और समर्पण की भावना उससे विदा ले जाती है। उसमें प्रतिक्रिया उद्‌बुद्ध हो प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है। अन्त में उसे अपने आप को सुरा में डुबोकर खो जाना पड़ता है। नागदेव का असफल एकांगी प्रणय 'गढ़ कुण्डार' की मुख्य कथा है।

'कुण्डली चक्र' में अजित रत्नाकुमारी से प्रेम का प्रत्युत्तर स्पष्टतया प्राप्त न कर पाने तथा ललित द्वारा अपमानित होने पर निराशा के सागर में गोते लगाने लगता है। उसमें विवेक और समर्पण की भावना बनी रहती है। वह रत्नाकुमारी को सर्वदा सुखी रखने के हेतु उसके दुष्ट, धूर्त पति भुजबल को भी कभी कष्ट न पहुँचाने का निश्चय करता है। आगे चल कर पूना के प्रति आकृष्ट होने तथा उससे विवाह कर लेने पर अजित विगत भावुकता पर

हँस कर रतन को उसका फोटो वापिस कर देता है। यही असफल प्रेम की एक ऐसी कथा है जो अन्त में सुलझ कर सुखद मोड़ ले पाती है।

'प्रेम की भेंट' में उजियारी धीरज से प्रेम करती है। उसके प्रेम में गहनता कम, प्रचण्डता अधिक है। वह मार्ग से सरस्वती का रोड़ा हटाने के हेतु उसके लिए विषमयी खीर बनाती है। दैवात् धीरज खीर खाकर उजियारी के घातक वार का लक्ष्य बनता है। यह कथा उपन्यास की मुख्य कथा, धीरज तथा सरस्वती के प्रेम से उलझी होने के कारण दूसरे परिच्छेद से प्रारम्भ हो अपना प्रभाव अन्तिम परिच्छेद तक रखती है।

'विराटा की पद्मिनी' में गोमती होने वाले पति देवीसिंह पर अपना सब कुछ मन ही मन न्योछावर कर चुकी है। भले ही फेरे पड़कर विवाह की रस्म घटनाचक्र के कारण पूरी होने से रह गई हो। अकिंचन देवीसिंह दलीपनगर की राजगद्दी प्राप्त कर विगत जीवन को सदा-सदा के लिए भूल जाता है। देवीसिंह द्वारा की गई उपेक्षा सुनहले स्वप्नों के संसार में खोयी मानिनी गोमती के कुसुम जैसे कोमल हृदय पर तुषारापात करती है। आशा-जलयान के डूब जाने पर निगल जाने वाली भीषण दुराशा की तरंगों की गोद में असमर्था, असहाया, अकिंचना जीवन-यात्रिणी गोमती केवल मृत्यु की घड़ियाँ गिनने भर के लिए जीवित है। रामदयाल का समर्पण उसके स्तब्ध हृदय में पुनः स्पन्दन नहीं ला पाता। गोमती के अन्तर में केवल एक साध है, देवीसिंह के समक्ष आत्महत्या कर लेने भर की। उसकी जीवन-दीप-शिखा दम तोड़ती भी है देवीसिंह के सामने। कथा का कलेवर सूक्ष्म है। यह केवल १४ परिच्छेदों में प्रसरित है।

'कभी न कभी' में मजदूरों के मेट के लीला के प्रति आकृष्ट होने की घटना भी ऐसी ही है। वह अपने मरुस्थल जैसे नीरस जीवन में लीला रूपी निर्झर की कुछ छींटों की वर्षा की लालसा लिए है। लीला की उपेक्षा और देवजू के बीच में आकर भर्त्सना करने पर मेट कुंठित होकर रह जाता है। इस कथा का सूक्ष्म सूत्र केवल ५ परिच्छेदों में है, कथा समुचित रूप से विकसित नही हो पाती है।

'झाँसी की रानी' में ऐसी दो लघु कथायें है। जूही तात्या के प्रति आकृष्ट है। तात्या के दो मीठे शब्दों को सुनने के लिए उसका हृदय लालायित है। अन्त में जूही को तात्या से प्रेम नहीं मिलता। तात्या तो कर्तव्य का पुतला मात्र है। उसे अपने स्वामी रावसाहब के आज्ञापालन और युद्ध के अतिरिक्त अन्य किसी से कोई लगाव नहीं। जूही मरते समय तक अपने आहत हृदय को सँभाले रहती है। दूसरी कथा है तोपची दूल्हाजू द्वारा अपनी सहकारिणी

सुन्दर पर प्रेम प्रकट करने तथा प्रत्युत्तर में भर्त्सना प्राप्त करने की। सुन्दर की स्पष्ट अवहेलना तथा भर्त्सना से दूल्हाजू दुःखी और क्षुब्ध हो जाता है। रानी लक्ष्मीबाई द्वारा अपमानित होने पर उसमें भयङ्कर प्रतिकार की भावना जाग्रत होती है। वह अंग्रेजों से मिलकर झांसी के पतन का कारण बनता है।

'अहिल्याबाई' में आनन्दी मल्हारराव से प्रेम करती है। मल्हारराव की उपेक्षा तथा कुटिल व्यवहार पर भी उसके हृदय के किसी कोने में मल्हार के प्रति प्रेम शेष है। वह मल्हार को बन्दी बनाने के लिए उस पर झूठा वार करती है। किन्तु मल्हार तुरन्त पिस्तौल द्वारा उसकी हत्या कर देता है। इस दुर्घटना के पश्चात् मल्हार को पश्चाताप होता है।

[स] प्रेम-त्रिकोण

चार उपन्यासों में प्रेम-त्रिकोणों का प्रयोग है, एक स्त्री के दो प्रेमी या एक पुरुष की दो प्रेमिकायें हो जाने के कारण कथानक उलझ जाता है। कथानक की उलझन के निराकरण में उपन्यासकार कौशल-प्रदर्शन का अवसर पाता है। इन प्रेम-त्रिकोणों में असफल पात्र युद्ध में पराजित सैनिक की भाँति भयङ्कर प्रतिशोध लेने या चुपचाप हथियार डाल जाने में शुभ समझते हैं।

'प्रेम की भेंट' में धीरज, सरस्वती तथा उजियारी का प्रेम-त्रिकोण मूल कथा का प्रमुख अङ्ग है। उजियारी सरस्वती को विषमयी खीर खिलाकर अपनी राह का काँटा निकालना चाहती है किन्तु खीर धीरज द्वारा खा लेने पर उजियारी की दशा अपने हाथ अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार लेने वाले मूर्ख अभागे जैसी हो जाती है। विष के प्रभावस्वरूप धीरज की दशा शोचनीय होने पर व्याकुल रुग्णा सरस्वती स्पष्ट रूप से उसके प्रति प्रेम प्रकट करती है। और अचेत धीरज भी अपनी प्रेयसी सरस्वती से चिर मिलन के लिए इहि-लोक की यात्रा समाप्त कर देता है। उजियारी पूर्णतया पराजित हो हत्या के कलंक की भागिनी भी बनती है।

'कभी न कभी' में लीला, लछमन, देवजू का प्रेम-त्रिकोण है। लछमन देवजू को बड़े भाई के समान मानकर उसे भाई से अधिक स्नेह प्रदान करता है। उससे लीला का विवाह कराने का भरसक प्रयत्न करता है। शनैः शनैः लछमन लीला के प्रति आकृष्ट हो उसे चिर सहचरी बनाने के स्वप्न देखने लगता है। देवजू और लीला के सम्बन्ध की बात उसके ध्यान से उतरने लगती

है। देवजू को सन्ताप होता है। वह लीला को प्रभावित करने के लिए उससे छेड़छाड़ करने वाले मजदूरों से मारपीट और लीला पर प्रेम प्रकट करने वाले मेट की भर्त्सना करता है। प्रत्युत्तर में देवजू को लीला की उदासीनता और अवहेलना मिलती है। इसी प्रश्न पर देवजू तथा लछमन के हृदय में सुलगती हुई ज्वाला प्रचण्ड हो परस्पर झगड़े का रूप धारण कर लेती है। निराशा और क्लेश में डूबा हुआ देवजू अपनी हार स्वीकार कर स्वयं क्षेत्र से हट जाने में स्वाभिमान तथा मैत्री की रक्षा सम्भव समझता है। यहाँ हिंसा अथवा प्रतिशोध की भावना का स्थान स्व-नियन्त्रण तथा बलिदान ने ले लिया है।

'कचनार' में कलावती दलीपसिंह की विवाहिता है किन्तु हृदय से चाहती है मानसिंह को। दलीपसिंह तथा कलावती के मध्य अनुराग पनप नहीं पाता। सुहागरात के अवसर पर ही दोनों में कहासुनी हो जाती है। दलीपसिंह की आकर्षण-केन्द्र दहेज में मिली दासी कचनार हो जाती है। किन्तु संघर्ष बचाने के लिए इतना ही पर्याप्त न था। दलीपसिंह, चोट खा मानसिंह की घातक औषधि के फलस्वरूप गुसाँइयों के हाथ जा पड़ता है। धामोनी में उसे मृत स्वीकार कर मानसिंह राज्य भार सम्भालता है और कलावती से पुनर्विवाह कर लेता है। अन्त में जीवित दलीपसिंह के धामोनी लौट आने के समाचार को सुन कलावती निश्चय प्रकट करती है—'मैं अपने राजा मानसिंह और अपने बच्चे के लिए प्राण देने को तैयार हूं। अब मैं नहीं डरती।' दलीपसिंह को उसकी कचनार मिल गयी है, संसार में अन्य किसी की अपेक्षा उसे नहीं है। वह मानसिंह को सम्मानपूर्वक धामोनी से विदा करते समय कलावती के सामने भी नहीं पड़ना चाहता। इन शब्दों में अपनी उदासीनता प्रकट करता है—'मैं इन लोगों को अपना मुँह नहीं दिखलाऊँगा और न सामना करने दूँगा। जो कुछ किया गया वह बिल्कुल उचित था। ऐसा न करना ही अचम्भे की बात होती।' इस कथा में प्रेम-त्रिकोण के पूर्ण लक्षण तथा सामग्री होने पर भी उपन्यासकार संघर्ष बचाकर समस्या का शान्तिपूर्वक समाधान कर देता है।

चौथा तथा अन्तिम प्रेम-त्रिकोण है कुन्ती, अचल और सुधाकर का। इस कथा में लालसा से पूर्ण, अतृप्त, नयी रोशनी की युवती कुन्ती का मनोविज्ञान विशेष महत्व रखता है। कुन्ती अचल के पास सङ्गीत सीखने जाती है। अचल का गम्भीर और प्रभावशाली व्यक्तित्व उसे मोहित कर लेता है। कुन्ती का सुधाकर से विवाह हो जाता है। यह सुधाकर जैसा रसिक और प्रेम की गगरी उड़ेल देने वाला पति पाकर सन्तोष का अनुभव करती है किन्तु

उसकी यह सन्तुष्टि क्षणिक है। पति-पत्नी का नित नयी नवीनता का प्रेमी चित्त असंयम तथा कुन्ती के तीव्र स्वभाव के कारण समय पाकर परस्पर विरक्ति से भरने लगता है। सुधाकर कुन्ती से बचने लगता है और कुन्ती अचल के प्रति खोये हुए आकर्षण के पुनर्जागरण के करण शान्ति, सुख की खोज के अचल के पास संगीत सीखने जाने लगती है। कुन्ती अचल का विधवा निशा से विवाह कर उसे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करती है। अचल को जीवन में सुख और संतोष मिलता है। किन्तु कुन्ती के अशान्त हृदय को चैन कहाँ! वह अचल के यहाँ पूर्ववत आवश्यकता से अधिक आती-जाती है। सुधाकर कुन्ती के अचल के यहाँ आवागमन पर रोक लगाता है। कुन्ती के कुंठित हृदय और स्वाभिमान को भारी ठेस लगती है। वह आत्म-हत्या कर लेती है। इस प्रेम-त्रिकोण में विशेषता है कि दोनों प्रेमियों में सीधा द्वन्द्व नहीं होता। यह द्वन्द्व प्रेमिका कुन्ती के अन्तर में प्रविष्ट होकर उसका अन्तर्द्वन्द्व बन जाता है। मानिनी कुन्ती अपमान से संतप्त हो बंदूक की गोली से आत्म-हत्या कर लेती है। उससे पूर्व एक कागज़ पर लिख कर अचल तथा अपने सम्बंध के विषय में कुछ स्पष्टीकरण कर जाना चाहती है। कागज़ पर केवल लिख पाती है—'अचल मेरा कोई···' आगे केवल बिगड़ी लकीर थी। आगे कुछ न लिखाकर उपन्यासकार कुंती के अंतिम समय में भी अंतर्द्वन्द्व की सूचना देता है। कदाचित् कुन्ती को, 'अचल मेरा कोई नहीं है' लिखने में हिचक होती। मृत्यु के समय असत्य वक्तव्य वह कैसे दे पाती!

[द] सफल दाम्पत्य जीवन

सफल दाम्पत्य जीवन की कथायें 'मृगनयनी' तथा 'सोना' में मिलती हैं। 'मृगनयनी' में मानसिंह मृगनयनी को विवाह कर लाता है और अपनी प्रिय पत्नी पर प्रेम की वर्षा करने को आतुर है। मृगनयनी अपने सम्मान तथा परस्पर प्रेम की नीव सुरक्षित रखने के लिए सचेष्ट है। वैवाहिक जीवन में संयम के महत्व को जानती है। स्वयं को मानसिंह के साथ वासना के वेग में डुबोती नहीं। ललित कलाओं के प्रेम पर बल देती है साथ ही कर्तव्य के प्रति भी मानसिंह को सचेष्ट करती है। दोनों का वैवाहिक जीवन सुखद है। मृगनयनी अपने पति की प्रेरणा बन उसके साथ वास्तविक आनन्द के मार्ग पर आ खड़ी होती है। ऐसी ही कथा 'सोना' में अनूपसिंह तथा रूपा के वैवाहिक जीवन की है। घर में दारिद्रय्-देवता का स्थायी वास है। मनमौजी स्वभाव वाले अनूप को जीविका की चिन्ता भी नहीं रहती। रूपा आग्रह कर उसे इस दिशा में गम्भीर बनाने में सफल होती है। पूजा-अर्चना के फलस्वरूप

दैवी चमत्कार से उन्हें धन राशि प्राप्त हो जाती है। रूपा अनूप के साथ विलास और वैभव की बाढ़ में बह उठती है किन्तु शीघ्र ही स्थिर हो जाती है, इस दिशा में वह अनूप को निरन्तर सचेत करती रहती है। धन चुक जाने पर किसी दैवी चमत्कार से वैभव वर्षा के स्वप्न देखने वाले अनूप को झकझोर कर जाग्रत् करना चाहती है। अन्त में विवश हो रूपा किसी देव मन्दिर में मजदूरिन का कार्य करने के लिए घर में बिना कुछ कहे-सुने चल पड़ती है। अनूप उसे वापिस ले आता है। अनूप के नेत्र खुल जाते हैं, वह श्रम के मूलभूत महत्व को स्वीकार करता है। रूपा अपने पति को जीवन के वास्तविक आनन्द, श्रमप्रियता, से परिचित कराती है।

[इ] पति-सुधार

पति के अपरिपक्व स्वभाव के कारण वैवाहिक जीवन में व्यतिक्रम उत्पन्न होने के पश्चात् घटनाचक्र में उसके तप कर सुधरने की कथायें 'संगम' तथा 'प्रत्यागत' में है। 'संगम' में जानकी और उसके पति सम्पतलाल में प्रेम है। सम्पत नशेबाज तथा अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन है, दोनों में कलह होता है। जानकी प्रायः दुःखी रहती है। सम्पत रुपया-प्राप्ति के हेतु स्त्रीवेश धारण कर पंजाबी के हाथ बिकता है। रहस्योद्घाटन होने पर घोर अपमान और क्लेश सहने के कारण उसमें परिवर्तन आता है। वह सुधरता है और अपनी गत भूलों पर पश्चाताप अनुभव करता है। 'प्रत्यागत' में मंगल का अपनी पत्नी सोमवती से स्नेह है। मंगल ठाली बैठने वाला चंचल, उत्तरदायित्वविहीन युवक है। घर से रूठ कर बम्बई और मलाबार भाग जाता है। मलाबार में बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने, घोर क्लेश, अपमान तथा विपत्तियों को झेलने पर उसमें गम्भीरता आती है। वह पत्नी के समक्ष अश्रुधारा बहाकर अतीत की भूलों का प्रायश्चित्त करता है।

[फ] असफल वैवाहिक जीवन

असफल वैवाहिक जीवन की कथायें पांच उपन्यासों में मिलती हैं। पति, पत्नी में किसी एक के चारित्रिक दोष या कर्कशता के कारण इन कथाओं का विकास हुआ है। 'कुंडली चक्र' में रत्नकुमारी का भुजबल से विवाह हो जाने पर वह वैवाहिक जीवन के सुख, सन्तोष का अनुभव नहीं कर पाती। भुजबल रुपये का लोभी और वासना-लोलुप है। वह रुपया तथा जमीन-जायदाद हड़पने के लिये ललित तथा शिवलाल को अपने जाल में फाँसता है। वासना-पूर्त्ति के लिये पूना से बलात् विवाह करना चाहता है। रतन अपने पति की नीचता के प्रति उदासीन रहती है। अन्त में भुजबल की योजनाओं के रहस्यो-

दुर्घटना तथा उसके असफल होने पर ललित भुजबल को सुधरने का उपदेश देता है ।

'अचल मेरा कोई' में कुन्ती तथा सुधाकर के असंयमित रहने के कारण उनका वैवाहिक जीवन नीरस हो उठता है । सुधाकर नित्य नवीनता का इच्छुक है और कुन्ती का अशान्त चित्त अचल की ओर दौड़ता है । पति-पत्नी की परस्पर विरक्ति के दुष्परिणामस्वरूप कुन्ती आत्म-हत्या करती है । 'सोना' में सोना लंगड़े वृद्ध-प्रायः राजा धुरन्धरसिंह से विवाह कर अपनी अतृप्त इच्छाओं को गहनों तथा वस्त्रों की तीव्र पिपासा में परिवर्तित कर देती है । राजा कामुक और प्रभाहीन है । सोना की तृष्णा के कारण दोनों का वैवाहिक जीवन भारस्वरूप हो जाता है । 'अमरबेल' में तीव्र स्वभाव वाली हृष्ट-पुष्ट हरको की अपने चिड़चिड़े दुर्बल पति जोधा तथा क्रूर ससुरालवालों से नहीं पटती । वह मायके भाग आती है । जोधा के झगड़े में मारे जाने के कारण हरको को उससे मुक्ति मिलती है । 'टूटे कांटे' में कर्कशा रोनी अपने निर्धन पति मोहन का घर पर रहना दूभर कर देती है । क्षुब्ध मोहन घर छोड़ कर सेना में भर्ती हो जाता है । अन्त में वृन्दावन में मोहन से भेंट होने पर रोनी सुधरने का प्रयत्न करती है । वह यथासाध्य अपनी कर्कशता का दमन कर मोहन और नूरबाई के साथ रहती है ।

[ज] मंगलमय अन्त के प्रतीक स्वरूप-विवाह

उपन्यास के मंगलमय अन्त के प्रतीक-स्वरूप विवाह करा देने की दो समान घटनायें 'संगम' तथा 'अमरबेल' में मिलती हैं । 'संगम' में रामचरण सुखलाल का अहीरिन से उत्पन्न पुत्र है । विधवा गंगा सुखलाल की आश्रिता है । उपन्यास के अन्त में सुखलाल की हत्या तथा भिखारीलाल की मुकदमेबाज़ी आदि के चिन्ताजनक बादल छँट जाने पर कथा अनिश्चय, विषाद और अन्धकार के क्षेत्र से निकल शान्तिमय वातावरण में आ टिकती है । उस समय कर्तव्यपरायण रामचरण और गंगा का विवाह उपन्यास के मंगलमय अन्त की शुभ सूचना है । 'अमरबेल' में समाजविरोधी तत्वों के विलीन होने के साथ गाँव में ग्रामसुधार तथा सहकारिता योजना के फलस्वरूप आयी हुई समृद्धि के प्रतीकस्वरूप अन्तिम परिच्छेद में उत्साही कार्यकर्ता टहलराम और हरको का गठबंधन दिखाया है । इन वैवाहिक सम्बन्धों की भूमिका के रूप में कथा के मध्य में यत्र-तत्र भावी पति-पत्नी के परस्पर आकर्षण का सूक्ष्म संकेत भी रहता है ।

ऐतिहासिक कथानकों के स्रोत

इतिहासकारों की दृष्टि में नगण्य या उनके द्वारा उपेक्षित सूत्रों को एकत्र कर उनके आधार पर कथा का स्वरूप खड़ा करने में अन्य स्रोतों से उपन्यासकार को सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के तौर पर 'गढ़ कुण्डार', 'बिराटा की पद्मिनी', 'मुसाहिबजू', 'कचनार', तथा 'टूटे काँटे' की मुख्य कथाओं से सम्बन्धित सामग्री के विषय में इतिहास मूकप्रायः है। 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' तथा 'मृगनयनी' की कथाओं के इतिहास में उपलब्ध कंकालों में प्राण फूँकने के लिये भी अन्य साधन अपेक्षित हैं। वर्मा जी की ऐतिहासिक कथाओं के प्रमुख स्रोतों को संक्षेप में इस प्रकार गिनाया जा सकता है—

१. **इतिहास**—उपन्यासकार को अपने आदर्शों और उद्देश्य पर खरी उतरने वाली कथा के जो सूत्र इतिहास से मिले हैं उन्हें उसने ग्रहण कर लिया है। ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा का पूरा प्रयत्न किया गया है। हाँ, जहाँ इतिहास से उद्देश्य-पूर्ति में धक्का पहुँचता है वहाँ उसकी तर्क-बुद्धि सजग हो गयी है। वह विदेशी या उन से प्रभावित इतिहासकारों द्वारा तोड़े-मोड़े गये तथ्यों को संभावना और तर्क की कसौटी पर कसता है। उस विषय पर विभिन्न मतों का विश्लेषण कर परम्पराओं और किम्वदन्तियों का भी आश्रय लेता है। इन सब के आधार पर यदि उसके इच्छा-संकल्प की पुष्टि और तर्क-बुद्धि की तुष्टि हो जाती है तो ठीक है अन्यथा ऐतिहासिक तथ्य को ज्यों का त्यों रख देना उसे वांछित है। उदाहरण के तौर पर, मानसिंह के बहु विवाह तथा अहिल्याबाई के अंधविश्वास आदि की घटनायें सर्वमान्य तथ्य होने के कारण उसी रूप में कथा में रखी गयी हैं।

२. **स्थानीय इतिहास**—अनेक रोचक, शिक्षाप्रद और रहस्यात्मक घटनायें तथा व्यक्तित्व केवल राष्ट्र के उत्थान-पतन के दृष्टिकोण से लिखे गये इतिहासों के द्वारा उपेक्षित होने के कारण अंधकारवेष्ठित अवस्था में यत्र-तत्र दबे पड़े हैं। ज़िलों के भूगोल,इतिहास आदि का ब्योरा प्रस्तुत करने वाले 'गजेटियरों' तथा गाँवों की दस्तूरदेहियों में ऐसे सूत्र प्रायः मिल जाते हैं। इन ब्योरों को इतिहास से भिन्न स्तर पर रखने के लिये 'स्थानीय इतिहास' की संज्ञा देना उचित होगा। 'गढ़ कुण्डार', 'बिराटा की पद्मिनी' आदि की मुख्य कथा का सूत्र इसी स्रोत से संचित किया गया है।

३. **अवशिष्ट वातावरण**—(परम्परायें, किम्वदन्तियाँ तथा पुराने भवनों के खण्डहर तथा स्मारक चिह्न आदि) वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों का संबंध प्रायः बुन्देलखंड से है। (इस विषय पर आगे चल कर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है) बुन्देलखण्ड के आज के वातावरण में भी एक विशेषता है—उसमें पुरातन की गंध। इस भूखंड में अनेक वीर राजा, सरदार और सामन्त हुये हैं। पहले यहाँ राज्य थे और अँग्रेजी शासनकाल में अनेक रियासतें। रियासतों के निवासीगण आधुनिक सभ्यता से अब तक प्रायः अछूते रहे हैं। वे अपने पुरखों के स्थान में बसे हुए पुरातन परम्पराओं को पैतृक सम्पत्ति की भाँति हृदय-कोश में सँजोये चले आ रहे है। वे निर्धन हैं, अपढ़ हैं और आज के युग की दृष्टि में पिछड़े हुए भी किन्तु उनकी गाँठ में हैं राजा, सामन्तों और बुन्देलखण्डी साधारणजन की शौर्य, स्वामिभक्ति, देशप्रेम और स्वाभिमान की 'सनक' की अटूट कथायें। इस सम्पत्ति के प्रति उनके अन्तरतम में आस्था और विश्वास है। उनकी उक्त आस्था ने बुन्देलखण्ड की जीर्ण हो रही परम्पराओं को थपकी दी है, बल दिया है।

बुन्देलखण्ड में यत्र-तत्र बिखरे हुये ऐतिहासिक भवनों, चिह्नों और मूर्तियों के भग्नावशेष भी महत्व की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। भग्नावशेषों के समीप-वर्ती स्थलों के निवासियों के पास उनसे संबंधित जनश्रुतियों और किम्वन्तियों का भरापूरा खजाना है। यही नहीं, निर्जन खण्डहरों की जीर्ण ऊँची-नीची दीवारें, आकाश से आँख मिचौनी करती टूटी-फूटी छतें, ध्वस्त बुर्जे, उनमें घूमते-फिरते जंगली पशु, पास बहते नदी-नाले, टौरियाँ-पहाड़ियाँ और जंगल भावुक कथाकार के कान में अपनी मूक भाषा में बहुत कुछ कह देते हैं। इस वातावरण में पहुँच कर कथाकार की उर्वर कल्पना यदि बीते युग के सजीव, साकार स्वरूप का पुनर्निर्माण कर पाये तो क्या आश्चर्य। कुंडार का गढ़, बिराटा की पद्मिनी के शिला पर अंकित पग-चिह्न, झांसी, धामोनी, ग्वालियर के किले और राई की गढ़ी आदि से उपन्यास की कथाओं में बहुत कुछ संकलित किया गया है।

वर्मा जी की दृष्टि में परम्परा का विशेष महत्व है। वे कहते हैं—

'परदेशियों के तोड़-मरोड़ कर लिखे हुये इतिहास पटकें खाये हुये उस चमकते हुये टीन के कनिस्टर के समान हैं जिसमें सुन्दर से सुन्दर चेहरा अपने को कुरूप और विकृत पाता है। परन्तु परम्परा अतिशयता की गोद में खेलती हुई भी सत्य की ओर संकेत करती है। इसलिये मुझको परम्परा इतिहास से भी अधिक आकर्षक जान पड़ती है।'[1] वे अपने अभ्यास के अनुसार ऐति-

१. **कचनार (परिचय)**—पृ० ६

हासिक कथा के निर्माण में इतिहास और परम्परा दोनों का उपयोग करते हैं।

४. **बीती घटनायें**—हमारे आस पास के संसार में आये दिन अनेक घटनायें घटित होती रहती हैं। उनमें से बहुत सी मानव जीवन को कुछ सन्देश देती हैं। उसे कुछ सिखाती हैं, उसका मनोरंजन भी करती हैं। जन जीवन के महत्व की ये घटनायें इतिहास में लिखी नहीं गयीं और न कभी लिखी ही जायेंगी, ये कथाकार की कल्पना को उद्दीप्त करने के साथ उसे कथा रूपी मूर्ति के निर्माण के हेतु ठोस मिट्टी भी प्रदान करती हैं। कथाकार उस मिट्टी को जहाँ-तहाँ से एकत्र कर, काट कर, तराश कर एक नवीन सुगठित रूप प्रदान करता है। ऐसी घटनायें अनुभूत सत्य होने के साथ कोरी कल्पना से अधिक मनोरंजक हैं। किसी ने ठीक कहा है, 'तथ्य कल्पना की अपेक्षा अद्भुत होता है।'

वर्मा जी ने विभिन्न स्थलों और विभिन्न कालों की असम्बद्ध घटनाओं को आवश्यकतानुसार एक लड़ी में गूँथ कर सुयोजित माला का रूप दिया है। उनके हाथों एकत्रित घटनाओं के घोलमेल (प्रोसेस आफ़ एक्यूम्यूलेशन एण्ड एसीमिलेशन) द्वारा अनेक कथाओं का निर्माण हुआ है, क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक उपन्यासों में। वर्मा जी कोरी कल्पना के आधार पर निर्मित कथा साहित्य को महत्व प्रदान नहीं करते।[१]

५. **लोक कथायें**—जन समुदाय के हृदयों में समायी हुई ये कथायें जीवन के सत्य का प्रतीकात्मक विधि से उद्घाटन करती हैं। कथाओं को मनोविज्ञान, एवं तर्कसंगत रूप प्रदान करने पर वे आधुनिक पाठक को भी ग्राह्य हो जाती हैं। यह प्रयोग 'सोना' उपन्यास में किया गया है।

---

१. शुरू से ही मेरा स्वभाव तथ्यों की खोज और उनसे आधार पर लिखने का रहा है। मेरा एक सूत्र है, अंग्रेजी में—क्रिएटिव ट्रीटमेन्ट आफ एक्चुअलिटी—तथ्य या वास्तविकता की सृजनात्मक रचना। इसलिए हर उपन्यास या कहानी में कोई न कोई छोटी बड़ी समस्या लुके-छिपे या कुछ खुले हुए रख देता हूँ नहीं तो कोरे फिक्शन के बारे में मेरा भी वही मत समझिये जो हैरल्ड निकल्सन का है। मात्र मनोवैज्ञानिक चरित्रों के समावेश या यौनवासनाओं के उद्घाटन वाले फिक्सन का भविष्य तो क्या वर्तमान भी मुझे कुछ अच्छा नहीं जान पड़ता, क्योंकि, मेरे मत में, समाज के लिए उनकी उपयोगिता बहुत नहीं है। मैंने अपने लिए जो ध्येय ४० वर्ष पहले स्थापित कर लिया था वह परिधि में बढ़ा ही है। घटा नहीं है।

—वर्मा जी का पत्र, २८-१-१९५६

६. **कल्पना**—जैसा कि कहा गया है, वर्मा जी कोरी गल्प को विशेष महत्व प्रदान नहीं करते। फिर भी वे इतिहास, स्थानीय इतिहास, अवशिष्ट वातावरण, बीती घटनाओं तथा लोक कथाओं से एकत्रित सामग्री को सजाने, संवारने और उन्हें शृङ्खलाबद्ध एवं सोद्देश्य रूप प्रदान करने में कथाकार-सुलभ कल्पना का प्रयोग करते हैं। कल्पना उनके हाथों कुम्हार की मिट्टी का नहीं वरन् प्रायः उसकी काट-छाँट करने वाली डोरी का कार्य करती है।

कुछ कल्पनायें उन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं, उन्हें वे किसी न किसी रूप में उपन्यासों में ला सजाते हैं। पूर्व किये गये समान कथाओं के विश्लेषण से उनकी कल्पना-शक्ति की यह देन स्पष्ट हो जाती है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास

वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के प्रयोग पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा। 'गढ़ कुण्डार' में मुख्य कथा का सूत्र ऐतिहासिक है, शेष कलेवर अन्य स्रोतों से संगृहीत। यहाँ इतिहास कथाओं में हृदयग्राही रंग भरने वाला साधन मात्र है। वर्मा जी ने स्वीकार किया है, 'इस उपन्यास की घटनाओं के परिचय के लिए और कुछ लिखने की आवश्यकता न होती, परन्तु उसमें यत्र-तत्र तत्कालीन इतिहास की चर्चा है, इसलिए यहाँ थोड़ा सा विशेष परिचय देने की आवश्यकता पड़ी।...'[१] 'विराटा की पद्मिनी' की मुख्य कला देव और मनुष्य-चरित्र के बल और दुर्बलता के मिश्रण में है। वर्मा जी को कुमुद परम्परा में देवी के रूप में मिली है। अन्धविश्वास की उस धारणा में मानवसुलभ स्वाभाविकता ला रखने के लिए कुमुद के जीवन में प्रणय की कल्पना की गयी है। प्रणय का पात्र कुंजरसिंह और उससे संबंधित घटनायें अन्य काल और अन्य स्थल से लाकर यहाँ रख दी गई हैं। कुमुद के प्रसंग में कल्पना का यह योग मुख्य कथा को 'मिश्रित इतिहास' का रूप प्रदान करता है। बहुत सी सत्यमूलक घटनायें अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूँथ दी गयी हैं। 'मुसाहिबजू' में मिटती हुई सामन्तशाही का चित्र है। इसका स्रोत स्थानीय इतिहास है। 'झांसी की रानी' में वर्मा जी का लक्ष्मीबाई से परम्परागत सम्बन्ध है। उनके पास उस वीरांगना से संबंधित अनेक कहानियों की धरोहर थी। उन्हें इतिहास के कंकाल में मांस और रक्त का संचार करने के लिए उपन्यास ही अच्छा साधन प्रतीत हुआ। यहाँ इतिहास प्रधान है और उपन्यास उसकी

१— गढ़ कुण्डार— (परिचय) पृ० २१

अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया है। 'कचनार' में 'झांसी की रानी' की ऐतिहासिकता की प्रतिक्रिया है, वर्मा जी औपन्यासिकता की ओर फिर मुड़ते हैं। इस उपन्यास की मुख्य कथा भी 'विराटा की पद्मिनी' की भाँति मिश्रित इतिहास के आधार पर है। 'मृगनयनी' में मानसिंह तथा मृगनयनी का क्रम-बद्ध तथा इतिहाससम्मत विवरण लक्ष्य होते हुए भी कथानक को सजाने-संवारने के हेतु कल्पना, व्याख्या तथा परम्पराओं को पर्याप्त स्थान मिला है। 'टूटे काँटे' की मुख्य कथा 'मिश्र' है, उसके नेपथ्य में रहने वाली कई कथायें शुद्ध ऐतिहासिक हैं। 'अहिल्याबाई' में ठेठ ऐतिहासिकता है, औपन्यासिकता को इस अतिशयता से धक्का पहुँचा है। ऐतिहासिकता में तथ्य और उपन्यासों में रोचकता का तत्व रहता है। इन दोनों तत्वों के मिश्रण की दृष्टि से उपर्युक्त उपन्यासों में एक क्रम दृष्टिगोचर होता है। पहले उपन्यास में इतिहास सुरक्षित है फिर भी औपन्यासिकता का अनुपात अधिक है। दूसरे, पाँचवें, सातवें उपन्यास में औपन्यासिकता प्रधान है। चौथे में इतिहास की ओर अधिक झुकाव है और आठवें में उसका बाहुल्य है। छठे उपन्यास, 'मृगनयनी' में इतिहास और उपन्यास के तत्वों का समन्वय है।

सामाजिक उपन्यासों के कथाओं के स्रोतों के विषय में अधिक कथन अपेक्षित नहीं है। उनके कथानकों के मूल में कल्पना और उससे अधिक 'बीती हुई घटनायें' हैं।

अध्याय ४

वर्माजी के उपन्यासों में पात्र और चरित्र-चित्रण

पात्र और सजीवता

उपन्यास अपने आप में एक सृष्टि है। इस सृष्टि में न जाने कितनी घटनाएँ घटती हैं। इन घटनाओं तथा कार्यकलापों के जन्मदाता है औपन्यासिक सृष्टि के जीव, नर-नारी या पात्र। उपन्यासकार को पात्र-निर्माण तथा उनकी संचालन-क्रिया में जगत् के स्रष्टा के कौशल से होड़ लेनी पड़ती हैं। इस जगत् के स्त्री-पुरुषों जैसे स्वाभाविक सजीव पात्रों के सृजन में ही उसकी सफलता निहित है। पात्रों की सजीवता की कसौटी है पाठकों की उनके प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया। यदि पाठक उन्हें साधारण स्त्री-पुरुषों के रूप में ग्रहण करते हैं, उनसे वैसी ही सहानुभूति, स्नेह और घृणा करते हैं जैसी संसार के अन्य जाने-बूझे लोगों के साथ, तो पात्र निस्सन्देह सजीव हैं, स्वाभाविक हैं।

पात्र इसी संसार की मिट्टी से बने हों। अलौकिक न हों। उपन्यासकार उनका सृजन कर उन्हें उनके पैरों पर चलने दे। वे अपनी स्वतन्त्र संकल्प-शक्ति से संचालित हों। सजीव पात्रों की निर्माण सम्बन्धी समस्या पर निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रकाश डालती हैं—'अलौकिकता [1] तथा निर्जीवता पात्रों के व्यक्तित्व का साधारणीकरण नहीं होने देतीं। वे हमारे राग-विराग के पात्र नहीं बन पाते। पात्र-निर्माण में लेखक की कल्पना-शक्ति की परीक्षा होती है। इसी शक्ति के द्वारा पात्रों का व्यक्तित्व ऐसा बन जाता है कि वे हमें आकर्षित करते हैं। थैकरे ने कहा था कि मैं अपने पात्रों का अनुशासन करने में असमर्थ हो जाता हूँ। वे मुझे जहाँ चाहते हैं ले जाते हैं। इसमें तथ्य इतना ही है कि पात्रों को लेखक ने स्वतन्त्र संकल्प-शक्ति से सम्पन्न कर दिया है। स्वतन्त्र मनोवेगों से प्रेरित होकर कभी-कभी वे ऐसे कार्य कर जाते हैं कि जिनका लेखक को अनुमान भी नहीं होता, यह कल्पना शक्ति की चरम सीमा है। ऐसे ही पात्र हमारे जीवन में प्रेरक बन जाते हैं। परन्तु जो पात्र लेखक

१. अलौकिकता के अर्थ हैं, अपौरुषेय, दानवीय, असंभव विचित्र कल्पनाओं का संयोजन। तिलस्म तथा जादू के चमत्कार, दैवी कारनामे। ऐसी घटनाओं अथवा वर्णनों के समावेश से एक अवास्तविक और मिथ्या वातावरण पैदा हो जाता है। इससे मानवीय भावनाओं की प्रेषणीयता कम हो जाती है, यही साधारणीकरण में बाधा डालती है।

के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं उनके व्यक्तित्व की गरिमा नहीं रह जाती। मानवता की सामान्य भूमि पर लेखक कल्पना की कूँची से जो रङ्ग भरता है वह अव्याप्ति व अतिरंजना से बचकर सजीव पात्रों को जन्म देता है। सजीव पात्र हमारे वास्तविक जगत् की प्रतिकृति होते हैं जिनके चरित्र के विकास को उपन्यासकार कल्पना के द्वारा साक्षात्कार कर लेता है और उसे औपन्यासिक योजना के द्वारा प्रस्तुत कर देता है।'[1]

चरित्र

चरित्र से तात्पर्य है पात्र या मनुष्य के व्यक्तित्व का बाह्य और आन्तरिक स्वरूप। मनुष्य का बाह्य (उसका आकार-प्रकार, वेश-भूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल, बातचीत का निजी ढंग तथा कार्यकलाप) उसके अन्तः-करण का बहुत कुछ प्रतीक होता है।[2] उसका यह 'अन्तः' क्या है? मनो-वैज्ञानिक मानव के चरित्र के अन्तर्गत उसके आन्तरिक गुणों पर ही विचार करते हैं। सुप्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक रॉस का मत है कि चरित्र हमारी मूल-प्रवृत्तियों तथा स्थायी-भावों से सुसंगठित शासक-स्थायी-भाव है। इस संगठन की पूर्णता या शैथिल्य पर ही चरित्र की प्रबलता और दुर्बलता निर्भर है।[3] मूलप्रवृत्ति प्राणियों में पायी जाने वाली एक जन्मजात मानसिक गठन या वृत्ति है। यह वृत्ति दी हुई परिस्थितियों में प्राणी की गतिविधि विशेष को निश्चित करती है। मैग्डूगल ने चौदह मूल प्रवृत्तियाँ—सन्तान-कामना, युयुत्सा, कुतूहल, योजनान्वेषण, विरक्ति, पलायन, सामूहिकता, आत्म-गौरव, दैन्य, काम-प्रवृत्ति, विधायक-वृत्ति, शरणागति तथा हासवृत्ति—स्वीकार की हैं।[4] इन्हीं के आधार पर सम्बद्ध वात्सल्य-स्नेह, क्रोध, आश्चर्य, भूख-प्यास तथा घृणा आदि १४ संवेग उसने माने हैं।

सुख, दुःख, पीड़ा आदि आन्तरिक अनुभूतियाँ राग कहलाती हैं। किसी कारण से जब ये राग प्रबल रूप धारण कर व्यक्त हो उठते हैं, संवेग कहलाते है।जब अनेक संवेग किसी एक वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार से सम्बद्ध हो हमारे मन में एक संस्कार उत्पन्न कर देते हैं उस समय मानसिक गठन में संस्कारों का यह स्थायी संगठन 'स्थायी-भाव' की संज्ञा पाता है।'[5]

---

१. समीक्षा के सिद्धान्त—पृ० १३६-१३७
२. काव्य के रूप—पृ० १७८
३. ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० १२६
४. ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० ५६ से ६२
५. शिक्षा-मनोविज्ञान की रूप-रेखा—पृ० १२१, १२६

अतः मनुष्य के व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष उसके हाड़-मांस के बाह्य व्यक्तित्व के किसी कोने में, अन्तःकरण में, सुप्त सा छिपा रहता है। चरित्र-चित्रण करते समय उपन्यासकार पात्र के आन्तरिक गुणों को गुह्य अन्धकार से जगत् के प्रकाश में लाने के उद्योग में लगा रहता है। वह पात्र की मूल प्रवृत्तियों, संवेगों तथा स्थायी-भावों को गिनाता नहीं वरन् ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है कि जिनसे पात्र का संघर्षण होने पर उसके दबे-ढके गुण स्वतः स्वाभाविक रूप से बाहर उभर आयें। इस प्रकार पात्रों के चरित्र को स्पष्ट और विकसित करने का कार्य परिस्थितियाँ, घटनायें या उपन्यास की कथावस्तु करती है। चरित्र का विकास शनैः शनैः होने पर ही उसकी स्वाभाविकता और आकर्षण की रक्षा सम्भव है।

पात्रों के प्रकार

पात्रों को उनके चरित्र की विशेषताओं तथा परिवर्तनशीलता के आधार पर दो प्रकार के भेदों में विभाजित किया जा सकता है। यदि पात्र किसी एक वर्ग की विशेषताओं का प्रतीक है और उसके वर्ग के अन्य जनों से भिन्नता स्थापित करने वाले निज के गुणों का अभाव हैं तो वह 'सामान्य', 'वर्गगत' या 'प्रतिनिधि-पात्र' कहा जाएगा। निज की विशेषताओं को लेकर उपन्यास में पदार्पण करने वाले 'व्यक्तित्व-प्रधान-पात्र' है। उनके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्तित्व नहीं आ सकता है। अपनी विशेषताओं के कारण वे विलक्षण हैं, असामान्य हैं। यह बात मोटे तौर पर पात्रों का विभाजन करने के लिये कही जा सकती है। सामान्यता या विलक्षणता का अतिरेक होने पर पात्र में निर्जीवता अथवा अस्वाभाविकता आ जाना निश्चित है।

पात्रों का दूसरा विभाजन उनकी परिवर्तनशीलता की दृष्टि से है। यदि पात्र परिस्थितियों तथा अनेक घटनाओं के घात-प्रतिघात से प्रभावित नहीं होता, उसमें विशेष परिवर्तन के लक्षण नहीं दीख पड़ते तो वह 'स्थिर-चरित्र' है। इसके विपरीत यदि उसमें बाह्य परिस्थितियों के प्रति अधिक संवेदनशीलता है तो निश्चय ही उसके जीवन में उत्थान-पतन के पग-पग पर अवसर आयेंगे। वह गतिशील अथवा परिवर्तनशील पात्र कहा जा सकता है।[1]

चित्रण-विधि

पात्रों के चरित्र-चित्रण की दो विधियाँ प्रचलित हैं, प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक तथा परोक्ष या अभिनयात्मक। प्रत्यक्ष पद्धति में उपन्यासकार आलोचक या वैज्ञानिक का रूप धारण कर लेता है। वह पात्र की चारित्रिक गुत्थियों

१. काव्य के रूप—पृ० १७६

को अलग-अलग रखकर उन पर प्रकाश डालता हुआ उनका विश्लेषण करता है। पाठक को पग-पग पर अनुभव होता है कि उसके तथा पात्र के मध्य एक 'दुभाषिया' भी है जो पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने में सहायता करता है। विश्लेषात्मक पद्धति से पाठक को पात्र का चरित्र समझने में सरलता होती है किन्तु दुभाषिये की निरन्तर उपस्थिति के कारण पाठक तथा पात्र के मध्य एकाग्रता, सामीप्य और निजत्व (प्राइवेसी) के भङ्ग हो जाने की पूरी आशंका है। इस पद्धति के प्रयोग के आधिक्य के अर्थ हैं उपन्यासकार की चरित्र-चित्रण-कला में पटुता का अभाव। जब वह पात्रों के क्रियाकलाप तथा पात्रों के पारस्परिक विश्लेषण द्वारा उनके चरित्र को ध्वनित करने में अपने आपको पूर्णतया योग्य नहीं पाता तभी उनकी चारित्रिक व्याख्या और स्पष्टीकरण के लिये पात्रों को एक ओर धकेल स्वयं पाठक के सामने आ उपस्थित होता है। उक्त पद्धति का प्रयोग संयमपूर्वक हो किन्तु इसका सर्वथा बहिष्कार करने पर हम नाटक की अपेक्षा औपन्यासिक क्षेत्र में मिले अभिव्यक्ति के एक नवीन साधन से अनायास हाथ धो बैठेंगे। नाटक-रचना में विश्लेषात्मक पद्धति का कोई स्थान नही है किन्तु उपन्यासकार इसका प्रयोग करने के लिये स्वतंत्र है। अतः उपन्यासकार को इस स्वाभाविक देन से वंचित करने का अर्थ होगा उसकी स्वतंत्रता का हनन तथा उस पर नाटककार को बलपूर्वक थोपना।[१]

चरित्र-चित्रण की दूसरी विधि परोक्ष या अभिनयात्मक है। इसमें उपन्यासकार पात्र को कुछ गुणों से विभूषित कर, उसमें प्राण फूँक, अलग जा खड़ा होता है। पात्र अपने पैरों पर चलने लगता है। उसके कार्यकलाप, और परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ ही स्वमेव चरित्र को स्पष्ट करती चलती है। वह कभी-कभी स्वयं अपना विश्लेषण करता है और कभी अन्य पात्र चर्चा में उसकी विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। उसका स्रष्टा उपन्यासकार उसके तथा पाठक के बीच नहीं आता। पात्र घटना-प्रवाह में उभरते-डूबते, बहते चलते है और उपन्यासकार किनारे खड़े उत्सुक दर्शक पाठकों की भीड़ में जा मिलता है। वहीं तटस्थ की भाँति अपने पात्रों के रंग-मंच पर होते अभिनय को मनोयोग से देखता रहता है। चित्रण की दोनों प्रणालियों का अपना महत्व है। परोक्ष तथा प्रत्यक्ष विधियों का उपन्यास में उपयुक्त मात्रा में सतुलित प्रयोग करने पर पात्र का चरित्र हृदयग्राही और सजीव हो सकता है।

१. दि स्टडी ऑफ लिट्रेचर—पृ० १६४

पात्र तथा कथानक

उपन्यास में कथा तथा पात्रों का सम्बन्ध अविभाज्य है। पात्रों का क्रिया-कलाप कथा को जन्म देता है और कथा की नूतन परिस्थितियाँ पात्रों को उन का व्यक्तित्व विकसित करने का अवसर प्रदान करती हैं। यदि दोनों में से किसी एक के अपेक्षाकृत अधिक महत्व का प्रश्न उठाया जाय तो उपन्यास में पात्र निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार करने होंगे। उपन्यास का ध्येय है मानव-चरित्र का चित्रण। इस चरित्र के चित्रण के हेतु घटनाओं का संयोजन आवश्यक है। अतः उपन्यास में साध्य है मानव-चरित्र का चित्रण और साधन है घटनाएँ। यही घटनाएँ कथानक हैं। यदि इन घटनाओं को शृंखलाबद्ध कर एक लक्ष्य की दिशा में संयोजित कर दिया जाय तो कथा का रोचकता की दृष्टि से आकर्षण तथा लक्ष्य विशेष की दृष्टि से महत्व कहीं अधिक हो जाए। वैसे पात्र तथा वस्तु में परस्पर कुछ न कुछ विरोध अवश्य रहता है। जहाँ वस्तु का अधिक ध्यान रखा जाता है वहाँ पात्रों से वस्तु के अनुकूल कार्य लेना अनिवार्य हो जाता है। और जहाँ पात्रों के चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया जाता है वहाँ चरित्र के क्रमशः विकसित होने और तदनुसार घटनाचक्र के अग्रसर होने से वस्तु की शृङ्खला और उसका सामंजस्य, दोनों प्रायः अव्यवस्थित हो जाते हैं। अतः उपन्यासकार की सफलता इस में है कि वह पात्रों का यथोचित वर्णन करते हुए भी कथा-योजना को भग न होने दे।

वर्मा जी के पात्र

वर्मा जी के उपन्यासों में प्रमुख-गौण सभी पात्र मिलाकर संख्या में ३२५ के लगभग हैं। उनकी चरित्र-चित्रण-शक्ति पर विशेष प्रकाश डालने वाले प्रमुख पात्रों का विवेचन यहाँ किया जाता है।

सर्वप्रथम 'गढ़ कुण्डार' के नायक नागदेव को लेते है। उपन्यास का मुख्य कथा का मुख्य पुरुष-पात्र उपन्यास का नायक है। उपन्यास वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली कथा है। उसका नायक भी प्रायः समाज के साधारण मनुष्य का प्रतिनिधि रहता है। समय बदल चला है, मानव की अभिरुचि भी। अनोखे, असाधारण, महत और आदर्श चरित्रों का निरन्तर दर्शन करते-करते पाठकों में उनके प्रति रुचि कम हो गई है। अब भी वैभव, ख्याति तथा रूप-सौंदर्य आदि गुणों को मुख्य पात्रों का अनिवार्य अंग मानकर चलना संगत न होगा। वास्तविकता तथा सजीवता आज की

चरित्र-चित्रण-कला की आदर्श हैं। उपन्यासकार चरित्र को स्पष्ट करने के लिए बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा पात्रों के आंतरिक द्वन्द्वों का अवलम्ब अधिक ग्रहण करता है। आधुनिक नायक के चरित्र में उत्थान-पतन की आड़ी-तिरछी रेखायें खिंची रहती हैं। वह पूर्ण रूप से अच्छाई या बुराई, किसी एक के निश्चित साँचे में नहीं ढाला जा सकता। उसमें अच्छे-बुरे का द्वन्द्व रहता है। यही अच्छाई-बुराई का अनुपात उस की निज की विशेषता है और यह द्वन्द्व है उसके विकासमय व्यक्तित्व का मूलमंत्र। आधुनिक नायक किसी विशेष प्रकार के चरित्र का प्रतिनिधि नहीं होता और न किसी विशेषता का मूर्त्त रूप ही। वह साधारण मनुष्य होता है, अपने बल तथा दुर्बलताओं, दोनों से युक्त।[1]

नागदेव की शारीरिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं—रंग सांवला, सीना बहुत चौड़ा, हाथ छोटे परन्तु बहुत पुष्ट, सारी देह जैसे साँचे में ढाली गई हो। लम्बे काले बाल। मस्तक छोटा। आँखें बड़ी, बहुत काली, सजग और जल्दी जल्दी चलने वाली। नाक सीधी परन्तु छोटी। भौंहें मोटी और गुच्छेदार। ठोड़ी चौड़ी और आगे को झुकी हुई। चेहरा गोल। होंठ कुछ मोटे।

बाह्याकृति और अन्तःकरण

क्या पात्र की बाह्य आकृति से उसके अन्तःकरण और स्वभाव की पहचान की जा सकती है? यह प्रश्न मनोविज्ञान का है। आकृति-सामुद्रिक (फिज़ियॉग्नमी) के प्रवर्तक लवैटर ने कुछ परीक्षणों के आधार पर चेहरे की आकृति से बुद्धि का अनुमान लगाने का दावा किया था। उसने व्यक्तियों की नाक, दाँत, कपोल तथा भौंहों आदि की आकृति के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर एक विशिष्ट आकृति के लिए एक विशिष्ट मानसिक गुण का

१. प्राचीन आदर्शों और वर्तमान आदर्शों में इस बात का अन्तर हो गया है कि पहले नायक प्रख्यात और उच्चकुलोद्भव होता था अब होरी किसान भी उपन्यास का नायक बन जाता है। पहले प्रख्यात नायक इसीलिए रहता था कि जिससे सहृदय पाठकों का सहज में तादात्म्य हो जाय, अब लोगों की मनोवृत्तियाँ कुछ बदल गई हैं। आभिजात्य का अब उतना मान नहीं रहा है, इसीलिए होरी के सम्बन्ध में पाठकों का सहज ही तादात्मय हो जाता है। पात्र के कल्पित होने से भी उसके साधारणीकरण में बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि वह प्रायः अपनी जाति का प्रतिनिधि होता है।

सिद्धान्त और अध्ययन—पृ० २८०। तथा देखिए हिन्दी उपन्यास—पृ० १६ १७ तथा समीक्षा के सिद्धान्त...पृ० १३९, १४०

समर्थन किया। किन्तु बाद के प्रयोगों और निष्कर्षों के फलस्वरूप आधुनिक मनोविज्ञान ने आकृति-सामुद्रिक को निराधार सिद्ध कर दिया है यद्यपि जन-साधारण का उस पर कुछ न कुछ विश्वास अब भी दिखलाई पड़ता है। फ्रांस के गॉल ने मस्तिष्क-विज्ञान (फ्रेनॉलॉजी) के सिद्धान्त पर सिर के आकार के आधार पर बुद्धि के अनुमान की युक्ति निकाली थी। ऐसे ही अनेक सिद्धांत प्रचलित हुए किन्तु सन् १९०६ ई० में प्रो० कार्ल पियर्सन ने ५००० बालकों पर प्रयोग कर सिद्ध कर दिया कि सिर की बनावट, मुखाकृति तथा शारीरिक अवयवों और व्यक्ति की मानसिक योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है।[1]

वर्मा जी स्वयं भी मनुष्य के बाह्याकार का उसके स्वभाव से सम्बन्ध जोड़ने के अधिक पक्षपाती नहीं हैं। उनके पात्रों के बाह्य स्वरूप की सृष्टि आकृति-सामुद्रिक संबंधी किसी ग्रंथ के आधार पर नहीं हुई है वरन् वह उपन्यासकार के निजी अनुभव की देन है।[2] वे पात्र के शारीरिक अवयवों का सूक्ष्मतम ब्योरा प्रस्तुत करते हैं पाठक की कल्पना में एक चित्र खड़ा करने के लिए।

यदि नागदेव की आकृति को आकृति-सामुद्रिक की कसौटी पर कसा ही जाए तो वह अपनी पुष्ट देह, छोटे मस्तक, छोटी नाक आदि के कारण आदिम गुणों से विशेषतया युक्त सिद्ध होता है।[3] आकृति-सामुद्रिक मनोविज्ञान-सम्मत न ठहराये जाने के कारण हम अन्य पात्रों पर इस दृष्टि से विचार नहीं करेंगे।

उग्र प्रणयी नागदेव और अग्निदत्त

नागदेव (गढ़ कुंडार) स्वभाव से रसिक है, उन्मादक प्रेम का उपासक और इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने पर हिंसक भी। प्रणय में किसी को अपना आराध्य बनाकर उसके चरणों में जीवन तक न्यौछावर कर डालने की आकांक्षा से वह उमंगित है। भरतपुरा की गढ़ी में आकर ठहरने के साथ ही उसकी सोहनपाल की रूपसी कन्या हेमवती के प्रति तीव्र लालसा का हमें

---

१. ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० २२१ से २२५ तथा माडर्न ऐज्यूकेशनल साइकॉलॉजी—पृ० ४०२ से ४०५

२. मेरे उपन्यासों के जितने पात्र हैं यह सब मेरे जीवन के अनुभवों के परिणाम हैं। उनमें से बहुत से तो मेरे संम्पर्क में आये हैं। फिलियॉग्नमी पर एक पुस्तक कुछ वर्ष हुए पढ़ी थी। उसके कुछ निष्कर्षों से मैं सहमत नहीं हूँ।—वर्मा जी का पत्र, २१-१२-५६

३. साइकॉलॉजिकल टेस्ट्स आफ़ एडयूकेबिल केपेसिटी—पृ० ३

बोध होता है। वह प्रेयसी को अपना सब कुछ समर्पित कर देने को लालायित है किंतु इच्छापूर्ति में बाधा पड़ने पर भयंकर सिद्ध हो सकता है, इस तथ्य का संकेत उसी समय मिल जाता है। यही नहीं, बिना घमासान के उसे प्रेम फीका सा जान पड़ता है। अपने मित्र अग्निदत्त से कहता है—'समझ में मेरी भी नहीं आता कि मैं हेमवती को सहज ही पा जाऊँगा। युद्ध और प्रेम मे शायद ही किसी को सहज ही विजय मिली हो। बिना घमासान के दोनों फीके हैं।'[1] प्रेम का उन्मत्त पुजारी होने के कारण वह सहज विवेक खो बैठता है। हेमवती द्वारा स्पष्ट रूप से तिरस्कृत होने के पूर्व सदैव उसे अपने प्रति आकृष्ट समझने के भ्रम में रहता है। हेमवती के समक्ष प्रणय-निवेदन करते समय उसकी उत्तेजना पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। हेमवती की तीव्र भर्त्सना पर भी उसके बुद्धि-नेत्र नहीं खुलते। उत्तेजना बढ़ती जाती है और उसका प्रेम-प्रलाप भी। अन्त में पूर्णतया मान-मर्दित हो जाने पर ही उसे चेत आता है। स्वभाव से सरल, निष्कपट, उद्धत तथा प्रबल नागदेव का उत्तेजित प्रेमी प्रतिक्रिया करता करता है। नागदेव येन-केन-प्रकारेण हेमवती को प्राप्त करने के लिये अनुचित साधनों पर उतर आता है। उसमें घोर प्रतिहिंसा करवट लेकर जाग उठती है। वह अपनी असफलता पर पश्चाताप करता है और अपमान का बदला लेने के लिये क्रुद्ध सर्प की भाँति फुफकार उठता है। अपने साथियोंसहित हेमवती के अपहरण में असफल होने पर उसकी कुण्ठा स्वयं को सुरा में डुबोकर भूल जाने का प्रयत्न करती है। पीता तो पहले भी था किंतु थोड़ी। सुरापान की मात्रा बढ़ गई। वह मदिरा के नशे में आत्म-विस्मृत था और नशे के बाहर आत्म-पीड़ित।

उसमें उदारता निरभिमानता तथा सद्भावना है।[2] असहिष्णु भी परले सिरे का है। अभिन्न बाल-मित्र अग्निदत्त को अपनी बहिन से प्रेम करते देख आगबबूला हो उठता है और उसे घोर अपमानित कर कुंडार से निकाल देता है। नागदेव के असहिष्णु मस्तिष्क में जाति-पांति सम्बन्धी उदारता, मित्रता तथा स्वयं प्रेमी होने के नाते अन्य प्रेमी के प्रति सहानुभूति के भाव पल भर के लिये नहीं टिकते। इस प्रकार हम देखते हैं कि नागदेव की प्रवृत्तियाँ, संवेग और भाव प्रचंडतम या नग्नतम रूप में हैं, उनमें संतुलन और संस्कार का अभाव है।

---

१. गढ़ कुंडार—पृ० १०१

२. वही—देखिए क्रमशः पृ० १४५, १७२, २७६ तथा २८०

नागदेव के चरित्र में तत्कालीन सामन्तों जैसी सनक, उत्तेजना, असहिष्णुता तथा प्रतिक्रिया के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उसके चरित्र में अनेक गुणों का अपूर्व घोलमेल है। वह अपने कार्यकलाप में निज का बाँकापन लिए हुए है। अतः उसे विलक्षण चरित्र का पात्र कहना उपयुक्त होगा। साथ ही वह गतिशील है। विभिन्न परिस्थितियों में उसके चरित्र के नये-नये पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। आशा के सुनहरे क्षणों में वह उदार, समर्पणाकांक्षी प्रेमी है, निराशा की घड़ी में क्रुद्ध नाग की भाँति हिंसक तो स्वार्थ-हनन के अवसर पर कराल क्रोधी। उसके चरित्र में अस्वाभाविकता किसी प्रकार की नहीं है। वह जो कुछ करता है अपने मौलिक स्वभाव के अनुसार।

नागदेव का चरित्र विभिन्न परिस्थितियों में पड़ने के बाद शनैः शनैः स्पष्ट होता है किन्तु उपन्यासकार ने प्रारंभ में उसके गुणों को गिनाने का लोभ संवरण नहीं कर पाया है।[1] पूरे दो पृष्ठों में उसकी आकृति तथा स्वभाव का परिचय दिया गया है। इन दो पृष्ठों के अतिरिक्त सम्पूर्ण उपन्यास में नागदेव के चरित्र का चित्रण नाटकीय विधि से हुआ है। नागदेव आत्म-विवेचन तथा अपने कार्य-कलापों द्वारा स्वयं को स्पष्ट करता है।

नागदेव का उपन्यास की कथा से घनिष्ट सम्बन्ध है। उसके क्रियाकलाप घटनाओं को जन्म देते हैं, वह हेमवती पर मुग्ध हो बुन्देलों को सहायता का वचन देकर उन्हें कुंडार के संपर्क में लाता है। हेमवती की ओर से नाग के निराश होने पर बुन्देलों और खंगारों में मनोमालिन्य होता है और फलस्वरूप बुन्देलों द्वारा कुंडार का पतन। कथा पूर्वनियोजित है किन्तु नाग के चरित्र को स्वाभाविक विकास का अवसर देती है। नागदेव का सजीव और आकर्षक चरित्र पाठकों के हृदय पर अपना चिह्न छोड़ जाता है।

अग्निदत्त (गढ़ कुंडार) प्रासंगिक कथा का मुख्य पुरुष पात्र है। उसकी आयु सत्तरह या अठारह वर्ष की है। वह स्वभाव से दृढ़, वीर, स्वाभिमानी, जाति-पाँति सम्बन्धी बन्धनों का विरोधी, महत्वाकांक्षी, मनमौजी, युद्ध-कुशल, प्रतिहिंसी तीव्रबुद्धि और उग्र है। मानवती के प्रति उसका प्रणय उसके चारित्रिक गुणों को उभारने तथा प्रकाश में लाने का माध्यम बनता है। अग्निदत्त ब्राह्मण है। वह खंगार राजपुत्री मानवती से प्रेम करता है। प्रचंड प्रेम, जिसमें किसी प्रकार की सामाजिक बाधा को कोई स्थान नहीं। वह भरे किले से मानवती को ले भागने के लिए कटिबद्ध है नागदेव द्वारा योजना में विघ्न पड़ने तथा उससे घोर अपमानित होने पर निराश और कुंठित

---

१. गढ़ कुण्डार—पृ० २६

अग्निदत्त की उग्रता मार्ग पकड़ती है प्रतिहिंसा और आत्मघाती वृत्ति का। मानवती की सगाई अन्यत्र निश्चित होने की बात सुनकर उसकी आत्मघात की इच्छा पहले भी मचली थी। असफलता और अपमान के बाद तो वह उसी क्षण मृत्यु चाहता है। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर अन्त में सहयोगी बुन्देलों से लड़-भिड़ कर मारा जाता है।

नागदेव का दुर्व्यवहार उसमें नाग तथा खंगार मात्र के प्रति घोर घृणा और दुराशा को जन्म देता है। यही प्रतिक्रिया अग्निदत्त की प्रचंड प्रतिहिंसा को उद्‌बुद्ध कर देती है। इस घटना से पूर्व भी वह मानवती के मनोनीति पति राजधर आदि के प्रति अपनी प्रतिहिंसा का परिचय देता है। अपमान सम्बन्धी दुर्घटना के बाद उसकी केवल एक आकांक्षा शेष है खंगारों का नाश-कर मर जाने की। उसके हृदय में उनके प्रति इतनी भारी घृणा थी कि कदा-चित् सोने के समय ही भूलता होगा। उसका विश्वास है, 'रणचण्डी के खप्पर में यदि खंगारों का रक्त न भरा गया, तो मेरा जन्म अकारथ गया। उसी खप्पर में अग्निदत्त का ब्राह्मण रक्त भी मिलेगा। वह होगा सच्चा ब्राह्मण-खंगार-सम्मेलन।'[1] नागदेव-हेमवती-विवाह के षड्यन्त्र के अव-सर पर वह नागदेव के लात मारकर अपने अपमान का प्रायश्चित्त करता है और उसका प्रतिशोध लेने के लिए पागल कुत्ते की भाँति लड़ता-भिड़ता, काटता-चीरता खंगारों के सर्वनाश में रत हो जाता है।

लड़ते-लड़ते जब वह खेत में पड़ी असहाया प्रसूता मानवती के समीप पहुँचता है अग्निदत्त की कुण्ठा और दुराशा चरम सीमा पर जा पहुँचती है। वह पश्चाताप में डूब जाता है। फिर वह बुन्देलों से पागल की भाँति लड़ता हुआ कहता है—'मैं मृत्यु का आवाहन कर रहा हूँ। आओ। जब मरना है, तब किसी के हाथों सही।'[2] और पुण्यपाल के हाथों मारा जाता है।

अग्निदत्त के अन्तर्मन में तत्कालीन प्रतिक्रियावादी समाज की जाति-पाँति सम्बन्धी संकीर्णता छिपी बैठी है और निराश मन होने पर प्रचण्ड रूप में प्रकट हो जाती है। वह जातिगत भेदभाव-जन्य संकीर्णता से अपने आपको ऊपर उठा हुआ समझता है। ब्राह्मण होते हुए खंगार-पुत्री से प्रेम भी करता है किन्तु नागदेव द्वारा अपमानित होने पर उसका संस्कार जाग उठता है। उसे खंगार-विनाश तक यही बात खटकती रहती है कि खंगार ने ब्राह्मण के लात मारी। नागदेव पर-पद प्रहार करते समय भी वह कहता है—'ब्राह्मण ने एक

१. गढ़ कुण्डार—पृ० ४११
२. वही—पृ० ४५२

बार नहीं, कई बार बैरी का संहार किया है।'[1] इस जातिगत भेदभाव संबन्धी संकीर्णता से उपन्यास के प्रायः सभी पात्र ग्रस्त हैं, जाति-पाँति के बन्धनों के विरोधी अग्निदत्त के अन्तर में यह भेदभाव गहरी जड़ें जमाये बैठा है।

अग्निदत्त का चरित्र विलक्षण, गतिशील और पूर्णतया स्वाभाविक है। उसका उग्र चरित्र खुलता है शनैः शनैः और कथा से भिड़कर चलता है। परिस्थितियाँ उसे उन्मादक प्रेमी, दुस्साहसी, निराश-प्रतिहिंसी तथा पश्चातापोन्मत्त बनाती हैं। परिस्थितियाँ भी उसके कार्यकलाप से प्रभावित होती हैं। उसी की प्रतिहिंसात्मक योजना के फलस्वरूप खंगारों का पतन होता है। अग्निदत्त का चित्रण प्रायः अभिनयात्मक विधि से हुआ है केवल उसके रूप-वर्णन तथा स्वभाव का परिचय कुछ स्थलों पर विश्लेषणात्मक रीति से दिया गया है।[2] अग्निदत्त की अनुभूतियों की तीव्रता, संस्कारों की गहनता, उद्देश्य में तन्मयता और स्वाभिमान की सनक पाठकों के हृदय पर छा जाती है। वे उसके साथ रसिक, उसकी चिन्ता के साथ चिन्तित और उसके क्षोभ तथा क्लेश के साथ क्षुब्ध और पीड़ित होते हैं। उपन्यास समाप्त करने के बाद अग्निदत्त हमारी अनुभूतियों का एक अङ्ग बन कर रह जाता है।

प्रणय में पूजक— दिवाकर और कुंजरसिंह

दिवाकर (गढ़ कुण्डार) दूसरी प्रासङ्गिक कथा का पुरुष पात्र है। वह अपनी गतिविधि द्वारा पुनीत प्रेम की साधना का परिचय देता है। उसके चरित्र में प्रणय के उदय, विकास, चरम और पूर्णता की विविध श्रेणियाँ देखने को मिलती हैं। तारा के पूजन-व्रत के लिए पुष्प लाते-लाते उसके हृदय में तारा के प्रति आकर्षण का उदय होता है। प्रारम्भ में वह अपने इस हृदय-परिवर्तन से चौंकता और शंकित होता है। उसके हृदय में रह-रह कर द्वन्द्व उठता है कि कायस्थ दिवाकर और ब्राह्मण तारा का संयोग? असम्भव! वह इस मार्ग में अपने आपको रोकने का असफल प्रयत्न करता है फिर शारीरिक सम्बन्ध की कल्पना को तिलांजलि दे तारा को पूज्य के रूप में ग्रहण कर लेता है। सोचता है—'तारा अपनी पूजा करने से तो मुझको रोक ही नहीं सकती। हृदय-सिंहासन पर स्थापित तारा को पृथ्वी-गामिनी तारा नहीं देख सकती, उसका वह कुछ नहीं कर सकती, उसका कोई कुछ नहीं कर

१. गढ़कुण्डार—पृ० ४४१

२. वही—पृ० २१, २५, १५३-३०

सकता। इस देवता को अपने हृदय में रखकर चाहे जहाँ जा सकता हूँ।'[१] उसकी यह भावना निरन्तर दृढ़ होती जाती है। तारा के साँप द्वारा काट लेने पर तारा के सर्प-दंश को प्राणों पर खेलकर मुँह से चूस लेता है। उसमें प्राणोत्सर्ग की भावना है। वह निस्पृह है। परमात्मा से निरन्तर यही प्रार्थना करता है, तारा को कोई सुपात्र ब्राह्मण वर मिल जाए और वह सुखी रहे। वह तारा की रक्षा के लिए आतुर रहता है, अपने आप को बहुत कुछ शान्त रखता है और परिस्थितियों के अनुसार मुड़ने का भरपूर प्रयत्न करता है। फिर भी प्रेमगत निराशा के फलस्वरूप उसमें दुर्बलता आना स्वाभाविक है। वह संसार से विरक्त हो उठता है। संन्यास ग्रहण करने की सोचता है। गम्भीर तटस्थ दार्शनिक की भाँति बुन्देलों के खंगारों के विरुद्ध षड्यन्त्र की आलोचना करता है और उस कार्य में बुन्देलों से पूर्णतया असहयोग करता है। वह सोचता है—'खजराहो था। न रहा। कलिंजर हुआ। चला गया। महोबा ने जन्म लिया। वह भी मर गया। कुण्डार ने सिर उठाया। उसका परसों दलन होगा। कैसा घटना चक्र है। कैसा अनित्य संसार है।' आगे वह सोचता है—'कुण्डार की महिमा खंगारों में नहीं है। उसकी महिमा का मन्दिर तारा है, यदि तारा चिरसुखी रही, तो कुण्डार अमर है।'[२] दिवाकर के जीवनवृत्त की एकमात्र केन्द्र, उसकी प्राणप्यारी तारा है।

दिवाकर की दार्शनिकता को बुन्देले उन्मत्तता तथा अपने लिए घोर घातक समझ कर उसे तलघरे में बन्द कर जाते हैं। दिवाकर की प्रणय-साधना पूर्ण होती है। तारा आकर उसे तलघरे से निकालती है। दिवाकर उससे कहता है—'वर्णाश्रम हमारी देहों के संयोग का निषेध कर सकता है। परन्तु आत्माओं के संयोग का निषेध नहीं कर सकता। यही हमारा संयोग है। हम लोग योग-साधन करेंगे।'[३] वर्मा जी के मत में उन दोनों का इतना सम्बन्ध ही उस युग में सम्भव था।[४] दिवाकर स्वामिभक्त, वीर तथा छुआछूत अथवा जाति-पाँतिगत भेदभाव से ग्रस्त है। उसकी भावनायें तथा कल्पनायें कोमल हैं, स्त्रियों जैसी।

---

१. गढ़ कुण्डार—पृ० २८३

२. वही—पृ० ४०६

३. वही—पृ० ४६४

४. वर्मा जी अपने एक पत्र में लिखते हैं—'जात-पाँत वाले सवाल पर आपने ठीक ही लिखा है। परन्तु यदि मैं दिवाकर और तारा का ब्याह करा देता तो फिर बात अवास्तविक (अनरियलिस्टिक) हो जाती। लाखी और

दिवाकर विलक्षण चरित्र का है। वह गतिशील है और जीवन में कल्पित आदर्श की ओर झुका हुआ। परिस्थितियों से प्रभावित होना उसका स्वभाव है किन्तु अन्त में बुन्देलों का विरोध और तारा के साथ पलायन कर स्वयं परिस्थितियों का निर्माण भी करता है।

कुंजरसिंह (बिराटा की पद्मिनी) बीस-इक्कीस वर्ष का सुन्दर बलशाली युवा है। वह राजा नायकसिंह का दासीपुत्र होने के कारण राजकुमार के पद का अधिकारी नहीं है। उसे राजसिंहासन की प्राप्ति की बहुत आशा न थी। उसका संसार में कोई न था। राजा का स्नेह भी उनके पागलपन में लीन हो गया था। कुंजर के हृदय में जीवन की आकांक्षाओं के प्रति उदासीनता, शिथिलता और भाग्यवादिता घर कर जाती है। उसने सुन रखा था कि संसार में भाग्य का पाँसा पलटते विलम्ब नहीं लगता। सुअवसर-प्राप्ति की यही आशा उसकी एकमात्र जीवन-अवलम्ब कही जा सकती है। कुमुद कुंजर के सूने जीवन में एक अनोखा आकर्षण बन कर आती है। कुंजर उसमें अपना सब कुछ केन्द्रित कर देता है। अपनी प्रेयसी के आस पास मंडराते रहने में ही उसके जीवन के लक्ष्य की इतिश्री है। वह कुमुद से अपना निश्चय प्रकट

अटल का तो करा ही दिया। लेकिन बोधन और उसके साथियों को नहीं रुचा। मैंने प्रवृत्ति की ओर इङ्गित कर दिया है और पाठकों की सहानुभूति इस प्रकार के ब्याह के साथ कर दी है। एक दिन जब वकालत करता था, झाँसी के सिविल जज के यहाँ एक अपील की बहस करने गया। नये ही आये थे। बोले, 'आपका गढ़ कुंडार बहुत पसन्द आया।' मैंने कहा, 'धन्यवाद।'

'परन्तु दिवाकर और तारा की कहानी से साफ जाहिर होता है कि आप अन्तर्जातीय विवाह के पक्षपाती हैं।'

'हूँ तो।'

'क्या उस युग में ऐसा सम्भव था ?'

'असम्भव भी नहीं था।'

'ब्याह करा देते तो बहुत अखरता।'

'किसी को अच्छा भी लगता।'

'खैर, अपील की बहस करिये। आपने जिस परिस्थिति तक उन दोनों को पहुँचा दिया, वही क्या कम है।' यह वार्तालाप मुझे लगभग ज्यों का त्यों आज तक याद है। सिविल जज पहाड़ी ब्राह्मण थे, हिन्दी प्रेमी और वैसे सुधारवादी। —पत्र, तिथि ६।१२।५०

करता है--'आपकी आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्तव्य, और सर्वस्व है। यदि इन चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूँ,—'[1] कुमुद देवी के अवतार के रूप में प्रचलित होने के कारण कुंजर के प्रेम के साथ उसकी श्रद्धा की पात्र बन जाती है। कुंजर प्रेयसी, कुमुद का भक्त है। अपनी देवी के चरणों में मस्तक अर्पित कर देने की एक मात्र साध कुंजर के हृदय में रह गई है। प्रणय-साधना में कुंजरसिंह, दिवाकर (गढ़ कुण्डार) का विकसित रूप है। दोनों वीर, साहसी, हृदय में पीड़ा संजोये हुए सहृदय प्रेमी है। प्रेयसी को पूज्य और अपने आपको पुजारी के रूप में देखना उन्हें भला लगता है। ये भावुक, रसिक और उद्योगी होते हुए भी पलायनवाद की झोंक में हैं। अपने प्रिय के पास सिमट आना चाहते हैं, जीवन संघर्ष में जूझना उन्हे रुचता नहीं। प्रिय के लिए उनके प्राण तक प्रस्तुत है अन्यथा किसी से क्या लेना? देवी कुमुद कुंजर के जीवन पथ की प्रदर्शिका, ध्रुव तारा है। वह उससे कहता है—'परन्तु--परन्तु आपका शुभ दर्शन-मात्र मेरी उस सम्पूर्ण कहानी में एक बड़ी भारी मार्ग प्रदर्शक ज्योति है। वह समय मेरी अंधेरी रात के अवसान की उषा है। केवल उसी प्रकाश के सहारे मैं संसार में चलता फिरता हूँ।'[2]

कुंजरसिंह में शौर्य है किन्तु उसकी अतिभावुकता मार्ग की बाधा है। वह जीवन से निराश है, प्रेयसी के मोहक स्वप्नो मे डूबकर संसार की कटुता की ओर से आँखें मूंद लेता है। साथ ही अनिश्चितता उसकी कार्यप्रणाली की मौलिक दुर्बलता है। सिद्धहस्त राजनीतिज्ञ जनार्दन शर्मा कुंजर के विषय में कहता है 'उनकी ओर से मुझे बहुत कम खटका है। किसी भी बात पर बहुत दिन जमे रहना उनके स्वभाव में नही है।'[3] कुंजर दलीपनगर के राज्य की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है किन्तु राजा नायकसिंह की मृत्यु के समय अपनी शिथिलता और अनिश्चितता के कारण देवीसिंह के हाथ मे राजगद्दी चली जाने देता है। भावुकता के कारण अलीमर्दान तथा रानी की सहायता से हाथ धो बैठता है। देवीसिंह के विरुद्ध युद्ध में अपनी सहायता के लिए गढ़पतियों को एकत्र करने का प्रयत्न करता है किन्तु शीघ्र ही, प्रयोजन पर आरूढ़ करने वाली निरन्तर लगन उसका साथ छोड़ देती है। जिस समय देवीसिंह कुछ सैनिकों सहित रात्रि में बिराटा आता है कुंजर तुरन्त कुछ भी निश्चित न कर पाने के कारण उसका बाल बाँका नहीं कर

१. बिराटा की पद्मिनी—पृ० २१३
२. वही—पृ० २७६
३. वही—पृ० १७७

पाता। देवीसिंह अछूता भाग निकलता है। कुंजर के अन्त का कारण भी उसकी अनिश्चयवृत्ति बनती है। जिस समय उसका देवीसिंह से खड्ग-द्वन्द्व होता है वह एकाग्र चित्त होकर नहीं लड़ पाता। उसकी दृष्टि वेतवा की लहरों में जल समाधि लेने जाती कुमुद पर एकाएक पड़ती है। हाथ शिथिल हो गया। हाँफते-हाँफते कहता है—'प्रलय हुआ चाहती है।' और दूसरे ही क्षण देवीसिंह की तलवार के भरपूर हाथ से उसका सिर धड़ से कटकर अलग जा पड़ता है।

कुंजरसिंह गम्भीर विचारक है। वह परम्पराओं के अन्धानुकरण में विश्वास नहीं रखता। बिराटा के दाँगी अपनी रक्षा की आशा सर्वथा त्याग कर जौहर करते हैं और अपनी स्त्रियों, बालकों को इससे पूर्व स्वयं मृत्यु की भेंट करने का प्रस्ताव रखते हैं। कुंजरसिंह स्वर्ग में सबके एक साथ मिलन की इस काव्यात्मक कल्पना का विरोध करता है। वह कहता है—'यदि हमारा यही सिद्धांत है, तो हमें कभी न मरने का ही उपाय सोचना चाहिए और जब हमारे सामने हमारे प्रियजन समाप्त हो जायँ, तब हमें मरना चाहिए। जब रण क्षेत्र में सैनिक जाता है, तब क्या वह यह सब सोच-विचार लेकर जाता है? चलो, हम सब मरने के लिये बढ़ें। एक-एक प्राण का मूल्य सौ-सौ प्राण लें और अपने बाल-बच्चों को परमात्मा के भरोसे छोड़ें। उनके लिये हमें इसलिए भी डरना नहीं चाहिए कि हमारे विरोधियों में अनेक हिंदू भी हैं।'[१]

कुंजरसिंह उपन्यास का नायक है। उसका चरित्र विलक्षण है। राजनीतिक दाँवपेचों के प्रति उदासीनता, प्रेयसी के प्रति समर्पण की भावना, पलायनवादिता तथा विचारकता आदि गुण उसके व्यक्तित्व को अनोखा बना देते हैं। कुंजर के चरित्र में गतिशीलता अधिक नहीं है। वह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक दुर्बल संकल्पी और भाग्यवादी बना रहता है। हाँ, कुमुद का प्रणय उसके जीवन में एक घटना है। इस घटना से कुंजर के स्थिर जीवन में आशा, निराशा और प्राणोत्सर्ग की भावना की लहरें उठती हैं। उपन्यास में उसका चरित्र-निर्वाह स्वाभाविक है। वह जिन चारित्रिक विशेषताओं सहित उपन्यास में पदार्पण करता है वे अन्त तक उसके व्यक्तित्व के मूल में रहती है। कुंजर के व्यक्तित्व का उन्मीलन शनैः शनैः होता है। उसका चित्रण नाटकीय विधि से हुआ है। वह अपनी दुर्बलताओं के कारण कथा में नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है।

१. बिराटा की पद्मिनी पृ० ३२१

दृढ़ अचल और रसिक सुधाकर

अचल (अचल मेरा कोई···) स्वस्थ, सुरूप होनहार युवक है। विद्वान्, कलाकार, विचारक तथा स्वभाव से गम्भीर है। उसके मस्तिष्क तथा हृदय तत्त्वों में मस्तिष्क प्रधान हो गया है। अचल की तर्कबुद्धि उसकी भावुकता तथा शारीरिक माँगों को दाबे रखती है। निशा पति-वरण की दृष्टि से अचल तथा दिवाकर की तुलना करते समय अचल के विषय में सोचती है—'अचल में ठंडक ज्यादा है, चपलता कम। मानसिक बल है और शारीरिक बल भी है, परन्तु क्या इन दोनों बलों का समन्वय भी है ? नहीं है। दिमाग अधिक है, शरीर कम है।'—[१]

अचल प्रणय-व्यापार में भावुक प्रेमी नही वरन् विचारक, आलोचक अथवा मनोवैज्ञानिक की भाँति बरतता है। कुन्ती उसके पास संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रायः आती है। कुन्ती के प्रति उसके हृदय में आकर्षण जाग उठता है। वह उसे अपना बना लेना चाहता है और दोनों के वैवाहिक बन्धन मे बँध जाने की कल्पना भी करता है किन्तु साधारण प्रणयी की भाँति प्रेम को अभिव्यक्ति दे देने का पक्षपाती नही है। उसके मस्तिष्क में अपनी महत्वाकांक्षायें तथा लोकलाज आदि के विचार आ टकराते हैं। वह दो वर्ष तक कुन्ती के प्रति अपने प्रेम को मस्तिष्क के किसी कोने में दबा कर रख छोड़ने का निश्चय करता है। अपने नाम के अनुरूप अडिग, दृढ़, धीर और स्थिर बना रहना चाहता है। उसके हृदय-सागर में प्रेम का ज्वार नहीं आता, उसकी बुद्धि अपना एक सुयोजित मार्ग निश्चित करती है, 'साध-साधकर, संभाल-संभाल कर, प्रेम करता रहूँगा, हृदय की गिनी-गिनाई गतियों को राई रत्ती तोले हुये वासना प्रसूनों को, रेशम की पोटली में गाँठ लगा कर बाँधे हुये कामना-परिमल को, और मुट्ठी में कैद की हुई लालसा-सुगन्धि को, थोड़ा-थोड़ा करके कुन्ती पर न्योछावर करता रहूँगा।'[२] एक दिन गाते समय कुंती एकाएक रो पड़ती है और अचल का प्रेम-प्रवाह बाँध तोड़ कर फूट पड़ता है। वह हृदय के उद्गारों को प्रकट कर बैठता है किंतु भाषा पर बुद्धिवादी की छाप रहती है। कुन्ती के टोकने पर कहता है—'इसमें असंयम कहाँ है ? अथवा शायद थोड़ा सा है। मुझको यह बात आज से बरस डेढ़ बरस पीछे कहनी चाहिये थी। परंतु आज मन की किसी स्वयं-सक्रिय क्रिया द्वारा जीभ से फिसल पड़ी। इस क्रिया

१. अचल मेरा कोई—पृ० ६०
२. वही—पृ० ६२, ६३

को मनोविज्ञान में कहते हैं—क्या कहते हैं ?—ऑटो इरोटिक । नहीं यह तो शरीर के अंगों की क्रिया का नाम है अच्छा खैर । मैं वचन देता हूँ कुन्ती कि इस बरस डेढ़ बरस के भीतर आगे कभी नहीं कहूंगा । केवल आज के क्षण अपवाद रूप हैं । कुन्ती, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । तुम मेरे जीवन की प्राण हो—'[१] कुन्ती द्वारा उसकी सुधाकर से सगाई हो जाने का समाचार पा अचल क्षण भर के लिए दुर्बल पड़ जाता है । अचेत होकर लड़खड़ाता हुआ गिर पड़ता है । कुन्ती अपने प्रिय अचल की ऐसी अवस्था देख हिल उठती है और सुधाकर से सगाई का सम्बन्ध तोड़ देने का निश्चय सुनाती है । इसी बीच अचल अपनी अचलता पुनः प्राप्त कर लेता है । वह लोकलाज टूटने तथा मित्र-द्रोह के आरोप से सुरक्षित रहने के लिए सुधाकर तथा कुन्ती के मार्ग से हट जाने का निश्चय करता है । कुन्ती से वचन ले लेता है कि सुधाकर से विवाह कर सुखी रहेगी । उसका विश्वास है मन को जैसा बनाओ, बन सकता है । कुन्ती को अंतर्मन के नियंत्रण और अनुशासन करने पर बल देता है । अपना संकल्प सुनाता है—'मैं तुम दोनों को सुखी देखकर सुखी रहूँगा ।' अचल अपनी कोमल भावनाओं को कठोरतापूर्वक मसल देता है । कुंती का सुधाकर से विवाह हो जाता है ।

कुन्ती का दाम्पत्य जीवन सफल नहीं रहता । वह स्वयं असंतुष्ट है और दूसरी ओर एकाकी अचल की मनोवेदना को देखकर उससे रहा नहीं जाता । वह अचल से आग्रह करके उसका विवाह निशा से करा देती है । अचल विधवा-विवाह का पक्षपाती है, और कुन्ती की बात भी नहीं टालना चाहता । विवाह सहज ही हो जाता है । अचल-निशा का वैवाहिक जीवन सफल, संतोष-मय रहता है । अचल गृह-कलह के उन्मूलन का भेद जानता है । वैवाहिक जीवन में संयम, संतुलन तथा परस्पर सद्भावना की आवश्यकता की व्याख्या वह निशा से इन शब्दों में करता है—'देखो, ऐसे—देह की माँग को पूरा करने के लिये आरम्भ में प्यार दुलार की झड़ी लगा दी, फिर हुआ कुपच । या देह की माँग का आरंभ से ही निरोध कर उठे । विद्रोह प्रेम की उपासना में—जो भाग्य से कुछ कम संभव है । बस गृह-कलह छिड़ी । देह की माँगों का और उन माँगों के निग्रह का समन्वय ही उस अनबन को असंभव बना सकता है । साथ ही एक दूसरे का विश्वास और रक्तगत कमजोरियों की परस्पर माफ़ी के लिये सबल हृदय की शक्ति ।'[२]

अचल उपन्यास का नायक है । अपनी निराली स्थिरता, गंभीरता के

---

१. **अचल मेरा कोई**—पृ० १४३

२. **वही**—पृ० २३६

कारण विलक्षण चरित्र का बन जाता है। दुर्बलता के कुछ क्षणों को छोड़कर वह प्रारम्भ से अन्त तक 'अचल' रहता है। कुन्ती के प्रति आकृष्ट होता है किन्तु कामनाओं को हृदय में सुलाये रखता है। कुन्ती के समक्ष प्रेम प्रकट करता है किन्तु सुधाकर से उसकी सगाई की सूचना पा तत्क्षण गन्तव्य दिशा को बदल देता है। यही नहीं, बाद में कुन्ती के आग्रह पर निशा से विवाह कर संतुष्ट गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है। कुन्ती के प्रति सभी लालसाओं को क्षण भर में त्याग देने तथा कुन्ती के तनिक आग्रह पर निशा से विवाह कर लेने की घटनाएं अचल के चरित्र को अस्वाभाविक बना देती हैं। वह यहाँ उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली सी बन जाता है। अचल का व्यक्तित्व उपन्यास के कुछ ही पृष्ठों में स्पष्ट हो जाता है। उसका चित्रण प्रायः परोक्ष रीति में हुआ है। अचल की अचलता—भावनाओं से न डिगने तथा कर्तव्य पर आरूढ़ रहने की प्रवृत्ति—कथा को दो मुख्य मोड़ देती है, कुन्ती-सुधाकर तथा अचल-निशा का विवाह। पहला विवाह असंतुलित, असफल वैवाहिक जीवन तथा दूसरा संतुष्ट, संयमित गृहस्थी की झांकी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अचल उपन्यास की कथा का विधायक पात्र है। परिस्थितियों से प्रभावित हो वह अपना जीवन-मार्ग निश्चित करता है और अपनी प्रबल अचलता से परिस्थितियों को नवीन मोड़ देता है।

सुधाकर (अचल मेरा कोई···) में अचल से मौलिक भिन्नता है। वह तर्क की अपेक्षा इच्छाओं से अधिक निर्देशित होता है। उसे गंभीरता, स्थिरता नहीं शोखी, नित-नयापन, चंचलता और रस चाहिए। शारीरिक तुष्टि ही उसका लक्ष्य है। निशा अचल से तुलना करते समय उसके विषय में सोचती है—'सुधाकर चंचल है। शरीर और दिमाग़···,दिमाग़ भी है, परन्तु शरीर अधिक।'[१]

सुधाकर किसी अपूर्व, नवीन रहस्यात्मक सौन्दर्य या 'रोमांस' की खोज में है। वह अपनी जीवनसंगिनी के रूप में पूर्व परिचिता कुन्ती तथा निशा दोनों में से किसी को भी ग्रहण करने की नहीं सोचता। बिल्कुल साफ स्लेट पर लिखना उसके मन को अच्छा लगता है। अपने जीवन के लिए उसे कुछ अधिक तीव्र सामग्री अपेक्षित है। इन दोनों में निशा के भोलेपन की अपेक्षा कुन्ती का सौंदर्य उसे अधिक आकर्षक लगता है, कुन्ती में उत्तेजना है और प्रेरणा। कुन्ती के शोख नृत्य में व्याप्त चपलता उसे कुछ अखरती है किन्तु यदि अचल को इस प्रकार की स्वतंत्रता सह्य है तो सुधाकर उससे दो कदम आगे रहने का दावा करता है। सुधाकर कुन्ती से विवाह करने का निश्चय

१. अचल मेरा कोई—पृ० ६१

कर लेने पर अचल से अपनी 'रोमांस-खोज' की चर्चा करता है—'मैं पहले सोचा करता था कि ब्याह अनजानी जगह में करना चाहिये। उसमें कुछ रोमांस मिलेगा, परन्तु ख्याल बदल गया। कुन्ती तो पूरी समूची रोमांस है। अनजाने स्थान में रोमांस तलाश करने की जरूरत नहीं रही। सोचा यही मिल गया।'[1] वह कुन्ती को अर्द्धांगिनी, जीवनसंगिनी, धर्मपत्नी के रूप में नहीं देखता वरन् पिपासा-पूर्ति या मनबहलाव का साधन समझता है। उसे केवल रोमांस चाहिए। रोमांस मिलता है शोखी, चपलता तथा रंग विरंगेपन में। नारी में इस वैविध्य तथा स्वच्छन्दता को पाने के लिए सुधाकर नारी-स्वातंत्र्य का भारी पक्षपाती है। नृत्य-लीला में रंगमंच पर हावभाव प्रदर्शित करती और अपने उभरे हुए अंगों को और भी उभार देती हुई सुन्दरी युवतियों को निरखना, परखना उसे बहुत भाता है किन्तु पुरुष-सुलभ ईर्ष्या से ग्रस्त होने के कारण अपनी पत्नी के सार्वजनिक मंच पर ऐसे प्रदर्शन का विरोधी है। सुधाकर में लोलुपता है, ईर्ष्या है और है स्त्री-स्वतंत्रता वाले नारे के प्रति अनुभवहीन युवकों जैसा उत्साह। वह अचल के समक्ष तत्सम्बन्धी विचार प्रकट करता है—'मैं स्त्रियों की स्वाधीनता का कट्टर पक्षपाती हूँ, परन्तु रंगमंच पर अपनी पत्नी या होने वाली पत्नी के नृत्य हाव-भाव, घुँघरू की छमाछम इत्यादि का पक्षपाती तो नहीं हूँ।'[2] कुन्ती से विवाह पक्का होने पर वह अचल से कहता है—'व्यवहार में मैं उसको इतनी आज़ादी दूँगा कि सिद्धान्त मात खा जाय।'[3]

'समूचे रोमांस'— कुन्ती को पत्नी रूप में प्राप्त कर लेने पर रसिक सुधाकर के जीवन में उमंगों तथा दैहिक प्यार की बाढ़ आ जाती है। वह वैवाहिक जीवन में स्वनियंत्रण, संयम तथा संतुलन के महत्व को नहीं जानता, सौन्दर्य का मूल संयम तथा स्वास्थ्य में नहीं वरन् सजावट में समझता है। शनैः शनैः कुन्ती के नृत्यदर्शन में सुधाकर को उतना उल्लास न रहा। उसे नित्य संध्या के उपरान्त चाहिए थी वही सजावट, शृङ्गार का कोई नया दृश्य, रीझ का कोई नया पहलू, मन को कोई नया आकर्षण। परंतु इन नये-नये पहलुओं, रीझों और करवटों में वासना को तृप्त करने के लिए ताजगी न रही। लू की तीखी लपटों में फूलों का सुहावनापन लुप्त हो गया, वे मुर्झाने लगे। कुन्ती जीवन के इस अभाव को लक्ष्य कर लेती है और सादगी पर बल देती है। किंतु सुधाकर को विश्वास है—'सजावट में सौंदर्य खिल उठता

१. अचल मेरा कोई—पृ० १५४
२. वही—पृ० ३७
३. वही—पृ० १५५

है। सादगी में भी रहना है, पर मुझको सजावट तो नशा सा ही दे देती है।' उसे अश्लीलता भी भाती है क्योंकि, 'लोग भिन्नता चाहते हैं। एकरसता में फीकापन आ जाता है। कला तो वह है जो सदा ताज़ा मज़ा देती रहे।'[१] कला की ताजगी का रहस्य उसके स्थायित्व तथा द्रष्टा की एकाग्रचित्तता में है इस रहस्य को सुधाकर नहीं समझता। वह सस्ती मादकता को सौंदर्य समझे बैठा है। मादकता, अश्लीलता के नयेपन की भी एक सीमा है। फिर वह सब पुराना-सा लगता है, नितान्त नीरस। घिसा-पिटा। सुधाकर तथा कुन्ती का प्रेम ज्वार शान्त हो जाता है और जीवन-तल में रह जाती है बेचैनी, खीज, अभाव, ईर्ष्या तथा परस्पर अनबन की दलदल जैसी अधसूखी कीचड़। कुन्ती पुनः अचल से सम्पर्क बढ़ाती है। सुधाकर घर के अनमने वातावरण से बचता है। वह मादकता के अभाव, कुन्ती के स्वतंत्र घूमने-फिरने, लोगों की टिप्पणियों तथा गृहकलह से ऊब उठता है। उसका स्त्री-स्वतंत्रता का तथाकथित दृष्टिकोण वास्तविकता से टकराकर अपने रूप में आ जाता है। ऊपर की मुलम्मेसाजी झड़ जाने पर अन्दर का खुरदरा, बेतुका ढाँचा बाहर झाँकने लगता है। 'उदार' सुधाकर कुन्ती को नियंत्रण में लाने की चिंता में पड़ जाता है। किन्तु स्थिति काफी गंभीर हो चुकी है, कुन्ती पर नियंत्रण स्थापित नहीं हो पाता वरन् प्रतिक्रियास्वरूप उसकी उद्धतता प्रचंडतर रूप पकड़ती है। वह प्रायः अचल के पास बैठकर समय व्यतीत करती है। व्यथित सुधाकर के चित्त मे क्षोभ का ज्वार उठता है, 'मैंने किस विपत्ति के साथ अपना व्याह किया।' उसमें प्रतिक्रिया होती है, अपनी पत्नी का ही शासन न कर पाया तो धिक्कार है। अनशन करके वह कुन्ती को नियंत्रित करना चाहता है, 'मैं स्त्रियों की स्वतंत्रता का अब भी वैसा पक्षपाती हूँ। परतु उसकी एक सीमा है।' कुन्ती द्वारा स्वतंत्रता की परिभाषा या सीमा पूछे जाने पर सुधाकर की पुरुष-सुलभ शासक-प्रवृत्ति उदारता का चोगा फेंक कह उठती है—'मुझको नहीं मालूम, पर मैं यह चाहता हूँ कि मेरे साथ रहकर या मेरी अनुमति से चाहे जो कुछ करो, मेरी मर्ज़ी के खिलाफ कुछ मत करो।'[२] सुधाकर की लोलुपता, अस्थिरता तथा स्त्री-स्वतंत्रता संबंधी अधकचरी नीति ही उसके तथा कुन्ती, दोनों के वैवाहिक जीवन के नाश का कारण बनाती है।

सुधाकर नई रोशनी से प्रभावित अनुभवहीन, अधकचरे दुस्साहसी युवक वर्ग का प्रतिनिधि है। उसका चरित्र स्वाभाविक और गतिशील है। वह अपनी

१. **अचल मेरा कोई—पृ १७७ तथा १७६**
२. वही—पृ० २६०

दुर्बलता के फलस्वरूप कटु अनुभवों से कुछ सीखता और स्थिति को सुधारने के लिये यथासाध्य प्रयत्न भी करता है। उसका चित्रण प्रायः परोक्ष विधि से हुआ है।

निराश प्रेमी चम्पत

चम्पत (सोना) बीस-बाईस वर्ष का छरहरे शरीर का युवा है। गाँव के खुले वातावरण में खेत-खलिहान में बेधड़क मिलने-जुलने वाले चम्पत और सोना एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। सोना इस आकर्षण को आये दिन होने वाली घटनाओं में से एक समझती है किंतु यह अपनापन, यह प्रेम चम्पत के जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन चला है। वह एकान्त में सोना पर प्रेम प्रकट करते हुए वैवाहिक जीवन के काल्पनिक महलों की चर्चा छेड़ता है। उसका विश्वास है कि तब सारा जीवन गाते-गाते बीतेगा। सोना का विवाह राजा धुरन्धर से हो जाने पर चम्पत के स्वप्निल महल चूर-चूर हो जाते हैं। सोना की विदा के उपरांत उसके हृदय में आग लग जाती है। रोने के लिए एकांत ढूँढ़ता है किंतु एकांत पाकर रो नही पाता। गाना चाहता है, गा नहीं पाता। आकुलता उसे दग्ध किए जा रही है। गाँव के बाहर दूर तालाब के बंध पर अकेले में, अंधेरे में सोना के साथ गाये फाग को बहुधा गाया करता है। खेती-पाती से विमुख खोया सा, गाँव वालों की दृष्टि में पागल जैसा।

सोना के खोए हुए हार को ढूँढ़ कर सौंपने के बहाने उससे भेंट करने की आकांक्षा चम्पत के हृदय में है किंतु उद्योग में असफलता और अपमान पाकर वह घोर निराशा में उन्मत्त जैसा हो जाता है। केश मुड़वा लेता है। धोती की जगह लंगोटी। गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है। मेले से उखड़ी हुई सोना की रावटी की धूल और कंकड़ों के चक्कर काटता है। उनमें कुछ देखता है, ढूँढ़ता है। चंपत के अन्तरतम में भ्रम है कि सोना उसे अब भी चाहती है। सोना से किसी न किसी प्रकार भेंटकर प्रेमसूत्र पुनः स्थापित कर लेने की एकमात्र कामना चम्पत के हृदय में है। लालसा और निराशा चम्पत के मस्तिष्क में अनोखी विकृति उत्पन्न कर देती हैं। वह सोना की बहिन रूपा पर डोरे डालता है। अंत में सोना द्वारा ठुकराये जाने पर भी रट लगाता रहता है—'प्यारी, मेरी प्यारी। एक बार तो कुछ कह दो।'

चम्पत अत्यधिक भावुक है। प्रेम ही उसका धर्म है। सोना की ओर से प्रेम का भ्रम उसे बना रहता है। उपन्यासकार ने उसे स्थान-स्थान पर पात्रों द्वारा लफ़ंगा, उच्चका कहलाया है। रूपा पर डोरे डालते दिखाकर उसे पतित भी चित्रित किया है। अपमान तथा निराशा के फलस्वरूप उसके नीचता पर

उतर आने को मस्तिष्क की विकृति की संज्ञा देना ही उचित होगा। चम्पत का चरित्र प्रेम की अपूर्व लगन की दृष्टि से विलक्षण है। उसमें गतिशीलता है।

स्मृतिलोप का एक प्रयोग—दलीपसिंह

'कचनार' के नायक दलीपसिंह पर स्मृति-लोप सम्बन्धी एक प्रयोग है। स्मरण-शक्ति का लोप और उसकी पुनर्प्राप्ति की घटना वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा कथाकार के लिए रोचक समस्या है। वर्मा जी एक सुप्रसिद्ध डाक्टर से इस विषय पर विचार-विमर्श कर इन निष्कर्षों पर आते हैं—विष के प्रभाव से मनुष्य की स्मृति का लोप सम्भव नहीं है, यदि स्मृति लुप्त हो भी जाए तो ऐसी दशा में उसकी पुनर्प्राप्ति नितान्त असम्भव है। स्मृति-लोप तथा उसकी प्राप्ति की यह क्रिया मस्तिष्क की ग्रन्थि विशेष में चोट लग जाने पर सम्भव है। मस्तिष्क में घातक चोट लगने पर मनुष्य चेतना-प्राप्ति के पश्चात् पहले की घटनायें भूल जाएगा। दुर्बल मस्तिष्क भविष्य में भी घटनाओं को थोड़े समय तक ही स्मरण रख पाएगा। वह व्यक्ति बालक की भाँति क्षण-क्षण पर विस्मृति का शिकार होगा। क्रमशः स्मरण-शक्ति बढ़ेगी। वह पिछली बातों को भूल कर हाल की घटनाओं को स्मरण करने में सफल होगा। तदोपरान्त उसका स्मृति-क्षेत्र बृहत्तर होता जाएगा। संयोगवश यदि मस्तिष्क के उसी भाग पर पुनः चोट लगे तो हटी हुई ग्रन्थि का सही स्थान पर आ बैठना सम्भव है। ऐसी दशा में उस व्यक्ति की स्मरण-शक्ति जाग्रत् हो उठेगी। उसे पहली चोट लगने से पूर्व का स्मृति-सूत्र पुनः प्राप्त हो जायगा। भविष्य में भी उसकी स्मरण-शक्ति साधारण, स्वाभाविक गति से कार्य करेगी।[1] अब प्रश्न उठता है कि उसे पहली तथा दूसरी चोट के मध्यकाल की घटनाओं का स्मरण रहेगा अथवा नहीं। इस दिशा में वर्मा जी ने स्वयं निर्णय दिया है कि दूसरी चोट के बाद उस व्यक्ति की स्मरण-शक्ति पूर्णतया सुचारु रूप से कार्य करने लगेगी। उसके मस्तिष्क कोश में पहली चोट से पूर्व, उसके बाद तथा दूसरी चोट के बाद की सभी घटनायें संचित होंगी। दूसरी चोट के फलस्वरूप मस्तिष्क-ग्रन्थि के सही स्थान को पुनः प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं रह जाएगी।

धामोनी का राजा दलीपसिंह सागर की सेना से टक्कर ले विजय प्राप्त कर लौटते समय मार्ग में घोड़े से सिर के बल गिर पड़ता है। मस्तिष्क की किसी कोमल ग्रन्थि में आघात लगने तथा उसके मूल स्थान से हट जाने के

१. कचनार—पृ० ३ से ५ (परिचय)

[ब] अहम्मन्य नवलबिहारी

नवलबिहारी (प्रत्यागत) चढ़ती अवस्था का हट्टा-कट्टा व्यक्ति है। आँखों में प्रभुता और चेहरे पर मुस्कराहट खेला करती है। जो कुछ उसने देखा-सुना है उसे उसमें कट्टर विश्वास है। उसने लगभग सभी बातों को मापने के माप-दण्ड बना लिए हैं। इस मापदण्ड पर खरे न उतरने वाले व्यक्ति उसकी दृष्टि में 'नास्तिक' हैं। समाज में आदर मिलने के कारण नवलबिहारी की कट्टरता पर अहम्मन्यता की भारी छाप है। वह मलाबार में बलपूर्वक विधर्मी किये गये हिन्दुओं के विषय में निश्चित मत प्रकट करता है—'और क्या होगा? वे हिन्दुओं के किस काम के रहे? उनके भाग्य में यही बदा होगा।'[१] उसके कोश में पतितों के लिए सहानुभूति और क्षमा के शब्द नहीं हैं। त्रस्त जनों को उनके भाग्य पर छोड़ देना उसका सिद्धान्त है। वह परिस्थितियों से समझौता करना नहीं जानता—पुरातन प्रेमी है। आवर्तवादी है; जागृति के इस युग में भी मनुष्य से कृतित्व का दायित्व और सारी महत्ता छीन कर कालचक्र के हाथ सौंप देता है—'कलियुग के अन्त में प्रलय होने पर जब फिर सृष्टि की रचना होगी तब सब संसार में फिर वर्णाश्रम का आविर्भाव होगा। पुनः वही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का चक्र चलेगा। इसलिए, मेरी तो ध्रुव धारणा यह है कि चाहे अन्त में एक ही हिन्दू क्यों न बचे परन्तु हो वह नितान्त पवित्र और शुद्ध।'[२]

नवलबिहारी की कट्टरता में सिद्धान्त पर जमे रहने की बात नहीं है जैसे बोधन मिश्र (मृगनयनी) अपने सही या गलत सिद्धान्तों पर अड़ा रहता है और उन्हीं के लिये प्राणों का त्याग कर देता है। नवलबिहारी की कट्टरता केवल अपनी धाक जमाना जानती है, धाक को न मानने वाले व्यक्ति को नीचा दिखाना उसका परम लक्ष्य है। उसके विलक्षण स्वर पर मंगल रामायण सभा में हँस पड़ा था, वह नवलबिहारी की दृष्टि में चिर शत्रु हो जाता है। मंगल के मलाबार से मुसलमान बन कर लौटने के समाचार पर नवलबिहारी को खेद या सहानुभूति के स्थान पर अनोखा हर्ष होता है। वह शत्रु को चंगुल में आया जान कर घातें करने के लिए तत्पर हो जाता है। मंगल के प्रायश्चित्त के फलस्वरूप उसके हिंदूधर्म में प्रत्यागमन में यथासाध्य रोड़े अटकाता है। इधर मंगल के प्रायश्चित्त की क्रिया पूरी होती है और उधर नवलबिहारी सभी जातियों की सभा बुला कर मंगल के परिवार का बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत कराता है। सभी जातिवालों के बालक मंगल के प्रायश्चित्त-भोज में भोजन

---

१. **प्रत्यागत**—पृ० ५३

२. **वही**—पृ० १८५

कर लेते हैं। अपने बालकों के भोज में सम्मिलित हो जाने के कारण सभी जाति वाले समस्या के समाधान के लिए आकुल हो उठते हैं किन्तु हठी नवलबिहारी के पास एक ही उत्तर था, 'असम्भव'। उसकी दुष्टता समाज को उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया के लिए बाध्य कर देती है। अन्त में एक अन्य सभा कर के लोग मंगल का बहिष्कार समाप्त कर देते हैं। मंगल नवलबिहारी के मन्दिर में प्रवेश कर चरणामृत लेना चाहता है। नवलबिहारी विरोध में असफल रहने पर चिढ़ कर मंगल और उसके साथियों पर दंगा करने का दावा दायर कर देता है। मंगल के मंदिर में बलात् प्रवेश को सबकी दृष्टि में नीच कर्म ठहराने के लिए भाँति-भाँति के चमत्कारपूर्ण समाचार फैलाने की धुन में देवमूर्ति को सिर के बल खड़ा हुआ भी दिखाता है। इस दुर्घटना को लोग दैवी कार्य न मान कर नवलबिहारी की करतूत स्वीकार करते हैं। नवलबिहारी समाज के रोष का भाजन है, उसे पंचायत के न्याय की व्यवस्था में दोषी ठहराया जाता है। अभिमान, कट्टरता तथा दुष्टता की अन्त में पराजय होती है।

नवलबिहारी समाज के 'ठेकेदारों' का प्रतीक है। उसके चरित्र में स्थिरता है। प्रारम्भ से लेकर अंत तक एक दिशा में चलता है। अपनी अहम्मन्यता की तुष्टि के लिए एक के बाद दूसरा अपराध करता है। उसका चित्रण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों विधियों से हुआ है। वह कथा को बढ़ाता है और पाठकों के मस्तिष्क पर अपने हठी चरित्र की छाप छोड़ जाता है।

[स] कुटिलमति रामदयाल

रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी) शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध नाटक 'ऑथेलो' के शठ पात्र इआगो की भाँति कुटिल है। जिस प्रकार इआगो को किसी न किसी प्रकार का षड्यंत्र रचने तथा लोगों में परस्पर संदेह और वैमनस्य उत्पन्न करने में आनंद आता है ठीक वैसी ही धूर्तता, काँइयाँपन रामदयाल के जीवन के अंग बन गये हैं। किसी भी कार्य को बिना धूर्तता के करना उसके लिए कठिन है। वह अपने व्यवहार, वाक्पटुता तथा अन्य जनों की मनोवैज्ञानिक पकड़ करने में इआगो की भाँति सिद्धहस्त है।

रामदयाल राजा नायकसिंह का मुँह-लगा विश्वासपात्र अनुचर है। अनुचित साधनों द्वारा राजा की वासनापूर्ति की सामग्री जुटाने में उसकी धूर्तता का पूरा उपयोग होता है। युद्धकाल में बिराटा में स्थित देवीसिंह की वाग्दत्ता पत्नी गोमती की देवीसिंह के प्रति उत्सुकता को भाँप कर उसका विश्वास प्राप्त कर लेता है। गोमती अपने भावी पति के राजा हो जाने के समाचार को प्राप्त

कर अनेक रंगीन कल्पनाओं में डूबी हुई है। रामदयाल चतुरतापूर्वक झूठी-सच्ची बातें गढ़ कर गोमती के स्वप्नों की रंगीनी को और भी गहरा कर देता है। गोमती की कामनाओं, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं की ज्वाला प्रचंडतर हो उठती है। रामदयाल उसकी हृदयाग्नि को उकसा कर उसके समीप पहुँचने का भरसक प्रयत्न करता है। और संसार में उसका, सबसे अधिक कृपापात्र होने का गौरव प्राप्त करके ही चैन लेता है। बिराटा में रामदयाल की धूर्तता नग्न रूप धारण कर लेती है। वह कुमुद और कुंजरसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध पर सन्देह कर उनके विरुद्ध प्रचार में रत हो जाता है। इस विषय में गोमती से भविष्यवाणी करता है—'केवल इतना बतलाए देता हूँ कि जहाँ कुंजरसिंह जायेंगे वहीं कुमुद जायेंगी।' वह कुमुद के सर्वनाश के लिए स्वतः कटिबद्ध रहता है। उसका कुटिल स्वभाव बिना किसी कारण के अलीमर्दान द्वारा कुमुद का अपहरण कराने की योजना में रत रहता है। सब लोग कुमुद की अलीमर्दान के पंजे से रक्षा करने के लिए सर्वस्व होम करने के लिए तत्पर रहते हैं। दूसरी ओर रामदयाल की दुष्ट प्रकृति अलीमर्दान को इस दिशा में उत्तेजित और प्रेरित करने तथा सहायता देने में लगी रहती है।

रामदयाल व्यवहारपटुता तथा वाक्चातुर्य में बेजोड़ है। उसकी तुरन्त-बुद्धि केअनेक ज्वलन्त उदाहरण उपन्यास में मिलते हैं। उसके राजा देवीसिंह के विरुद्ध अलीमर्दान को छोटी रानी का राखीबन्द भाई बनाने, गोमती को भुलावा देकर उसका अभिन्न विश्वासपात्र बनने, विरोधी होते हुए भी बिराटा में अत्यन्त निश्चिन्ततापूर्वक रहने तथा गोमती को कौशलपूर्वक अलीमर्दान की छावनी में ला रखने की घटनायें रामदयाल के बेजोड़ व्यवहारकौशल की साक्षी हैं। वार्तालाप में संयम और चातुर्य की दृष्टि से वह अपना सानी नहीं रखता। कुंजरसिंह उससे क्षुब्ध हो उठता है किन्तु कुंजरसिंह की डाट-फटकार से तनिक भी विचलित न होकर अदम्य भाव से अपने षड्यन्त्रों में रत रहता है। वह भर्त्सना, धमकी को अविचलित रहकर सहज ही ओढ़ लेता है। देवीसिंह द्वारा रात्रि में बिराटा के मन्दिर में पहचान लिए जाने पर तनिक नहीं सकपकाता। गोमती के प्रश्न को मध्य में ला परिस्थिति को उलझा कर साफ बच जाता है। रामदयाल का अन्त भी इसी ढङ्ग से होता है। वह लोचनसिंह की पकड़ में आने पर अपने आप को युद्ध से असम्बद्ध तथा किसी की खोज में तत्पर बताता है। लोचनसिंह उसे लात मार कर कहता है, 'जो जन्म भर किया है, वही किया कर नीच।' और रामदयाल बेतवा की धार में सदा के लिए लुप्त हो जाता है।

गोमती के प्रति प्रणय की भावना रामदयाल के एकरस जीवन में मोड़

देने वाली महान् घटना के रूप में आती है। गोमती को देखते ही उसके हृदय के किसी कोने में आकर्षण उत्पन्न हो चुपचाप पलने लगता है। उसे प्रणयी हृदयों के मूक मार्मिक व्यापार का आसाधारण ज्ञान है। गोमती से कुमुद तथा कुंजर की गतिविधि के सम्बन्ध में पूछताछ करते समय इस रसानुभूति का अपूर्व परिचय देता है। वह प्रणयी हृदयों के परस्पर आदान-प्रदान की इन शब्दों में व्याख्या करता है : 'एक पक्ष तो यह समझता है कि मैं प्यार करते-करते खपा जा रहा हूँ और दूसरा मेरी बात भी नहीं पूछता। उधर दूसरा पक्ष कदाचित् यह सोचता है कि मैं करूँ तो क्या करूँ ? हृदय का दान देने को जो यह उतारू है, सो वास्तव में ऐसा ही है या नहीं ? यदि ऐसा ही है तो मैं अपने हृदय का दान किस भाँति करूँ। अन्त में कदाचित् यह निश्चय होता है कि हृदय का गुप्त दान करूँ—कोई न जाने, यहाँ तक कि लेने वाले से भी यह दान छिपा रहे।' गोमती को सुरक्षित स्थान में पहुँचाने के बहाने वह उसे बिराटा से अलीमर्दान की छावनी में ले जाता है। मार्ग में स्पष्ट शब्दों में उसके समक्ष अपना हृदय खोल कर रख देता है। उसने गोमती का विश्वास और स्नेह प्राप्त करने के लिए स्वाभावानुसार कपट का आश्रय लिया था। प्रणय-व्यापार को भी षड्यन्त्र का रूप दे दिया था किंतु उस हृदयस्पर्शी वेला में उसके हृदयाकाश से कपट के बादल छँट गये और रामदयाल के सद्भाव किरणों की भाँति फूट पड़े। वह उस क्षण अपने आप को बदला हुआ पाता है। प्रणय उसे कुछ कर डालने के लिए प्रेरित करता है। गोमती से कंपित कंठ से कह उठता है—'मैं अपने को जैसा इस समय पा रहा हूँ वैसा कभी न पाया था। मैं बड़ी स्वच्छता के साथ अपने जीवन का बिताऊँगा। जो कुछ मैंने किया है, उसे भूल जाऊँगा और तुम्हारे योग्य बनूंगा। तुम मुझे अवसर दोगी ?'

रामदयाल का चरित्र विलक्षण है। उसके व्यक्तित्व में अनेक विरोधी गुणों का सामंजस्य है। प्रबल होते हुए भी वह गतिशील है। प्रणय के कारण उसमें भारी परिवर्तन आता है। उसका चित्रण स्वाभाविक और रोचक बन पड़ा है। रामदयाल को परोक्ष विधि से प्रस्तुत किया गया है। वह अपने कार्य तथा दूसरों की आलोचना के द्वारा स्पष्ट होता है। उपन्यासकार ने अलग से उसके विषय में कुछ कहने का अवसर नहीं आने दिया है। रामदयाल उपन्यास में विशेष महत्व रखता है। वह छोटी रानी के विद्रोह का आधारस्तम्भ है। अलीमर्दान तथा छोटी रानी के मध्य सम्पर्क स्थापित कराता है। गोमती के जीवन को उसके द्वारा दिशा प्राप्त होती है। और रामदयाल का सबसे महत्व-

पूर्ण कार्य है अलीमर्दान को कुमुद के प्रति आकृष्ट कर कुमुद पर विपत्तियों का पहाड़ ढाना।

अधकचरा दार्शनिक-ललितसेन

ललितसेन (कुंडली चक्र) अधकचरा दार्शनिक है। योरोपीय तथा भारतीय दर्शन-शास्त्रों के विशृङ्खल अस्त-व्यस्त अध्ययन के कारण उसकी विचारधारा उलझ गयी है। विचारधारा की इस उलझन और अपरिपक्वता के कारण ललित सनकी जैसा जान पड़ता है। वह निर्बल-दुर्बल व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए हानिकारक समझता है। दुर्बल-निर्बल सड़े-गले व्यक्तियों के पूर्णतया नाश के लिए एक कानून की आवश्यकता अनुभव करता है। दुर्बलों को आश्रय देने वाली संस्थाओं अस्पतालों, अनाथालयों, वनिताश्रमों की विशेष आवश्यकता उसके मत के अनुसार नहीं है। इन संस्थाओं से कष्ट की वृद्धि हुई है, समाज की निर्बलता कम नहीं हुई। निर्बल को उसकी निर्बलता का बोध करा कर उसका नाश करना वह न्यायसंगत मानता है। कवि और भिक्षुक उसके लिए समान हैं, संसार दोनों को एक दिन ग्रस लेगा। उसके सिद्धान्त सांसारिक यथार्थ की टक्कर से अछूते हैं। उपन्यास के अन्त मे जब वह मैजिस्ट्रेट की अदालत से अजित के विरुद्ध दायर किया हुआ मुकदमा उठाने जाता है मैजिस्ट्रेट द्वारा अपमानित होने पर उसके मुख से स्वतः निकल पड़ता है—'प्रबल का आतंक निर्बल पर स्वाभाविक है।' एक क्षण बाद उस का अभिमान कह उठता है—'निर्बल प्रबल हो सकते हैं, और होंगे। और एक दिन यह सारी ऐंठ खाक में मिल जाएगी।'[1] इस प्रकार ललित की उलझी हुई दार्शनिकता अधूरी और व्यवहारिक ज्ञान से हीन है।

ललित स्वभाव से सहसा-प्रवर्ती है। एकाएक सनक में आकर अप्रत्याशित कार्य कर बैठता है। अपनी बहिन रतन के लिए अनजाने विधुर भुजबल को वर रूप में तुरन्त स्वीकार कर लेता है। अपना विवाह न करने का दृढ़ निश्चय वह प्रायः प्रकट करता रहता है किन्तु एक बार सुन्दरी पूना के दर्शन करने पर उससे विवाह करने पर उतारू हो जाता है। अजित पर रतन के प्रति आकर्षण का सन्देह कर उसे अपमानित कर घर से निकाल देता है। उसके विरुद्ध मुकदमा भी दायर कर देता है। भुजबल की नीचता देखकर अपने किए पर पश्चाताप तथा अजित के प्रति सद्भाव तुरन्त प्रकट करता है।

ललित विलक्षण चरित्र का पात्र है। उसकी यह विलक्षणता उसे सनकी बना देती है। उसके चरित्र का विकास भी स्वाभाविक नहीं है। वह अपने 'निर्बल के नाश' वाले सिद्धांत को अन्त में एक धक्का-सा खा कर बदलता है।

---

१. कुंडली चक्र—प० २५८

प्रत्येक कार्य को बटन के दबाने पर चल पड़ने वाली मशीन की भाँति प्रारम्भ करता है और ठीक बटन के दोबारा दबने पर बन्द कर देता है। उसका चरित्र बदलता है किन्तु स्वाभाविक रूप से विकसित न होने के कारण अस्वाभाविक रूप से गतिशील या सहसा-प्रवर्ती कहा जाएगा। उसके चित्रण में बहुधा प्रत्यक्ष विधि का अवलम्ब लिया गया है। ललित अपने अटपटे कार्यों द्वारा नयी परिस्थितियों को जन्म देता है और परिस्थितियों से प्रभावित हो अपनी त्रुटियों को स्वीकार करता है। ललित के कार्यकलाप की भूमिका में किसी तकसंगत, विकसित होने वाली विचारधारा का अभाव होने के कारण वह पाठकों के हृदय को छू नहीं पाता।

दुर्बल-चरित्र-नायक सम्पत

सम्पतलाल 'संगम' उपन्यास का नायक है। वह बिगड़ा हुआ युवक है। अपनी उच्छृंखलता से विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और परिस्थितियों में पड़कर अन्त में सुधरता है। सम्पत अकर्मण्य और नशेबाज है। अपनी नवविवाहिता पत्नी पर प्रारम्भ में प्रेम और दुलार की वर्षा करता है किन्तु ज्यों ही वासना का वेग धीमा पड़ता है मदकसेवी मित्रों के साथ भाँग, चरस के व्यसन में डूब जाता है। निरन्तर नशेबाजी और मृत सुखलाल की सम्पत्ति हड़पने के लोभ में व्यस्त रहने के कारण वह सहज विवेक खो बैठता है। सम्पत्ति-प्राप्ति सम्बन्धी दावे के हेतु रुपया एकत्र करने के लिये स्वयं स्त्री का रूप धारण कर एक पंजाबी के हाथ अपना विक्रय कराता है। भेद खुल जाने पर सम्पत को घोर दुर्दशा, लज्जा तथा पश्चाताप का अनुभव होता है। यही अपमान और ग्लानि सम्पत की जीवनधारा में मोड़ बनकर आते हैं। वह सुखलाल की सम्पत्ति प्राप्ति सम्बन्धी मुकदमें में धनीराम की सहायता पाने की बात सुनकर उससे कहता है—'आपकी कृपा तो कभी इस जन्म में भूलेगी नहीं, परन्तु मुझे अब आदमी बनने दीजिए। मैं अभी तक निरा पशु हूँ—पशु से भी गया बीता। मैं अब किसी तरह भी मुकदमा न लड़ूँगा।'[1] पत्नी जानकी के समक्ष घोर पश्चाताप प्रकट करते हुए अपने नशे को पागलपन कहता है। उस रात सम्पत के हृदय में जानकी के प्रति जो प्रेम जाग्रत् हुआ, मुखरित न था, उन्मत्त न था, प्रचंड न था स्तब्ध था और स्थिर।

सम्पतलाल का चरित्र सामान्य और गतिशील है।

लोभी भिखारीलाल

सम्पत का पिता भिखारीलाल (संगम) स्वार्थी और मूर्ख है। भिखारी

१. संगम—पृ० २६६

धनप्राप्ति के लोभ में नाई धनीराम के यहाँ पोषित ब्राह्मण कन्या जानकी से सम्पत का सम्बन्ध करता है। सुखलाल की मृत्यु की सूचना पा उसका पूर्व-विरोधी होते हुए भी उसकी सम्पत्ति दावे द्वारा हड़पने का दुष्प्रयत्न करता है, सुखलाल की असहाया विधवा पुत्री पर तनिक दया नहीं करता। स्त्री-विक्रय सम्बन्धी षड्यंत्र खुल जाने पर सम्पत सुधरता है किन्तु भिखारीलाल पर इस दुर्घटना का प्रभाव नहीं पड़ता।

उसमें निष्ठुरता परले सिरे की है। जानकी-सम्पत के विवाह के अवसर पर ही वह धनीराम से भविष्य में सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा करने से नहीं चूकता। विवाह में नन्दराम नाई की कन्यापक्ष वालों से मारपीट हो जाने पर भिखारी नन्दराम को धनीराम के विरुद्ध उभारता और तत्संबंधी मुकदमें में धनीराम का विरोध करता है। विवाह में आशातीत धनप्राप्ति न होने पर पुत्रवधू जानकी को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ताने देता रहता है।

भिखारी स्थिर चरित्र का पात्र है। उसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कोई परिवर्तन नहीं आता ; सुखलाल के पुनर्जीवित होने के समाचार को प्राप्त कर और उसकी सम्पत्ति हड़पने के प्रयास में मुंह की खाने पर भिखारी में सुधार का लक्षण नहीं दीख पड़ता। उसे पश्चाताप नहीं होता वरन् स्वार्थहानि के कारण ठेस लगती है। उसका चरित्र वर्गगत है। ऐसे कट्टर स्वार्थी और निष्ठुर लोग समाज मे प्रायः मिलते हैं।

उद्दण्ड नन्दराम

नन्दराम (संगम) उद्दंड, प्रतिहिंसी तथा हठी प्रकृति का है। अन्त में अपनी हिंसा पर पश्चाताप कर दण्ड का भागी बन पूर्वकर्मों का प्रायश्चित्त करता है। वह सम्पत के विवाह में अपने उद्दंड कटु परिहास के फलस्वरूप लड़की वाले से तनाव उत्पन्न करता है। प्रत्युत्तर में परिहास सहने की शक्ति उसमें नहीं है। रायता परोसने वाले के सक्रिय परिहास के प्रत्युत्तर में उसे पीट कर स्थिति को घराती तथा बरातियों के मध्य मारपीट तथा आपसी झगड़े का रूप दे देता है। स्वयं पिट जाने पर सहनशक्ति का परिचय नहीं देता, प्रतिशोध चुकाने के लिए पुलिस में रिपोर्ट करता है। वहाँ भी सफलता न मिलने पर मुकदमा दायर कर सबको अदालत में ला घसीटता है। वह केवल पीटना जानता है पिटना नहीं। कहता है—'बाप-दादों की डूब जाएगी। मेरे घराने में मुखिया और जमींदार रहे हैं। कभी किसी ने मार नहीं खाई। सदा दूसरों को पीटते ही रहे हैं। मैं मार नहीं पाया, यह कसक जी में रह गई। इसलिए अदालत से जेलखाने की सजा कराऊँगा। वह मार

लगाने से अच्छा है।'[1] इसी क्रम में सुखलाल से वैर बँध जाने पर उसकी हत्या कर बैठता है।

सुखलाल की हत्या करने के पश्चात् वह पुलिस के भय तथा आत्म-ग्लानि से प्रताड़ित हो जंगलों में भटकता फिरता है। सुखलाल के जीवित बच जाने के समाचार से उसकी आत्म-ग्लानि और पश्चाताप चरम पर जा पहुंचते हैं। वह मैजिस्ट्रेट के घर पर अपराध स्वीकार कर जेल की कैद या प्रायश्चित का भागी बनता है।

नन्दराम का चरित्र प्रबल है किन्तु वह अन्त में बदलता है। उस में गतिशीलता है। नन्दराम अपने क्रियाकलाप से अनेक परिस्थितियों को उत्पन्न कर घटनाओं को जन्म देता है। वह असंस्कृत, हठी, अभिमानी पुरुषों के वर्ग का प्रतीक कहा जा सकता है।

वर्मा जी के नारी पात्र

वर्मा जी के उपन्यासों में नारी पात्र प्रबल और प्रधान हैं। वर्माजी की अपने आदर्श नारी पात्रों के विषय में एक धारणा है; स्त्री के भौतिक सौंदर्य और बाह्य आकर्षण तक वह सीमित नहीं रह जाते, उसमें दैवी गुणों को देखना उन्हें भला लगता है। नारी के बाह्य सौंदर्य और लावण्य के परे उसमें निहित आन्तरिक तेज की खोज तथा उसके बाह्य और आन्तरिक गुणों में सामंजस्य स्थापित करना उनका लक्ष्य रहता है। उनकी यह नारी पुरुष से कहीं ऊँची है। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी संचालक प्रेरणा। प्रारंभ के उपन्यासों में नारी विषयक उनकी धारणा अधिक कल्पनामय तथा रोमांटिक रही है। वह प्रेयसी के रूप में आती है, प्रेमी के जीवन-लक्ष्य की केन्द्र और उसकी पूजा-अर्चना की पावन प्रतिमा बनकर। तारा (गढ़ कुंडार) तथा कुमुद (बिराटा की पद्मिनी) उपन्यासकार की इसी प्रारंभिक प्रवृत्ति की देन हैं। अगले उपन्यासों में लेखक की प्रौढ़ धारणा कल्पनाकाश की उड़ानों से जी भर कर संघर्षमयी इस कठोर धरती पर उतर आती है। ये नारी पात्र पुरुष पात्रों को प्रेरणा ही नहीं देते, संसार के संघर्षों में स्वयं जूझते हुए अपनी शक्ति का भी परिचय देते हैं। कचनार (कचनार), मृगनयनी तथा लाखी (मृगनयनी), रूपा (सोना) और नूरबाई (टूटे काँटे) ऐसे ही पात्र हैं। लक्ष्मीबाई (लक्ष्मीबाई) तथा अहिल्याबाई (अहिल्याबाई) में ये गुण अपने चरम पर दीख पड़ते है।

१. संगम—पृ० ७२

वर्मा जी द्वारा चित्रित नारी के कुछ अन्य रूप भी यहाँ उल्लेखनीय हैं। ईर्ष्यालु प्रेमिका उजियारी (प्रेम की भेंट), आकांक्षामयी गोमती (बिराटा की पद्मिनी), लालसा की लहरों में अठखेलियाँ करती कुन्ती (अचल मेरा कोई), धन तथा शारीरिक सुख की लोलुपा अंजना (अमर बेल) तथा कर्कशा रोना (टूटे काँटे) नारी चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालती हैं। इन उल्लिखित चरित्रों का सूक्ष्म विश्लेषण वर्मा जी की नारी-चित्रण-कला पर यथेष्ट प्रकाश डाल सकेगा।

नारी में दैवी तत्व

तारा (गढ़ कुंडार) में बाह्य सौंदर्य के साथ दैवी गुणों का आरोप किया गया है। दैवी तत्व के स्पर्श से साधारण नारी तारा का स्वरूप गरिमामय एवं स्पृहणीय बन पड़ा है। उसके विषय में लिखा है—'तारा की आँखें शान्त, स्थिर, बड़े-बड़े पलकोंवाली बड़ी निर्मल थीं। उन आँखों के किसी कोने में छल, कपट या अविश्वास की किंचित् छाया भी नहीं मिल सकती थी। शरीर बहुत छोटा और कोमल था। आकृति से ऐसी लगती थी, जैसे देवी हो दुर्गा नहीं, किन्तु ब्रह्ममुहूर्त की अधिष्ठात्री ऊषा, ऋषियों के होम का आशीर्वाद, विष्णु के पुजारियों की पूजा।'[1] इस विवरण में नारी के शारीरिक लावण्य से पावन प्रभाव उत्पन्न करने में लेखक की कोमल कल्पना तत्पर है। चित्रण के साथ काव्यात्मक उड़ान-सी है।

तारा अपने पिता की आज्ञानुसार पति-प्राप्ति के लिये शक्तिभैरव-पूजन का अनुष्ठान करती है। दिवाकर उसे पूजन के हेतु पुष्प देने आता है। देवपूजा के इस पावन वातावरण में तारा तथा दिवाकर के मध्य पुनीत प्रणय का उदय होता है। एक दिन पूजन के उपरान्त तारा ने काँपते हाथों बेले की कलियों की एक माला अंचल से निकाली और हाथ दिवाकर की ओर बढ़ा दिया। और सामने से हट गई। दिवाकर ने अपने दोनों हाथों की अंजलि में देवता का प्रसाद लेकर आँखों से लगा लिया। बाद में निरीक्षण करने पर उसे ज्ञात हुआ कि माला में चार अक्षर गुँथे हुए थे—'मेरे देव।' दिवाकर को भान हुआ जैसे उसका शरीर फूल की भाँति हलका हो गया। चारों ओर मानों पुष्प और कलियाँ उद्भूत हो गयीं। उसका हृदय-संसार बस गया। माला को वह सदैव वस्त्रों के नीचे गले में धारण किए रहता है। दिवाकर के लिए तारा पूज्य है।

हेमवती की रक्षा करते हुए रात्रि में घायल हो छत से अंधकारावृत्त मार्ग में दिवाकर के गिर जाने पर शोरगुल सुन तारा वहाँ आ पहुँचती है। आहत

१. गढ़ कुंडार—पृ० १५३

दिवाकर से भावावेश में लिपट जाती है। उसे प्रेम के आवेग में लोकापवाद का भय नहीं रह जाता है। दिवाकर द्वारा जातिभेद तथा परस्पर मिलाप की असंभवता की चर्चा करने पर संक्षिप्त सा उत्तर देती है—'आप मेरे धर्म, मर्म और देव हैं क्या पूजा भी न करने देंगे ?'[१] उसमें कोमलता के अतिरिक्त दृढ़ता और पौरुष के तत्व हैं। दिवाकर के बुंदेलों द्वारा तलघरे में बन्द किए जाने का समाचार पा मुर्झाकर निष्क्रिय नहीं हो जाती। उसमें सात्विक प्रेम से उद्भूत प्रिय-रक्षा की चिन्ता साहस तथा उत्साह की लहरें उठा रही है। वासनामय आकांक्षाओं से उत्पन्न संकोच वहाँ कहाँ ? घोड़े पर देवरा पहुँच दिवाकर को चेत में ला तलघरे से बाहर निकालती है। न जाने उसमें पुरुषों जैसा बल और साहस कहाँ से आ जाता है ! उसमें दिवाकर पर स्वयं को वार देने की भावना है। दिवाकर के तलघरे से बाहर आ जाने पर उसने दृढ़ता का परिचय दिया। तारा की निर्भीकता, दृढ़ता और स्पष्टता, उच्छृङ्खलता नहीं, आत्मिक प्रेम की सतत साधना की देन है।

सबेरे सहजेन्द्र अपने सैनिक लेकर देवरा गढ़ी पर आया। तलघरे में दिवाकर न था। भीतर कनैर के मुर्झाए फूल पड़े थे। निःश्वास त्याग कर बोला—'पुष्प वृष्टि करके मनुष्य को कोई देवता अपने साथ ले गया।'[२] उपन्यासकार ने अन्त में भी तारा को देवता के नाम से स्मरण कराया है।

नारी या देवी

कुमुद (बिराटा की पद्मिनी) में दुर्गा के अवतार का आरोप है। उसमें तारा की अपेक्षा दैवी गुणों का समावेश अधिक है। तारा की दिव्यता अधिकांश में दिवाकर के हार्दिक संसार तक सीमित थी। कुमुद देवी के रूप में प्रचलित है, भक्तजन दूर-दूर से उसके दर्शन के निमित्त आते हैं। एक ओर कुमुद साधारण दाँगी ब्राह्मण की कन्या और इसी संसार की, हाड़-माँस की बनी कोमल युवती है। साधारण नारी की भाँति अबला है, यहाँ तक कि अन्त में उसे अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए बेतवा नदी की लहरों की शरण लेनी पड़ती है। दूसरी ओर वह दुर्गा की प्रतिमूर्ति है। उसमें देवी की-सी भव्यता है। लोग उसे पूजते हैं। कुमुद के निराले चरित्र में साधारण नारीत्व और दिव्यता मिलकर ऐसे डूबते, उतराते हैं कि उन्हें अलग करना कठिन है। कुंजरसिंह लोचनसिंह के साथ कुमुद के दर्शनार्थ पालर के मन्दिर में गया। उसने रूप, लावण्य और दिव्यता के उस अनुपम, पावन साक्षात् अवतार को देखा। एक बार देखकर फिर उस तेजोमय स्वरूप पर आँखें उठाई नहीं गईं।

१. **गढ़ कुंडार**—पृ० ३५५
२. **वही**—पृ० ४६५

सहेली गोमती भी कुमुद से बराबरी का व्यवहार करने में हिचकती है। 'देवी' कुमुद का एक वर्णन उल्लेखनीय है।—'कुमुद चट्टान की टेक पर खड़ी हो गई। ऐसा जान पड़ा—मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो—जैसे प्रकाश पुंज खड़ा कर दिया हो। पैरों के पैजनों पर सूर्य की स्वर्ण रेखाएँ फिसल रही थीं। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था। बड़े बड़े काले नेत्रों की बरौनियाँ भौंहों के पास पहुँच गई थीं। आँखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित-सा करने लगी। आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट गर्दन के पास जरा चंचल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल जंगल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खड़ी हुई कुमुद को देखकर कुंजर का रोम-रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हुआ।

'वे चट्टान और पठारियाँ, वह दुर्गम और नीली धार वाली बेतवा, वह शांत भयावना सुनसान, वह हृदय को चंचल कर देने वाली एकांतता और चट्टान की टेक पर खड़ी हुई अतुल सौंदर्य की यह सरल मूर्ति।

'कुंजर ने मन में कहा—'अवश्य देवी है। विश्व को सुन्दर और प्रेममय बनाने वाली दुर्गा है।'[1]

ये पंक्तियाँ तारा के दैवी रूप-वर्णन का विकसित स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। कुमुद स्वयं अपने को साधारण नारी समझती है। गोमती से कहती है—'हममें, तुममें वह अंश वर्तमान है। जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण-दोष से हम लोग नहीं बच सकते।'[2] 'कुंजरसिंह जब श्रद्धा तथा प्रेमवश उसके पैर छू लेता है, कुमुद काँपती आवाज में कहती है—'आप ऐसा कभी न करना। मैं कोई अवतार नहीं हूँ। साधारण स्त्री हूँ। हाँ, दुर्गा माता की सच्चे दिल से पूजा किया करता हूँ। आप मुझे अवतार न समझें।'[3] उसे दुर्गा में पूरा पूरा विश्वास है, भय छू भी नहीं गया है। अलीमर्दान के आक्रमण से कुमुद की रक्षा के लिए आशंकित कुंजर से वह प्रभु-विश्वास प्रकट करती है—'दुर्गा के सेवकों को कभी कष्ट नहीं हो सकता। जब कभी मनुष्य को दुःख होता है, अपने ही भ्रम के कारण होता है। यदि मन में भ्रम न रहे तो उसे किसी का भय न रहे।'[4]

१. **बिराटा की पद्मिनी**—पृ० २१५, २१६
२. **वही** – पृ० २ ८
३. **वही**—पृ० २१४
४. **वही**—पृ० २१२

प्रथम दर्शन के अवसर से कुमुद तथा कुंजर में परस्पर आकर्षण का सूत्र बन्ध जाता है। बिराटा के मन्दिर में दोनों की भेंट तथा सम्पर्क के फल-स्वरूप वह सूत्र प्रणय-डोर का रूप धारण कर लेता है। कुमुद का प्रोत्साहन का एक वाक्य कुंजर के जीवन को स्फूर्ति से भर देता है। वह अपने आप में आकाश के नक्षत्र तक तोड़ लाने की सामर्थ्य अनुभव करता है। युद्ध और संकट की छाया में दोनों का प्रेम पनपता है मूक, संयत और निर्मल। शत्रुओं द्वारा बिराटा चारों ओर से घिर जाने पर वह कुंजर के साथ वहाँ से निकल भागने की नहीं सोचती। वह जीवन के 'उस पार' (परलोक में) मिलने की बात कहती है, 'मैं उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग में कोई न मिलेगा। आप उस ओर से आयें, जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अन्त में मिलेंगे।'[1] कुमुद के प्यार में मांसलता का प्रायः अभाव है। वह आत्मा का सम्बन्ध सर्वोपरि मानती है, शारीरिक सम्पर्क का महत्व उन परिस्थितियों में उसके लिए नहीं के बराबर है। वह ठीक तारा की भाँति अपने आँचल के छोर से जंगली फूलों की गुँथी माला निकाल कर कुंजर के गले में डालकर केवल इतना कहती है– 'यह मेरा अक्षय भांडार लेकर जाओ। अब मेरे पास और कुछ नहीं।'[2] कुमुद का प्रणय साधारण दैहिक धरातल से कहीं ऊँचा, उठा हुआ निर्मल नीलाभ के पावन स्तर में समा गया है। तदनन्तर वह गीत गाती है, 'उड़ गए फुलवा रह गई बास' और अथाह बेतवा की जल राशि में अपनी गीत लहरी के साथ सदा-सदा के लिए समा जाती है।

नारी व्यवहारिकता की ओर

कचनार (कचनार) के चरित्र में कल्पना और रोमांस की इतनी प्रधानता नहीं है। उसमें मूलतः भौतिक ठोस तत्व है, चरित्र के दोनों पक्ष, दिव्यता और सांसारिकता, पुष्ट हैं। कचनार की कोमलता में स्वरक्षा का भाव लिपटा हुआ है। उसमें रूप है, यौवन है, मादकता है, ऊपर संयम और शीतलता का मोटा आवरण पड़ा है कुमुद जैसा। मानसिंह कचनार की तुलना कलावती से करता है—'दुलैयाजू (कलावती) को देखते ही मन के भीतर उजाले की चकाचौंध सी लगती है। कचनार के देखने को जी तो चाहता है, परन्तु देखते ही सहम जाता है। दुलैयाजू का स्वर सारङ्गी सा मीठा है, कचनार का कंठ मीठा होते हुए भी चिनौती सी देता है। दुलैयाजू कमल हैं, कचनार कटीला गुलाब। जिस समय दुलैयाजू को हल्दी लगाई गई मुखडा

१. **बिराटा की पद्मिनी**—पृ० ३३३
२. **वही**—प० ३३३

पूरजमुखी सा लगता था। उनकी आँखों में मद है। कचनार की आखें ओले सी सफेद और ठंडी। उनकी मुस्कान में ओठों पर चाँदनी सी खिल जाती है। कचनार की मुस्कान में ओठ व्यंग सा करते हैं। दुलैयाजू की एक गति, एक मरोड़ न जाने कितनी गुदगुदी सी पैदा कर देती है, कचनार जब चलती है ऐसा जान पड़ता है कि किसी मठ की योगिन है। बाल दोनों के बिल्कुल काले और रेशम जैसे चिकने हैं। दोनों से कनक की किरणें सी फूटती हैं। दोनों बहुत सलोनी हैं। दुलैयाजू को देखते और बात करते कभी जी नही अघाता। अत्यन्त सलोनी हैं। घूँघट उघड़ते ही ऐसा लगता है जैसे केसर बिखेर दी हो। कचनार को देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे चौक पूर दिया हो। दुलैयालू वशीकरण मन्त्र हैं। और कचनार टोना उतारने वाला मन्त्र—'[1]

मानसिंह की रसिक वृत्ति को कचनार का सौंदर्य भाता है। उसे वह मठ की योगिन सी लगती है। साथ ही उसके दिव्यता में मिश्रित स्वरक्षा, और रूप-लोलुपों के प्रति उपेक्षा के तीखेपन से वह घबराता है। वह उसे कटीले गुलाब सी जान पड़ती है। तारा और कुमुद का किसी कामुक मे व्यवहारिक सम्पर्क नहीं पड़ा था। कचनार के सामने यह नवीन समस्या है। उसके सौंदर्य पर गृद्ध-दृष्टि रखने वाले मानसिंह और दलीपसिंह दो व्यक्ति हैं। फलस्वरूप उसके चरित्र में साहस उभर आया है।

कचनार दासी के रूप में दलीपसिंह को दहेज में मिली है। दलीपसिंह परम्परानुसार उसे अन्य दासियों की भाँति अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता है। कचनार को पतिता का जीवन स्वीकार नहीं है, भले ही जीवन न रहे। उसकी दृष्टि में 'नारीत्व' का सर्वोपरि महत्व है। इस सम्बन्ध में कचनार और दलीपसिंह का वार्तालाप उल्लेखनीय है—

'कचनार ने कहा —'मेरे साथ भाँवर डालिए। मुझको अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिए। अपनी जीवन सहचरी बनाइये। वचन दीजिए। मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी।'''परन्तु मैं ऐसा अँगरखा नहीं बन सकती जो जब चाहा उतार कर फेंक दिया।'

दलीपसिंह—'यदि में जबरदस्ती करूं।'

'असम्भव है। आप मुझ को तुरन्त मरा हुआ पायेंगे।'

थोड़े क्षण उपरान्त दलीपसिंह के कहा, 'बिना भाँवर के भी बहुत सी सुन्दर स्त्रियाँ बड़े बड़े राजा महाराजाओं के रनवास में जन्म भर बनी रहती हैं।'

१. **कचनार**—पृ० १४, १५

कचनार बिना किसी भय या संकोच के बोली, 'ऐसी स्त्रियों का नारीत्व नष्ट हो गया होगा और वैसे राजा महाराजाओं को मैं तो बड़ा नहीं कह सकती।...मैं आपको प्राणपण से प्रेम कर सकती हूँ, परन्तु अपना नारीत्व नष्ट करके नहीं।'

'यह मेरी समझ नहीं आ रहा कि तुम्हारा नारीत्व कैसे नष्ट हो जाएगा।'

'इसको तो नारी ही समझ सकती है।'[१]

कचनार 'नारीत्व-रक्षा' की महत्वपूर्ण समस्या और उसका हल प्रस्तुत करती है। दलीपसिंह के लिए उसके हृदय में मूक प्रेम है। दलीप की मृत्यु के बाद भी अपनी साधना से वह विचलित नहीं होती। मानसिंह उसे वश में लाने के प्रयत्न करता है, विवाह भी करने का प्रस्ताव सामने रखता है। कचनार की दृष्टि में विवाह के इस प्रस्ताव का महत्व एक कामुक के आवाहन से अधिक कुछ नहीं है। प्रस्ताव ठुकरा देती है। उसमें स्वतन्त्र विचारधारा है, पौरुष है। मानसिंह को चकमा देकर गुसाँइयों की छावनी में शरण प्राप्त करती है। छावनी में योगाभ्यास करती है। अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर साधना में एकाग्र है। डिगने के कई अवसर आते हैं, परन्तु वह अचल है, स्थिर है। महन्त अचलपुरी, मंटोलेपुरी, सुमन्तपुरी (दलीपसिंह) उससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

गुसाँइयों के उद्योग से दलीपसिंह को धामोनी का राज्य वापिस मिलता है। वह एकाएक चोट खा कर गिर पड़ता है। उसके अधिक अस्वस्थ हो जाने पर कचनार के संयम का प्याला छलछला उठता है। यहाँ पहली बार कोमल पक्ष स्पष्ट होता है। वह दलीपसिंह के स्वास्थ्य के लिये अधीर है। अन्त में उसकी प्रणय-साधना सफल होती है। दलीपसिंह उसके वास्तविक रूप के समक्ष मस्तक झुकाता है और कचनार को सादर ग्रहण करता है।

कचनार में सौंदर्य, कोमलता, तीखापन है। नारीत्व के शोषकों के प्रति वह उग्र है। संयम और साधना के प्रति उसमें घोर निष्ठा है, पुरुषों का सा साहस और दृढ़ता है। वह आदर्श की निष्प्राण मूर्त्ति नहीं दृढ़ता और कोमलता से मिश्रित सौंदर्यमयी नारी है। लेखक की नारी संबंधी धारणा कचनार में आ कर विकसित और पुष्ट हुई है। कचनार के चरित्र की महत्ता कलावती और ललिता (कचनार) के साथ तुलना करने पर और भी स्पष्ट होजाती है।

नारी—रणचंडी

वर्मा जी की नारी विषयक धारणा के क्रमिक विकास का अध्ययन करते समय लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई) का चरित्र पूर्व रचित होने

१. **कचनार**—पृ० २६ तथा २८

पर भी क्रम में कचनार के उपरान्त रखना श्रेयस्कर होगा। कचनार में स्त्री की कोमलता है और पुरुष का पौरुष किन्तु लक्ष्मीबाई स्वतंत्रता-संग्राम की महान् सेनानी होने के नाते पौरुष की ओर अधिक झुकी हुई है। वर्मा जी के पात्रों में गुण-सृजक-शक्ति की दृष्टि से लक्ष्मीबाई उनकी सबसे बड़ी रचना है। उसमें सर्वाधिक प्रधान तथा गौण सत्ताइस गुणों का समावेश कराया गया है।[1]

लक्ष्मीबाई का चरित्र अन्य स्त्री पात्रों से भिन्न है। अब तक वर्मा जी की नारी अबला थी, उसका रूप युद्धों का कारण बना। लक्ष्मीबाई नारी की सर्वांगीण शक्ति की प्रतीक है। वह प्रेरणा दे सकती है और स्वयं जीवन संग्राम में कूद कर पुरुषों को संचालित भी करती है। नारी का यह संस्करण अत्यन्त प्रबल है। उसमें कर्त्तव्य-प्रेम और लगन है और प्रणय-व्यापार का सर्वथा अभाव। उसका स्नेहमयी, कर्त्तव्यपरायणा पत्नी और माता के रूप में भी निर्वाह हुआ है।

लक्ष्मीबाई तेरह वर्ष की अल्प आयु में उपन्यास में पदार्पण करती है, अन्य पूर्ववर्ती नारी पात्रों की भाँति युवावस्था की रोमांटिक कल्पनायें लेकर नहीं आती। बालिका मनूबाई में भविष्य की 'लक्ष्मीबाई' के गुण अभी से विकासोन्मुख अवस्था में है। प्रारम्भ के कुछ परिच्छेदों में उसकी बालप्रवृत्तियों पर

१. **प्रधान गुण—वीरता** (पृष्ठ—२८०, २९०), **देशभक्ति तथा कर्मयोग की भावना** (१६३), **लगन** (१०१, २४६), **दृढ़ता** (७६, २१४, ३२०, ३९५, ४१९, ४८१) **बुद्धिमत्ता** (११६, ११७, १४०, १५५, १८४, १८७, १९२, २१९, २३२, २३४, ३०९, ३२२, ३३३, ३७२, ४४२, ४६९) **प्रेरक शक्ति** (६५, ४०१), **युद्ध-कौशल** (४२९, ४४५, ४५२, ४५४, ४८०, ४८७)।

गौण गुण—महत्वाकांक्षा (१५, १८, २३), **निर्भीकता** (१६, १९, २०, १४१), **वाचालता** (२५, ३६), **चपलता** (३२, ७०), **व्यंगात्मकता** (७८, ७९, ८१), **सरलता तथा उदारता** (६३, ७५, १३८, १९१, २५८), **स्वाभिमान** (९४) **करुणा** (१३३) **संयम** (१५६, १८०, १८१, २७५), **क्षणिक दुर्बलता** (४१४, ४१५, ४१७), **सैद्धान्तिकता** (२६२, ३२५, ३६४, ४५७, ४८३, ४९१), **सूक्ष्मनिरीक्षण-शक्ति** (२८१, ३१४, ४७१, ४८४), **तेज** (२६१, २९२), **प्रबंध कौशल** (३१५), **कलाप्रेम** (३३५), **साहित्य-प्रेम** (४१४), **प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण** (३३९) , **निराशावादिता** (१६०, १६१)।

प्रकाश डाल कर लक्ष्मीबाई के प्रबल चरित्र की मनोवैज्ञानिक भूमिका तैयार की गई है। लक्ष्मीबाई के होश संभालने से लेकर मृत्युपर्यन्त उसी रूप का विकास हुआ है। चित्रण की शृङ्खलाबद्धता और विस्तार की दृष्टि से यह चरित्र पूर्ण है।

सर्वप्रथम मनूबाई के इस प्रकार दर्शन होते हैं।—'बड़ा बालक कुछ आगे निकला था कि बालिका (मनू) ने अपने घोड़े को ड़ ऐंलगाई। बोली, 'देखूँ कैसे आगे निकलते हो।' और वह आगे हो गई।'[१]···लक्ष्मीबाई के विशाल व्यक्तित्व की पहली रेखा में उसके अदम्य उत्साह का भान हो जाता है। उसको तुलसीदास की रामायण बड़ी प्रिय है परन्तु तलवार चलाना, मलखंभ, घोड़े की सवारी, ये उससे भी बढ़ कर भाते हैं। छत्रपति शिवाजी इत्यादि के आधुनिक और अर्जुन, भीम इत्यादि के पुरातन आख्यानों ने मनू की कल्पना को एक अस्पष्ट और अदम्य गुदगुदी दे रखी थी। स्वभाव में कुछ-कुछ उद्दण्डतामिश्रित पराक्रमप्रियता है। अपने पुराने नाम 'छबीली' में वीरता, उग्रता का तनिक भी अंश न पा कर, उससे घृणा करती है। उसे छबीली सम्बोधन असह्य है।

चौदह वर्ष की आयु में मनू का विवाह झाँसी के राजा गंगाधरराव से हो गया। नई रानी को दासियों ने घेर लिया। राग-रंग की वेला थी। किन्तु वहाँ घुड़सवारी, हथियार चलाने, मलखंभ, कुश्ती तथा प्राचीन गाथाओं की चर्चा छिड़ गई। मनु ने तुरन्त अपने दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण कर दिया, 'पुरुषों को पुरुषार्थ सिखलाने के लिये स्त्रियों को मलखंभ, कुश्ती इत्यादि सीखना ही चाहिए। खूब तेज दौड़ना भी। नाचने गाने से भी स्त्रियों का स्वास्थ्य सुधरता है, परन्तु अपने को मोहक बना लेना ही तो स्त्री का समग्र कर्त्तव्य नहीं है।'' फूलों से नाता बनाये रक्खो, परन्तु मिट्टी से सम्बन्ध तोड़ कर नहीं।'[२]

सन् १८५७ के देशव्यापी आन्दोलन की संचालिका के रूप में लक्ष्मीबाई के दर्शन होते हैं। उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा चरम सीमा पर है। देश गर्त में जा रहा हो, उस समय कला और विलास का क्या स्थान! गंगाधरराव के कला और विलासप्रिय स्वभाव से उसकी नहीं पटती। राजा से इस विषय पर नोंक-झोंक हो जाती है। उसके कुछ व्यंग्य देखिये, 'आपके यहाँ के भाट क्या केवल प्रशंसा और यश गान ही करते हैं या कभी-कभी कड़वा भी सुनाते हैं?' नायिका-भेद के विषय में मत है—'अर्थात् स्त्रियों के पूरे शरीर की सूक्ष्म जाँच पड़ताल और, इस काम के लिये इन लोगों को इनाम पुरस्कार भी दिये जाते

१. झाँसी की रानी—पृ० १५
२. वही—पृ० ६५, ६८

होंगे ?'' भूषण को छत्रपति शिवाजी क्या इसी तरह की कविता के लिये बढ़ावा दिया करते थे भूषण तो दरबार की शोभा रहे न होंगे।' तत्कालीन शासन पर व्यंग्य है, 'इन दिनों अब इससे (नाटकशाला के मनोरंजन) से अधिक और हो ही क्या सकता है ? राज्य का काम चलाने के लिये दीवान हैं। डाकुओं का दमन करने और प्रजा को ठीक पथ पर चालू रखने के लिये अँगरेज़ी सेना है ही। इस पर भी यदि कोई गलती हो गई तो कम्पनी के एजेण्ट की खुशामद कर ली। बस सब काम ज्यों का त्यों चलता रहा।'[१] अभी इस स्थिति में उसे अपने उद्‌गार व्यंग्य-रूप में ही प्रकट करने का अवसर मिलता है।

गंगाधरराव की मृत्यु के बाद झाँसी अँगरेजों ने हड़प ली। रानी को धक्का लगा। मुँह से एकाएक निकल ही गया, 'मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी।' परन्तु दूसरे क्षण उसने बुद्धि से कार्य लिया। सोचा, अभी समय नहीं आया है। अँगरेजों के पाप का घड़ा अभी नहीं भरा। अभी सतत साधना की आवश्यकता है। रानी ने विद्रोह के समय सबकी अनुमति प्राप्त करके झाँसी का शासन सँभाला। अपने शासनकाल में उसने निज के आदर्शों की स्थापना की, शासन के विविध अंगों का योग्यतापूर्ण संचालन किया। सब जातियाँ एक हों, किसी को भेदभाव की दृष्टि से न देखा जाय। झाँसी के लिये समस्त जाति के नर-नारी संयुक्त मोर्चा बना कर जीवन तक की बाजी लगा दें। रानी ने यह भाव सब में फूँक दिया। इसी के आधार पर झाँसी का स्वातंत्र्य-संग्राम लड़ा गया। गुणवान् व्यक्तियों को अपने 'करतब' दिखाने का अवसर मिला। डाकू लुटेरों आदि प्रजापीड़कों का दमन किया गया। रानी का पक्का विश्वास था कि '... जनता मुख्य साधन है। राजा और नवाब की पीढ़ी, दो पीढ़ी ही योग्य होती है। परन्तु जनता की पीढ़ियों की योग्यता कभी नहीं छीजती।'[२]

रानी ने विद्रोही सिपाहियों द्वारा अंगरेजों की हत्या पर उनकी नृशंसता की भर्त्सना की—'इन्हीं कर्मों से स्वराज्य और बादशाही स्थापित करोगे ? तुम लोगों ने घोर दुष्कर्म किया है। क्या समझते हो कि संसार से सब नियम, संयम उठ गये ?'[३] वह जानती थी कि किसी भी शासन की स्थापना में स्वस्थ परम्पराओं की रक्षा आवश्यक है, क्षणिक आवेश तथा अनुशासनहीन क्रान्ति से कुछ न होगा।

अंगरेजों से मुकाबला हुआ। रानी ने अपनी मुट्ठी भर सेना ले कर उन

१. **झाँसी की रानी'''पृ० ७६, ८१**
२. **वही'''पृ० १४१**
३. **वही'''पृ० २६२**

विकट आतताइयों से टक्कर ली। दूल्हाजू के विश्वासघात के फलस्वरूप झाँसी के किले में अंगरेज घुस आये। झाँसी में स्वराज्य-स्थापना के स्वप्निल महल ढह गये। रानी में क्षणिक दुर्बलता आई। सोचा, केवल एक साधन शेष है। बारूद की कोठरी है। वहाँ पहुँच कर पिस्तौल के धड़ाके के साथ अपने पुरुखों में मिल जाए। नाना भोपटकर ने इस समय कर्त्तव्य का मार्मिक शब्दों में उसे ध्यान दिलाया। रानी की आँखों के सामने एक दृश्य घूम गया, कुरुक्षेत्र का मैदान है। कौरव पाडवों की सेनायें एक दूसरे के सामने डटी हुई हैं। अर्जुन ने कृष्ण से कहा, भगवान् मेरा साहस डिग गया है। मेरा सामर्थ्य हिल गया है। मैं असमर्थ हूँ। लड़ना नहीं चाहता। भगवान् कृष्ण ने उद्-बोधन किया। अर्जुन ने फिर गांडीव धनुष हाथ में ले लिया। दुर्बलता तिरोहित हो गई। रानी ने नवीन स्फूर्ति का अनुभव किया। अंग्रेजी सेना को चीरती हुई प्राणों की बाजी लगाकर कालपी जा पहुँची।

कालपी में राव साहब की अनुशासनहीन सेना में लक्ष्मीबाई ने चेतना भर दी। ग्वालियर का किला हस्तगत कर लिया। सामन्तशाही में पोषित राव साहब की विकृत मनोवृत्तियों से रानी का मेल न खाया। मूर्ख साथियों के कारण अन्त में बाजी अंगरेजों के हाथ रही। रानी को मैदान छोड़ कर हटना पड़ा। उसने पीछा करते हुए सैनिकों से मुकाबला किया। बुरी तरह घायल हो जाने के फलस्वरूप स्वतंत्रता की वह घोर साधिका नश्वर शरीर त्याग कर अमर हो गई।

हम लक्ष्मीबाई के सम्पूर्ण जीवन पर एक सरसरी दृष्टि डाल कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लेखक ने उसे भगवान् कृष्ण के उपदेश, 'कर्मयोग' के आधार पर ढाला है। उपन्यास में पदार्पण करते ही वह कुछ कर मिटने की धुन में है। आदर्श पुरुषों व नारियों की कथायें उसके हृदय में रमी हुई हैं। झाँसी में पहुँचकर वह अपने स्वप्निल संसार को यथार्थ रूप प्रदान करना चाहती है, और सफल भी होती है। झाँसी में स्थापित किया गया, उस समय का शासन आज के वैज्ञानिक युग में भी आदर्श और प्रेरणा की वस्तु है। अंगरेजों से मुकाबला होने पर रानी ने साहस न छोड़ा। अल्प साधनों को लेकर वह स्वराज्य की रक्षा के हेतु जुट गई। इस घोर युद्ध में सैनिक गये, झाँसी गई, रानी गई, सब कुछ गया। परन्तु वह अपनी साधना से अन्त तक तनिक न डिगी।

लक्ष्मीबाई का चरित्र आदर्श है। चरित्र मानवीय स्तर से ऊपर न उठ जाए इसलिए अत्यन्त हृदय-विदारक परिस्थितियों में उसे क्षण भर के लिए दुःखी और विचलित प्रदर्शित किया गया है। उदाहरण के लिए गंगाधर-

ं) कैसे करेंगे ? मैं कोई चोरी तो करती नहीं। मानलो मैं अचल को या
ी को चाहने लगूँ तो उनका मार्ग अलग मेरा अलग, परन्तु जब तक वे
ने शरीर को और मैं अपने शरीर को पवित्र बनाये रहें तब तक किसी के
न से किसी को क्या वास्ता ?'[1] लोकापवाद की उसे चिन्ता नहीं—'समाज
यदि गन्दा है कि उसको फूलों में भी दुर्गन्धि आती है तो हमको उनकी जरा
ी परवाह नहीं।'[2]

अचल से कुन्ती संगीत सीखने जाती थी। उसके प्रति आकृष्ट थी। सुधा-
कर से विवाह हो जाने पर वासना के वेग में अचल का चित्र धुँधला पड़ जाता
है। वासना का वेग धीमा पड़ने पर अतृप्ता कुन्ती जीवन में से कुछ खोया-
सा अनुभव करती है। अचल के यहाँ उसका आना-जाना, उठना-बैठना पुन:
बढ़ जाता है। कुन्ती के हृदय को रह-रह कर कुछ कुरेद रहा है। वह दुःखी,
ेरही अचल का विवाह विधवा निशा से करा देती है। फिर कुन्ती का अचल
मिलना-जुलना उसी गति से जारी रहता है। सुधाकर के हठपूर्वक
रोकने पर मानिनी कुन्ती में प्रतिक्रिया होती है। वह बन्दूक की गोली से
आत्मघात कर लेती है और कागज पर लिखा छोड़ जाती है—'अचल मेरा
कोई···' कुन्ती आगे क्या लिखना चाहती थी, यह समस्या बन कर रह जाता
है। किन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कुन्ती के आत्मघात के
मूल में उसका हठ, कुण्ठा और मान है।

(८) लोलुपा अंजना

अंजना (अमरबेल) में काँइयाँपन, धूर्तता, नीचता और मिथ्या प्रेमाभिनय के दुर्गुण एक साथ आ जमे है। वह देशराज से प्रेम या प्रेमाभिनय करता है। उसके सहयोग से अफीम का अवैध व्यापार करने में सिद्धहस्त है। अपने गुणों का बखान वह स्वयं इस प्रकार करती है—'ऐसे ऐसे अभिनय करने पड़ते हैं कि क्या बतलाऊँ। कभी तितली, कभी मोर और कभी कोयल बनना पड़ता है। इन्द्रानी, कभी मेनका, कभी इस अप्सरा, कभी उस अप्सरा की भूमिका में उतरना पड़ता है। मैं खुद अपने अभिनय पर जब कभी चकरा जाती हूँ।

'कभी कभी ऐसी निपट गंवार देहातिन बन जाती हूँ कि ऐसे ऐसे लोक नृत्य दिखलाती हूं कि अपनी ही हंसी मुश्किल से रोक पाती हूँ। एक बार घसियारी बनी थी। उसी घास में दस सेर माल छिपा लाई थी। उस दिन सोचा था, यदि मैं फिल्मों में काम करती तो बहुत सी तारिकाओं को ठिकाने

१. अचल मेरा कोई—पृ० १६७, १६८

२. वही—पृ० २५३

लगा देती, पर मुझे सिनेमा की कैद का जीवन पसन्द नहीं। मैं तो भ्रमण और पराक्रम का जीवन पसन्द करती हूं।'[1] यही नहीं, राजा बाघराज से प्रेमाभिनय कर उसे आकृष्ट कर आय का साधन बनाने का प्रयत्न करती है। योजनाओं में असफल रहने तथा अपमानित होने पर देशराज का चित्त इस दुष्कर्म से फिर जाता है किन्तु अंजना की लालसा और दुस्साहस ज्यों के त्यों बने रहते हैं।

(इ) कर्कशा रोनी

रोनी (टूटे काँटे) शरीर से सुन्दरी और स्वभाव से कर्कशा है। वह अपने सीधे-सादे पति मोहन को व्यंग्य बाणों से प्रायः छेदती रहती है। बात-बात पर बिगड़ना उसकी विशेषता है। फसल के अन्न का तीन चौथाई शाही कर्मचारी ले जाते है। दिन भर का थका, दुखी, भूखा मोहन रात्रि को दबी जबान रोटी की चर्चा करता है। उत्तर में रोनी बरस पड़ती है—'हाँ रोटी क्यों नहीं खानी पड़ेगी ? बड़ा करतब कियाहै न आज तुमने ! कब से कह रही थी कि फसल काटकर गाह लो, पर कान पर जूं तक न रेंगा !! निकम्मे, निगोड़े !!! चाहती हूं कुंये में गिरकर तुमको हत्यारा कर जाऊँ, पर तुमको मेरे पीछे और भी मौज मजा मिलेगा इसीलिये रह रह जाती हूं। रोटी खाने को मन दौड़ रहा है। लाज तक न आती ! वे रह गई हैं थोड़ी सी बालें, डकार लो इनको। फिर भीख माँगना।'[2] निदान रोनी की कर्कशता से पीड़ित मोहन गृह त्याग कर चला जाता है। रोनी की कर्कशता, स्वार्थपरता तथा लोभ में कोई अन्तर नही आता। अन्त में वृन्दावन में दोनों की भेंट होती है। मोहन के साथ सुशीला नूरबाई थी। नूरबाई के सम्पर्क में रहकर कर्कशा रोनी में कुछ अन्तर आता है।

सामन्तवादी पात्र

हमारे राष्ट्रीय जीवन में आरामतलबी, हृदयगत संकीर्णता, सनक और अनुशासनहीनता जैसे दुर्गणों को दूर करने की विकट समस्या है। हम उद्योग करते है किन्तु मूर्खतापूर्ण लक्ष्य निर्धारित कर लेने के कारण अपनी शक्ति को अपव्यय और राष्ट्र को अवनति की ओर ले जाते हैं। बिल्कुल प्रेमचन्द के 'शतरंज के खिलाड़ियों' की भाँति, जिन्हें अपने नवाब के बन्दी हो जाने की अधिक चिंता नही परन्तु अपने एक मोहरे को पिटते देख जान तक दे देना आवश्यक है। गतयुगीन सामन्तों में हमारी इन दुर्बलताओं का प्रचंडतम रूप देखने में आता है। वर्मा जी के उपन्यासों में जहाँ-तहाँ विचरते सामन्तशाही से प्रभावित पात्र दृष्टिगोचर होते हैं। उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित किया

१. **अमरबेल**—पृ० १७०
२. **टूटे कांटे**—पृ १७

जा सकता है। पहले वे है, जिनके जीवन का लक्ष्य केवल लड़ना-भिड़ना, मर-मिटना है। ये ईमानदार, वीर, साहसी और अपनी धुन के पक्के हैं। क्रोध आने पर किसी को क्षमा नहीं कर सकते, कुअवसर पर नव नहीं सकते। उस समय बुद्धि और विवेक से उन्हें कोई सरोकार नहीं। केवल तलवारें खटकाना उनके जीवन की साध है। दूसरी श्रेणी में विभाजित किये जाने वाले पात्र वीर, साहसी और सनकी हैं किन्तु साथ ही लोलुप, विलासी, शिथिल, आलसी और स्वेच्छाचारी हैं। ये अपेक्षाकृत भयंकर हैं।

पहली कोटि को लीजिये। पुण्यपाल (गढ़ कुंडार) वीर और साहसी है। आवश्यकता से अधिक उच्छृङ्खल और सनकी भी। जरा सी बात पर लड़ मरने को कमर कस लेता है। भले ही मुख्य योजना तितर-बितर हो जाए परन्तु उसे तनिक दबना दूभर है। उपन्यास में जहाँ कही दीखता है, तना हुआ, विक्षुब्ध और अपनी ही सनक में। लक्ष्य के लिये अपने प्राण होम कर सकता है। अनुशासन में रहना अथवा किसी की तनिक सी उद्दण्डता को टाल जाना उसके वश का नहीं। पुण्यपाल को देखकर पाठक को कुछ क्रोध और खीज का अनुभव होता है।

लोचनसिंह (बिराटा की पद्मिनी) पुण्यपाल का विकसित रूप है। अपनी वीरता और नेकदिली से पाठकों को मोहित कर लेता है। अधेड़ अवस्था का, सनकी स्वभाव के लिये विख्यात। राजा नायकसिंह से एक स्थल पर कहता है, 'मूड़ ही कटवा लेंगे आप ? सो उसका मुझे कोई डर नहीं है।'

जिस समय राजा के सामने बातचीत करने के लिये मुँह खोलता था, अन्य दरबारियों का सिर घूमने लगता था। भय जैसी वस्तु से उसका कोई सरोकार नहीं है। राजा की आज्ञा पालन करने में सब से आगे चलने वाला। युद्ध में पीछे हटना कभी सीखा न था। किन्तु मन के विरुद्ध कार्य राजा भी नहीं करा सकता। बिल्कुल जलती हुई आग की भाँति प्रबल और सरल। नायकसिंह उसकी हर समय सिर कटाने की आदत से कुढ़ कर कहता है, 'हकीम जी इस भयङ्कर रीछ को मेरे पास मत आने दिया कीजिये। यह न मालूम इतने दिनों कैसे जीता रहा।'[1] उसका अन्त भी विकट होता है। राजा देवीसिंह की तनिक भर्त्सना पर अपनी वंशगत उपाधि 'चामुँडराई' के प्रतीक फेंटे को चट्टान पर अत्यन्त अवहेलना से फेंकता हुआ बेतवा की तीव्र धार में बह जाता है।

---

१ बिराटा की पद्मिनी—पृ० ४६

सोनेशाह (कचनार) लोचनसिंह की भाँति सनकी है। स्वभाव में क्रूर अधिक है। सरलता का उसमें अभाव है। डरू के भाई बैजनाथ से लगान के सम्बन्ध में झगड़ते हुए प्रचण्ड रूप में उपस्थित होता है। उस समय लोचन-सिंह के मुस्लिम सिपाहियों से पालर में हुए झगड़े का स्मरण हो आता है। उतनी ही उग्रता और उद्दण्डता। सोनेशाह वहीं डरू के हाथों मारा जाता है। उपन्यास के प्रारम्भिक कुछ पृष्ठों में ही उसका उग्र स्वरूप स्पष्ट है।

दूसरी कोटि के पात्रों में गंगाधर राव (झाँसी की रानी) हुरमत सिंह (गढ़ कुण्डार) नायकसिंह (विराटा की पद्मिनी), राव साहब (झाँसी की रानी), मानसिंह (कचनार), धुरन्धरसिंह (सोना), मुहम्मदशाह (टूटे काटे) आदि हैं। गंगाधरराव का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है। उसका विधुर जीवन नीरस हो उठा है। संस्कारों में बिंधा हुआ उसका कला-प्रेम करवटें लेता है। स्वभाव में सनक और कठोरता है।

लिखा है –

'गंगाधरराव साहित्य और ललित कलाओं के पूरे रसिक थे। सुखलाल उनका चित्रकार था। पढ़ा लिखा कम, परन्तु कलम और कूँची की सही विधि कोमलता और हथौटी का आचार्य। गायक, वादक, खास कर ध्रुवपद वीणा और पखावज के उस्ताद और रीतिकाल और भक्तिरस की ओट वाले कवि गंगाधरराव की महफिल को आबाद करने लगे। उन्होंने दूर-दूर से नाना प्रकार के हस्तलिखित ग्रन्थ इकट्ठे करवाये और विशाल पुस्तक भांडार से अपने पुस्तकालय को भर दिया। वेद, उपनिषत्, दर्शन, पुराण, तन्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, काव्य इत्यादि के इतने ग्रन्थ उनके पुस्तकालय में थे कि लोग दूर-दूर से उनकी प्रतिलिपि के लिए आने लगे।

'नाटकों का उन्हें विशेष शौक था। वे संस्कृत नाटकों का अनुवाद हिन्दी और मराठी में करवाया करते थे और उनका अभिनय भी करवाते थे। शहर के महल के पीछे पश्चिमी दिशा में नाटकशाला थी।

'गंगाधरराव स्वयं अभिनय करते थे पुरुष के अभिनय से सन्तोष नहीं होता था, इसलिए स्त्री की भूमिका में भी आ जाते थे।...'[1]

यहाँ गंगाधरराव में मृगनयनी के मानसिंह से मिलते जुलते कलात्मक तत्व हैं किन्तु इनके मूल में कुंठा व्याप्त होने के कारण दृष्टिकोण पूर्णतया स्वस्थ नहीं है। इसे वर्मा जी ने बड़े कौशल से इङ्गित किया है—'और रीति काल और भक्तिरस की ओट वाले कवि गंगाधर की महफिल आबाद करने

१. झाँसी की रानी—पृ० ८, ६

लगे।' गंगाधरराव के उपर्युक्त गुणों से ही उसके व्यक्तित्व की रूप-रेखा खिंच जाती है।

मनूबाई से विवाह हो गया। स्वभाव में कुछ कोमलता आई। रानी का अदम्य स्वभाव अखरा किन्तु पी लिया। गंगाधर ने अपना दमन तो किया किंतु वह क्रोध और कठोरता कहीं और बह चले। अन्तर्द्वन्द्व के कारण मन में क्रोध की मात्रा और भी बढ़ गई और अपराधियों को दण्ड देने के लिए बिल्कुल नए नए साधन काम में लाये जाने लगे। जैसे, प्रहरी की असावधानी के फलस्वरूप उसे बिच्छुओं से कटवाना।

गंगाधरराव नाम भर का राजा था। सत्ता वास्तव में अँगरेजों के हाथ में थी। राजा के कर्तव्य की इतिश्री राज्य में उठने वाले दंगों, फसादों को दबाने भर में थी: किन्तु राजा का पानी बिल्कुल मर गया हो, ऐसी बात नहीं। खीज कर गार्डन से कह ही तो दिया—'साहब, मैं तो एक छोटा सा संस्थापक हूँ। तो भी चाहूँ तो बहुत-कुछ कर सकता हूँ। लेकिन सभी राजाओं ने चूड़ियाँ पहिन रखी हैं। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं कि अपने ही देश में हम सब कैद हैं सवा सौ वर्ष पहले की बात याद कीजिए। आप लोगों की क्या शान थी, जब दिल्ली के बादशाह और पूना के पन्तप्रधान के दरबार में साष्टांग प्रणाम कर करके अर्जियाँ पेश करते थे।'[1] अन्त में रोगग्रस्त गंगाधरराव, नायकसिंह (बिराटा की पद्मिनी) का स्मरण करा देता है। वैसी ही खीज और सनक। संसार से विदा होने का समय निकट आते-आते स्वभाव में पश्चाताप, उदारता और दीनता आ जाती है।

हरमतसिंह (गढ़ कुंडार) ढलती आयु का शिथिल शासक है। स्वार्थी, अभिमानी, सौजन्यविहीन और आरामतलब। कुण्डार का समस्त शासन शृङ्खलाविहीन है। नित्यप्रति के मुस्लिम आक्रमणों के प्रति वह उदासीन है। तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के प्रति किसी सीमा तक वह स्वयं उत्तरदायी है। नायकसिंह (बिराटा की पद्मिनी) वीर, झक्की और कामुक है। सनक और बीमारी के कारण बच्चों जैसा स्वभाव है। शासन प्रबन्ध से कोई सरोकार नहीं, सब कुछ अस्त-व्यस्त। राव साहब (झाँसी की रानी) अनुशासनहीनता तथा आरामतलबी का जीता-जागता उदाहरण है। देशभक्ति आदि में उसे कोई आकर्षण नहीं। अपने भोग-विलास के लिए राज्य अवश्य चाहता है परन्तु उसकी प्राप्ति एवं रक्षा के लिए उद्योग करना असम्भव है। मानसिंह (कचनार) लोलुप है। उसकी कामुकता की अग्नि दिन प्रतिदिन बढ़ती है। इन पात्रों के अतिरिक्त सामंतशाही के

१. झाँसी की रानी" पृ० ६३

प्रतीक दर्जनों पात्र उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं। उन सब के आधार में प्रायः यही प्रवृत्तियाँ डेरा डाले हैं।

अन्य पात्र

ठेठ बुंदेलखंडी जनता का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव और हृदय-ग्राही हुआ है। अर्जुन कुम्हार (गढ़ कुंडार) और झलकारी कोरिन (झाँसी की रानी) बुंदेलखंडी बोली में बोलते हैं। स्वाभाविक अक्खड़पन, उद्दंडता, कहीं कहीं काँइयाँपन, सरलता, वीरता, साहस, स्वामिभक्ति, ईमानदारी, सहृदयता ये सब मिलकर इनमें प्राण डाल देते हैं। अन्य पात्रों में भी यही स्वाभाविकता आ विराजी है। झलकारी कोरिन रानी लक्ष्मीबाई द्वारा आयोजित 'हरदी कूं कूं' के उत्सव में उपस्थित थी। वर्मा जी लिखते हैं, 'अन्त में कोने में खड़ी हुई एक नववधू माला लिये बढ़ी। उसके कपड़े बहुत रङ्ग-बिरंगे थे। चाँदी के जेवर पहिने थी। सोने का एकाध ही था। सब ठाठ सोलह आना बुन्देलखंडी। पैर के पैंजनों से लेकर सिर की दाउनी (दामिनी) तक सब आभूषण स्थानिक। रङ्ग जरा सांवला।' वह रानी की स्त्री-सेना में भरती हो जाती है। उसकी लगन और शक्ति देखते ही बनती है। अन्त में झाँसी का पतन हो गया। रानी किला छोड़कर घोड़े पर भागी। पीछे पीछे अँगरेज सैनिक। झलकारी का कर्तव्यप्रिय, वीर हृदय यह कैसे सहन करता। उसने रानी का अभिनय किया और अंगरेजी सेना में जा पहुँची। पहिचान ली गई। अँगरेजों ने गोली मारने की धमकी दी। उसे डर होता तो वह वहाँ जाती ही क्यों ?

झलकारी ने निर्भय होकर उत्तर दिया, 'मार दे, मैं का मरबे खों डरात हों जैसे इत्ते सिपाई मरे तैसे एक मैं सई।'[1]

इब्न करीम (गढ़ कुंडार) गौसमुहम्मद, खुदाबख्श तथा गुलमुहम्मद (झाँसी की रानी) ईमानदार मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें स्वामिभक्ति, ईमानदारी, वीरता, और रूखे आवरण में छिपी सहृदयता है। अपने स्वामी के लिए जीवन न्योछावर कर देते हैं। डरू (कचनार) और बोधन मिश्र (मृगनयनी) आदि अपनी विशेषताओं के कारण उल्लेखनीय हैं। डरू सामन्तशाही से सताया हुआ साधारण बुंदेलखंडी युवक है। उसके चरित्र में घोर दमन के विरुद्ध प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है। वह मानवता के साधारण नियमों को भी त्याग देता है। उद्दंड, हृदयहीन सैनिक बनकर उच्छृंखलता का प्रदर्शन करता है। बोधन मिश्र (मृगनयनी) तत्कालीन

१. झाँसी की रानी...पृ० ४२६

ब्राह्मण समाज की कट्टरता का जीता-जागता प्रतीक है। राजा दूसरी जाति की कन्या से विवाह कर सकता है परन्तु साधारण जन, अटल, के लिये यह कैसे संभव है ! वह हृदयहीनतापूर्वक अटल का अन्त तक विरोध करता है परन्तु है ईमानदार। जो ठीक जंचता है, उसे अपनाता है। विश्वास के विपरीत जाना असम्भव है भले ही राजा क्रुद्ध हो या विधर्मी वध कर डालें। अन्त में लखनऊ के मुल्लाओं से शास्त्रार्थ करता है और मारा जाता है। अली बहादुर (झाँसी की रानी) अँगरेजों की खुशामद करने वाला देशद्रोही है। तनिक से स्वार्थ के लिये देश को गढ़े में ढकेल देना उसे उचित जान पड़ता है। उसका स्वाभाविक चित्रण हुआ है। अलीबहादुर का स्वाभिभक्त नौकर पीरअली रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी) की भाँति षड्यंत्रकारी है।

तत्कालीन मुस्लिम शासकों की कामुकता, क्रूरता तथा उच्छृङ्खलता अलीमर्दान (बिराटा की पद्मिनी) महमूद बघर्रा तथा गयासुद्दीन (मृगनयनी) जैसे पात्रों में खूब उतरी है। अलीमर्दान की कामुकता के कारण कुमुद को जल समाधि लेनी पड़ी। महमूद बघर्रा अत्यन्त क्रूर और विकट शासक है। गयासुद्दीन में साक्षात् वासना मूर्तिमान है।

अंगरेज पात्र

अंगरेज पात्र मुख्यतया 'झाँसी की रानी' में आए हैं। ये भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डालने वाले काँइयाँ व्यापारी, कूटनीतिज्ञ प्रबन्धक तथा योद्धा के रूप में चित्रित हुए है। इनमें भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा तथा सामन्तशाही के प्रभाव से जर्जर भारतीय शासन एवं समाज के प्रति तीव्र घृणा है। अंगरेजों के स्वाभाविक गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनके बल पर वे भारत में सैकड़ों वर्ष राज्य कर सके। अंगरेज अपने देश के परम प्रेमी, कर्तव्यप्रिय, अनुशासनप्रिय तथा गुणग्राहक भी दीख पड़ते हैं।

कुछ मौलिक निष्कर्ष (अ) कथानक और पात्र

प्रमुख पात्रों के चरित्र और उनके चित्रण का विश्लेषण करने के उपरान्त वर्मा जी की पात्र-निर्माण एवं चित्रण की कला के विषय में कुछ मौलिक निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम प्रश्न उपन्यास में कथानक और पात्रों के परस्पर सम्बन्ध का है। वर्माजी कथानक की रूपरेखा पहले खींच लेते हैं। फिर उस कथा में आये पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान कर सजीव बनाते हैं। उन्हें कथा की परिधि में बाँध कर उनके चरित्र को युक्तिसंगत, स्वाभाविक बनाये

रखने का प्रयत्न रहता है। कथा के पूर्वनिश्चित होने पर भी पात्रों की स्वाभाविकता की रक्षा करने में उन्हें प्रायः सफलता मिली है। उदाहरण-स्वरूप 'गढ़ कुण्डार' की कथा और उसके प्रमुख पात्रों को ले सकते है। कुण्डार का खंगार राजकुमार नागदेव बुन्देला-पुत्री हेमवती के प्रति आकृष्ट है। यही आकर्षण खंगार-बुन्देला-संघर्ष तथा कुण्डार-पतन का कारण बनता है। कथा कुछ ऐसे क्रम में करवटें लेती है कि नागदेव के अनहिष्णु मादक प्रेमी स्वभाव को घटनाओं से घात-प्रतिघात करने का पूरा अवसर मिलता है। वह समर्पण की भावना से ओत-प्रोत, उदार प्रेमी से परिवर्तित हो हिंसा और प्रतिशोध की भावना से भर उठता है। नागदेव का चरित्र-विकास पूर्वनिश्चित घटना-क्रम में खप कर चलता है। नाथ में जो कुछ परिवर्तन आगे चलकर दृष्टि-गोचर होते है उसके बीज उसके चरित्र में प्रारम्भ से छिपे रहते हैं। ऐसे ही बाल-मित्र अग्निदत्त और नागदेव घटनाओं में पड़कर घोर शत्रु बन एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो जाते है। उनकी हिंसक प्रवृत्ति मित्रता की तह में पहले से छिपी थी।

कहीं-कहीं कथा के अनुसार पात्रों को मोड़ने पर उनकी स्वाभाविकता नष्ट हो गयी है। 'कुण्डली चक्र' के ललितसेन, रत्नकुमारी और अजित इसी श्रेणी के पात्र है। जहां जिस अवसर पर जैसा कार्य होना चाहिए ये कर बैठते है किन्तु उस कार्य की पृष्ठभूमि में इन पात्रों के स्वाभाविक गुणों का विकास नहीं हो पाता। इस दोष का 'अहिल्याबाई' का डाकू गनपतराव (बद्दूसिंह) ज्वलंत उदाहरण है। वह डाकू है। जामवाट पर डेरा जमाये रहता है। प्रत्येक राहगीर से उस मार्ग से निकलने भर का 'हाथ झुलाई कर' लेता है। एक बार अहिल्याबाई को भेजी हुई शंकर की मूर्ति, थोड़े से चावल और रंगीन धोती को देखकर उसके हृदय पर भारी प्रभाव पड़ता है। वह एकाएक अहिल्याबाई की सेवा में पहुंचकर अपने दुष्कर्मों का कठोर दण्ड प्राप्त करने की प्रार्थना करता है। अजित धन भी रानी के चरणों में रख देता है। बाद में पूजा-अर्चन में समय व्यतीत करता है। एक कुटिल, कठोर डाकू साधारण घटना से प्रभावित हो पूर्णतया बदल जाए, स्वभाव से महात्मा बुद्ध जैसा हो जाए अस्वाभाविक लगता है। ऐसी घटनायें संसार में देखने को मिलती है किन्तु उनका कारण कोई भीषण घटना या मानसिक आघात होता है। इन परिवर्तनों का चित्रण करने के लिए पर्याप्त मनोविश्लेषण एवं अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण अपेक्षित है। इस विकास के अभाव में गनपतराव का चरित्र अतिनाटकीय हो गया है। वर्मा जी ऐतिहासिक प्रमाण तथा उपन्यास में

उपर्युक्त उल्लिखित कारणों को परिवर्तन के लिए यथेष्ट मानते हैं।[१] इतिहास ऐसा कहता है, इतना कह देने भर से उपन्यासकार को छुट्टी नहीं मिल जाती। इस घटना तक पहुँचाने के लिए पात्र में मानवोचित अन्तर्द्वन्द्व और विकास का चित्रण आवश्यक है अन्यथा उपन्यास नीरस इतिहास बन कर रह जाएगा। गनपतराव कठपुतली की भाँति उपन्यासकार के इच्छा-संकल्पों के इशारे पर नाचता है।

[ब] पात्रों के आकर्षण का रहस्य

वर्मा जी के प्रायः सभी प्रमुख पात्र आकर्षक है। वे पाठक के मस्तिष्क पर अपना भारी प्रभाव छोड़ जाते हैं। पात्रों का अपना बांकापन और उनके जीवनकाल में बीती घटनाओं का सुघड़पन ही उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के सूत्रमंत्र हैं। पात्रों का यह बांकापन है उनकी अपने लक्ष्य के प्रति अटूट तन्मयता में उनके लिए लक्ष्य साध्य है तो जीवन साधन। जीवन-गति में तन्मयता और जीवन के प्रति निस्पृहता ये विरोधी जान पड़ने वाले दृष्टिकोण जीवनधारी इन पात्रों को सजीव और बांका बना देते है। पात्रों में व्याप्त तन्मयता, निर्द्वन्द्वता, तथा निस्पृहता बहुत-कुछ, बीते सामन्तयुगीन प्रभाव की देन है। वह युग कुछ था ही ऐसा जब व्यक्ति जो कुछ करता था डटकर, भले ही वह भूमि, आखेट का वन, नाटकशाला अथवा सुरा-सुन्दरी की रङ्गभूमि क्यों न हो। पास रहती थी खड्ग, तनिक सी खटपट पर विवादी की गर्दन चुटकियों में काट फेंकने वाली। यदि पांसा पलट गया और अपना ही शीश धड़ से नाता तोड़ दूर जा पड़ा तो भी मलाल नहीं। खिलाड़ियों जैसी निर्द्वन्द्वता। सब कुछ चरम पर। इस चरम को हम सनक कहेंगे किन्तु यह

१. '...गनपतराव के चरित्र में नाटकीय परिवर्तन बहुत खटकता है।' —आपके शब्द। हुआ ही था उसमें नाटकीय परिवर्तन। मल्हारराव का बुरा बर्ताव, आनन्दी का मनमुटाव इत्यादि कुछ कारण बने। फिर अहिल्याबाई की धर्मानुशीलन सम्बन्धी कीर्ति, उनके दामाद का वह पत्र, चंदेरी का धोती जोड़ा, शिव की मूर्ति और बही खाते में दर्ज किये गये थोड़े से चावल— ये गनपतराव में वैसा परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये क्या कम थे? वह परिवर्तन ऐतिहासिक घटना है। गनपतराव के रुपये से जामघाट पर—जहाँ वह डाके डालता था और जहाँ उसे ऊपर लिखा सब देखने को मिला था—क्यों न नाटकीय परिवर्तन उपस्थित करते?'

—वर्मा जी का पत्र, ता० २८-१-५६

सनक व्यक्ति की सजीवता और उत्साह की द्योतक तो है ही। रूखे आवरण में छिपे ये गुण हमें आकृष्ट किए बिना नहीं रहते।

पात्रों का लक्ष्य भले ही गलत हो किन्तु कार्य में कोई कसर न उठा रखना उनका स्वभाव है। उन्हें जो ठीक जंचता है उसके लिए प्राणों पर खेल जाना साधारण बात है। 'गढ़ कुंडार' के अग्निदत्त को लीजिए। जब तक जीना है जीयेगा किन्तु बेमन रहकर जीना उसने सीखा नहीं। प्राणप्यारी मानवती नहीं मिल पाई, ऊपर से मिला नागदेव से घोर अपमान। प्रतिशोध! केवल प्रतिशोध उसकी धुन हो जाती है। उसने जी खोल कर अपमान का बदला लिया। फिर प्राण रक्षा के लिए छिपता नहीं फिरता। वह कुंठित है अपने भयंकर लक्ष्य की पूर्ति के भीषण फल से। अन्त में पागलों जैसा लड़ता हुआ मारा जाता है। जिस जीवन की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक किया उसकी रक्षा की रत्ती भर चिंता कभी नहीं करता। जीवन जाता है जाने दो, बस उसकी सजीवता न जाने पाये। उसे अपनी आकांक्षायें, भावनायें और आदर्श प्यारे हैं, जीवन नहीं। जीवन प्रिय है तो केवल इनके साधन के रूप में। तन्मयता ही उसका जीवन है।

लोचनसिंह (बिराटा की पद्मिनी) की शक्ति, शौर्य के आकर्षण का रहस्य जीवन संबंधी इसी निस्पृहता में निहित है। एक दम निर्द्वन्द्व। युद्धभूमि में जी-जान से जुटना और शत्रु को निर्मूल कर के ही चैन लेना उसकी बान है। अपना कार्य उसके लिए सब कुछ है। दूसरी ओर वह जीवन से बिलकुल निस्संग है, जहाँ भी लड़ता है प्राणों की बाजी लगाकर। अपमान तनिक सा सहन नहीं कर सकता। अन्त में राजा देवीसिंह की उपेक्षा से क्षुब्ध हो बेतवा की धार में सदा के लिए बह जाता है। इसी प्रकार तारा (गढ़ कुंडार) प्रिय पर संकट की सूचना पाते ही स्त्री-सुलभ लज्जा का आवरण फेंक उसकी रक्षा करती है। तारा अपने जीवन के प्रति निस्संग है किन्तु दिवाकर की प्राणरक्षा के लिए कोई कसर नहीं उठा रखती। प्रायः सभी प्रमुख पात्र इसी भावना से ओत-प्रोत हैं। पात्रों की लक्ष्य के प्रति यह तन्मयता पाठकों के हृदय पर अपनी प्रभावशाली छाप छोड़ जाती है।

वर्मा जी के पात्रों में प्रभाव है। पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने वाली घटनाओं के महत्व पर भी विचार कर लेना युक्तिसंगत होगा। जिस उपन्यास में घटनायें हमारे इच्छा-संकल्पों (विशफुल थिंकिंग) से मिलती-जुलती होती है हम सहज ही उन घटनाओं में भ्रमण करने वाले पात्रों से तादात्म्य स्थापित कर लेते है। जीवन में जो कुछ सम्भव है उसकी सीमा में हम लोग बंधे रहते है। क्रियात्मक जीवन में वास्तविकता का अतिक्रमण करना किसी के लिए

सम्भव नहीं फिर भी हमारी अनेक दबी हुई भावनायें, कल्पनायें और आकांक्षायें किसी लोक में पहुंचकर तुष्ट होना चाहती है । वह लोक है हमारी कल्पना लोक का लोक, हमारे संकल्पों की दुनियाँ । हम मन ही मन अपने सूने क्षणों में प्रायः प्रिय घटनाओं या संयोगों की कल्पना किया करते है और इन घटनाओं के नायक हम स्वयं बन बैठते है । यह काल्पनिक संयोग सुखान्त ही नहीं दुःखान्त भी होते है । हम किसी सुन्दरी की गुंडो से रक्षा करने की सुखद कल्पना करते है तो कभी हमारी कल्पना किसी के लिए संसार में अनेक असफलतायें भोगने पर प्राण त्यागने से भी सन्तुष्ट हो जाती है । देश के प्रिय नेता बन जाने की कल्पना बहुतों को आकृष्ट करती है तो देश के लिए मर मिटने, शहीद हो जाने की आकांक्षा भी बहुत से हृदयों में धड़कती रहती है । इन इच्छा-संकल्पों को किसी पात्र से सम्बद्ध कथा में साकार होता देख हम आह्लाद से भर उठते है । और इस कल्पना-जगत् की 'आप बीती' की उपन्यास के पात्रों और उनकी कथा में सजीव पुनरावृत्ति हमें मोहित कर लेती है । हम घटनाओं के आकर्षण में खो जाते है । शनैः शनैः घटना हमारी अपनी रामकहानी बन जाती है और उस कहानी के नायक का हम स्वयं स्थान ग्रहण कर लेते है । पात्र और हम, हम और पात्र एक हो जाते है ।

वर्मा जी के उपन्यासों में हमारे अनेक इच्छा-संकल्पों से मिलती जुलती कथायें है । देश दासता के बंधन में बंधा है । चारों ओर अराजकता फैली है किसी दृढ़ नेतृत्व का अभाव निरन्तर अनुभव किया जा रहा है । ऐसी परिस्थिति में कल्पना-लोक में हमारा देश के नेतृत्व की बागडोर संभाल लेना स्वाभाविक है । हम दुष्ट, आततायियों का हनन कर जन-जन में स्फूर्ति फूंक देने की बात सोचते है । यह परिस्थिति हमें जब लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी— लक्ष्मीबाई) की कथा में घटित होती दीख पड़ती है उस समय मानो हमारी चिर पोषित कल्पना, हमारे इच्छा-संकल्प उपन्यास के पृष्ठों में सजीव, साकार हो उठते है । तब कथा की सूत्रधार लक्ष्मीबाई नहीं रह जाती वरन् सन् १८५७ के विद्रोह तथा उसके नेतृत्व का भार हमारा काल्पनिक व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है । हम में तथा लक्ष्मीबाई में कोई भेद नहीं रह जाता । इसी प्रकार दिवाकर (गढ़ कुंडार), धीरज (प्रेम की भेंट) तथा कुंजरसिंह (विराटा की पद्मिनी) आदि की मोहक कथा में डूबकर हम उनसे पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं । उनकी कथा हमारी कहानी बन जाती है । वर्माजी के पात्र हम से यही तादात्म्य स्थापित कर हमारे हृदय पर अपनी गहरी लकीर छोड़ जाते है ।

(स) पात्रों का स्रोत

वर्मा जी के अधिकांश पात्र उनके अपने अनुभव की देन हैं। केवल कल्पना के आधार पर खड़े किये गये व्यक्तित्व एवं चरित्र उनके उपन्यासों में प्रायः कम मिलेंगे। पात्र बीते युग के हों अथवा आज के, उन सब की विस्तृत रूप-रेखा उनके व्यक्तित्व उपन्यासकार के सम्पर्क में आये स्त्री-पुरुषों के संस्मरणों, के विकसित, सुयोजित प्रतिफल हैं। वर्मा जी ने इस तथ्य को अन्यत्र उल्लिखित एक पत्र में स्वीकार किया है। वास्तविक जीवन में देखे-सुने गये और व्यवहार में आये व्यक्ति उनकी पात्र-निर्माणकला की मूल प्रेरणा रहे हैं। कई उपन्यासों की भूमिका में उन्होंने पात्रों के मूल स्रोतों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए अपनी इस प्रेरणा का संकेत दिया है; वर्णित चरित्रों के वर्तमान सादृश्यों के सार्वजनिक उद्घाटन से बचा गया है केवल कुछ की चर्चा मात्र हुई है। जैसे 'गढ़ कुंडार' का अर्जुन उनके मित्र दुर्जन कुम्हार की छाया है।[1] देवसिंह (लगन) नन्दलाल[2] और लालमन (संगम) दतिया के मन्नूलाल डाकू का प्रतिबिम्ब है।[3] देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान (बिराटा की पद्मिनी) इत्यादि के नाम काल्पनिक हैं किन्तु उनका इतिहास सत्यमूलक है। लोचनसिंह के वास्तविक स्वरूप को इस संसार से विलीन हुए अधिक समय नहीं बीता।[4] 'अमरबेल' में सहकारी अधिकारी राघवन का नाम भर बदला गया है ताकि अन्य पात्रों और स्थानों के सब बनावटी नाम सारी घटनाओं के साथ कहीं उघड़ न जाएँ।[5]

वर्मा जी ने ऐतिहासिक उपन्यासों में पात्र आज के बुंदेलखंड से संजोये हैं। उन्होंने इस क्षेत्र का विस्तृत पर्यटन किया है और दूर गाँवों, जंगलों, पहाड़ियों में बसे आधुनिक सभ्यता से अछूते निवासियों को समीप से देखा है। इन लोगों में गतयुगीन बुंदेलखंड निवासियों की मुख्य चारित्रिक प्रवृत्तियाँ समय के साथ थोड़ी बहुत परिवर्तित होने पर भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। बुंदेलखंड के मध्ययुगीन इतिहास में सामन्तशाही के गुणों और दुर्गुणों का बोलबाला रहा है। उन परम्पराओं को अब तक सुरक्षित तथा जनप्रिय बनाये रखने में बुन्देलखंड की चली आई रियासतों का भी हाथ है। बुन्देलखंड की

---

१. गढ़ कुंडार...[भूमिका] पृ० १४
२. लगन...परिचय
३. संगम...[परिचय] पृ० ३१२
४. बिराटा की पद्मिनी...[परिचय] पृ० १२
५. अमरबेल...परिचय

जीर्ण हो रही पुरातन परम्पराएँ आज भी ठेठ बुन्देलखंडी के अन्तरतम में कहीं आसन जमाये बैठी है। उसमें पहले जैसी अकड़, वीरता, स्वाभिमान, देश-प्रेम अनुशासनहीनता, सनक और जाति-पाँति संबंधी संकीर्णता के तत्व आज भी वर्तमान हैं। वर्मा जी ने आधुनिक बुंदेलखंड निवासियों का संस्कार कर उन्हें मध्ययुगीन सांचे में ढाला है। आज के बुन्देलखंडी पूर्वकालीन जामा पहने ऐतिहासिक उपन्यासों में विचरते दीख पड़ते हैं। वर्मा जी की यह प्रतिभा सुप्रसिद्ध अंगरेजी ऐतिहासिक उपन्यासकार वाल्टर स्कॉट की पात्र-निर्माण-कला से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। स्कॉट का पुरातन से तादात्म्य था। वह जानता था कि उसके देशवासियों में पुरातन के संस्कार विद्यमान हैं। उनमें तथा पूर्वकालीन स्कॉच लोगों में मूलतः साम्य है। अतः उसने अपने काल के ही व्यक्तियों को ऐतिहासिक पात्रों का स्वरूप प्रदान किया था। वे ऐतिहासिक पात्र पुरानी भूषा से सज्जित स्कॉट के तत्कालीन देशवासी ही हैं। उसने वर्तमान और पुरातन का समन्वय कर इतिहास की निरन्तर अमिट आन्तरिक शृङ्खला को सामने रखा। वह जानता था कि राष्ट्र के निवासियों का चारित्रिक व्यक्तित्व कुछ काल की संकुचित परिधि में नहीं बांधा जा सकता। वह तो शताब्दियों के विकास की महान् देन है। उसके विकास और निर्माण में भूखंड के न जाने कितने रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का हाथ रहता है।[1]

(द) स्थूल चरित्र-रेखायें

इतिहास में मानवचरित्र का विस्तृत विश्लेषण नहीं मिलता। वहाँ पात्र के ढांचे को खड़ा करने वाली गिनी-चुनी कुछ मोटी रेखायें भर मिलती हैं। इन्हीं रेखाओं के आधार पर वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक पात्रों के स्पष्ट और पुष्ट व्यक्तित्व का निर्माण किया है। उनका स्वरूप पहले से निश्चित रहने के कारण उपन्यास में पदार्पण करते ही वे पात्र तुरन्त अपनी स्थूल रूप-रेखा प्रस्तुत कर देते हैं। इस रूप-रेखा के आधार पर उनका सम्पूर्ण चरित्र विकसित होता है। वर्माजी ने पात्रों में यत्र-तत्र मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व दिखाते हुए भी उनके चरित्र को आधुनिक पात्रों की भाँति अधिक उलझने नहीं दिया है। उन्होंने गत काल के पात्रों और घटनाओं को मोटे तौर पर देख पाया है मीनार पर से झाँकते दर्शक की भाँति। मीनार पर चढ़ा व्यक्ति नीचे चलते-फिरते नर-नारियों के लाल, पीले, नीले वस्त्र और उनके स्थूल भेद ही देखने में समर्थ होता है। अपनी कल्पना तथा अनुभव का आश्रय लेकर वह उन प्राणियों के स्पष्ट तथा

१. ए हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिट्रेचर—(आर्थर कॉम्पटन रिकेट)—पृ० ३२४

सजीव स्वरूप की कल्पना करने में सफल हो सकता है। इससे अधिक झाँक कर देखने वाले को मीनार से नीचे आ गिरने की आशंका रहती है। इसी प्रकार पग-पग पर उलझते चलते विरोधी गुणों से पूर्ण पात्रों की सृष्टि करने पर उनकी ऐतिहासिकता नष्ट होने तथा उनमें कृत्रिमता आ जाने का भय रहता है।

वर्माजी ऐतिहासिक पात्रों में मानवसुलभ गुणों को उभार कर उन्हें स्थायी और चमकदार बनाते हैं, पत्थर पर की लकीर जैसे। प्रारम्भ से ही उन्हें तराश कर रख देते हैं। अतः उनके अधिकांश पात्र निश्चित लक्ष्य की ओर संतुलित गति से बढ़ते हैं। पाठक पहली झलक से ही उनके भविष्य का बहुत कुछ अनुमान लगा सकता है। रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी), ताँत्या टोपे (झाँसी की रानी), दलीपसिंह (कचनार) तथा नूरबाई (टूटे काँटे) जैसे परिवर्तनशील पात्र अवश्य अपवादस्वरूप कहे जा सकते हैं किन्तु इनके परिवर्तन के बीज व्यक्तित्व के मूल में प्रारम्भ से छिपे हुए हैं। वाल्टर स्कॉट की पात्र-निर्माण-कला के विषय में भी आलोचकों का यही मत है। वह पात्र को जीवन प्रदान करने के उपरान्त उसे मौलिक गुणों के आधार पर विकसित होने के लिए छोड़ देता है। वे पात्र अन्त तक प्रायः बदलते नहीं हैं, अपने स्वभाव के विरुद्ध नहीं जाते।[1]

(इ) चित्रण-कला और विकास

वर्मा जी ने भारी संख्या में छोटे-बड़े पात्रों की सृष्टि की है। ऐतिहासिक उपन्यासों में तो पात्रों का जमघट है किन्तु सबकी रूप-रेखा इतनी उभरी हुई और स्पष्ट है कि उनके व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और भिन्नता सुरक्षित रहती है। पात्रों की सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं के साथ बाह्य स्वरूप का बारीक विवरण देकर उनका सजीव चित्र पाठकों के कल्पना-नेत्रों के समक्ष खड़ा करने का बराबर प्रयत्न रहा है। 'गढ़ कुंडार' में नागदेव और अग्निदत्त के पदार्पण करते ही उनके शारीरिक गठन, प्रकृति और रूप-रंग आदि का लगभग दो पृष्ठों में चित्रण किया गया है। इस चित्रण में नाप-तोल तथा निश्चयात्मक विवरण की झलक मिलती है किन्तु पात्र का पूर्ण स्वरूप एकाएक खड़ा कर देने पर उसका आकर्षण भविष्य में कम रह जाता है। मानो चरित्र-चित्रण घोल कर एक साथ पाठक के गले उतारा गया हो। यदि पात्र उपन्यास में आगे चलकर रोचक प्रतीत होता है तो इस रोचकता का श्रेय घटना-वैचित्र्य

१. ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर—(एमिली लिग्वे एण्ड लुई कैज़ामिश्रां)—पृ० १०२५

को देना उचित होगा। अपना रहस्य तो वह पहले ही खो बैठता है।

चरित्र-उद्घाटन-कला की दृष्टि से 'बिराटा की पद्मिनी' में महत्वपूर्ण परिवर्तन के दर्शन होते हैं। कुंजरसिंह को ले लीजिए। वह एकाएक पूर्ण-रूपेण प्रकट नहीं हो जाता। कुछ सूक्ष्म, संक्षिप्त रेखायें खींच कर उसका रेखाचित्र तैयार किया गया है। विभिन्न स्थलों से उसकी चारित्रिक रूप-रेखा इस प्रकार संकलित की जा सकती है।—

'''कुंजरसिंह राजा की दासी का पुत्र था। वह राज्य का उत्तराधिकारी न था, तो भी राजा उसे बहुत चाहते थे।[१] '''कुंजरसिंह आया। २०-२१ वर्ष का सौंदर्यमय बलशाली युवा था।[२]'''कुंजरसिंह के मन में देवी के दर्शन की इच्छा तो हुई, परन्तु लज्जाशील होने के कारण अकेले जाने की हिम्मत नहीं पड़ी।[३] '' कुंजरसिंह को सिंहासन की आशा कम थी, परन्तु उपेक्षा न थी। उसने लोगों से प्राय: सुना था कि संसार में पासा पलटते विलंब नहीं होता।[४] '''षड्यन्त्र की सृष्टि के लायक कुंजरसिंह में न तो यथेष्ठ मानसिक चपलता थी, और न किसी षड्यन्त्र की सृष्टि के प्रबल नायकत्व के लिये पूरी नैतिकहीनता।[५]''' आदि यत्र-तत्र कौशलपूर्वक प्रस्तुत वाक्यो मे कुंजर के व्यक्तित्व की रूप-रेखा कथा के साथ स्पष्ट होती चलती है। अपने कार्यकलाप द्वारा वह स्वयं अपने चरित्र में रंग भरता है। आगे अन्य उपन्यासों में प्राय: इसी चित्रण विधि का आश्रय लिया गया है।

वर्मा जी के नारी पात्र विशेष रूप से आकर्षक बन पड़े हैं। नायिकाओं के गम्भीर व्यक्तित्व में प्रछन्न राग उन्हे मोहक बना देते है। वर्मा जी की नारी संबधी धारणा और उपन्यासों में क्रमश: उसके विकास का विस्तृत विश्लेषण नारी पात्रों की चर्चा करते समय किया जा चुका है।

---

१. बिराटा की पद्मिनी'''पृ० १४
२. वही'''पृ० १५
३. वही...पृ० १८
४. वही'''पृ० ५०
५. वही'''पृ० ७३

अध्याय ५

वर्मा जी के उपन्यासों में कथोपकथन

कथोपकथन और अपेक्षित गुण

पात्रों के परस्पर वार्तालाप—'संवाद' या 'कथोपकथन' कहे जा सकते हैं। संवाद पाठक को पात्रों के व्यक्तित्व के समीपतर ले आते हैं। इनके कारण उपन्यास में अभिनीत नाटक जैसी विशदता और स्वाभाविकता अपने आप आ विराजती है। कथावस्तु के विकास एवं पात्र-चित्रण दोनों की दृष्टि से संवादों का महत्व उपन्यास में है। यदि सम्वाद कथासूत्र को अग्रसर करने अथवा वक्ता के चरित्र पर प्रकाश डालने में असमर्थ हैं तो भले ही वे मनोरंजक, उपयोगी अथवा स्वाभाविक हों उपन्यास के लिये निरर्थक हैं, उसकी गति और एकाग्रता के मार्ग में रोड़े अटकाने वाले हैं। उपन्यासकार कभी-कभी कथा तथा चरित्र की सीमाओं का अतिक्रमण कर सम्वादों के द्वारा अपने निश्चयों, सिद्धान्तों, कल्पनाओं तथा ज्ञान-भण्डार का दिग्दर्शन कराने लगते है। यह अधिकार का दुरुपयोग है। यदि उन्हें कथा से असम्बद्ध किसी बात की विवेचना करनी है तो वह अलग से निबन्ध लिख सकते हैं। किसी ने क्या खूब कहा है कि उद्धरण—चिह्न मात्र लगा देने से ही कोई उक्ति सम्वाद नहीं हो जाती।

दैनिक वार्तालाप का यथातथ्य स्वरूप अनाकर्षक और ऊबाने वाला रहेगा। पाठक का मन उसमें नहीं रमेगा। साधारण नर-नारियों की बातचीत को नाटकीय गति एवं शक्ति प्रदान करना आवश्यक हो जाता है। यदि कथोपकथन को नाटकीय और प्रभावशाली बनाने का जानबूझ कर प्रयत्न किया जाएगा तो उसमें कृत्रिमता आ जाने की आशंका रहती है। ऐसे कृत्रिम कथोपकथन से पाठक तादात्म्य स्थापित करने में असमर्थ रहेंगे। अतः उपन्यासकार वार्तालाप की सामग्री जन-जीवन से चुनकर उसकी आत्मा को सुरक्षित रखते हुए नवीन रूप प्रदान करता है। वह स्वाभाविकता तथा रमणीयता इन दोनों

'अतियों' के मध्य सामंजस्य स्थापित कर संवादों की स्वभाविकता, संगति की रक्षा करते हुए उन्हें नाटकीय आकर्षण प्रदान करता है ।

संक्षेप में, अच्छे कथोपकथन के लिए आवश्यक तीन प्रमुख गुण स्वीकार किए जा सकते है – सार्थकता, स्वभाविकता तथा रोचकता या नाटकीयता । कथोपकथन कथा-सूत्र के अग्रसर करने अथवा पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने में योग देते हों, यही उनकी सार्थकता है । संवाद की स्वाभाविकता पात्र तथा अवसर के अनुकूल भाषा के रूप, वाक्यों के संगठन तथा भावों की अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है । किस अवसर पर कौन सा पात्र किस भाव की अभिव्यक्ति किन शब्दों और कैसी वाक्यावली में करेगा यह सूक्ष्म दृष्टि सम्वाद की वास्तविकता की मूलमंत्र है । पात्रानुकूल भाषा-परिवर्तन एक निश्चित सीमा में ही सम्भव है । उदाहरणार्थ विदेशी अथवा ठेठ लोक-भाषा-भाषी पात्रों के लम्बे संवादों को पूर्णतया उनकी भाषा में रखना लेखक तथा पाठक दोनों के लिये अव्यवहारिक होगा । उपन्यासकार उन सम्वादों में यत्र-तत्र पात्रगत भाषा एवं भावाभिव्यक्ति की रीति के कुछ स्पर्श देकर वास्तविकता का प्रभाव उत्पन्न करता है । एक ही भाषा के बोलने वालों के बौद्धिक विकास-गत शब्द-चयन के अनुसार भाषा की कई श्रेणियाँ हो सकती हैं । कथोपकथन की भाषा पात्रानुकूल होने के साथ उसका विषय भी पात्र के मानसिक धरातल के अनुरूप होना वांछनीय है । उपन्यास के सम्वाद को पढ़कर कहा जा सके कि यह अमुक पात्र का कथन है, यही पात्रानुसार कथोपकथन-लेखन-कौशल की चरम सीमा है । सम्वादों में रोचकता या नाटकीयता की दृष्टि से उनमें संक्षिप्तता, पैनापन तथा कार्य के अनुसार गति अपेक्षित है । वार्तालाप के वाक्य सुगठित हों, कथन अनावश्यक रूप से लम्बे न हों, भावों की अभिव्यक्ति एवं शब्दों के चुनाव में प्रभाव हो तथा परिस्थिति के अनुसार अभिव्यक्ति में आवेग, स्थिरता, संक्षिप्तता या विस्तार हो तभी बातचीत हृदयग्राही बन पड़ेगी ।

वर्मा जी के संवादों में नाटकीयता

वर्मा जी के कथोपकन प्रायः रोचक होते हैं । उन्हें पढ़ने तथा समझने में पाठक को विशेष श्रम अपेक्षित नहीं होता । उनका सीधा-सादा प्रवाह, पैनापन और नाटकीय [1] तत्व ये सब मिलकर उसके हृदय पर प्रभाव डालने में सफल

१. **नाटकीयता का सम्बन्ध है नाट्य या नाटक से । नाटक दृश्य-काव्य है । दृश्य-काव्य में दर्शक को वास्तविकता का आभास मिलता है । भाव तथा**

होते हैं। सम्वाद वक्ता के विचार एवं विषय के अनुसार दीर्घ अथवा संक्षिप्त होते है । जहाँ वह किसी समस्या पर विचार प्रकट करता है कोई विश्लेषण अथवा विवेचन प्रस्तुत करता है, कथन बड़े तथा वाक्य लम्बे हो जाते हैं। जहाँ तीखापन है, तीव्रता है,गति है वहाँ कथन अत्यन्त संक्षिप्त तथा वाक्य छोटे-छोटे और पैने हैं। सम्वादों के साथ वक्ता के हाव-भाव का सूक्ष्म निरीक्षण भी चलता है। इस सूक्ष्म विवरण के सहारे सम्वाद नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने में सहज ही सफल हो जाते हैं। उक्त दृष्टि से बालमित्र नागदेव तथा अग्निदत्त की प्रणय सम्बन्धी वार्ता उल्लेखनीय है। दोनों प्रेमी हैं। नाग हेमवती के प्रति आकृष्ट है। उसमे जिज्ञासा, उत्सुकता, व्याकुलता, आवेग है तो गम्भीर प्रणयी अग्निदत्त में संकोच, फूंक-फूंक कर पग रखने की सर्तकता, आशंका तथा दृढ़ता है। दोनों के मनोभावों तथा चरित्र की अभिव्यक्ति सम्वादों में पूर्णरूपेण हुई है। सम्वादों में नाटकीय शक्ति कुछ ऐसी सीमा तक विकसित हो जाती है कि पाठक के कल्पना-पट पर नाग और अग्निदत्त के सजीव व्यक्तित्व उभर आते हैं और वह दोनों के राग-विराग के अनुकूल निश्वास और उच्छ्वास लेने लगता है।

नागदेव प्रणय में अपनी व्याकुलता का वर्णन करने के बाद उत्सुकतावश एकाएक अग्निदत्त से पूछ उठता है--'पांडे, तुमने क्या कभी इस भाव का, इस कोमल कष्ट का अनुभव किया है ?'

पांडे ने सिर नीचा किया। अंगड़ाई ली । जमुहाई ली । कहा—'सो जाइए। रात बहुत हो गई।' और साधारण हँसा।

नाग की उत्सुकता सहसा बहुत उत्तेजित हुई । बड़े आग्रह के साथ अनुरोध किया—'पांडे, तुम्हें मेरी सौगन्ध है। सच बतलाओ, वह कौनसी सौभाग्यवती है, जो तुम्हारे सदृश तेजस्वी युवा के अंक की प्रतीक्षा कर रही

कार्य के भंगिमा या अभिनय द्वारा साक्षात् प्रदर्शन में नाटक की नाटकीयता निहित है। अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहा ही गया है।

श्रव्य-काव्य में शब्दों द्वारा कल्पना को जाग्रत् कर श्रोता या पाठक के मानस-पटल पर चित्र बनाये जाते हैं। अतः उपन्यास में नाटकीयता से तात्पर्य है वास्तविकता के आभास से। नाटकीय स्थल पर घटना का वर्णन मात्र न हो वरन् वहाँ घटना स्वयं घटित होती जान पड़े, वार्तालाप तथा कार्य में सजीवता का बोध हो। जहाँ अमूर्त में मूर्त्त का आभास है, वास्तविक जीवन से होड़ लेने वाली स्वाभाविक गति है और जहां जड़ लेखनी में भी रंग-मंच पर अभिनीत दृश्यों जैसी सजीवता उत्पन्न करने की क्षमता है वहीं नाटकीयता है।

है ? तुम्हारी जाति की ही होगी ? तुम्हें तो कठनाई नहीं होगी ?'

अग्निदत्त एकाएक गंभीर हो गया। होंठ कांपने से लगे। उसकी एक आंख अध-मुदी सी और दूसरी खुली हुई सी थी। गर्दन जरा टेढ़ी हो गई और जिस हाथ के सहारे पलंग पर बैठा था, वह कुछ कड़ा हो गया। उसने स्पष्ट परन्तु कंपित स्वर में कहा—'यदि आप मेरे ऊपर कुछ भी स्नेह रखते हों, तो जितना मैं बतलाना चाहूं, उससे अधिक मत पूछिएगा, क्योंकि मैंने उस समय तक पूरा ब्यौरा न बतलाने का निश्चय कर लिया है, जब तक कि सफलता की पूरी आशा न हो जाय।'

नाग ने टोक कर कहा—'तो आप कुछ भी न बतलाएँगे ?' और उसका मुंह उतर गया।

अग्निदत्त ने अपने भाव को कुछ नरम करके कहा—'अवश्य बतलाऊँगा, परन्तु जहां जिस स्थान पर निषेध कर दूं, उससे आगे आप कुछ न पूछिएगा।'

नाग के आंख से आंख मिलाने पर अग्निदत्त मुस्करा दिया।

नाग ने कहा—'मैं प्रण करता हूं बाबा, बतलाओ भी।'

अग्निदत्त ने कांपते हुए हृदय को बल देने के लिये एक लंबी सांस खींची और कहा—'पूछिए।'

नाग ने एकाग्र मन और प्रोत्साहनमय ढंग से पूछा—'क्या आयु है ? कौन जाति की है ?'

अग्निदत्त ने जरा नीचे देखकर और मुस्कराकर उत्तर दिया—'पंद्रह-सोलह वर्ष से अधिक नहीं है।'

'कौन जाति की है ?'

अग्निदत्त ने हढ़ता के साथ कहा—'जाति नहीं बतलाऊँगा। परन्तु यह कह सकता हूं कि वह मेरी जाति की नहीं है।'

'रंग कैसा है ?'

अग्निदत्त ने बहुत लजाकर, बिना आँख से आँख मिलाए, उत्तर दिया—'बहुत खरा गोरा—जैसे तपा हुआ सोना। सारे शरीर से आभा झलकती है।'

'वह तुम्हें चाहती है ?'

अग्निदत्त ने गला साफ करके मुस्किराकर कहा—'हाँ।'

'तुम्हें कैसे मालूम है ?'

अग्निदत्त बहुत खिलखिलाया। नाग ने अपने प्रश्न को दुहराया। पांडे और भी अधिक हँसा। फिर दबी ज़बान से कहा—'उसने एक बार कहा था तुम्हें नहीं देखती हूं, तो बेचैन हो जाती हूँ।'

नाग का मुख किसी गुप्त हर्ष के कारण खिल उठा। बोला—'क्रूर सौन्दर्य, दुष्ट हृदय। किस बेचारी को इतना सताया करता है? उसका नाम क्या है?'

'नाम नहीं बतलाऊँगा।' अग्निदत्त ने उत्तर दिया, और एक हाथ से बिस्तर की चादर उलटने-पलटने लगा।

इस उत्तर पर नाग ने बुरा नहीं माना। पूछा—'अच्छा, यह बतलाओ शास्त्री जी उस बेचारी को रखेली करके घर में डालोगे या किसी तरह का ब्याह सम्बन्ध स्थापित करोगे?'

अग्निदत्त की आँख चमक उठी। बोला—'चाहे संसार इधर का उधर हो जाय परन्तु यदि कर्म में विवाह करना बदा है, तो उसी के साथ होगा।'[1]

उक्त संवाद में सबसे बड़ी विशेषता है पात्र के अनुभावों की सूक्ष्म पकड़। प्रेम की चर्चा चल रही थी। एकाएक अपने विषय में प्रश्न हो जाने पर अग्निदत्त का युवक प्रणयीसुलभ हृदय क्षण भर के लिए रोमांचित हो उठता है। गुप्त हर्ष मिश्रित संकोच उस पर छा जाता है। उत्तेजना शरीर भर में दौड़ जाती है। कुछ अचकचा जाता है जैसे कहीं एकान्त में प्रेमिका के साथ किसी ने उसे देख लिया हो। उत्तर में केवल इतना कहता है—'सो जाइए। रात बहुत हो गई।' किन्तु उसका सिर नीचा करना, अंगड़ाई लेना, जमुहाना और साधारण रूप से हंसना बिना कहे बहुत कुछ कह जाता है। इन सब हाव-भावों में ध्वनि है कि अग्निदत्त किसी से प्रेम करता है। एकाएक चर्चा छिड़ जाने से सकुचा गया है फिर भी उसे प्रसंग यह अच्छा लगा है। बताना चाहता है किन्तु टाल रहा है। मानो मनुहार कराना चाहता हो, किसी हिचक को पहले दूर करना चाहता हो। ऐसी अवस्था में उसके वे दो वाक्य अत्यन्त स्वाभाविक जान पड़ते हैं। अन्तरतम के किसी गूढ़ कोने में छिपे जीवन के महान् रहस्य का उद्घाटन करते समय अग्निदत्त के चेहरे पर भावों की आती-जाती अनोखी धूप-छाँह उत्सुक पाठक के लिए निराला महत्व रखती है। उसकी आकस्मिक गंभीरता, होंठों का काँपना, अधमुंदी आँख, टेढ़ी गर्दन, हाथ का कड़ा होना, लम्बी साँस लेना, आशंका तथा सतर्कता और आँख मिलने पर मुसकराना, लजाना, मर्मभेदी प्रश्न पर खिलखिला कर हंसना, हाथ से चादर उलटना-पलटना प्रणयीसुलभ संकोच की द्योतक क्रियाएँ हैं। भाव-चित्रण-शैली की दृष्टि से इस विवरण का महत्व है ही किन्तु भावों को प्रकट करने वाली भाषा की संकुचित सीमाओं को लांघकर पाठक के मानस तल पर वक्ता और

१. गढ़ कुण्डार···पृ० १०२ से १०४

उसके भावों, अनुभावों का रंग-बिरंगा स्पष्ट सजीव चित्र खींच देने में अद्वितीय महत्व रखता है।

नाग-अग्निदत्त के वार्तालाप में जहाँ नाग की अनुनय और अग्निदत्त की सतर्कता है संवाद लम्बे हैं और वाक्य भी लम्बे व्याख्या करते हुए से हैं। फिर नाग शीघ्रतापूर्वक प्रश्न करता जाता है नपे-तुले। उसमें मात्र उत्सुकता है। उसके प्रश्नों के साथ किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं है। जहाँ वह अपने विचार या प्रतिक्रिया प्रकट करता है वहाँ उसकी शारीरिक प्रतिक्रिया की सूचना दी गयी है। अग्निदत्त के उत्तर संक्षिप्त हैं, उसके मर्म को छूकर बाहर निकलने वाले! मुख से कम बोल पाता है किन्तु वह कहना क्या चाहता है यह सूचना उसके हाव-भाव के चित्रण द्वारा अविलम्ब मिल जाती है। नागदेव द्वारा किये गये परिहास के कारण संवाद में निकटता और आत्मीयता बढ़ जाती है। ये एक अन्य स्थल पर इसी प्रकार का वार्तालाप करते हैं।[1] उसमें परिहास का विशेष पुट है।

'बिराटा की पद्मिनी' का प्रारम्भ वार्तालाप से होता है। विक्रमपुर में राजा नायकसिंह के दरबार में गपशप के लिए दरबारी आ जमते हैं। वार्तालाप के द्वारा राजा तथा दरबारियों की चारित्रिक विशेषतायें सामने आती हैं।[2] ये पृष्ठ कथानक की भूमिका का कार्य करते हैं। राजा नायकसिंह का सहज कोप, सनक, ठाकुर लोचनसिंह का मुँहफटपन, निडरता, अक्खड़पन, वाचालता जनार्दन शर्मा की सतर्कता, दब्बूपन और हकीम आग़ा हैदर की सहज गम्भीरता तथा सावधानी, उनके कुछ ही संवादों से पाठक के हृदय में उतर जाते हैं। एकाएक एक सामन्तयुगीन राजा और उसके विभिन्न मनोवृत्तियों के दरबारियों का चित्र आँखों के आगे खिंच जाता है। वहाँ खुशामद है, सनक है, निडरता तथा गम्भीरता सब कुछ है—और सबसे ऊपर है सजीवता। वार्तालाप का विषय रोचक है। नदी में स्नान से बात प्रारम्भ होती है। नदी में जल कम होने की समस्या पर विवाद छिड़ जाता है। उस चख-चख में प्रत्येक पात्र के स्वभाव की एक झलक मिलती है। बातचीत में सीधासादापन है। कोई भी पात्र अपने कथन को अनावश्यक रूप से सजाने का प्रयत्न नहीं करता। वह जो उचित समझता है या जो उसकी समझ में आता है तुरन्त कह बैठता है। उत्तर-प्रत्युत्तरों की चुस्ती दृश्य की नाटकीयता में चार चाँद लगा देती है।

---

१. **गढ़ कुण्डार...पृ० १६९ से १७३**

२. **बिराटा की पद्मिनी...पृ० १३ से १६**

मानसिंह तथा डरू (कचनार) के मित्रसुलभ विभिन्न विषयों पर वार्तालाप[1] में उनके सहज ज्ञान, मानसिंह की कुण्ठा, यौन-पिपासा या लालसा, परस्पर मैत्री तथा निर्द्वन्द्वता का चित्रण हुआ है। उनकी आठ पृष्ठों की बातचीत में एक क्रम और प्रवाह है। वार्तालाप का मुख्य विषय है—स्त्रियाँ। संवाद बहुत संक्षिप्त हैं एक या दो वाक्यों के। यहाँ हाव-भावों का कोई संकेत नहीं है किन्तु पात्र संक्षिप्त चुस्त उत्तर-प्रत्युत्तरों के द्वारा क्षण-क्षण बदलते हुये अपने मनोभावों को स्पष्ट करते चलते हैं। बातचीत की यह चुस्ती और गति संवाद को सजीवता प्रदान करती है।

ग्रामीण मित्र गिरधारी तथा पंचम (अचल मेरा कोई) के मध्य हिंसा-अहिंसा को लेकर संवाद विचारों की स्पष्टता और प्रवाह की दृष्टि से उल्लेखनीय है। दोनों को शहर की हवा लग चुकी है। भाषा शहरी है। विचार-विनिमय में बेतकल्लुफ़ी, बेफ़िक्री, मस्ती और काँइयाँपन है। वार्तालाप रोचक विधि से विकसित होता है।[2]

मुल्लाओं तथा सुल्तान के घोर नियंत्रण में बंधे हुए लोलुप शाहज़ादा नसीरुद्दीन तथा चलते-पुर्जा सिद्धहस्त दरबारी ख़्वाजा मटरू (मृगनयनी) की एकान्त चर्चा अपने विषय तथा ढंग के कारण नाटकीय दृश्य प्रस्तुत करने में सफल हो जाती है। संवाद सधे हुए हैं। एक-एक वाक्य चुना हुआ और वक्ता की प्रवृत्ति का द्योतक है।

—'शाहज़ादा नसीर ने बंगलें झाँकते हुये मटरू से पूछा, 'शराब तो बुरी चीज़ कही जाती है फिर लोग क्यों पीते हैं ?'

'जान आलम !'—मटरू ने फूककर कदम रखा—'बुजुर्गों ने जमाने से इसको बुरा कहा है, मगर लोग नहीं मानते हैं, इसलिये पी लेते हैं।'

'बुरी कहते हैं तो पीने में भी बुरी होती होगी ?'

'जान आलम, बुरी चीजें जब बादशाहों के हाथ छू लेती हैं तब उतनी बुरी नहीं रहती। बन्दा तो गुलाम है कह ही क्या सकता है ? लेकिन हाँ सुना है कि बाज़ लोग दवा के तौर पर कभी-कभी पी लेते हैं।'

'तुमने कभी पी ?'

'जान आलम के सामने बयान करने में गुस्ताख़ी होगी।'...

(नसीर) 'जी चाहता है कि मैं भी कुछ दुनियाँ को देखूँ। किताबें तो बहुत सी पढ़ लीं, मगर दुनियाँ समझ में नहीं आ रही है।'

'जान आलम ज़िन्दाबाद। मैं कुरबान जाऊँ हुज़ूर तो इतना देखेंगे कि न खुद अघायेंगे न दुनियाँ अघायेगी।'

१. **कचनार...पृ० १० से १७**
२. **अचल मेरा कोई...पृ० ५२, ५३**

(नसीर) 'सस्ती अभी क्या कम है— मर जाने को भी जी चाहता है। मगर तुम ठीक कहते हो। यही तै रहा। तो फिर सच-सच बतलाओ कि बुरी कही जाने वाली उस चीज़ में कुछ मजा भी या वाकई बुरी है ?'

'जान आलम, अगर उसमें मज़ा न होता तो बादशाहों के मुँह ही क्यों लगती ?'

'तब—फिर एक तो यह। पर थोड़ी सी ही, बहुत ही थोड़ी, वरना पकड़ में आ जाने का अन्देशा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।'

'कुछ भी मुश्किल नहीं जान आलम।'[1]

नसीर के प्रश्नों में कोरी जिज्ञासा नहीं वरन् तीव्र लालसा है। उसकी अनुभवहीन लोलुपता उत्सुकता का समाधान ही नहीं उस दिशा में प्रोत्साहन भी चाहती है। उसके इस वाक्य में—'बुरी कहते हैं तो पीने में भी बुरी होती होगी ?' मटरू को रहस्यमय संकेत है कि वह अपने अनुभव की छाप लगाकर शराब को ग्राह्य घोषित कर दे। फिर वह बिलकुल स्वाभाविक प्रश्न जिज्ञासु भोले बालक की भाँति कर बैठता है—'तुमने कभी पी ?' डरता भी है। उसकी सहम, सतर्कता, पिपासा और दबी जबान केवल इस आधे वाक्य में सजीव हो उठती है—'पर थोड़ी सी ही, बहुत ही थोड़ी,' उसकी दबी-भिंची वासना यहीं तक फूट कर संतुष्ट नहीं होती। भिंचे गले से कह ही बैठता है—'और दूसरी—तुम खुद समझ लो।' यहाँ संवादों के साथ वक्ता के हाव-भावों की सूचना नहीं दी गई है। भावों को व्यक्त करने वाले कथनों को कुछ ऐसे सधे हुए मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से रखा गया है कि वक्ता की भाव-भंगिमा पाठक की कल्पना में स्वतः साकार हो उठती है। एक चित्र बनता है जिसमें एक शाहज़ादा है आत्म-पीड़ित। घबराया हुआ, झल्लाया हुआ। डरा हुआ, चौकन्ना। ललचाया और सकपकाया सा। इधर उधर झाँक कर धीरे धीरे बात करता हुआ। बेताबी उसकी आँखों में झांक रही है। दूसरा है सीखा-सिखाया मंजा हुआ दरबारी मटरू। पूर्णतया सतर्क और बात बात पर शतरंज के खिलाड़ी जैसे चालें चलने वाला। वह शिकार को मुट्ठी में आया समझता है। उसे तनिक खिलाकर पंजों में दबोचना चाहता है। खुशामद से भरपूर, दरबारी शिष्टाचार का पुतला। शाहजादे की लालसा को चरम पर लाकर गोलमोल ढङ्ग से शराब के विषय में अपना स्पष्ट निर्णय दे देता है, 'अगर उसमें मज़ा न होता तो बादशाहों के मुंह ही क्यों लगती ?' यह संवाद चरित्र-चित्रण, कथा-विकास तथा नाटकीय सौन्दर्य इन तीनों गुणों से युक्त है। ऐसे संवादों

---

१. मृगनयनी...पृ० २२२ से २२४

को किसी अन्य विवरण की अपेक्षा नहीं वे अपने आप में पूर्ण हैं, शक्तिशाली हैं। सांकेतिकता उनकी प्राण है।

पैने संवाद

वर्मा जी के कथोपकथनों की दूसरी विशेषता है उनका पैनापन। वे संक्षिप्त होते हैं और नुकीले। इस पैनेपन में एक गति रहती है जिसके प्रभाव से पाठक अछूता नहीं रह पाता। संवादों की चुस्ती और हाजिरजवाबी उनमें स्फूर्ति सी भर देती है। सहजकोपी योद्धा पुण्यपाल अपनी वाग्दत्ता, हेमवती (गढ़ कुंडार)[1] से एकांत में रसमय वार्तालाप की आशा में मिलने जाता है। हेमवती को जुझौती की स्वतन्त्रता की धुन है। वह पुण्यपाल की रसधारा को तीखे वार्तालाप से स्तब्ध कर देती है।[1] दोनों की, विशेषकर हेमवती की बात मे स्पष्टवादिता, तीव्रता और कुछ रूखाई है। उसमें दूसरे को निरुत्तर कर देने की शक्ति है। वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ धीर प्रधान तथा तीव्रबुद्धि-युवा अग्निदत्त (गढ़ कुंडार) की खंगार-नाश संबंधी मंत्रणा में रहस्य और कूटनीति का पुट है।[2] दोनों अपने विचारों को तीखे ढङ्ग से व्यक्त करने में कुशल हैं। संवाद लम्बे हैं किन्तु उनकी चुस्ती में कमी नहीं आती।

उक्त प्रकार के संवादों के सूक्ष्म कलेवर में एक निश्चित क्रम रहता है। उसके अन्तर्गत कथा-सूत्र प्रस्फुटित होता चलता है। वक्ताओं के कुछ ही वाक्य उनके साधारण ज्ञान, चरित्र तथा कार्य करने की रीति को प्रकाश में ले आते हैं। अपनी थोड़ी सी बातचीत से पात्र पाठक के समीप आ जाते हैं और उनका अजनबीपन देर तक नहीं टिक पाता। सनकी राजा नायकसिंह तथा मुँहलगे भृत्य रामदयाल (बिराटा की पद्मिनी) के केवल बारह वाक्यों के संक्षिप्त संवाद में दोनों के व्यक्तित्व स्पष्ट कर कथा के एक रोचक पहलू को प्रस्तुत करने की विलक्षण शक्ति है।[3] राजा अपनी वासनापूर्ति के हेतु कुमुद के विषय में प्रश्न कर उसे ले आने की आज्ञा देता है। राजा की असाधारण कामुक जैसी घोर आतुरता, सौन्दर्य-पिपासा तथा विवेकहीनता और सेवक की धूर्तता, फुसलाने का कौशल, कार्यतत्परता और ढीठता उन पंक्तियों में साकार हैं। इन संक्षिप्त उत्तर-प्रत्युत्तरों में स्फूर्तिमय गति है।

संवादों का पैनापन और संक्षिप्तता, छोटी रानी और लोचनसिंह (बिराटा

१. गढ़ कुण्डार...पृ० १७६, १८०
२. वही...पृ० ३६० से शेष परिच्छेद
३. बिराटा की पद्मिनी...पृ० २६

की पद्मिनी) के वार्तालाप में विशेषतः बन पड़े हैं। उत्तर-प्रत्युतरों में हाज़िर-जवाबी है। छोटी रानी की अधिकारप्रियता, अधैर्य तथा अनुभवहीन स्वार्थ-परता और लोचनसिंह की निस्पृहता, निर्द्वन्द्वता, अकड़ तथा बेलाग बात एक-एक वाक्य से टपकती है। बात को किसी प्रकार तनिक भी न घुमा-फिराकर ज्यों की त्यों तुरन्त कह देने की प्रवृत्ति इस संवाद में मुख्यतया है।—

'रानी ने कहलवाया—'लोचनसिंह, भगवान न करे कि महाराज का अनिष्ट हो, परन्तु यदि अनहोनी हो गई, तो राज्य का भार किसके सिर पड़ेगा ?'

'जिसे महाराज कह जाँय।'

'तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

'जो मेरे स्वामी की होगी।'

'या जनार्दन की ?'

'महाराज की आज्ञा से जनार्दन का सिर तो मैं एक क्षण में काटकर तालाब में फेंक सकता हूँ।'

'यदि महाराज कोई आज्ञा न छोड़ गए तो ?'

'वैसी घड़ी ईश्वर न करे, आवे।'

'और यदि आई ?'

'यदि आई, तो उस समय जो आज्ञा होगी, या जैसा उचित समझूँगा, करूँगा।'

रानी कुछ सोचती रही। अन्त में उसने यह कहलवाकर लोचनसिंह को विदा किया कि 'भूलना मत कि मैं रानी हूं।'

'इस बात को बार बार याद करने की मुझे आवश्यकता न पड़ेगी।' यह कहकर लोचनसिंह चला। रानी ने फिर रुकवा दिया। दासी द्वारा कहलवाया—'सिंहासन पर मेरा हक है, भूल तो न जाओगे ?'

उसने उत्तर दिया—'जिसका हक होगा, उसकी सहायता के लिये मेरा शरीर है।'

'और किसी का नहीं है।'

'मैं इस समय इस विषय में कुछ नहीं कह सकता।'

'स्वामिधर्म का पालन करना पड़ेगा।'

'यह उपदेश व्यर्थ हैं।'

'तुम्हारे आँखें और कान हैं। किस पक्ष को ग्रहण करोगे ?'

'जिस पक्ष के लिये मेरे राजा आज्ञा दे जायेंगे, और यदि वह बिना कोई आज्ञा दिए सिधार गए, तो उस समय जो मेरी मौज में आवेगा।' लोचनसिंह

चला गया। रानी बहुत कुढ़ी।'[१]

अन्त के दो वाक्य—'लोचनसिंह चला गया। रानी बहुत कुढ़ी।' शैली की संक्षिप्तता और तीखेपन को चरम पर ले आते हैं।

राजा गंगाधरराव तथा नारायण शास्त्री (झाँसी की रानी) के वार्तालाप में इस प्रकार की चुस्ती दर्शनीय है। राजा न्यायकर्ता है और शास्त्री अपराधी। न्यायकर्ता के प्रश्नों में आतंक है और व्यंग्य। अपराधी बोलते समय सकपकाता नहीं, स्पष्ट उत्तर देता है तटस्थता और कुछ निस्पृहता का भाव लिए। प्रश्नों की तीव्र बौछार को उतनी ही तीव्रता से झेलने के लिए वह सन्नद्ध है। उत्तर-प्रत्युत्तर परस्पर चुनौती देते जान पड़ते हैं।—

'नारायण शास्त्री और छोटी महतरानी के अनुचित सम्बन्ध का न्याय राजा गंगाधरराव करने बैठे। पूछ ताछ प्रारम्भ की—

राजा—'यह क्या हुआ शास्त्री ?'

शास्त्री—'जो होना था हो गया सरकार।'

राजा—'कैसे हुआ ?'

शास्त्री—'क्या कहूँ श्रीमंत।'

राजा—'बतलाना तो पड़ेगा। न बतलाने से ज्यादा नुकसान होगा।'

शास्त्री—'क्या बतलाऊँ महाराज ?'

राजा—'यह कैसे हुआ ?'

शास्त्री—'तप और संयम के अतिरेक से। जब शरीर ने ताड़ना न सह पाई, तब जो-जो कुछ उसके सामने आया, ग्रहण कर लिया।'

राजा—'तुमको तो लोग बहुत दिन से शृङ्गार शास्त्री कहते हैं।'

शास्त्री—'वह तो उपकरण मात्र था।'

राजा—'सुनता हूँ कोकशास्त्र का भी अध्ययन किया है।'

शास्त्री—'हाँ सरकार।'

राजा—'क्यों ?'

शास्त्री—'उस शास्त्र में अपने सम्बन्ध के प्रसंग ढूँढ़ने के लिये, और यह जानने के लिये कि इसमें ऐसा क्या है, जिसने महर्षि वात्स्यायन से कामसूत्र की रचना करवाई।'

राजा—'क्या पाया ?'

शास्त्री—'प्रकृति के साथ जीवन की टक्कर।'

राजा—'आगे क्या पाओगे ?'

शास्त्री—'यह मेरे हाथ में नहीं है सरकार।'

---

१. **बिराटा की पद्मिनी**···पृ० ४२—४३

राजा—'तब किसके हाथ में है ?'

शास्त्री—'सरकार के।'[१]

बालक नाना तथा मनू (झाँसी की रानी) के वार्तालाप में मनू का आत्म-विश्वास और तीव्र बुद्धि तथा नाना की आशंका और चिढ़ छोटे छोटे वाक्यों में व्यक्त हुए हैं।[२] कामुक दूल्हाजू के आवाहन तथा निडर सुन्दर के तिरस्कार में तीखापन देखते ही बनता है।। पर्याप्त वार्तालाप के बाद दूल्हाजू (झाँसी की रानी) अपना नियन्त्रण करने पर भी स्पष्ट प्रस्ताव कर बैठता है—'सुन्दर मैं तुमको अपने हृदय से लगाना चाहता हूँ। क्या कहती हो?' उस का उत्तर भी तुरन्त स्पष्टतर, तीव्रतर शब्दों में सुन्दर से मिलता है—'यही कि आप बहुत नीच हैं।'[३] सुहागरात के अवसर पर दलीपसिंह के कलावती (कचनार) से गाने के आग्रह तथा विमन कलावती के बहानों में तीखापन है।[४] कलावती के उत्तरों में तर्क है और इठलाहट भी। दलीपसिंह निरुत्तर हो जाता है। वार्तालाप में कचनार दलीपसिंह (कचनार) की कामुकता को अपनी दृढ़ता, हाजिरजवाबी और तीखेपन से स्तब्ध कर देती है।[५] कचनार के उत्तरों में आत्म-विश्वास है और कामुकता के प्रति उपेक्षा का भाव। बुद्धिमत्तापूर्वक दलीप के वाग्जाल को छिन्न-भिन्न कर देती है।

अचल तथा दिवाकर (अचल मेरा कोई) के विवाह सम्बन्धी वार्तालाप में मित्रसुलभ विनोद और हाजिरजवाबी है।[६] असंतुष्ट पति-पत्नी, सुधाकर तथा कुन्ती (अचल मेरा कोई) के वाद-विवाद में चुभन है।[७] वार्तालाप में कुन्ती की चुभन, उपेक्षा और सुधाकर की बौखलाहट और पिपासा प्रमुख हैं। तीव्रता की दृष्टि से नई रोशनी की बहू कुन्ती और रूढ़िवादिनी सुधाकर की बुआ (अचल मेरा कोई) का विवाद उल्लेखनीय है।[८] बूआ का गर्व, असहिष्णुता, नये जमाने के प्रति तिरस्कार, शासनप्रियता तथा कुन्ती की बड़े-बूढ़ों के प्रति उपेक्षा, वाचालता, वाक्-असंयम और व्यंग्य ये सब उन दोनों के उत्तर-

---

१. **झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई...पृ० ५५, ५६**
२. **वही...पृ २०**
३. **वही...पृ० ३७१**
४. **कचनार...पृ० २०-२१**
५. **वही...पृ० २६ से २८**
६. **अचल मेरा कोई...पृ० ५५**
७. **वही...पृ० १७७**
८. **वही...पृ० १६४ से १६६**

प्रत्युत्तरों में उभर आए हैं। दो विभिन्न पीढ़ियों की प्रतीक इन दोनों स्त्रियों के विवाद में नाटकीय गति है।

नादिरशाह और मुहम्मदशाह (टूटे कांटे) के वार्तालाप में कूटनीतिज्ञों जैसा कृत्रिम शिष्टाचार और बगल में छुरी है।[1] दरबारी शिष्टाचार की आड़ में नादिर का धन के लिये कठोर आग्रह और मुहम्मदशाह का विषय को टालने का प्रयास है। दोनों की चालों में तीखापन है। संवाद चुस्त है।

वर्मा जी की संक्षिप्त संवाद लिखने की कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण नूरबाई तथा रोनी (टूटे काँटे) का वार्तालाप है। इसमें एक शब्द का एक वाक्य है और एक वाक्य का एक कथन।—

(रोनी) बोली, 'कुछ बातें करें और बातें करते-करते सो जाँय।'

'अच्छा। करो।'

'तुमने कभी भैंस दोही है?'

'नहीं।'

'खेत काटे?'

'नहीं।'

'उपले पाथे?'

'हाँ।'

'कुएँ से पानी भरा?'

'हाँ।'

रसोई तो अच्छी बनाती होगी?'

'नहीं।'

'चक्की पीसी?'

'नहीं।'

'तो क्या अभी तक झख ही मारती रहीं?'[2]

इन में प्रारम्भ से प्रवाह है, गति है जो रोनी के अन्तिम कथन, 'तो क्या अभी तक झख मारती रहीं।' पर आकर गुदगुदी सी दे जाती है। पाठक एकाएक मुसकरा उठता है।

भावानुकूल संवाद (अ) प्रणय

वर्मा जी ने पात्रों के भावुकतामय क्षणों में उनके संवादों को विशेष रूप से संवारा है। वक्ता के भावों के अनुसार उसके कथनों में तीव्रता, रुक्षता,

१. **टूटे कांटे**...पृ० १७०, १७१

२. **वही**—पृ० ३५२

अथवा कोमलता, सरसता का पुट रहता है। कुछ उल्लेखनीय परिस्थितियों के संवादों के सूक्ष्म विश्लेषण के उपरान्त यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। उपन्यासों में प्रणय के प्रसंग प्रायः हैं। सर्वप्रथम उन्हें लेना उपयुक्त रहेगा। दिवाकर और तारा (गढ़ कुण्डार) के प्रणय-वार्तालाप में सरलता प्रमुख रूप से है।[1] दोनों निष्कपट हैं और वासनाजन्य संकोच से दूर। भाव हृदय से सीधे निकलने के कारण संवाद संक्षिप्त, प्रवाहपूर्ण और मार्मिक हैं। वाक्य छोटे हैं और कृत्रिमता के आडम्बर से शून्य। अवसर विद्रोह का है और भविष्य अंधकारमय है। ऐसी पीड़ाजनक स्थिति में दोनों की अभिव्यक्ति में तीव्रता और बलिदान की भावना है। एक दूसरे के लिए सब कुछ न्योछावर कर देने को कटिबद्ध हैं किन्तु उन्हें अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए।

रामा और देवीसिंह (लगन) मिलन के समय विह्वल हैं।[2] विवाहित होने के कारण उनका भविष्य में मिलन प्रायः निश्चित है। उल्लास तथा परिस्थिति की आकस्मिकता के कारण दोनों के गले रुंध जाते हैं। संक्षिप्त वाक्य उनके कंठ से निःसृत हो पाते हैं। उनमें हृदय के आवेग के कारण क्षिप्रता है। वार्तालाप का स्तर सहज आकुलता तथा प्रणयीसुलभ विनोद से ऊपर नहीं उठ पाता।

कुंजरसिंह तथा कुमुद (बिराटा की पद्मिनी) के प्रणय-संवाद निर्मलता तथा नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से अद्वितीय हैं।[3] कुंजर के हृदय में कुमुद के प्रति महान् श्रद्धा है, तीव्र प्रेम है। वह कुमुद को देवी के अवतार के रूप में स्वीकार करता है। दोनों के मध्य स्व-नियंत्रण की अदृश्य खाई रही है। संध्या के समय नदी किनारे एकान्त में हृदय की कुछ बात कहने का एकाएक अवसर पाकर कुंजर भावुक हो उठता है। उसमें आवेग है, प्रवाह है। बोलता है मानो बीच-बीच में हाँफ जाता है। वह हृदय के बड़े से बड़े चिर संचित रहस्य को सुन्दरतम ढंग से बाहर निकालकर रख देने का भगीरथ-प्रयत्न करता है। उसके कथन लम्बे हैं और वाक्य भी। अभी दोनों के मध्य दूरी है। अतः वह अपने प्रेम को स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं दे पाता वरन् स्नेही भक्त के नाते कुमुद के चरणों की रक्षा के हेतु प्राण क्षण मात्र में उत्सर्ग कर देने की कामना बारम्बार दोहराता है। उसके साथ सदा छाया की भाँति रहने का निश्चय प्रकट करता है। उसकी साध नियन्त्रण के बाँध को तोड़ समर्पण के बेटोक प्रवाह में फूट पड़ती है, कुमुद अपेक्षाकृत स्थिर है। वह परिस्थिति की

---

१. **गढ़ कुण्डार**···पृ० ३५४-३५५

२. **लगन**···पृ० ८२ से ८५

३. **बिराटा की पद्मिनी**···पृ० २११ से २१४

अपरिपक्वता तथा गम्भीरता का ध्यान रखती है। उसके हृदय में प्यार है। वह मन ही मन विचलित हो उठती है किन्तु नियंत्रित रहती है और बोलती संक्षेप में है। कुंजर की स्पष्ट भावुकता का उस पर कुछ न कुछ प्रभाव होता ही है। अतः वह अन्त में आस-पास की पावन प्रकृति का विश्लेषण करते समय भावुक हो उठती है। उसका कथन काफी लम्बा हो जाता है।

कुमुद-कुंजर के संवाद एक अन्य स्थल पर उल्लेखनीय हैं। दोनों की प्रणय-साधना पुष्ट हो चली है। मृत्यु सिर पर खड़ी है। अन्दर खोह में दोनों का क्षणिक मिलन होता है। बाहर तोपों की धूम-धड़ाम जारी है। हृदयों के बाँध टूट जाते हैं। कण्ठ रुद्ध हो जाते हैं। दोनों प्रेम प्रकट करते हैं किन्तु भिन्न रीति से, कुंजर हृदय की बात होठों पर ले आता है और कुमुद मूक रह कर। कहीं भी सीमा और संयम का उल्लंघन नहीं होता, यह तथ्य दर्शनीय है।—

कुंजर ने कहा—'तो जाऊँ ?' परन्तु गमनोद्यत नहीं हुआ।

कुमुद बोली—'जाइए, मैं पीछे पीछे आती हूँ।'

'तब मैं न जाऊँगा।'

'यह मोह क्यों ?'

'मोह' कुंजर ने जरा उत्तेजित होकर कहा—'मोह ! मोह ! मोह न था। अब मरने का समय आ रहा है, इसलिये मुक्त होकर कह डालूँगा कि क्या था·····।' परन्तु आगे उससे बोला नहीं गया।

कुमुद उसकी ओर देखने लगी।

कुछ क्षण बाद कुंजर ने कहा—'तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री हो मालूम है ?'

कुमुद का सिर न-मालूम जरा-सा कैसे हिल गया। आँखें फिर तरल हो गईं।

'तुम मेरी हो ?' आवेशयुक्त स्वर में कुंजर ने प्रश्न किया।

कुमुद ने कुछ उत्तर न दिया।

कुंजर ने उसी स्वर में फिर प्रश्न किया—'मैं तुम्हारा हूँ ?'

कुमुद नीचा सिर किये खड़ी रही।·····

कुंजर बोला—'केवल एक बात मुँह से सुनना चाहता हूँ।'

बहुत मधुर स्वर में कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'तुम मुझे भूल जाना।'

नीचा सिर किए हुए ही कुमुद ने कुंजर की ओर देखा। थोड़ी देर देखती रही। आँखों से आँसुओं की धार बह चली।

कंपित स्वर में कुंजरसिंह ने पूछा—'भुला सकोगी ?'

कुमुद के होठ कुछ कहने के लिये हिले, परन्तु खुल न सके। आँखों से और भी अधिक वेग से प्रवाह उमड़ा।

कुंजर की आँखें भी छलक आईं। बड़ी कठिनाई से कुंजर के मुँह से ये शब्द निकले—'प्राण प्यारी कुमुद सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की गूठ छू दो।'[1]

यहाँ संवाद संक्षिप्त हैं। जहाँ कथन संक्षिप्त हैं या पात्र मूक है वहीं वह अनकहे न जाने क्या क्या कह जाता है। उसकी भाव-भंगिमा बहुत कुछ कह देती है—वह कथन, वह अभिव्यक्ति प्रयासपूर्ण रचित लम्बे-लम्बे संवादों में भी देखने को नहीं मिलती। कुंजर का आकुल आवेग प्रश्न करता है उत्तर में कुमुद का आकुल नियंत्रित हृदय करता है मूक इङ्गित। कुमुद का कुंजर के कथन के उत्तर में केवल उसकी ओर देखना, जरा सिर हिलाना, आँखों का तरल होना, कुछ उत्तर न देना, सिर नीचा किए खड़ा रहना, उत्तर देने के प्रयास में होठों का न हिलना न खुलना और 'भुला देने' के प्रस्ताव पर नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलना—इन सबमें कितना आवाहन, कितना समर्पण, कितनी स्वीकृति और कितनी पीड़ा संचित है।

कलावती-मानसिंह (कचनार) के प्रणयालाप में, कलावती में अधिक संकोच नहीं है।[2] उसमें मादकता का बाहुल्य है। प्रत्यक्ष रूप से वह मानसिंह को इस दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करती है। फिर भी प्रणय की स्वीकृति देते समय वह स्त्रियोचित संकोच का अनुभव करते हुए रहस्यमय अस्पष्ट संकेत का प्रयोग करती है। विवाहित सुधाकर तथा कुन्ती (अचल मेरा कोई) की प्रेम-चर्चा में छेड़-छाड़ और उल्लास है।[3] उनकी प्रफुल्लता को बात करने के लिए किसी विषय विशेष की अपेक्षा नहीं है। उनकी उफनाती उमंग को बाहर बहा निकलने में कोई भी प्रसंग सहायक बन सकता है। बात कुन्ती की कृत्रिम उपेक्षा और सुधाकर द्वारा उसकी मनुहार से प्रारंभ होकर नृत्य के लिए घुँघरुओं, कहानी-लेखन, एकांकी नाटक, नारी-व्यायाम पर होती हुई बन्दूक चलाने के अभ्यास पर जाकर समाप्त होती है। मानसिंह तथा मृगनयनी (मृगनयनी) के वार्तालाप में मानसिंह की छेड़-छाड़, चुहल और मृगनयनी की गम्भीरता तथा मर्यादा के प्रति सजगता है।[4] वह मानसिंह

१. बिराटा की पद्मिनी···२९८-२९९

२. कचनार···पृ० १४४ से १४९

३. अचल मेरा कोई...पृ० १५७ से १६२

४. मृगनयनी ...पृ० २४५ से २५०, ३८५ से ३९३

की आठवीं रानी है। अधिक नैकट्य में अपनी मर्यादा खो जाने की उसे आशंका है। उसकी व्यंग्यात्मकता और स्थिरता के कारण वार्तालाप भावुकता छोड़ मस्तिष्क प्रधान हो जाता है। शनैः शनैः बातचीत का प्रवाह प्रेम और संयम, शिल्पकला, संगीत तथा कला और कर्तव्य जैसे विषयों की ओर मुड़ जाता है।

अटल तथा लाखी (मृगनयनी) निष्कपट, सरल देहाती हैं। उनकी प्रेमाभिव्यक्ति में संवाद स्पष्टता, संक्षिप्तता, भोलेपन, मार्मिकता तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। जंगल में तनिक एकान्त मिलने पर अटल ने लाखी को कुछ स्थिरता से देखा। लाखी ने आँख नीची नहीं की। उसने अटल से धीरे से पूछा, 'क्या बात है ?'

'क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? बक नहीं फटता।'

'फिर भी ?'

'मैं तुमको बहुत चाहता हूँ। बहुत प्यार करता हूँ।'

'मैं जानती हूँ।'

लाखी ने आँखें नीची करलीं। अटल ने उसके कन्धे को एक बांह में भर लिया।

'हम तुम एक होकर सदा साथ रहना चाहते हैं। कभी अलग नहीं होंगे।' अटल ने कांपते हुये स्वर में कहा।

'कैसे हो सकता है ऐसा ? हमारी तुम्हारी जात-पाँत अलग है।'

'तुम मुझको चाहती हो या नहीं। पहले यह तो बतलाओ।'

'मैं क्या कह सकती हूँ ? तुमको कैसा जान पड़ता है ?'

'मुझको जान पड़ता है हम-तुम एक हो जायंगे।'...

(अटल) 'तुम्हारा मन पक्का है।'

'मेरे मन से नहीं, अपने मन से पूछो।'

'बस अब और कुछ नहीं पूछना है।'[१]

दोनों की भावाभिव्यक्ति में नितान्त सरलता है। कृत्रिम संकोच प्रकट करना उनसे आता नहीं। सीधी-सादी बात कहना उनके स्वभाव के अनुकूल है। हाँ, प्रणयी-सुलभ असमंजस उन्हें अभिभूत कर लेता है। इस असमंजस को भी अटल इन निष्कपट शब्दों में व्यक्त कर देता है—'क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? बक नहीं फटता।' जाति-वैभिन्य संबंधी आशंका में लाखी की सरल समाज-भीरुता व्यक्त हुई है। अटल लाखी के मूक समर्पण को पहचान कर भी उससे

१. मृगनयनी...पृ० २७

स्पष्ट शब्दों में स्वीकृति चाहता है। यह उसका भोलापन है। लाखी उत्तर में संकेत का आश्रय ग्रहण करती है।

(ब) क्रोधावेश

क्रोधावेश में किए गए वार्तालाप अपने तीव्र प्रवाह में उत्तेजना और आतंक की छाप रखते हैं। पुण्यपाल तथा मुकुटमणि चौहान (गढ़ कुंडार) के वार्तालाप में क्रोध और शान्ति दो विरोधी पक्षों का प्रदर्शन है।[1] पुण्यपाल के कथनों में अदम्य उत्तेजना है। वह किसी भी समस्या पर शांतिपूर्वक विचार करना नहीं जानता। परिस्थिति की गंभीरता को भूलकर क्रोधावेश में उन्मत्त सा हो जाता है। उसके प्रत्येक कथन में उग्रता तीव्रता से बढ़ती जाती है और अन्त में पूर्ण मनमुटाव या युद्ध पर आकर दम लेती है। उससे विवाद करने वाले प्रायः उत्तेजित हो जाते हैं किन्तु यहाँ विचारशील, दूरदर्शी और कुछ शिथिल मुकुटमणि है। वह अन्त तक वाक्-संयम धारण किए रहता है। उसके संतुलित, संयमित कथन पुण्यपाल की तप्त वाग्धारा के समक्ष शीतल चट्टान जैसे जान पड़ते हैं। मुकुटमणि क्षुब्ध होकर सभा त्याग करता है किन्तु शान्ति-पूर्वक बिना किसी प्रकार की उत्तेजना का प्रदर्शन किए हुए।

अग्निदत्त को अपनी बहिन मानवती को ले भागने के प्रयास में संलग्न देखकर नागदेव (गढ़ कुंडार) आगबबूला हो उठता है।[2] संवाद में अग्नि-दत्त की घोर निराशा, मरण की आकांक्षा और व्यंग्यात्मकता है, नागदेव के कथनों में क्लेश है, क्रोध है जो कि अन्त में रौद्र रूप धारण कर लेता है। संवाद लम्बे हैं, वक्ता अपने भाव को पूर्णरूपेण स्पष्ट करना चाहते हैं। बैज-नाथ और डरू (कचनार) से सोनेसाह की कहासुनी तथा प्राण-घातक झगड़े में नाटकीयता अधिक है[3]। सोनेसाह की उग्रता और अपशब्द प्रजा पर अत्याचार करने वाले जमींदार के किसी कारिंदे का स्मरण करा देते हैं। एक ओर सोनेशाह का अत्याचार है तो दूसरी ओर सर्वहारा-वर्ग के प्रतीक डरू की प्रतिक्रिया है। बातचीत की गरमागरमी द्वन्द्व की सीमा तक पहुँच कर डरू द्वारा सोनेसाह का वध करा देती है।

शैव विजय जंगम तथा ब्राह्मण वैष्णव (मृगनयनी) का क्रोधमय वार्ता-लाप विलक्षण है। दो विभिन्न सम्प्रदायावलम्बियों की मूर्खतापूर्ण कट्टरता, अहंमन्यता, असहिष्णुता तथा हिंसा इन संवादों में मूर्त्त है। इन्हें पढ़ कर

१. गढ़ कुंडार ...पृ० २५२ से २५४
२. वही...पृ० ३५० से ३५२
३. कचनार—पृ० ५० से ५२

पाठक को विवादियों की मूढ़ता पर क्षोभ होता है, दया आती है और हँसी भी। इन उत्साही शास्त्रार्थियों के संवाद के कुछ अंश यहाँ उद्धृत करना रुचिकर होगा।

(विजय) 'कभी नहीं। असम्भव। शिव के सामने विष्णु की क्या बिसात ?'

'व्यर्थ झगड़ा करते हो। सब मार्ग एक ही ठौर को पहुँचाते हैं।'

'बिलकुल झूठ। सब मार्ग एक ही ठौर पर ले जाते हैं तो गिर पड़ो कुयें में, नदी में, पहाड़ पर से, किले पर से पहुँचोगे अन्त में बैकुंठधाम। यही न ?'

'अर्थ का अनर्थ तुम जैसे तिलंगाना वाले करते हैं, वैसा तो कोई नहीं कर सकता।'...

(विजय) 'नदियों, पेड़ों, सांप के बिलों, टौरियों, पहाड़ों, भेड़ियों, बिलावों और चाहे जिस पत्थर के टुकड़े का ध्यान और मन से पूजा करो कि मिला मोक्ष ! अरे तुमने ही इस युग को कलियुग बनाया !! धिक्कार है तुमको !!!'

'धिक्कार है तुमको और तुम्हारे बाप को। अज्ञान के वश समझते हो कि तुम्हारा शैवमत ही सब कुछ है !! नितान्त भ्रम में पड़े हो। नरक में जाओगे।'

...(वैष्णव) 'कहाँ लिखा है कि शिव की भी अलग गायित्री है ?'

'वासव पुराण में, मूर्ख।'

'और अधिक गाली बकी तो ढेले से खोपड़ा खोल दूँगा।'

'ढेले से खोपड़ा खोलने के पहले त्रिशूल से तुम्हारी आँतें हम पहले ही बाहर कर देंगे।'[1]

बात शिव, विष्णु और गायित्री से प्रारंभ होकर धिक्कार, ढेले और त्रिशूल तक जा पहुँचती है। धर्मान्धों का हठ, दुराग्रह और अपशब्द सभी कुछ यहाँ है।

ग्रामीण स्त्रियों के पारस्परिक झगड़ों में उनके संवाद विशेष रूप से स्वाभाविक बन पड़े हैं। उग्रता और घरेलू गालियों का स्पर्श उनमें रहता है। झगड़ालू बहिनों रूपा तथा (सोना) की आपसी गाली-गलौज में तीव्रता है।[2] हरखो और उसकी जिठानी (अमरबेल) में कटु शब्दों का आदान-प्रदान, ढोंग, कोसना और हाथा-बाहीं रोना-पीटना, सब कुछ हैं।[3] कर्कशा स्त्री रोनी (टूटे काँटे) के कथन उसके व्यक्तित्व को सजीव कर देते हैं। उसके शब्दों

१. मृगनयनी...पृ० ३६,३७,३९
२. सोना... पृ० १३ से १५
३. अमरबेल...पृ० १९० से १९२

का चयन और वाक्यों का प्रवाह दुर्दमनीया वाचाल स्त्री की वाग्धारा के अनुरूप हैं। पति उससे तनिक धीरे बोलने को कहता है। रोनी का उत्तर है–'हे राम ! हे भगवान !! मेरा भाग कैसा खोटा है !!! कहाँ पटका गाँव वालों ने मुझको ? आग लग जाय गाँव भर में ! छाती जल जाय उन निपूतों की !!'[1] और इस एक ही वाक्य में उसके प्रिय शब्दों के एक साथ दर्शन होते हैं—'उस मुँह जले, नासमिटे, छाती जले, निपूते कुढ़िया से तुम बात करोगी।[2]

युवती–वार्तालाप

उपन्यासों में युवतियों के पारस्परिक वार्तालाप के अनेक अवसर प्रस्तुत किए गये हैं। इनसे सम्वादों में प्रायः यौवन का अल्हड़पन और कुछ कुटिलता लिए हुए परस्पर छेड़छाड़ रहती है। छेड़छाड़ का विषय कल्पित या वास्तविक प्रेमी के रूप में कोई पुरुष रहता है। छेड़छाड़ जब असह्य हो जाती है वार्तालाप में तीखापन आ जाता है किन्तु अन्त सद्भाव या सहानुभूति में होता है। सुभद्रा रमा (लगन) पर उसके तथा पन्नालाल के कल्पित सम्बन्ध को लेकर रह-रह कर कटाक्ष करती है।[3] तत्सम्बन्धी जनापवाद की चर्चा भी करती है। रमा के उदास होने पर सुभद्रा चंचलता त्याग देती है। उजियारी और सरस्वती (प्रेम की भेंट) के वार्तालापों में चुहल रहती है। दोनों नटखट हैं और हँसने-हँसाने की अभ्यासिन। उजियारी ईर्ष्यालु है। वह सरस्वती और नन्दन के कल्पित सम्बन्ध को लेकर प्रायः छेड़छाड़ करती है। अपने सन्देह की पुष्टि में सरस्वती की गतिविधि के निरीक्षण का पूरा ब्योरा इन शब्दों में देती है—'अकेले में पानी भरके लोटा रख आना। भोजन कराने के लिये जल्दी-जल्दी बार-बार बुलाना। आंख बचाकर देखना। कक्का और वह जब अकेले में बातचीत करते हों, तब कोने से चिपककर चुपचाप सुनना। बोहनी करते-करते इधर-उधर दृष्टि फेंकना और कहूँ ?'[4] मन्ना, कलावती और ललिता (कचनार) के वार्तालाप में साधारण विषयों पर हास-परिहास है।[5] कुन्ती और निशा (अचल मेरा कोई) शहर की शिक्षित युवतियाँ हैं। उनका वार्तालाप भी विवाह सम्बन्धी छेड़छाड़ से प्रारम्भ होकर तलाक आदि विषयों की ओर मुड़ जाता है। जहाँ तहाँ परिहास है, और परस्पर कटाक्ष करते-करते कटुता

१. टूटे कांटे...पृ० ५
२. वही...पृ० ३५३
३. लगन...पृ० २२ से २५ तथा ३४ से ३६
४. प्रेम की भेंट...पृ० ३५
५. कचनार...पृ० ३९ से ४१

और अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाती हैं। उनकी परस्पर साधारण ठिठोली का विषय भी पुरुष अचल रहता है।[1] ग्रामीण निष्कपट सहेलियों निन्नी और लाखी (मृगनयनी) के वार्तालाप होली के उल्लासमय हुल्लड़ के वातावरण में प्रारम्भ होते हैं। उनमें हास-परिहास है और छीना-झपटी भी। निन्नी अपने भाई अटल तथा लाखी के सम्बन्ध को लेकर लाखी को प्रायः छेड़ती रहती है।[2] दोनों बालकों की भाँति छोटी-छोटी बातों पर उलझ पड़ती हैं किन्तु विवाद समाप्त होता है आंसुओं और अटूट स्नेह में।

लोकभाषा का प्रयोग

उपन्यासों का वर्गीकरण करते समय चर्चा की जा चुकी है कि वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे उपन्यासों के कुछ पात्र ठेठ ग्रामीण भी होते हैं। उन सब की भावाभिव्यक्ति का माध्यम साधारणतया खड़ी बोली को रखा गया है। पाठकों की ग्रहण-शक्ति को दृष्टि में रखते हुए यह प्रयोग व्यवहारिक है। विदेशी अथवा वर्ग विशेष के (विशिष्ट भाषा-भाषी) पात्रों के वार्तालाप को खड़ी बोली में लिखते समय उपन्यासकार उनमें स्वाभाविकता अथवा सजीवता का स्पर्श देने के लिए उन पात्रों की वास्तविक भाषा के कुछ शब्दों, मुहावरों या प्रचलित वाक्यों को ला रखता है। पात्र द्वारा लोकभाषा में संवाद कहलवाकर वातावरण में स्थानीय-स्पर्श देने में सहज ही सफलता मिल जाती है। पाठकों को कथा से लोक-जीवन का परिचय मिलता है और ऐसे संवादों से लोकभाषा की एक झलक मिल जाना संभव है। लोकभाषा के संवाद यत्र-तत्र आ जाने से उपन्यास की एकरसता में तनिक वैचित्र्य आ जाना स्वाभाविक है। लोकभाषा-भाषी कुछ पात्र तो अपनी इसी विशेषता के बल पर आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं। सम्पूर्ण पाठक-वर्ग को दृष्टि में रखते हुए यह प्रयोग कठिनाई भी प्रस्तुत कर सकता है। बोली का क्षेत्र सीमित है और भाषा का विस्तृत।[3] अतः उस भाषा को बोलने और समझने वालों का एक भाग विशेष ही किसी बोली के सम्वादों का रसास्वादन कर सकेगा। बोली के क्षेत्र से जो पाठक जितनी दूर होगा उसके लिए वे सम्वाद उतने ही दुर्बोध होंगे।

अपने क्षेत्र की लोकभाषा या बोली बुंदेलखंडी के सम्वादों का वर्मा जी ने

१. **अचल मेरा कोई...पृ० ६२ से ६८, १००, १०१**
२. **मृगनयनी...पृ ४ से ७, १२४**
३. **सामान्य भाषा विज्ञान (डा० बाबूराम सक्सेना)...पृ ११७, ११८**

उपन्यासों में कहीं कहीं प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों से कथा, चरित्र और वातावरण में बुंदेलखण्डीपन आ गया है। लोक-भाषा-भाषी पात्रों में अर्जुन (गढ़ कुण्डार) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसके भोलेभाले, उजड्ड, निडर, वाचाल व्यक्तित्व का सौन्दर्य संवादों में निहित है। बुंदेलखंडी संवादों की स्पष्टता और प्रवाह, अर्जुन के बांके स्वभाव को मनोरंजक और निराला बनाने में योग देते हैं। अर्जुन की कर्कशता बुरी नहीं लगती वरन् अपने भोलेभालेपन के कारण पाठकों को गुदगुदा जाती है। उसकी वाचालता के अदम्य वेग में आत्मश्लाघा, व्यंग्य और ढीठता सब कुछ हैं।

अर्जुन भरतपुरा गढ़ी का पहरेदार है, सामन्त का विश्वासपात्र। संध्या के अंधकार में दो अनजान घुड़सवारों, नागदेव और अग्निदत्त, की फाटक खोलने की आज्ञा पर वह बुर्ज से अपना परिचय इस मुँहफट ढङ्ग से देता है—'मैं हों अर्जुन, जानत कै नई। कै महाभारत में अर्जुन हते, कै अब मैं हों। 'फाटक खोल जल्दी।' जैसे इनके बापई को दओ खात होउं।' बीच में अग्निदत्त के बोलने पर उसकी वाग्धारा फूट पड़ती है—'ओहो, एक जे पिन्न पिन्न बोले। नांव बताओ, नांव। नांव बड़े दर्सन छोटे। दिल्ली में राय पिथौरा आए हैं जू खोलत हों मैं फाटक, सो आकै लड्डुआ खा लियो। लो, अब टर जाओ। गांव मेढ़ लो डेरा काऊ के इते। भोर आइयो, तब मिल हैं सांवत। भैरों को कौल जो अब तुमने लुप्प लुप्प करी, तो फोरइ देउँ। अर्जुन कौ बान खाकै कोऊ राम को नाँव लों नई लै पाउत।'[1] इस कथन में प्रवाह है। विचारों का क्रम पैनापन लिए है। व्यंग्य का वेग मुहावरों के प्रयोग से मुखर हो उठा है। अन्तिम वाक्य की उसकी शेखी मनमौजीपन की द्योतक है।

नागदेव के समक्ष अपने सामन्त की प्रशंसा करते समय वह भाव विभोर हो उठता है।[2] नागदेव के लिए बोटी-बोटी कटाने को तैयार है। अपनी वीरता पर उसे गर्व है किन्तु हेमवती के पास नागदेव का पत्र ले जाने के आग्रह पर घबरा जाता है। उस सीधे-सादे देहाती को सज्जनसुलभ भीरुता दबा लेती है। अपनी भीरुता पर व्यंग्य होने पर आवेश से भर उठता है। उसकी भाव-विभोरता, वाचालता, भीरुता तथा आवेश की अभिव्यक्ति का प्रदर्शन कथनों द्वारा स्वाभाविक बन पड़ा है। शेखी बघारते समय लम्बे वाक्य बोलता है किन्तु घबराहट में छोटे और साध-साध कर। सामन्त को पत्र का हाल बताते समय कथनों में चालाकी और सरलता दोनों एक साथ हैं।[3]

---

१. गढ़ कुण्डार...पृ० २५
२. वही...पृ० ७१
३. वही...पृ० ८६ से ६१

बोलियों से तनिक भी परिचित पाठक को इन्हें हृदयंगम करने में विशेष श्रम नहीं पड़ता है।

'कुंडली चक्र' में प्रयुक्त लोकभाषा के संवादों में शिथिलता है। उसमें बुद्धा और पैलू दो ग्रामीण पात्र बुंदेलखंडी का व्यवहार करते हैं। उनके वार्तालाप में अर्जुन की बातचीत जैसी सजीवता और चमत्कार नहीं है। वे यहाँ सर्वहारा-वर्ग के प्रतीक हैं ज़मींदार और उसके मुख़्तार के अत्याचारों से पीड़ित। उनकी बातों में अर्जुन जैसी मनमौज, वाचालता और स्पष्टवादिता कहाँ? अर्जुन सदैव बुंदेलखंडी में ही बोलता है किन्तु बुद्धा, पैलू एक दो स्थल पर बुंदेलखंडी का प्रयोग करते हैं[1] अन्यथा खड़ी बोली में ही वार्तालाप करते हैं। भावावेश में भी उन से खड़ी बोली का प्रयोग कराया गया है।[2] इस प्रकार भाषा-प्रयोग में वैषम्य की दृष्टि से भी उनके वार्तालाप अस्वाभाविक हो जाते हैं।

'झाँसी की रानी' में झलकारी कोरिन के कथनों में अर्जुन की सी सजीवता है। झलकारी में मनमौज, स्वामिभक्ति, मुँहफटपन और ढीठता है।[3] रानी के दरबार में अंग्रेज़ों के सरिश्तेदार के सामने कोरियों, काछियों, चमार, अहीर, आदि के मुखियों के वार्तालाप में मुँहतोड़ उत्तर देने की प्रवृत्ति स्पष्ट है।[4] राजा के मृत्योपरान्त झाँसी के भविष्य की चर्चा बाज़ार में ग्रामीण करते हैं।[5] उनकी बातचीत में सीधासादापन, निष्कपट आलोचना और स्नेह है। यह वार्तालाप जन-मत के मनोवैज्ञानिक पहलू का परिचय देता है। 'कचनार' में गोसाइंयों की चिलम के दम लगाते हुए परस्पर बुन्देलखण्डी, अवधी में धार्मिक चर्चा, विवाद और मारपीट विशेष रूप से मनोरंजक बन पड़े हैं।[6] उसमें वक्ताओं की कूपमंडूकता, वाचालता और कहासुनी दर्शनीय है।

मुसलमान पात्रों की अस्वाभाविक भाषा

मुसलमान पात्रों के 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी-

१. **कुंडली चक्र**—पृ० ६३, ६४

२. **वही**—**पृ० ६२ से ६४, १८०, २१६, २२०**

३. **झाँसी की रानी**— **लक्ष्मीबाई**— पृ० ६७, ६८, ३२६, ३३०, ४२४ से ४२७

४. **वही**—पृ० २६४, २६५

५. **वही**—पृ० १४६, १५०

६. **कचनार**—पृ० २६६, २६७

लक्ष्मीबाई' के संवादों में भाषा संबंधी पात्रानुकूलता बनाये रखने में वर्मा जी को सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। कहीं ये ठेठ अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं और कहीं ठेठ हिन्दी के। युद्ध-बन्दी करीम (गढ़ कुंडार) नागदेव आदि के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किए जाने पर कथनों में हिन्दी के उच्च स्तर के अनेक शब्दों का प्रयोग करता है। वह अरब देश का है और कालपी का मुसलमान सेना का सैनिक। उसके मुख से—प्रसन्न, प्रयोजन, दंड, आज्ञा, हानि, वध, दया, युद्ध, कर्म, अंग, जन्म, बंदीगृह, शक्ति, कुटुम्ब, यद्यपि आदि शब्दों को सुनकर पाठक का अचकचा उठना स्वाभाविक है।[1] हिन्दू पात्रों से वार्तालाप करते समय उसका हिन्दी शब्दों के प्रयोग का प्रयत्न उचित किन्तु उक्त शब्दों का ज्ञान और प्रयोग उस जैसे पात्र के लिए असम्भव है। यही करीम पुण्यपाल और अत्तीवेग से वार्तालाप करते समय अपने स्वभावानुकूल अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग करता है।[2] 'बिराटा की पद्मिनी' में सेना-नायक अलीमर्दान भी प्रयोजन, शरण, धर्म, शुभचिन्तक, कुशल, मनुष्य, भविष्य, कार्यविधि, सैन्य-संचालन, सेनापतित्व आदि शब्दों का प्रयोग करता है।[3] इसी उपन्यास में काले खाँ के कथनों में भी यही अस्वाभाविकता है।[4]

'झाँसी की रानी' में अलीबहादुर कम्पनी सरकार की झाँसी में राज्य-स्थापना की प्रशंसा में प्रजा के प्रमुख जनों के समक्ष बोलते समय कहता है—'हम लोग परमात्मा को धन्यवाद देते हैं, कि महान कम्पनी सरकार का राज्य हो गया है। हमारे हाकिम बहुत नेक हैं। वे शहर और इलाकों का बहुत अच्छा बेमिसाल बन्दोबस्त कर रहे हैं। सब लोग चैन से सोते हैं। चोर, उठाईगीरे लापता हो गए हैं। किसी को कोई कष्ट नहीं।...'[5] इस कथन में शब्दों का प्रयोग असंतुलित है। जहाँ वह वक्ता हाकिम, नेक, बेमिसाल, बन्दो-बस्त, लापता जैसे शब्दों का प्रयोग करता है वहीं प्रारम्भ में परमात्मा, धन्यवाद, महान्, राज्य, का प्रयोग कर अन्त में फिर 'कष्ट', शब्द का प्रयोग करता है। यदि पहला वाक्य इस प्रकार होता—'खुदा का शुक्र है कि कम्पनी सरकार की हुकूमत क़ायम हो गई है।' तो वह सम्पूर्ण कथन में कहीं अधिक खपता। आगे चलकर पीरअली और अलीबहादुर परस्पर वार्तालाप में केवल

१. गढ़ कुंडार—पृ० ८३ से ८६
२. वही—पृ० १८३ से १८५ तथा ३०३ से ३०५
३. बिराटा की पद्मिनी—पृ० ९४, ९५ तथा १०१, १०२
४. वही—पृ० १८६, १८७
५. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृ० १७७

अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग करते हैं।[1]

मुसलमान पात्रों के कथनों में उक्त प्रकार के शाब्दिक असंतुलन और एक ही वक्ता के विभिन्न स्थलों पर कथनों में शब्द-प्रयोग की भिन्न रीतियों के कारण उनके संवादों में भाषा संबंधी विषमता आ उपस्थित हुई है। यह वैषम्य उपन्यासकार के पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग में शिथिलता का द्योतक है। आगे चलकर 'मृगनयनी' में ऐसी शिथिलता प्रायः नही दीख पड़ती। महमूद बघर्रा हिन्दुओं के मन्दिर में स्थापित मूर्तियों के विषय में विचार करते और बोलते समय हिन्दी शब्दों का प्रयोग नहीं करता[2] बुत, फन, कमाल, हासिल, कुफ्र, काफिर आदि शब्दों का स्वाभाविक ढङ्ग से प्रयोग करता है। उसकी बात क्लिष्ट नहीं हो पाती। प्रबन्ध में अन्यत्र उल्लिखित नासिर और मटरू (मृगनयनी) की वार्ता में भी यही गुण है। यही बात 'टूटे कांटे' में है।

निष्कर्ष

अन्त में वर्मा जी की कथोपकथन-लेखन-कला संबंधी तथ्य इस प्रकार सामने आते हैं। संवाद रोचक हैं, उनकी शब्दावली प्रायः सरल रहती है। समझने तथा उनके रसास्वादन में पाठक को विशेष मानसिक श्रम अपेक्षित नहीं। कथोपकथन उपन्यासों में प्रायः कथानक के अविभाज्य अंग बन कर आते हैं।[3] इनमें कथा का प्रवाह निहित रहता है। कुछ उपन्यास वार्तालाप से ही प्रारम्भ होते हैं। वहाँ पात्रों की परस्पर बातचीत कथानक की भूमिका प्रस्तुत करती है। कथन विषय तथा वक्ता के विचार के अनुसार लम्बे अथवा संक्षिप्त रहते हैं।

संवादों में प्रायः पैनापन रहता है। वे वक्ता के भाव को नुकीले ढङ्ग से व्यक्त करते हैं। उत्तर-प्रत्युत्तरों में एक गति, एक प्रवाह रहता है चुस्ती और हाजिरजवाबी से भरपूर। कथन की संक्षिप्तता पैनेपन को बल प्रदान करती है। वक्ता उपन्यास में पदार्पण करता है और उसके कुछ ही वाक्य उसके सहज ज्ञान, चरित्र और कार्य करने की रीति को स्पष्ट कर देते हैं। लम्बे कथन परिस्थिति के अनुसार रखे गये हैं। कुछ स्थलों पर अति लम्बे संवाद भी दीख पड़ते हैं। भाषण जैसे ! रानी लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी)

---

१. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृ० २६६, २६७

२. मृगनयनी - पृ० ७८ से ८० तथा देखिए गयासुद्दीन और ख्वाजा मटरू का वार्तालाप—पृ० ६७ से ७२

३. अपवादों की चर्चा आगे की गयी है।

अपनी सहेलियों को ढाँढस बंधाते तथा 'कर्मयोग' का संदेश देते समय लगभग दो पृष्ठों तक निरन्तर बोलती जाती है।[1] यही नहीं, कहीं-कहीं पात्र उपन्यासकार के प्रिय विषयों पर लम्बी-चौड़ी दलील प्रस्तुत करते समय कई पृष्ठों तक कथानक के प्रवाह से दूर हटकर वार्तालाप करते हैं। क्लब में सुधाकर और उसके मित्र (अचल मेरा कोई) स्त्री-स्वातंत्र्य, तलाक, विवाह आदि विषयों को लेकर दस पृष्ठों तक बात करते रहते हैं।[2] यह वार्तालाप उपन्यास की मूल समस्या को कुरेदता है किन्तु कथा-प्रवाह से नितान्त अलग हो जाने के कारण वाद-विवाद-प्रतियोगिता सा बन कर रह जाता है। डा० सनेही-टहल (अमरबेल) की इतिहास की उपयोगिता तथा हिंसा-अहिंसा आदि विषयों पर चर्चा में प्रचार की गन्ध स्पष्टतया आने लगती है।[3] यह वार्तालाप उपन्यास की भिन्न विचारधाराओं के संघर्ष का परिचायक है किन्तु है कथा की गति में रोड़े जैसा। पहले कह आये हैं कथा तथा चरित्र-चित्रण के क्षेत्र से बाहर संवाद भले उपयोगी हों किन्तु वे उपन्यास की गति में बाधक रहेंगे।

स्वगत कथन का वर्मा जी ने एक स्थल पर प्रयोग किया है, बड़े अस्वाभाविक ढङ्ग से। वह है प्रणयी धीरज (प्रेम की भेंट) का एकान्त में तर्क-वितर्क।[4] वह सरस्वती के प्रति आकर्षण को अपनी हार मानता है। बच्चों की तरह रोने लगता है। फिर 'चिल्लाकर बोला—'मैं इसलिये रोता हूं कि सरस्वती पराई है। हो तो इससे क्या? खबरदार, जो अब रोया।' धीरज एकाएक हंस पड़ा।'····प्रगट रूप में बोला—'क्यों जी, आज कौन-सा दिन है? जो कुछ भी हो, आज उद्धार का दिन है।'···· धीरज ने बड़ी ज़ोर से माथे को मला। चिल्लाकर पूछा—'इसको आज क्या हो गया? क्यों फटा सा जाता है?'···· एकान्त में सोचते समय मनुष्य भावावेग में कभी-कभी कुछ बुदबुदा उठता है। कभी उसके होठों पर स्मित खेल जाती है तो कभी आँखों में सूनापन किन्तु धीरज का यह चिल्लाना, हंसना पागलों जैसा है। वर्मा जी के उपन्यासों में कई स्थलों पर पात्रों का एकान्त में तर्क-वितर्क चित्रित किया गया है। वहाँ वे सोचते ही हैं चिल्लाते, रोते नहीं। उनका

---

१. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई—पृ० १६२ से १६४ तथा देखिए नाना भोपटकर का कथन पृ० ४१८ से ४१९

२. अचल मेरा कोई—पृ० १८४ से १९३

३. अमर बेल—पृ० ३११ से ३१५

४. प्रेम की भेंट—पृ० ९३ से ९५

सोचना भी किसी निराश हृदय की उच्छ्वास और बड़बड़ाहट जैसा है।[1] वे प्रकट बोलते कम हैं।

वर्मा जी हृदयस्पर्शी परिस्थितियों मे वक्ता के कथनों के साथ उसके हावों या अनुभावों की सूक्ष्म पकड़ करते हैं। जहाँ वाणी मूक है, अस्पष्ट है वहाँ वक्ता के अङ्ग-प्रत्यङ्ग मुखर हो उठते है। वह अनकहे सब-कुछ कह जाता है, कही अधिक मार्मिक भाषा में। दूसरी ओर ऐसे भी संवाद है जो अपने आप में पूर्ण और हाव-भाव के विवरण से निरपेक्ष हैं। पात्रों के सधे संवाद, उनका धीमा-तीखा प्रवाह—यह सब स्वतः वक्ता की आकृति और हाव-भाव का चित्र पाठक के मानस पटल पर खीच देते हैं। एक ओर हाव-भाव में संवाद निहित हैं तो दूसरी ओर संवादों में वक्ता के हाव-भाव मुखर हैं।

प्रणय-संवाद मार्मिक और सजीव हैं। क्रोधावेश में निःसृत वाक्य उत्तेजना और आतंक से भरपूर हैं। ग्रामीण स्त्रियों के परस्पर झगड़ों में वाग्युद्ध का मनोवैज्ञानिक महत्व रहा है। युवतियों की ठठोली में अल्हड़पन, छेड़छाड़, मान मनौवल सब कुछ है। लोक-भाषा के संवादों में स्पष्टवादिता, वाचालता और रूखे आवरण में ढका हृदय का स्नेह है। इनसे लोक-जीवन स्पष्ट होता है और पाठकों का मनोरंजन। मुसलमान पात्रों की भाषा में विषमता है किन्तु अन्तिम उपन्यासों में यह दोष लुप्त हो गया है।

---

१. गढ़ कुंडार—दर्प दलित नागदेव (पृ० ३२०, ३२१), संतप्त प्रणयी दिवाकर (पृ० ४५४ से ४५६)

अध्याय ६

वर्मा जी के उपन्यासों में वातावरण-सृष्टि

वातावरण

वातावरण पात्रों का संसार है, यहीं रहकर वे अपने क्रियाकलापों का परिचय देते हैं। या यों कहिये उपन्यास में पात्रों के कथोपकथन तथा क्रियाकलाप को छोड़कर शेष सामग्री देश-काल या वातावरण से सम्बन्ध रखती है। देश-काल के अन्तर्गत कथा के सभी बाह्य उपकरण, उसकी योजना मे सहायता प्रदान करने वाले पात्रों के आचार-विचार, रीति-नीति तथा रहन-सहन, प्राकृतिक पीठिका और परिस्थिति आ जाते हैं। इस प्रकार वातावरण की सृष्टि में मुख्यतया दो तत्वों का हाथ रहता है—उसमें रहने वाले मनुष्यों तथा मनुष्येतर जगत् का।

मनुष्यों के परस्पर सम्पर्क के फलस्वरूप जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें सामाजिक वातावरण की संज्ञा दी जा सकती है। मनुष्येतर जगत् है प्रकृति; प्रकृति या प्राकृतिक का अर्थ है स्वाभाविक। अतः प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं जिन्हें सजाने, सँवारने में मानव का हाथ नहीं लगा है वरन् वे स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं। ईश्वर या 'उस महान्' की कारीगरी को हम प्रकृति और मनुष्य की कारीगरी को कला कहते हैं। प्रकृति में पशु, पक्षी, सरिता, निर्झर, गिरि, गुहा, पृथ्वी, वृक्ष, लता गुल्म आदि की गणना की जा सकती है। इन सबका अनुभव हम अवलोकन, रसास्वादन, श्रवण, सुवास-ग्रहण और स्पर्श द्वारा कर सकते हैं।[1] इस प्रकार देश-काल अथवा वातावरण के दो भेद किये जा सकते हैं—सामाजिक तथा प्राकृतिक।

प्रकृति का प्रयोग उपन्यास में विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के हेतु किया जाता

१. **हिंदी काव्य में प्रकृति-चित्रण (डा० किरण कुमारी गुप्ता)**—पृ० १० से १६

है। कथा-क्षेत्र को पाठकों की कल्पना में सजीव करने के लिये वहाँ की भौगोलिक विशेषताओं का संकेत आवश्यक हो जाता है। पाठकों का उस जगत् से तादात्म्य स्थापित करने के लिये उपन्यासकार वहाँ के विभिन्न इन्द्रिय-ग्राह्य अङ्गों का सांगोपांग वर्णन करता है। मानवीय अनुभूतियों को मार्मिक स्पर्श देने के लिए वह प्रकृति को कहीं पात्रों की भावनाओं के अनुरूप, कहीं विपरीत और कहीं संवेदनहीन दशा में प्रस्तुत करता है। वह प्रकृति को मानव-मन की प्रेरक शक्ति के रूप में भी चित्रित कर उसके दृश्यों से पात्रों को चेतना प्रदान करता है।

उपन्यासकार की वातावरण-सृष्टि का मूल्यांकन करते समय उसकी वर्णन, सूक्ष्म-विवरण, सजीव कल्पना तथा संतुलन-शक्ति पर विचार किया जाता है। यह देखना होगा कि वह सामाजिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के वर्णन द्वारा पाठकों की कल्पना में उनके सजीव चित्र अंकित कर पाता है या नहीं, उसकी सतर्क दृष्टि से विवरण की कोई बारीकी छूट तो नहीं जाती ? यदि वह ऐतिहासिक उपन्यासकार है तो उसमें गत युग में पैठकर उन परिस्थितियों के पुनर्निर्माण की शक्ति है या नही। देश-काल द्वारा कथा की आधारभूमि प्रस्तुत की जाती है, वह साधन है और कथा साध्य। साधन, साधन ही रहे वर्णनाधिक्य के कारण साध्य न बन जाय, अतः वातावरण का चित्रण उपन्यास के अन्य तत्वों में खपा रहना वांछित है।

वर्मा जी के उपन्यासों के साथ 'बुन्देलखण्ड' का नाम प्रायः लिया जाता है। उनके उपन्यासों के वातावरण की चर्चा करने से पूर्व यहाँ बुन्देलखण्ड तथा उससे उपन्यासों के सम्बन्ध का निर्देश अभीष्ट है।

बुन्देलखण्ड

बुन्देलखण्ड भारत के उत्तरी भाग में वह भूखंड है जिसके उत्तर में यमुना नदी, उत्तर पश्चिम में चम्बल, दक्षिण में नर्मदा नदी तथा सागर, जबलपुर के डिवीजन और दक्षिण पूर्व में रीवां या बघेलखण्ड तथा मिर्जापुर की पहाड़ियाँ हैं।[1] उसकी सीमाओं के विषय में बुन्देलखण्ड में एक दोहा भी प्रचलित है—

इत चम्बल उत नरमदा, इत जमुना उत टौंस।
छत्रसाल सौं लरन की रही न काऊ हौंस॥

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व बुन्देलखण्ड के उत्तरी भाग में हमीरपुर, जालौन, झाँसी, ललितपुर, बाँदा के ५ जिले मध्य में ओरछा, समथर, दतिया के राज्य तथा चरखारी, छत्रपुर, पन्ना, बिजावर की छोटी रियासतें और

१. इम्पीरियल गजेटियर आफ़ इण्डिया (खंड ३)—पृ० १५०

दक्षिणी भाग में सागर, दमोह, जबलपुर के ३ जिले थे।[1] अब स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् राज्यों, रियासतों के विलीनीकरण तथा प्रान्तों के पुनर्गठन के फलस्वरूप बुन्देली बोली एवं रीति-रिवाज की दृष्टि से बुन्देलखण्ड में निम्न-लिखित जिले हैं—उत्तर-प्रदेश के झाँसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा, हमीरपुर और मध्य-प्रदेश के सागर, दमोह, जबलपुर, टीकमगढ़, छत्रपुर, पन्ना, दतिया तथा ग्वालियर जिले का दक्षिणी भाग।

इस भूभाग का नाम बुन्देलखण्ड प्रचलित होने के सम्बन्ध में एक किम्वदन्ती है। काशी के गहरवार राजा के वंशज बीरबहादुर के पाँच पुत्र थे। पाँचवाँ पुत्र पंचम था। सन् ११७० ई० में पंचम के भाइयों ने उसे राज्य के भाग से वंचित कर निर्वासित कर दिया। निराश पंचम ने राज्यप्राप्ति के हेतु मिर्ज़ापुर के पास विन्ध्याचल में दुर्गा की सेवा में तप किया। अन्त में उसने गला काट कर देवी को भेंट करना चाहा। इस प्रयास में पंचम के गले से रक्त की बूँद टपकी। दुर्गा प्रकट हो गयीं और पंचम की कामना पूर्ण हुई। बलिदान की रक्त की उस 'बूँद' के आधार पर 'बुन्देला' शब्द प्रचलित हुआ। पंचम की सन्तान बुन्देला कहलायी और उनकी राज्य-भूमि बुन्देलखण्ड।[2] कुछ लोग विंध्येलखण्ड से बुन्देलखंड का सम्बन्ध जोड़ते हैं। सन् १२८८ई० में बुन्देलों का शासन स्थापित हुआ। इससे पूर्व महाभारत काल से मौर्य काल तक यह भूभाग दशार्ण के नाम से प्रचलित था। गुप्तकाल में जेजाक कदाचित् इस प्रान्त का अधिकारी था उसी के नाम पर 'जेजाक-भुक्ति' इसका नाम पड़ा। चन्देलों के काल में नाम का अपभ्रंश स्वरूप 'जिझौती' या 'जुझौती' हो गया।

बुन्देलखण्ड के इतिहास का यहाँ संक्षेप में—अत्यन्त संक्षेप में—उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। स्थानीय परम्परा के अनुसार यहाँ के पहले अधिकारी गोंड थे। उनके उपरान्त पड़िहारों तथा चन्देलों का राज्य स्थापित हुआ। चन्देलों के काल में इस भूखण्ड की आश्चर्यचनक उन्नति हुई। सन् ११८३ में अन्तिम चन्देल राजा परमाल पृथ्वीराज चौहान से पराजित हुआ और शासन-भार पृथ्वीराज के सूबेदार खंगार खेतसिंह पर चला गया। खंगार स्वतन्त्र प्रायः होगये। उनकी राजधानी कुण्डार थी। सन् १२८८ में बुन्देलों का राज्य स्थापित हुआ। १५३१ में राजा रुद्र प्रताप बुन्देला ने ओरछा में राजधानी बनायी और राज्य का संगठन किया। तभी बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी एक सूत्र में बँधी। राजा छत्रसाल ने मुहम्मद खाँ बंगश से टक्कर लेने के लिये मरहठों को निमन्त्रित किया और पुरस्कार-स्वरूप उन्हें भूमि का एक भाग

---

१. **बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिह —पृ० १**

२. **झाँसी गज़ेटियर —पृ० १८१**

दिया। उसके पश्चात् बुन्देलखण्ड में मरहठों और अँगरेजों की राज्य-सत्ता का काल आता है।[1]

बुंदेलखण्डी उपन्यास

वर्मा जी के निम्नलिखित १४ उपन्यासों के घटना-स्थलों का सम्बन्ध बुंदेलखण्ड से इस प्रकार है—

	उपन्यास	मुख्य घटना-स्थल	जिला
१.	गढ़ कुण्डार	कुण्डार	टीकमगढ़
२.	लगन	बरौल, वजटा	झाँसी
३.	संगम	बरुआसागर, झाँसी	झाँसी
४.	कुंडली चक्र	नौगांव	छत्रपुर
५.	प्रेम की भेंट	ताल बेहट	झाँसी
६.	प्रत्यागत	बांदा	बांदा
७.	विराटा की पद्मिनी	विराटा, दलीपनगर	झाँसी, दतिया
८.	मुसाहिबजू	भरतगढ़ (दतिया)	दतिया
९.	कभी न कभी	बलवन्तनगर (झाँसी)	झाँसी
१०.	झाँसी की रानी — लक्ष्मीबाई	झाँसी	झाँसी
११.	कचनार	धामोनी, सागर	सागर
१२.	मृगनयनी	राई, ग्वालियर)	ग्वालियर
१३.	सोना	देवगढ	झाँसी
१४.	अमरबेल	सुहाना, बांगुर्दन, नाहरगढ़ सिंहगढ़	दतिया

शेष तीन उपन्यासों में 'अचल मेरा कोई' के घटना-स्थान का उल्लेख नहीं है। 'टूटे कांटे' का आगरा, भरतपुर, फतहपुर सीकरी तथा 'अहिल्याबाई' का इन्दौर, महेश्वर से सम्बन्ध है। इस प्रकार वर्मा जी के अधिकांश उपन्यास बुन्देलखण्डी हैं।

राजनीतिक उथल-पुथल और समाज

वर्मा जी के प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास का सम्बन्ध भारत की राजनीतिक उथल-पुथल वाले किसी काल से है। इन कालों में देश किसी सर्वमान्य केन्द्रीय सत्ता के अभाव में राजा, नवाबों की परस्पर लड़ाइयों से त्रस्त होता रहा है।

---

१. **इम्पीरियल गजेटियर—पृ० १५४ से १५७**

आये दिन के आक्रमणों तथा राज्य-लक्ष्मी की अति चंचलता के कारण आज कोई साधारण सामन्त, राजा होता था तो कल कोई कुलीन राजा, गली का भिखारी । दिल्ली के तख्त पर जो शासक होता था वह या तो सरदारों के हाथों में कठपुतली था या अपना मार्ग निष्कंटक बनाने की धुन में युद्ध और वध-कार्य में रत था । शासन-कार्य व्यक्तिगत आकांक्षाओं और वासनाओं का साधन मात्र रह गया था, प्रजा के प्रति कर्तव्य का ध्यान किसी को न था। स्वार्थ तथा अनिश्चितता की उस घड़ी में समाज के साधारण जन की शासन-व्यवस्था के प्रति सहज आस्था लड़खड़ा उठी थी । शासक तथा शासित, दोनों वर्गों के मध्य असमानता की गहरी खाई खुद गयी थी । नित्य कुटने-पिसने वाले उपेक्षित प्रजाजन की यही भावना रही होगी—'कोउ नृप होइ हमेंहि का हानी ।' इतने अत्याचारों की ज्वाला में दहकते हुए साधारण जन के हृदय के किसी कोने में अपने धर्म, अपने कर्तव्य का लेश वर्तमान था । राजनीतिक उथल-पुथल को दृष्टि में रखते हुए इन उपन्यासों की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण रुचिकर एवं वैज्ञानिक होगा ।

ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

सन् १२८७ के लगभग (गढ़ कुण्डार का काल) दिल्ली में गुलाम वंश के अन्तिम प्रभावशाली सुल्तान बलबन का सूर्य अस्त हो रहा था । वह समय बड़ी उखाड़-पछाड़ और अशांति का था । मनचले योद्धा युद्ध और अशान्ति के समय का स्वागत किया करते थे । मुसलमान आक्रमक जब-तब हिन्दू प्रजा पर टूट पड़ते, एक एक किलेबन्द राजा को हरा देते । जहाँ वे पीठ फेरते उन किलों को हिन्दुओं की कोई जाति पुनः अपने अधिकार में कर लेती । उन दिनों एक मनुष्य को दूसरे का भय लगा रहता था । 'जिझौती' में केवल कुण्डार ऐसा राज्य था जहाँ सत्तर-पचहत्तर वर्षों से कुछ शान्ति थी किन्तु राजा जिन जागीरदारों को अपने अधीन समझने के भ्रम में था वे सब अपने को दो-दो, चार-चार गाँवों का स्वतंत्र नरेश समझते थे । उनके 'राष्ट्र' की परिभाषा कदाचित् अपने गाँवों में ही सीमित थी । प्रजाजन इस काल में दबे हुए रहते थे । परस्पर जाति-पाँति और ऊँच-नीच का भेद काफी था । एक वर्ग के दूसरे वर्ग से सम्पर्क में आने के अवसर बहुत कम थे । [१]

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में (मृगनयनी) सिकन्दर लोदी दिल्ली का सुल्तान था । क्या गुजरात क्या मालवा और क्या राजस्थान, बहमनी सल्तनत,

१. गढ़ कुण्डार ..पृ० ११५, ११६ तथा २५७

बिहार, बंगाल—चारों ओर अराजकता तथा जनपीड़न का बोलबाला था। स्वर्ण-संचय की कामना, मारकाट की आकांक्षा, स्त्रियों के अपहरण की वासना, राज्य-स्थापना के लोभ और किसी भी प्रकार 'अपने मजहब' के विस्तार के मोह को लेकर पठान और तुर्क आक्रमक भारत में प्रविष्ट हुये थे। इन सब स्वार्थों का सामूहिक नाम था उनका 'बहिश्त'। इस बहिश्त की खोज में भारत में स्थान-स्थान पर सल्तनतें स्थापित हुईं। बाप ने बेटे और बेटे ने बाप को, सल्तनत के तख्त का मार्ग-कंटक समझ कर विष द्वारा या किसी सुलभ उपाय से अलग किया उस बहिश्त की प्राप्ति ने सुल्तानों, उनके सरदारों तथा सिपाहियों को निर्बल और निकम्मा बना दिया था। हिन्दू परलोक-भय, निराशावाद और आपसी लड़ाइयों के कारण दुर्बल हो ही गये थे। मुल्ले-मौलवियों ने इस्लाम को जैसा और जितना समझा था उसके अनुसार वे अपने अनुयायियों को उकसाया करते थे। वे सुल्तान, सरदारों, सिपाहियों को भड़काते और षड्यंत्रों में भाग लेते थे किन्तु अन्ततः उस 'जिहाद' का परिणाम वही बहिश्त ही हो जाता था। वह परिणाम उनका सबसे बड़ा बल और सबसे बड़ी दुर्बलता था।[1]

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (बिराटा की पद्मिनी) दिल्ली का शासन फर्रुखसियर के दुर्बल हाथों में था सैयद भाइयों की गुटबन्दी जोरों पर थी। उत्तरी भारत के लिये वह समय बड़ा संकट का था। दिल्ली के सहायक और शत्रु अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर चुके थे। वे नाम मात्र के लिये दिल्ली के अधीन थे और परस्पर प्रायः लड़ पड़ते थे। ऐसी दशा में प्रजा को उसके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता था। प्रजाजनों को जंगलों और पहाड़ी की भयंकर गोद में छिपे हुए छोटे-छोटे गढ़पतियों की शरण का ही आसरा था। रह जाते थे अपने घरों में केवल दीन-हीन किसान, जो हल-खेती छोड़कर कहीं न जा सकते थे। उन्हें पेट के लिये, राजा की लगान के लिये, लुटेरों की पिपासा के लिये खेतों की रखवाली करनी थी। यदि कहीं से घुड़सवार सेना आ जाती तो खेतों में अन्न का एक दाना और भूसे का तिनका भी न बचता। उस समय जिस प्रकार राजा, नवाब स्वार्थ-रक्षा में रत रहते हुए दिन में दो-चार घण्टे नाच-रंग, दुराचार और सदाचार के लिये निकाल लेते थे उसी प्रकार प्रजा अपनी थोड़ी-सी भूमि और छोटी-सी सम्पत्ति की रक्षा की चिन्ता करते हुए भी देवालयों में जाती, कथा-वार्ता सुनती और दान-पुण्य करती थी। संध्या समय लोग भजन गाते थे। परस्पर सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत रहते थे। बड़ों के सार्वजनिक पतन की इस विष-मयी छाया में भी इन छोटों में छल-कपट और बेईमानी का विशेष प्रसार हीं

१. मृगनयनी...पृ० ३३१

हो पाया था।[1]

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में (टूटे काँटे) दशा और भी गिरी हुई थी। भरतपुर, आगरा और मथुरा से दूर-दूर के विभिन्न जाटों ने अपने-अपने समूह खड़े किये और वे गढ़पति बनने लगे। अनुशासन में रहना उन्होंने सीखा न था, कभी कभी आपस में लड़ बैठते थे। मुसलमान आक्रमकों द्वारा बहुधा सताये जाने पर उन्होंने भी लूटमार का व्यवसाय बना लिया था। इन गढ़-पतियों के आश्रित जन खेती, किसानी के कंटकाकीर्ण कार्य करते थे। ये लोग सरदारों के संचालन में युद्ध में भाग लेते थे और यथावकाश लूटमार भी करने के लिये निकल पड़ते थे। किसी का नियन्त्रण इन लोगों को भी दुस्सह था।[2] इसी शताब्दी के अन्तिम भाग में (अहिल्याबाई) शासन और व्यवस्था के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे। प्रजाजन—साधारण गृहस्थ, किसान, मजदूर—अत्यन्त हीन अवस्था में सिसक रहे थे। उनका एक मात्र सहारा—धर्म—अन्ध-विश्वासों, भय-त्रासों और रूढ़ियों की जकड़ में कसा जा रहा था। न्याय में न शक्ति रह गयी थी न लोगों का विश्वास।[3] जनता को उस समय (कचनार) अपनी खेती, किसानी, शिल्प और व्यवसाय के लिये सुदृढ़ शासन चाहिये था। वह नायक दे सकती थी, परन्तु स्वयं नायकत्व का भार ग्रहण नहीं कर सकती थी। इसलिए कुशासन, अनियम,त्रास और मारकाट के साथ नायकों की संख्या बढ़ती गयी। जनता की आर्थिक अवस्था हिलती हुई पानी भरी थाली में पड़े तिनकों जैसी थी। फिर भी उसका 'ईमान' बना हुआ था और वह श्रमशील थी।[4] उन्नीसवीं शताब्दी में (मुसाहिबजू) अन्य प्रान्तों की भाँति बुन्देलखण्ड भी अँग्रेजों के चंगुल में आ गया था। फिर भी उसकी परम्परायें और स्थानिक रीतियाँ जीवित थीं।[5]

सामाजिक परिस्थिति और मनोवृत्ति

वर्मा जी के ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों में साधारण जन राजनीतिक,सामाजिक और आर्थिक संकटों से घिरा हुआ है। समाज का जन निरुत्साहित है फिर भी वह धर्मभीरु और कर्मशील है। वह शासन के अत्याचार और

१. **बिराटा की पद्मिनी**—पृ० ६० से ६२
२. **टूटे काँटे**—पृ० २६०, २६१
३. **अहिल्याबाई (परिचय)**—पृ० १
४. **कचनार**—पृ० ३४ से ३६
५. **मुसाहिबजू**—पृ० ६

शत्रुओं के आक्रमण को झेलते हुए अपनी घोर निर्धनता से लड़ता है। इस दुरावस्था में उसका सम्बल है परलोक-चिन्ता। परलोक-चिन्ता के साथ है धर्म और धर्म के साथ लगी हुई हैं अनेक परम्परायें, रूढ़ियाँ, विश्वास और भीरुता एवं मूर्खताजन्य अन्धविश्वास। उदाहरण के लिये जन-जन के हृदय में व्याप्त जाति-पाँतिगत भेदभाव तथा छुआछूत सम्बन्धी आचार-विचार को ले सकते हैं। यह विश्वास दुराग्रह की सीमा तक पहुँच कर समाज के लिए घातक विष जैसा हो गया है।[1] इसी प्रकार भूत-प्रेत के अस्तित्व में पहले साधारणतया सबको विश्वास था, आज वह विश्वास ग्रामीण जनता के हृदय में शेष है। लोगों की धारणा है कि प्रेत बिना धुएँ की लपटें उठाते हैं। किसी देवता का अनादर करने पर शरीर को भूत लग जाता है। प्रेत-बाधा के निवारण के लिये रात्रि में पीपल पर मिट्टी की दीपकवाली झिझरी टाँगते हैं। झिझरी में गेहूं, ताँबे का पैसा और सिंदूर रहता है। मृत व्यक्ति की 'काज-क्रिया' नियमानुसार न करने पर वह प्रेत का रूप धारण कर लेता है, और लोगों को सताता है।[2] धर्म-भ्रष्ट व्यक्ति का पुनः जाति और धर्म में प्रवेश नहीं हो सकता। नकटे-लूले के गये हुए अंगों की भाँति गये हुए धर्म की पुनर्प्राप्ति असम्भव है।[3]

सदा दमित और त्रस्त रहने के कारण लोगों में आत्म-विश्वास का अभाव हो गया है। वे अपने आप में केन्द्रित हो चले हैं। आये दिन की सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण तटस्थ दर्शक जैसा है। उनमें ऐसी घटनाओं के प्रति बाल-सुलभ कुतूहल और तटस्थता का भाव रहता है। इसीलिये वे दूसरों के गोपनीय रहस्यों को जानने के लिये आतुर रहते हैं और समाज में अनेक लोकापवादों की धूम मची रहती है। पीड़ित की अत्याचारी से रक्षा करने की बात वे अपने क्षेत्र से बाहर की समझते हैं। हाँ, उनकी दमित प्रवृत्ति शासक या अत्याचारी के पीठ पीछे उसकी निर्भीक आलोचना करते समय उभर आती है।[4]

जर्जर बुन्देलखण्डी जन कठोर प्रकृति और विषम परिस्थितियों की गोद में पलते रहने के कारण अपने अन्तर में एक और व्यक्तित्व छिपाये हुए हैं। वह

---

१. इस विषय पर वर्मा जी के उपन्यासों के जीवन-दर्शन की चर्चा करते समय विशेष प्रकाश डाला गया है।

२. प्रेत विश्वास—गढ़ कुंडार—पृ० ९३, ४३०, कुंडलीचक्र—पृ० १७६, १८४, १८५, तथा टूटे काँटे—पृ० १२८

३. यह विश्वास 'प्रत्यागत' उपन्यास की मूल समस्या है।

४. गढ़ कुंडार—पृ० २६८, ३६४, ३७१; ३९२; कुंडली चक्र—१३३, २०५ तथा मृगनयनी—पृ० ३४

व्यक्तित्व निर्भीक है, घोर कठिनाइयों से जूझने वाला और मौज का एक क्षण मिलने पर मस्ती से झूम उठने वाला है। मस्ती का एक क्षण ही उसे सजीव बनाये रखता है और शक्ति देता है भविष्य की बाधाओं से भरपूर टक्कर लेने की। उसके त्योहार और उत्सव ऐसे ही सुखद क्षणों को अपने आप में संजोये हुए हैं। नवीन रूप धारण करती प्रकृति उसमें उमंगों की हिलोरों पर हिलोरें उठा देती है। उसका कृतज्ञ मन परमेश्वर के आगे नत हो उठता है। वह उन अवसरों पर भजन-पूजन करता है, उसके चरणों में अपनी श्रृद्धांजलि अर्पित करता है। फिर बारी आती है हृदय में दबे हुए उल्लास की दुगुने वेग से बाहर फूट पड़ने की। बुन्देलखण्डी नर-नारी फागें और राछरें गाते हैं और नाचते, कूदते मस्त हो जाते हैं।

त्योहार

वर्मा जी के उपन्यासों के आधार पर बुन्देलखण्ड में मनाये जाने वाले त्योहारों का स्वरूप इस प्रकार सामने आता है। वसन्तागमन के पश्चात् वर्षारम्भ होता है। चारों ओर फूल खिल जाते हैं और लोगों को अपनी श्वास तक में परिमल का आभास होने लगता है। चैत्र की नवरात्र में गौर की प्रतिमा की स्थापना होती है। हरदी कूँ कूँ (हल्दी कुंकुम) के उत्सव पर नगर की नारियाँ सुमन-मालाएँ गले में डालकर पूजन के लिये एकत्र होती हैं। गौर की प्रतिमा आभूषणों और फूलों के शृङ्गार से लद जाती है। चारों ओर धूप दीप तथा नैवेद्य की धूम मची रहती है। स्त्रियाँ आपस में कुंकुम-रोरी लगाते समय एक दूसरी से युक्तिपूर्वक उसके पति का नाम पूछती हैं।[1] ज्येष्ठ की दशमी शुक्ला को गंगा-दशहरा के दर्शन के दिन सर्वत्र त्योहार मनाया जाता है। देहात में अधिक भजन-भोजन किया, कराया जाता है।[2] वैशाख की शुक्ला तृतीया को 'अक्षय तृतीया' का उत्सव मनाया जाता है। घरों में विशेष भोजन बनता है और देवी-देवताओं की पूजा होती है। नौकरों को हल्दी के टीके लगाकर खिलाया-पिलाया जाता है। खेतों में हल का एक 'कूड़' डाला जाता है। तीसरे पहर स्त्रियाँ चने के भीगे हुए देवल और बताशे गा-गाकर एक दूसरे को बाँटतीं हैं। लड़कियाँ और लड़के आक के अधिखिले फूल तोड़कर एक दूसरे पर (भाई बहिन के नाते को छोड़कर) फेंकते हैं। कुछ पुरुष नशा भी कर लेते हैं। सन्ध्या के समय नृत्य-गान होता है।[3] क्वार की शुक्ला दशमी

१. **झाँसी की रानी**—पृ० ९५ से १०२
२. **लगन**—पृ० १९
३. **कचनार**—पृ० ८४, ८५

को विजयादशमी का त्योहार मनाया जाता है। नवदुर्गा की रात्रियों में लड़के टेसू के गीत गाते हैं। सूर्योदय के पूर्व छोटी-बड़ी लड़कियाँ गीत गाती हैं, 'हिमाचल जू की कुंअरि लड़ायतीं, नारे सुअटा।' दीवार पर 'सुअटा' की मूर्ति थोपती हैं। हरी दूबा और लाल कनेर तथा दूबा के पीले फूलों द्वारा उस मूर्ति का शृङ्गार होता है।[1] विजयादशमी की संध्या को ज़वारे निकलते हैं। एक जुलूस के रूप में सभी, थालों में ज्योति रखकर निकलते हैं। लोग काली, राक्षस, बन्दर आदि के चेहरे लगाये हुए साथ चलते हैं।[2] कार्तिक की कृष्ण अमावस्या को दीपावली के दिन गाँवों में खेती-पाती का कार्य बंद रहता है। बैलों को नहला कर उनके शरीर पर हरे तथा लाल रंग के ठप्पे लगाये जाते हैं। रात्रि को घरों में रोशनी होती है। पड़वा को गोवर्धन की पूजा के उपरान्त मौनिये—मौनव्रतधारी—ढोल मँजीरे बजाने वालों के साथ फेरी लगाने के लिए निकलते हैं। ये लोग हर दिवाली की पड़वा को मौन साधते हैं। बाहर गाँवों की सीमाओं को दौड़ते, नाचते, कूदते, छूना पड़ता है, भले ही इसमें आधीरात हो जाय। परिपाटी के अनुसार घरों से यथायोग्य न्योछावर मिलती है। ये लोग कमर में बड़े बड़े घुँघरू कसे तथा मोरपंख खोंसे, आँखों में गहरा काजल पोते और बालों में तेल भरे रहते हैं।[3]

वर्ष के अन्त में फाल्गुन की पूर्णिमा को होली का त्योहार मनाया जाता है। संध्या को होलिका-दहन के पूर्व होली की लकड़ी लेने के बहाने बच्चे, जवान, बूढ़े इधर-उधर पुकारते फिरते हैं और जिस किसी की लकड़ी आँख बचाकर ले जा पाते हैं होली के ढेर में एकत्र कर देते हैं। यही एक ऐसा त्योहार है कि जिसमें मन की उच्छृङ्खलता बाहर आ जाती है। भेद-भाव और ऊँच-नीच दो-एक दिन के लिए विदा ले जाते हैं और समता की प्रवृत्ति मूर्तिमान होकर सामने आ खड़ी होती है।[4] पाँच दिन रंग पंचमी तक होली मनाने की प्रथा है। खूब कीचड़ चलती है। दौज के दिन पूजा, पकवान, रंग, गुलाल, और नाच-गान वाली होली मनाई जाती है।[5] बुन्देलखण्डी जन अनेक कठिनाइयों में बिंधे रहने पर भी वर्ष के कुछ अवसरों पर हृदय के द्वार उन्मुक्त कर आनन्द मनाते हैं, उक्त त्योहारों को मनाने की रीति इस तथ्य की साक्षी है।

---

१. संगम—पृ० १२१ से १२३
२. सोना—पृ० ११५
३. अमरबेल—पृ० १२० से १२३
४. गढ़ कुंडार—पृ० २५६, २५७
५. मृगनयनी—पृ० ४ से १२, २० से २२

रीति-रिवाज

वर्मा जी के उपन्यासों में वैवाहिक प्रथा का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है। लड़की तथा लड़के का सम्बन्ध निश्चित करने के लिये दोनों की जन्म-पत्रियाँ, टीपने या कुंडलियाँ परस्पर मिलाने का चलन है। वर-वधू के ग्रहों का मेल बिठलाने की दोनों पक्षों को विशेष चिन्ता रहती है। विवाह के अवसर पर टीके के बाद चढ़ावा फिर कच्ची रसोई की पाँत और उसके बाद भाँवर पड़ती है। टीके के समय द्वार पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं—'सीस नवै, परवत नवै, जब साजन आएँ।' दूल्हे को केसरिया बाना पहनाया जाता है और उसकी पगड़ी में मोर मुकुट बाँधा जाता है। साधारणतया विवाह के समय वधू की विदा नहीं होती, परन्तु वर-वधू की पूरी आयु होने की दशा में इस नियम का व्यतिक्रम भी हो जाता है।[1]

प्रकृति और वर्मा जी

वर्मा जी के उपन्यासों में युद्ध, आखेट और खेती-पाती के अनेक प्रसंग आये हैं। इन सबकी पृष्ठ भूमि में ग्राम्य तथा वन्य प्रकृति के दर्शन होते हैं। उनके उपन्यासों की कथायें प्रायः बुन्देलखण्डी ग्राम्य जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के हृदयग्राही सजीव वातावरण-निर्माण के हेतु पुराने किलों, भग्नावशेषों और साधारण ग्राम्य तथा भव्य वन्य प्राकृतिक सौंदर्य का उपयोग किया गया है। उपन्यासों में प्रकृति के संक्षिप्त तथा विस्तृत, समस्त उल्लेख, १२२ स्थलों पर मिलते हैं। सात उपन्यासों—गढ़ कुंडार, संगम, कुंडली चक्र, कचनार, मृगनयनी, अमरबेल तथा अहिल्याबाई—में प्राकृतिक दृश्यों का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। वर्मा जी बुन्देलखंड में जन्मे हैं, उन्होंने उसके प्राकृतिक क्षेत्रों का चाव से पर्यटन किया है। तीव्रगामी नदियों, लम्बे-चौड़े हरे-भरे मैदानों, ऊँची-नीची पहाड़ियों और टूटे-फूटे खंडहरों के भयोत्पादक सौन्दर्य को उन्होंने पास से परखा है। प्रकृति की उस गम्भीर रोमांटिक गोद में घटी अनेक विगत गौरवमयी घटनायें तथा अन्य हृदयस्पर्शी ऐतिहासिक परम्परायें मिल कर एक हो उनके अन्तर में समा गई हैं। जिस प्रकार तुलसी ने राम से हार्दिक तादात्म्य स्थापित कर लिया था वैसे ही वे और बुन्देलखंड एक हो गये हैं। उनकी यह अनुभूति उपन्यासों में पाठकों का हृदय बरबस बुन्देलखंड की ओर खींच लेती है। नदियों की गरजती धारें, गहरे भरके,

१. **कृपया देखिये कुंडली चक्र**—पृ० ४७, ४८, ७५, २३५, **कभी न कभी**—पृ० १३७ **तथा संगम**—पृ० २६, ३३

टौरियों-पहाड़ियों के उतार चढ़ाव, घने जंगल, सुन्दर महकते फूल, वन में उगते सूर्य की मनोहर छटा और जल-प्रवाह पर ढलते सूर्य की छितरातीं किरणें नहीं भूलतीं। ये दृश्य पाठकों के हृदय के किसी कोने में अपनी भव्यता, भयानकता और विचित्र सौन्दर्य की एक मीठी टीस छोड़ जाते हैं।

बुंदेलखंड जलवायु की दृष्टि से अच्छा भूखंड नहीं कहा जा सकता। यहाँ खुश्की है और पग-पग पर कठोर प्रकृति की अड़चनें। गर्म लू के धूलभरे झोंके, सूखे वन, तपती धरती तथा नंगी, सूखी पहाड़ियाँ निवासियों के जीवन-मार्ग में चुनौती सी देती जान पड़ती हैं। किन्तु वर्षा के उपरान्त इस शुष्क क्षेत्र में अनोखी ताज़गी आ जाती है, प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। भरभरा कर बहते हुए तेज नाले, हरी घास ओढ़े मैदान, भीगी पहाड़ियाँ और हरियाली से लदे झाप सी छोड़ते ऊँचे-नीचे पेड़ दृष्टि को मोह लेते हैं। वर्माजी के उपन्यासों में इस सौन्दर्य के साथ लू की लपटों, धूल के झोंकों, जलती धरती तथा वृक्षों के काँटेदार ठूठों को भी स्थान मिला है। प्रकृति के सरस और शुष्क दोनों रूपों पर वर्मा जी की दृष्टि रही है।

भौगोलिक विवरण

वर्मा जी के उपन्यासों में घटना-क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट करने के लिये प्रकृति के अनेक विस्तृत वर्णन आये हैं। ये वर्णन प्रायः लम्बे होते हैं और साधारण पाठक की दृष्टि में नीरस। घटना-क्षेत्र के प्रत्येक अङ्ग को ला रखने की धुन में उपन्यासकार ने उन्हें नाप-तोल और साधारण विवरण की दृष्टि से देखा है। अनेक स्थलों और उनकी अनेक बारीकियों के धारा-प्रवाह वर्णन में ऊबा देने वाली उलझन उत्पन्न हो जाती है। पाठक एक के बाद दूसरी, तीसरी, चौथी बारीकी में उलझ कर पिछले विवरण को भूलकर अगली सूचना पर हतोत्साहित दृष्टि डालता है। अन्ततः वह उन उलझन भरे पृष्ठों को पलट कर कथा-सूत्र को ढूँढ़ने लगता है। पाठक की अरुचि का उत्तरदायित्व वर्णनों की विशदता, उनकी विशृंखलता और नाप-तोल की अतिशयता पर है। एक-एक वस्तु की व्याख्या की गयी है। इन सब व्याख्याओं में परस्पर असम्बद्धता है। वर्णन में प्रवाह नहीं आ पाता। विभिन्न वस्तुओं के लम्बे विवरण में किसी एक अंग पर क्षण भर रुक कर उसका स्वरूप साकार करने का प्रयत्न नहीं रहता। किसी अंग का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न होने के कारण सम्पूर्ण विवरण ब्योरों का घोलमेल सा बन जाता है। वर्णन में क्षेत्र तथा भग्नावशेषों की बारीकियों के साथ उनके गत रूप तथा विगत वैभव का उल्लेख रहता है। बीते वैभव की चर्चा से वर्णन में तनिक करुण स्पर्श आ जाता है। 'गढ़

कुंडार' के प्रथम परिच्छेद 'कुंडार की चौकियों' में चार पृष्ठ ऐसे ही वर्णन को दिये गये है। स्थल के वर्तमान तथा गत स्वरूप के मिश्रित वर्णन की दृष्टि से ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। इन में टीस है।

—'यद्यपि जुझौती का सब कुछ चला गया, मान मर्यादा गई, स्वाधीनता गई, समृद्धि गई, बल-विक्रम गया—तो भी चंदेलों के बनाए अत्यन्त मनोहर और करुणोत्पादक मंदिर और गढ़ अब भी बचे हुए हैं और बची हुई हैं चंदेलों की झीलें, जिनके कारण यहाँ के किसान अब भी चंदेलों का नाम याद कर लिया करते हैं। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य, जिनका सौंदर्य और भयावनापन अपनी-अपनी प्रभुता के लिये परस्पर होड़ लगाया करता है, अब भी शेष है। पलोथर की पहाड़ी पर खड़े होकर चारों ओर देखने वाले को कभी अपना मन सौंदर्य के हाथ और कभी भय के हाथ में दे देना पड़ता है। ऐसा ही उस समय भी होता था, जब संध्या समय पलोथर के नीचे बेतवा के दोनों किनारों पर शंख और घंटे तथा कुंडार के गढ़ से खंगारों की तुरही बजा करती थी। और, अब भी है जब पलोथर की चोटी पर खड़ा होकर नाहर अपने नाद से देवरा, भरतपुरा इत्यादि के खंडहलों को गुंजारता और बेतवा के कल-कल शब्द को भयानक बनाता है। अब कुंडार में तुरही नहीं बजती। हां, टीकमगढ़ के महाराज के कुछ सैनिक इसकी रक्षा में अपने दिन बिताया करते हैं।[1] 'बिराटा की पद्मिनी' में ऐसे अनेक वर्णन आये हैं।

प्रकृति-चित्र

वर्मा जी के उपन्यासों के कथा-सूत्रों के मध्य में यत्र-तत्र प्रकृति के अनेक संक्षिप्त चित्र आये हैं। इन स्थलों पर वर्मा जी ने प्रकृति का विवरण मात्र नहीं दिया है वरन् उसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण कर चित्रित किया है। वे दृश्य की विशेषताओं की सूक्ष्म पकड़, वर्णन की संक्षिप्तता, सजीवता, तथा उपयुक्त शब्दों के चुनाव द्वारा पाठक की कल्पना में छोटा-सा चित्र खींचने में सफल हो जाते हैं। भरतपुरा की गढ़ी के समीप पूस के माह में तीसरे पहर, संध्या, रात्रि, मध्य रात्रि, उषा तथा प्रातः के क्रमिक ६ सूक्ष्म चित्र दिये गये हैं।[2] ये वर्णन कथा में खपे हुये है और पात्रों की मानसिक स्थिति के परिचायक हैं। इनमें सूर्य-किरणों की चमक, निविड़ अन्धकार, निस्तब्धता, चाँदनी की शीतलता, उषा की अरुण आभा तथा दिन के प्रकाश में स्पष्ट भयानक सौंदर्य का दिग्दर्शन है।

१. गढ़ कुंडार...पृ० २०
२. गढ़ कुंडार...देखिये क्रमशः पृ० २१,२४,३४,४०,६२

प्रकृति अपनी स्वाभाविक गति से चलती रहती है। प्रतिदिन वह अपने अनवरत क्रम को दोहराती है फिर भी उसके प्रत्येक मोड़ में, प्रत्येक दृश्य में एक नवीनता है, एक ताज़गी है। प्रकृति के अंचल से छूता प्रणयाकुल नागदेव (गढ़ कुंडार) घोड़े पर सवार चलता है। वह अपने आप में व्यस्त है, वातावरण उसे प्रभावित नहीं कर पाता। एक ओर मुस्करातीं, गुनगुनाती प्रकृति और दूसरी ओर आकुल नाग। यह वैषम्य, वर्णन में अनोखापन ला देता है।

—'नरम-नरम दूब पर ओस के कण छाए थे। सूर्य की किरणें मानों उनमें अपना मुँह देख रही थीं। पहाड़ियों की तलहटी में बसे हुए गाँवों के ऊपर धुँआँ मड़रा रहा था। चिड़िया धूप ले-लेकर किसी कीर्ति का गान कर रही थीं। नाग धीरे-धीरे कुंडार को चला।

उसकी आकृति पर एकाएक किसी उत्तेजना के चिन्ह दीख पड़े।

उसने अपने आप कहा—'हेमवती मेरी होगी, और फिर होगी। कोई न रोक सकेगा। जैसे बनेगा, तैसे लूंगा। कुंडार का राज्य चाहे मिले, चाहे न मिले, हेमवती मिलेगी।'

दूब की ओस के साथ किरणें खेलती रहीं। पक्षी कुहकते रहे। पहाड़ियों में पवन समाता रहा। नाग के प्रण को किसने सुना, किसने समझा ?[1] — यहाँ किरणें, पक्षी और पवन नाग की उलझन से अलिप्त हैं, उन्हें किसी से क्या लेना ! छोटे-छोटे क्रमबद्ध वाक्य एक चित्र बनाते हैं जहाँ पहाड़ियों के अंचल में एक गाँव है और है ओस कणों की ताज़गी, किरणों की दमक, प्रातः का धुँआ तथा चिड़ियों की चहचहाट।

दिवाकर और तारा (गढ़ कुंडार) की चिरकामना पूर्ण होती है। दोनों सदा-सदा के लिये परस्पर आ मिलते हैं। चारों ओर की वन्य प्रकृति उनकी स्थिरता, शांति और पवित्रता का अनुसरण करती जान पड़ती है।—'तारा ने आँख उठाकर दिवाकर की ओर देखा। दो बड़े-बड़े आंसू अब भी आँखों में थे। चाँदनी दमक रही थी। शीतल पवन मंद-मंद बह रहा था। सुनसान पेड़ कभी-कभी खरभरा उठते थे। नदी कलकल शब्द करती हुई बहती चली जा रही थी। उसकी विशाल धारा पर चाँदनी की चादरें लहरा रही थीं। पलोथर पर्वत अपना सिर ऊँचा किए हुए खड़ा था।'—यहाँ प्रकृति की नीरवगति में भी एक निस्तब्धता है, एक गरिमा। मानो वह तारा, दिवाकर को थपकियाँ दे रही हो। चाँदनी की दमक, पवन की मंद-मंद गति, सुनसान पेड़ों की खरभराहट, नदी की कलकल तथा उसकी धारा पर चांदनी की

१. गढ़ कुंडार...पृ० १५०

चादरें लहराने में एक ध्वनि है जो उन सब के स्वरूप को सजीव करने में सहायक है।

जन-जीवन की पृष्ठभूमि में प्रकृति के सौन्दर्य और जन-मन के उल्लास के चित्र सहज, स्वाभाविक बन पड़े हैं। इन वर्णनों में प्रवाह और सादगी है। सावन के दिन अनोखी मस्ती, सिहरन लेकर आते हैं। वधुएँ मायके जाने को लालायित हो उठती हैं।—'सावन आ गया। मेघ कभी मूसलाधार और कभी फुहारों से बरस कर आते-जाते रहे। हरियाली छा गई। पुरवाई चंचलता उत्पन्न करने लगी। स्त्रियाँ मेंहदी रचाने लगीं। पैरों की गुराई को मेंहदी खरी अरुणता की चकाचौंध देने लगी। पवन-मंडल झूलों से आन्दोलित और सावन-गान से मुखरित हो उठा। पपीहा किसी मृदुल वेदना का संवाद सुनाने लगा। परन्तु जानकी बरुआसागर (मायके) न जा पाई।[1] प्रकृति के इस उल्लास का आनन्द ग्राम अथवा नगर में कहीं भी उठाया जा सकता है। यहाँ पृष्ठभूमि में वन, पहाड़, नदी नहीं वरन् जीवन के साधारण प्रवाह में प्रकृति के सौंदर्य को लक्ष्य करने की प्रतिभा है। ऐसा ही एक अन्य वर्णन नवरात्रि के दिनों सूर्योदय से पूर्व बालिकाओं के गायन का है। पक्षी उषा का स्वागत करते हैं, कलिकाओं के चिटकने की मौन भाषा शरत् के आगमन का नीरव घोष करती है। चिड़ियों की कुहुक से सूर्यदेव की कोमल रश्मियाँ मानो ओत-प्रोत हो उठती हैं। मंद वायु और बालिकाओं के कोमल कंठों से निःसृत वह बुन्देलखन्डी गीत—

—'तिल के फूल, तिली के 'दानें',
चंदा उगो बड़े 'भुन्सारें'।'[2]

भावुक पाठक को रोमांचित कर देने के लिये यथेष्ट हैं। हमारे आसपास प्रकृति नित्य किसी न किसी रूप में अपनी मनोहर झाँकी दिया करती है। चाहिये केवल उसे निरखने, परखने वाली भावुक अन्तर्दृष्टि। ये वर्णन उसी अन्तर्दृष्टि के प्रसाद हैं।

पहाड़ की गोद में खेलती झील का एक चित्र देखिये—'वैसी ही लहरें। उसी तरह की आन्दोलित प्रकाश रेखाएँ। नीलिमा और तरंगें। पहाड़ियों की गोद में निर्भय नाचने वाली जल-राशि। प्रमुदित तरलता। स्वरमय एकांतता। ढका हुआ सौंदर्य और बंधी हुई उन्मुक्तता। झील पहाड़ों के घर में चंचल-सी जान पड़ती थी,...'[3] ऊँचे पहाड़ के नीचे विस्तृत झील का चित्र बनता है।

१. संगम...पृ० १०५
१. संगम...पृ० १२१
२. कुंडली चक्र ...पृ० ८०

उसकी लहरों पर ढलते सूर्य की किरणें नाच रही हैं। इस निर्जनता और बंधन में भी सजीवता और गति है। ऐसा ही अन्धकारमयी रात्रि में वेगवती बेतवा नदी का एक चित्र है। नदी के प्रवाह में चहल-पहल है। बड़ी मछलियों के दौड़ने का शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ता है। बीच-बीच में टिटहरी चिल्ला उठती है, वैसे सुनसान है। आकाश में बिखरे हुए तारे वहाँ प्रकाश के एक मात्र साधन हैं। पानी पर उनकी कुछ टिमटिमाहट दीख पड़ती है।[1] इस दृश्य में प्रकृति का गतिमय चित्र है।

वर्षा के पानी भरे बादलों का सिहरन भरा यह अंधकार (अमरबेल) द्रष्टव्य है—'तीन चार दिन बाद प्रातःकाल के समय पानी भरे बादल आगये। टिमटिमाता उजेला जगमगा जगमगा जाता था और अंधेरा डिगमगा डिगमगा जा रहा था। हवा के झोंके में वहाँ की चीजें कभी छोटी और कभी बड़ी जान पड़ने लगती थीं—अंधेरा और उजेला अपने अपने को, मानो बढ़ाने के प्रयत्न में हाँफ रहे थे।'—टिमटिमाते उजेले की 'जगमगाहट' तथा अंधेरे की 'डिगमगाहट' से घुमड़ते काले कजरारे बादलों के टीस भरे, मस्ती भरे धुंधले अंधकार का अनुभव होने लगता है।

वर्मा जी के उपन्यासों में पकी फसल के चित्र आकर्षक बन पड़े हैं। बसन्त से पूर्व की संध्या के चमचमाते तारे, फ़सल की सोंधी हलकी महक और धुँए के पुंज का यह गंधमय चित्र देखिये।—'ठंड जाने को थी, परन्तु वसन्त का आगमन नहीं हुआ था। सन्ध्या होते ही घोर अन्धकार छा गया। ठंडी हवा के झोंके ने तारों के धूमरेपन को पोंछ सा दिया और वे खरेपन के साथ चमचमा उठे। चने के खेतों से नोनी की सोंधी गन्ध आई और गेहूँ के खेतों से हरी बालों की चुनाँद की हलकी महक। अरहर पक रही थी, गदरा रही थी और फूल पर थी। पास के खेतों से उसकी हरवाइंद बीच-बीच में गुसाइयों की छावनी के समीपवर्ती छोर को छू-छू जाती थी। दूर के खेतों में रखवालों की आग के धुएँ का पुंज पहले सीधा स्तम्भ सा ऊपर को जाता, फिर छितराकर तन सा जाता जिससे क्षितिज वाले तारों पर पतली धूमरी चादर पड़ जाती। सागर (शहर) की झील में नन्हीं-नन्हीं लहरें तरंगित हो रही थीं। तारे उन पर तैर से रहे थे।[2] खेती-पाती के ऐसे अनेक दृश्य उपन्यासों में आये हैं। पलाश के झड़ते पत्ते, नीम, करौंदी की सुगन्धि, खेतों में लहराती बालें, आम के बौर, कोयलों की कुहुक, खेतों में हरे, पीले, लाल, नीले फूल और गेहूं, चने, अलसी की सौंध से ये दृश्य अनुप्राणित हैं।

१. बिराटा की पद्मिनी...पृ० २१७
२. कचनार पृ०...२६५

लम्बे वर्णन

वर्मा जी के अन्तिम उपन्यासों में प्रकृति के विस्तृत विश्लेषण की प्रवृत्ति दीख पड़ती है। इन वर्णन-स्थलों पर कथा की गति रुद्ध हो जाती है। उपन्यासकार दृश्य में रस लेता है, उपमाओं द्वारा उसके विभिन्न अङ्गों की सौंदर्य-वृद्धि का प्रयत्न करता है। वे वर्णन लम्बे हैं और पढ़ने तथा हृदयंगम करने में श्रमसाध्य। दृश्य कल्पना-नेत्रों में उभर नहीं पाता, काव्यात्मक स्पर्श नीरस सा जान पड़ता है। वहाँ तूलिका के कुछ स्पर्शों द्वारा सीधी-सादी स्पष्ट रेखायें बनाने का नहीं वरन् अलंकृत विवरण द्वारा रंग-विरंगा चित्र बनाने का प्रयास रहता है। चाँदनी का यह श्रमसाध्य विवरण देखिये—'चन्द्रमा की रिपटती हुई झिल-मिल जान पड़ती थी, मानों चाँदी की चादरों के आवरे पर आवरे चिलचिला रहे हों। छोटी-छोटी सी आड़ी-सीधी लहरें उठ-उठ कर आवरों को पहन-पहन लेती थीं। सम्पूर्ण लहरों का समूह चाँदी की उन चादरों को ओढ़ लेने की होड़ सी लगा रहा था। पवन के आने-जाने वाले झकझोरे इन आवरों को और भी चंचल कर रहे थे। लहरों की कलकल झोकों पर नाचती-खेलती हुई खेत के पौधों की झूम पर उतर-उतर पड़ रही थी। चन्द्रिका खेत के हरे पौधों की अधपकी बालों को अपनी कोमल उंगलियों से खिला सा रही थी।'[1]

चाँदनी के सौन्दर्य को कल्पना या उपमाओं द्वारा अलंकृत करने का प्रयत्न है। यहाँ चन्द्रमा की किरणें नदी के जल पर चाँदी की चादरों जैसी दीप्तिमान् हो रही हैं, उनके नीचे हैं चंचल ऊर्मियाँ और ऊपर हैं पवन के झकझोरे। किरणें इधर कलकल करती लहरों पर हैं तो उधर किनारे खेत में झूमते पौधों को भी छू लेती हैं। दृश्य इतना है; इसे स्पष्ट करने तथा मर्मस्पर्शी बनाने के लिये चाँदी की चादरों के आवरों, उन्हें लहरों द्वारा पहनने की होड़, पवन के झकझोरों तथा लहर की कलकल के पौधों की झूम पर उतरने का विवरण दिया गया है। बात को तोड़-तोड़ कर कहने तथा विभिन्न अङ्गों को अलग-अलग रखने के प्रयत्न में उसके सीधे-सादे प्रभाव को धक्का लगा है। चाँदी के आवरों की कल्पना कुछ क्लिष्ट हो गयी है। अतः पाठक की कल्पना में हिलोरें लेती नदी पर खिलखिलाती चाँदनी का चित्र कदाचित् कठिनाई से साकार हो पाएगा। पूर्व-उल्लिखित 'गढ़ कुंडार' का चाँदनी का दृश्य इससे कहीं अधिक संक्षिप्त और अनुभूति को स्पर्श करने वाला है।

वन जैसे राई ग्राम में चाँदनी और रात्रि का उक्त वर्णन (मृगनयनी)

१. मृगनयनी...पृ० १५

तथा तत्संबंधी कल्पना कथा-प्रवाह को रोक कर लगभग चार पृष्ठों में चलते हैं। साधारण पाठक को इन्हें हृदयंगम करना श्रमसाध्य हो उठे तो कोई आश्चर्य नहीं। ऐसा ही सूर्योदय का एक वर्णन है जिसमें फूल, पौधे, दूर्बा, ओस, चिड़ियाँ, पहाड़ियाँ तथा झील आदि हैं किन्तु पक्षियों तथा पौधों के विस्तृत परिचय देने की धुन में वर्णन में वस्तु-परिगणन की गंध आने लगती है। फिर आती है भौगोलिक सूचना और काव्यात्मक कल्पना। ये सब दो से अधिक पृष्ठ घेर लेते हैं।[1] प्रकृति के चित्र उपन्यास के रसात्मक स्थल कहे जा सकते हैं। रसात्मक स्थलों पर उपन्यासकार का अधिक बल देना उचित है। किन्तु उक्त ऐसे वर्णनों पर आकर पाठक को रसानुभूति का कम, श्रम का अनुभव अधिक होता है।

प्रकृति का शुष्क पक्ष

गर्मी के दिनों में सूखे पहाड़, रूखी भूमि, महुओं, पलाश, करोंदी, जरिया के झाड़ और आँधी के रेत भरे थपेड़ों का वर्णन बुन्देलखंडी प्रकृति का शुष्क पक्ष सामने रखता है।[2] धूप धरती को तपाने लगती है। लू अवे की लौ जैसी जान पड़ती है। नाले सूख गये, पृथ्वी पर घास का नाम न रहा किन्तु इस शुष्कता, इस तपन में भी एक सौन्दर्य है अपने ढङ्ग का।—'मैदानों के पलाश के फूल झड़ चुके थे। अब वे चमकीले हरे पत्तों से छा गये। ललिता नदी के किनारे इन पेड़ों के बिखरे पुंज अब भी लाल फूल टपका रहे थे कि जिनकी राशि नीचे फैली हुई थी, मानो अपने ब्याह की बारात सजा रहे हों। महुओं के फूल टपक चुके थे। अब वे धूप और लू को चिनौती से देते हुये नये जीवन की दमकदार पत्तियों से लहलहा उठे थे। उधर पहाड़ों की करधई का सूखा कत्थई रङ्ग, इधर ऊंचे पूरे महुओं और दिग्गज पाखरों के बेंगनी रंग के किसलय मानो प्रकृति की नई लहर के अपनाने में होड़ लगा रहे हों। और इनके नीचे करोंदी के छोटे-छोटे झाड़ जिनकी हरे पत्तों से ढकी हुई कटीली टहनियों में घुँघची के आकार वाले छोटे छोटे फल चिपके हुये से थे।'[3]

गतकालीन वातावरण का सजीव स्पर्श देने के लिये खंडहरों, किलों तथा गढ़ियों, नगर, बस्ती, नगरकोट, महल, मन्दिर, तलघरे बाजार, मकान तथा की

---

१. **कुंडली चक्र...पृ० ३६ से ३८ तथा ऐसे अन्य दृश्य देखिए, अहिल्याबाई पृ० ७१,७२,९७**

२. **संगम...पृ० २०**

३. **अमर बेल...पृ० ३१८**

चर्चाएँ इन उपन्यासों में २४ स्थलों पर आई हैं। इस दृष्टि से 'गढ़ कुण्डार', 'कुण्डली चक्र', 'मृगनयनी', 'सोना' और 'अहिल्याबाई' उल्लेखनीय हैं। ये वर्णन प्रायः घटनास्थल के स्पष्टीकरण तथा वातावरण-निर्माण में सहायक होते हैं। 'मृगनयनी' में 'गूजरी महल' का वर्णन शिल्पकला की दृष्टि से है।[1] ऐसे ही 'अहिल्याबाई' में धमनार की पहाड़ियों की गुफाओं में स्थित चैत्य, विहार तथा मन्दिरों के वर्णन द्वारा उत्कृष्ट शिल्पकला का परिचय दिया गया है।

निष्कर्ष

वर्मा जी के अधिकांश उपन्यासों का सम्बन्ध बुन्देलखण्ड की भूमि और वातावरण से है। प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में भारत की राजनीतिक उथल-पुथल वाला कोई काल है। इन कालों में देश में फैली शासन-अव्यवस्था को उपन्यासों की पृष्ठभूमि में रखा गया है।

बुन्देलखण्ड की प्रकृति से वर्मा जी का तादात्म्य है। उन्होंने उसके सरस और शुष्क दोनों रूपों का चित्रण किया है। प्रकृति का दो दृष्टियों से मुख्यतया उपयोग हुआ है, घटनास्थल की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट करने तथा जन-जीवन की पृष्ठ भूमि के रूप में। मानव-व्यापारों की रंगभूमि के रूप में प्रकृति मानव की भावनाओं के प्रति कभी सहृदयता, कभी विषमता और कभी संवेदनहीनता प्रकट करती जान पड़ती है। वर्मा जी में आस-पास की प्रकृति को निरखने, परखने वाली भावुक अन्तर्दृष्टि है; उसके इन्द्रियग्राह्य छोटे-छोटे चित्र पाठक की कल्पना में खींचने में उन्हें विशेष सफलता मिली है।

वर्मा जी में वातावरण के निर्माण की शक्ति है। उन्होंने उपन्यासों में सामाजिक वातावरण का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिये राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए उनका समाज पर प्रभाव दिखलाया है। सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ परस्पर एक दूसरे के निर्माण में सहायता देती दीख पड़ती हैं। सामाजिक गत रीति-रिवाजों तथा त्योहारों के स्वरूप-निर्माण में उन्होंने आज के बुन्देलखण्ड में स्थित उनके अवशिष्टों को ही सूत्र बनाया है।

वातावरण की सृष्टि में जहाँ तक सूक्ष्म विवरण देने तथा कल्पना-शक्ति का प्रश्न है वर्मा जी इन गुणों से सम्पन्न हैं। वातावरण के विभिन्न अंगों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरणों को रचनात्मक कल्पना-शक्ति द्वारा सजीवता प्रदान करने का कौशल उनमें है। वर्णन की दृष्टि से, जहाँ चित्र संक्षिप्त हैं वर्मा जी

---

१ मृगनयनी—पृ० ४०७

को चित्रण में विशेष सफलता मिली है। वे चित्र कथा-प्रवाह में खपे हुए हैं और अपने सौंदर्य से उसमें रुपहरी, सुनहरी लकीरों से जान पड़ते हैं। किन्तु जहाँ विशदता का आग्रह है लम्बे वर्णन नीरस हो गये हैं। वे वर्णन कथा के मार्ग में रुककर अपना विशद रूप प्रकट कर पाठक को थका देते हैं। इसी प्रकार राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय देते समय वर्मा जी उनमें इतने खो जाते हैं कि उन्हें कथा की चिन्ता प्रायः नहीं रह जाती। कथा-प्रवाह में उन वर्णनों को घुला मिला कर साधारण पाठक के हेतु उन्हें सरस बनाने की चिंता नहीं की गयी है।

अध्याय ७

उपन्यासों में वर्मा जी की भाषा और लेखन-शैली

भाषा और शैली

भावाभिव्यक्ति की माध्यम भाषा है और उस माध्यम के प्रयोग की रीति या विधि शैली है।[1] शैली द्वारा लेखक रचना में अपनी अवतारणा करता है। शैली में प्रवाह, ओज और सजीवता ये गुण अपेक्षित हैं। वाक्यों की योजना में प्रवाह हो, वे स्वाभाविक रूप से परस्पर संबद्ध हों, अनावश्यक शब्दों द्वारा उनकी गति में शिथिलता न आ जाय। उपयुक्त मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से इस दिशा में विशेष सहायता मिलती है। ओज के लिए चाहिये चुस्ती, संक्षिप्तता और भावानुकूल चुने हुए शब्द किन्तु वहाँ वक्तृत्व का आवेश वांछनीय नहीं है। वर्णन सांगोपांग होते हुए भी ऊबाने वाले न हों और अपनी बारीकियों तथा चित्रात्मक विशेषताओं के बल पर पाठक की कल्पना में साकार, सजीव हो उठें। उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं के सफल प्रयोग वर्णन को सहज ही कल्पना-ग्राह्य बनाने में सहायक होते हैं।

हिन्दी भाषा के कई रूप प्रयोग में आते हैं संस्कृत तत्सम शब्दों से परिष्कृत भाषा को साहित्यिक हिन्दी कह सकते हैं। दूसरी है बोलचाल की सरल हिन्दी जिसमें किसी विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग का आग्रह नहीं रहता वरन् शब्द की कसौटी उसकी भावगत उपयुक्तता होती है। प्रचुर अरबी, फारसी शब्दों से युक्त भाषा उर्दू है। इनके अतिरिक्त हिन्दी में बोलियाँ या ग्रामीण भाषायें प्रयोग में आती हैं। उपन्यास के जन-जीवन के अधिक समीप होने के कारण सरल हिन्दी का प्रयोग उसमें खपेगा फिर भी पात्रानुकूल तथा वातावरण

१. **उपन्यास में शैली के अंतर्गत वस्तु-चयन, उसके गठन, पात्र संयोजना, पात्रों के वार्तालाप और उपन्यास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने की विधि आदि सभी आ जाते हैं। अन्य अध्यायों में उपन्यास के विभिन्न तत्वों पर विचार करते समय, उनके प्रस्तुत करने की शैली पर विचार किया गया है।**

विशेष के निर्माण के लिये अन्य उक्त प्रकार के शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। वास्तव में सुबोधता और सरसता भाषा की मुख्य कसौटियाँ हैं।

वर्मा जी की भाषा

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में खड़ी बोली का व्यवहार किया है, उनकी भाषा सीधी-सादी है। वे भावों को सुगमता और सरसता प्रदान करने के लिये यथा अवसर संस्कृत, अरबी, फारसी, अँगरेजी तथा बुन्देली शब्दों का व्यवहार करते हैं। ऐसे शब्दों के प्रयोग में उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं है और न किसी प्रकार का आग्रह। अपनी बात को समझा देना ही उनका लक्ष्य रहता है। जहाँ काव्यात्मक अथवा कलात्मक प्रसंग आये हैं वहाँ भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों की प्रधानता रहती है। पहले कहा जा चुका है कि वर्माजी के कुछ पात्रों के संवाद बुन्देली में हैं। बुन्देलखण्डी वातावरण उत्पन्न करने के लिये उपन्यासों में बुन्देली के अनेक शब्द बिखरे हुए हैं। ऐसे कुछ शब्द भाव को सुबोधता प्रदान करने में विशेष सहायता प्रदान करते हैं। जैसे चोट खा बद-हवास होकर एक दम गिर पड़नेके लिए 'भरभराकर गिरना', ऊँची-नीची पहाड़ियों के गड्ढों के लिये 'भरका' तथा कुछ मिट्टी की और कुछ पथरीली छोटी पहाड़ियों के लिये 'टौरिया' आदि शब्दों का प्रयोग उपयुक्त एवं स्वाभाविक है। ऐसे शब्दों की व्यापकता से हिन्दी समृद्ध होगी।[1] मृगनयनी को ही ले लीजिये उसमें लगभग ७० बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे छबा, पृ० ८, हुकमना १०, आसें १३, आवरा १५, झकूटा १४, झीम १८, बीधना २२, टौरिया, ३३, आदि।

पात्र-चित्र

वर्मा जी की लेखन-शैली उनके निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व की परिचायक है। बहुधा

---

१. भाषा साधन है साध्य नहीं। अपनी बात पाठक के पास पहुँचाने के लिए चुस्त भाषा के प्रयोग का पक्षपाती हूँ। बी० ए० में संस्कृत लिए था, परन्तु मैं संस्कृत बोझिल हिंदी का पक्षपाती नहीं हूँ।.....

बुन्देलखंडी में जैसे कि हिंदी की अन्य बोलियों में भी, कुछ शब्द और मुहाविरे बड़े ही अर्थपूर्ण और सुंदर हैं। इन्हे व्यापकता मिलनी चाहिए। इनसे हिंदी समृद्ध होगी और हमारी रचनायें जनता— 'धरती वाली' जनता— के घरों तक पहुँच जायेंगी। बुन्देलखंडी का प्रयोग स्थानिक रंग और वास्तविकता लाने के लिये करता हूँ। —वर्माजी का पत्र ९-७-५७

उनके वर्णनों के प्रत्येक शब्द और वाक्य में एक चुस्ती, अलबेलापन और रोमांटिक आकर्षण है। अभिव्यक्ति का कृत्रिम परिष्कार उन्हें भाता नहीं। वे पाठक के समक्ष कहानी सुनाने वाले की भाँति उपन्यास में पदार्पण करते हैं और अन्त तक अपने उसी रूप के निर्वाह में प्रयत्नशील रहते हैं। सीधे सादे ढँग से अपनी बात कहते चलते हैं, पाठक कहीं भी उलझे बिना द्रुतगति से उनके साथ कथा-प्रवाह में बह उठता है। 'झाँसी की रानी' और उसके बाद के उपन्यासों में उनकी लेखन-शैली की चुस्ती और चुटीलापन, दोनों बढ़ गये हैं।

पात्रों के संक्षिप्त शब्द-चित्र प्रस्तुत करते समय वर्मा जी विशेषतया सतर्क रहते हैं। एक एक शब्द, उपमा और उत्प्रेक्षा तौल-तौल कर रखते जाते हैं। वर्णन में छोटे छोटे वाक्य होते हैं ठीक शिल्पकार की छैनी के एक एक कटाव की भाँति स्पष्ट उभरे हुए। लक्ष्मीबाई की दासी, सहेली सुन्दर (झाँसी की रानी) का चित्र देखिये—'यकायक मनू के सामने एक मराठा कन्या आई। आयु १५ से कुछ ऊपर। शरीर छरेरा। रंग हलका साँवला। चेहरा जरा लम्बा। आँखें बड़ी। नाक सीधी। ललाट प्रशस्त और उजला।...'[1] वैद्य निधान (कचनार) का रेखाचित्र है—'अधेड़ अवस्था का दुबला-पतला छरेरा मनुष्य। आँखों में सुरमा लगाए हुए। बाँकी पगड़ी, लम्बा अंगरखा। पान खाए हुये।...'[2] वैद्य की आँख का सुरमा, बांकी पगड़ी तथा खाया हुआ पान, ये सब उसकी रसिकता को मूर्त रूप प्रदान करते हैं। एक साथ कई व्यक्तित्वों की ये मोटी-मोटी रेखायें दृष्टव्य हैं—'दुलहिन घूँघट खोले थी। रंग गेहुँए से जरा ज्यादा गौर, आँखें बड़ी, बरौनियाँ लम्बी, नाक सीधी, चेहरा गोल।... एक सहेली खरे गोरे रंग की और बहुत सुन्दर। दूसरी जरा साँवले रंग की, आँख बड़ी, परन्तु नाक कुछ चिपटी, नथने फूले हुए।...'[3]

उपमाओं का प्रयोग

वर्मा जी पात्र के रूप तथा भंगिमाओं की छाप पाठकों के हृदयों पर उभारने के लिये उपमाओं का प्रयोग करते हैं। नारी-सौन्दर्य की कोमलता, पवित्रता, दीप्ति को प्रकट करने के लिये उन्होंने विभिन्न उपमायें संजोयी हैं। घाटियों से मैदान में आती तारा हिमालय से निःसृत गंगा जैसी जान पड़ती है (गढ़ कुण्डार, पृ० २२३) सरस्वती आई, जैसे सूर्य की प्रथम रश्मि (प्रेम की भेंट,

१. **झाँसी की रानी** – पृ० ६२
२. **कचनार**—पृ० १०५
३. **कचनार**—पृ० ३

पृ० ४७) धुँधले प्रकाश में कुमुद का मुख दिखलाई पड़ा, जैसे अँधेरी रात में बिजली चमक गयी हो (बिराटा की पद्मिनी, १६) (कुमुद) मानो घोर तमिस्रा से एकाएक पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो (बिराटा की पद्मिनी, २६७)

थकावट या उदासी भरी मुस्कराहट, साधारण और मुक्त हँसी को लेकर की गयीं उपमाओं में वर्मा जी की सूक्ष्म दृष्टि और कल्पना-शक्ति देखते ही बनती है। थके चेहरे पर हर्ष की रेखाओं की चमक धूल में दमकते सोने जैसी (बिराटा की पद्मिनी, पृ० १००) बरबस हँसी, जंग लगे हँसिये की चमक जैसी (कभी न कभी, ८१) रूखे होंठों पर मुस्कान, जैसे गर्मियों के सूखे नाले में पहली छिछली वर्षा की पतली धार हो (मृगनयनी, २३४) उदास मुस्कान, जैसे मुर्झाई हुई घास पर ओस की बूँद (अमरबेल, २८२) अस्वस्थ चेहरे पर थकावट भरी रूखी मुस्कान, जैसे भस्म के त्रिपुण्ड में रोली बिखर गयी हो (अहिल्याबाई, ११६) निर्मल मुस्कराहट, जैसे शरद की चाँदनी बादल में से यकायक निकल कर छिटक गई हो (टूटे काँटे, २४३) अस्वस्थ चेहरे पर हँसी जैसे पीले बादलों में दामिनी दमक गई हो (झाँसी की रानी, ११६) रोने के पश्चात् यकायक हँसी, जैसे शरद ऋतु की वर्षा के उपरान्त सूर्य की किरणें बादल फोड़कर निकल पड़ी हों। (अचल मेरा कोई १४१) प्यार के उल्लास में मुक्त हँसी जैसे, सारंगी की तान पर तबले की मीठी थाप पड़ी हो (टूटे काँटे' २०६)

सुन्दरी सरस्वती (प्रेम की भेंट) के चेहरे के अवयवों का सूक्ष्म विवरण और उसे स्पष्ट करने वाली उपमायें इस वर्णन में दृष्टव्य हैं—'उन्नत ललाट, स्वर्ण-सदृश कृष्ण केश, भृकुटि को स्पर्श करने वाली बरौनियाँ, किरणों की आभा से होड़ लगाने वाली लोचन प्रभा, तपे हुए सोने को भी लजाने वाले गोरे कपोल, प्रवाल के रंग जैसे होठ, ओष्ठ पल्लवों के किनारों पर सहज, स्वाभाविक, सूक्ष्म, मृदुल मुस्कराहट।...'[1] बड़ा माथा, चमकदार केश, बड़ी बरौनियाँ, चमकती आँखें, भरे स्वस्थ कपोल, मुस्कराते पतले लाल होठ, ये सब स्वास्थ्य, पवित्रता तथा सुन्दरता के द्योतक हैं। इनके साथ आयी उपमायें भाव को स्पष्ट करने में सहायक हैं। 'स्वर्ण-सदृश कृष्ण केश' पर आलोचकों ने आपत्ति उठायी है। उनका मत है, भारत में सौंदर्य की वृद्धि कृष्ण केशपाश से समझी जाती है। सुनहरी अलकें (गोल्डेन कर्ल्स) अँग्रेजी साहित्य में ही सुन्दर मानी जाती हैं। फिर काले केशों की स्वर्ण से उपमा देना और भी अनुचित है।[2] जान पड़ता है वर्मा जी ने स्वर्ण की उपमा सूर्य की किरणों में

१. **प्रेम की भेंट**—पृ० ६४

२. **हिंदी उपन्यास**—पृ० २२१

दमकते हुए गहरे काले घने चिकने, चमकदार केशों को दी है। यहाँ स्वर्ण से तात्पर्य बालों की दमक से है, सुनहरे बालों से नहीं। जहाँ तक सुनहरे बालों के सौन्दर्य का प्रश्न है, उसे अभारतीय कह कर टाल देना उचित नहीं जान पड़ता। बिलकुल खरे गोरे रंग के स्त्री-पुरुषों के बाल प्रायः पूर्णतया काले नहीं होते। उनके बालों में कुछ लाली रहने के कारण सुनहरापन आ जाता है, यह तथ्य भारत में भी देखने में आता है। उन बालों का अपना सौन्दर्य है। उपन्यासकार परिपाटी मात्र की अपेक्षा जीवन के अधिक समीप है, उसी दृष्टि से उसके वर्णनों का मूल्यांकन श्रेयस्कर होगा।

वर्मा जी कहीं कहीं उपमाओं के प्रवाह में वर्णन-संतुलन खो बैठे हैं। 'मृग-नयनी' में महमूद बघर्रा का विकट योद्धा, भीम जैसे भोजन करने वाले तथा बेढब व्यक्ति के रूप में चित्रण हुआ है। विलक्षणता की छाप पाठकों के हृदयों पर बिठलाने के लिए उपन्यास में उसके स्वर तथा गतिविधि को लेकर पन्द्रह उपमायें और उत्प्रेक्षायें की गई हैं, 'एक केले के दो कौर करने के बाद बघर्रा ने प्रधान जासूस की ओर मुँह फेर कर ऊँघ की। जैसे बादल गरज गया हो।···

'कुछ एक छोटे केलों को समूचा मुँह में डाल कर बघर्रा बोला, जैसे किसी नाले ने प्रवाह के जोर से बाँध को फोड़ डाला हो।

'अच्छा है। मरेगा। और आगे।' बघर्रा बोला, जैसे जमीन के नीचे से दरार में होकर भूकम्प बोला।···

'ह ! ह !! ह !!! ह !!!! ह !!!!! बघर्रा हँसा। हँसी के साथ ही केले के अधचबाये टुकड़े फिक कर दूर जा पड़े। दरबारियों को यह हँसी ऐसी जान पड़ी जैसे धरती फट पड़ी हो।

'मालूम है।' बघर्रा ने कहा जैसे जाती हुई आँधी किसी बड़े पेड़ को एक बड़ा सपाटा दे गई हो···

'पेट पर हाथ फेर कर बघर्रा ने डकार ली जैसे बरसात में कोई कच्चा मकान गिरा हो।·····

'बघर्रा ने मुलायम स्वर में कहा, फिर भी जान पड़ा जैसे कई बांस एक साथ बज उठे हों·····

'बघर्रा ने फिर डकार ली जैसे कोई बड़ी धौंकनी फटकर बोल गई हो···[1]

—'क्या है यह ?' बघर्रा ने पूछा – जैसे कोई पेड़ टूटकर गिरा हो।····

'लाओ इधर।' बघर्रा ने पाव भर का एक ग्रास मुँह में डालते हुये मिठास के साथ कहा—जैसे पेड़ की कोई डाल टूट पड़ी हो।·····

---

१. मृगनयनी—७६ से ८०

'बहुत खूब' बघर्रा के मुँह से निकला—जैसे किसी पहाड़ पर से चट्टान टूट कर लुढ़की हो।....

'एक ग्रास को चबाते चबाते बघर्रा बोला, 'कहाँ रहती हो ?' पिल्ली के कानों को प्रतीत हुआ जैसे किसी बड़े भरे हौज में भैंसा कूदा हो।...

'कहाँ जा रहे हो तुम लोग ?' जैसे कोई चट्टान फटी हो।....

'क्यों ?' जैसे लोह के दो गोले आपस में टकरा गये हों।....

'रास्ता और घाट दिखाओ, इनाम मिलेगा।' बघर्रा ने कहा, मानो मोटी भीगी दरी को किसी ने फाड़ा हो।'[1]

यहाँ बादल के गरजने, नाले के प्रवाह से बाँध फूटने, भूकम्प, धरती फटने, आँधी का पेड़ को सपाटा देने, बरसात में कच्चा मकान गिरने, फटे बाँसों के एक साथ बजने, बड़ी धौंकनी के फटकर बोलने, पेड़ टूट कर गिरने, पेड़ की डाल टूटने, पहाड़ पर से चट्टान लुढ़कने, भरे हौज में भैंसा कूदने, चट्टान फटने, लोह के दो गोलों के आपस में टकराने और मोटी भीगी दरी के फाड़ने से बघर्रा की ऊँघ, वाणी, हँसी तथा डकार के शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। आँधी का पेड़ को सपाटा देने, पेड़ टूटकर गिरने तथा पेड़ की डाल टूटने, और पहाड़ पर से चट्टान लुढ़कने तथा चट्टान फटने में स्पष्ट पुनरुक्ति दोष है। एक ही गुण को स्पष्ट करने वाली इतनी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग से व्यंग्य और वैचित्र्य में शिथिलता आ गयी है।

वर्णन (अ) भावात्मक

उपन्यासों के भावात्मक स्थलों पर वर्मा जी की शैली मर्मस्पर्शी हो उठती है। कहीं कहीं उसमें वे प्रभाव लाने के लिये वक्तृत्व के आवेश का योग देते हैं। झाँसी-पतन के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई के आँसुओं पर यह मार्मिक टीका देखिये– 'महल की चौखट पर बैठ कर वह रोई। लक्ष्मीबाई रोई। वह जिसकी आँखों का आँसुओं से कभी परिचय भी न था। वह जिसका वक्षस्थल बज्र और हाथ फौलाद के थे। वह जिसके कोश में निराशा का शब्द न था। वह जो भारतीय नारीत्व का गौरव और शान थी। मानो उस दिन हिन्दुओं की दुर्गा रोई।'[2] यहाँ प्रभाव उत्पन्न करने के लिये घटना की असम्भवता पर कई बार बल दिया गया है। ऐसी ही चुभन, टीस ठुकराये हुए प्रेमी सादतखाँ (टूटे काँटे) की हूक के वर्णन में है।[3] प्रेयसी नूर की आँख की वह कोर, भौंह की वह

१. मृगनयनी—पृ० ९४ से ९६
२. झांसी की रानी—पृ० ४१५
३. टूटे काँटे—पृ० १३१

बाँक, गर्दन की लचक, उभरे हुए अंगों की वह सूक्ष्म थिरक उसकी स्मृति में रह रह कर कौंध जाती है।

(ब) व्यंग्यात्मक

वर्मा जी प्रायः व्यंग्य करते चलते हैं, सामाजिक अथवा राजनीतिक कुरीतियों का चित्रण करते समय वे व्यंग्य तीखे हो जाते हैं। 'झाँसी की रानी' में वर्मा जी की व्यंग्यात्मकता सजग हो उठी है। उपन्यास में अँगरेजों की गति-विधि और तत्कालीन भारतीय समाज के ढोंग पर किये गये अनेक व्यंग्य दृष्टिगोचर होते है।[1] अँगरेजी सेना के जनरल रोज (झाँसी की रानी) की घोषणा के खोखलेपन और उसके झाँसी में किये गये अत्याचारों पर यह व्यंग्य तीखेपन के साथ मार्मिकता लिये हुए है--

--'आठवें दिन झाँसी में रोज़ का ऐलान हुआ, 'खलक खुदा का, मुल्क बादशाह का, अमल कम्पनी सरकार का।'

'परन्तु इन सात दिनों हवा में जो स्तब्ध घोषणा घूमी थी वह यह थी, 'खलक शैतान का, मुल्क शैतान का, अमल शैतान का।'--

देहाती, पंचम और गिरधारी (अचल मेरा कोई) शहर की भीड़भाड़ में पहुँचने पर जिस उलझन में पड़ जाते हैं उसके वर्णन के व्यंग्य में चुस्ती, बाँकापन और सरस उपहास है।--'तांगे वालों ने टोका--'हटो एक तरफ।' साइकिल वाले ने कहा--'कहाँ देखता है ?' मोटर का भोंपू बजा। दायें-बायें और बायें से दायें भागे। वे घबराये और मोटर सिटपिटाई। मोटर वाले ने दाँत पीसे। बड़बड़ाया--'कमबख्त मरने को फिरते हैं।' मुँह उठाये जा रहे थे कि सामने तेजी के साथ आने वाले, किसी जल्दबाज से जा टकराये। उसने कहा, 'क्या भूतखाना खाली हो गया है ?' और वह लाल आँखें किये चला गया। किसी ने फिकरा कसा, 'अस्तबल तोड़कर भाग निकले हैं।' कोई-कोई कह गया, 'धोबी आता होगा रस्सा लिये पीछे-पीछे।' (अ.मे.को.--पृ. ४१)

(स) युद्ध और प्रणय

युद्ध, आखेट तथा प्रणय के वर्णनों में वर्मा जी के उपन्यासों के प्राण बसते हैं। इन उपन्यासों में युद्ध-वर्णनों की बारीकी देखते बनती है। 'बिराटा की पद्मिनी' के समस्त युद्धों के, विशेषतः लोचनसिंह की टुकड़ी के कालपी सेना पर आक्रमण के चित्र सजीव बन पड़े हैं। सैनिकों की सतर्कता, परिस्थिति

१. झांसी की रानी—पृ ५५, १०३, १५५, १६७

की आशंका और मुठभेड़ों की नाटकीयता उस दृश्य को साकार बना देती हैं।[1] वर्मा जी की कल्पना में गतकालीन युद्धों के नक्शे स्पष्ट हैं। वे प्रत्येक युद्ध में पैदलों, सवारों, हाथियों, घोड़ों, तोपों, मुठभेड़ों तथा तलवारों के भांजने और बन्दूकों की बौछारों को व्यवस्थित ढंग से रखते हैं। उनके उपन्यासों में व्यक्तिगत द्वन्द्वों की अपेक्षा सेना की मुठभेड़ों के चित्र विशद और रोचक बन पड़े हैं।

प्रणय में वर्मा जी प्रेमी और प्रेमिका के मध्य एक दूरी का वातावरण बनाये रखते हैं। अतः रोमांस[2] में चुभन, आवेग, सौजन्य और दृढ़ता आ विराजे हैं। जीवनाकाश में विपत्ति, बिछोह और आशंका के घुमड़ते गरजते बादलों के मध्य प्रणय की कौंध कौंध जाने वाली दामिनी कितनी लालसा, कितनी टीस दे जाती है। प्रेमी और प्रेयसी को कुछ क्षणों के लिये समीप लाते समय वर्मा जी सहृदय और सतर्क हो उठते हैं। वहाँ नारी का मूक निश्शब्द, कोमल समर्पण है और प्रेमी भी अत्यन्त विनीत, नियंत्रित, कोमल और दृढ़ हैं। दोनों की हृदय-गति में संयम और स्थिरता है कि वासना का उद्दाम वेग वहाँ ठिठक सा जाता है। प्रेमियों का हृदय हलकी हिलोरें लेता है जैसे नाव के आसपास का गुनगुनाता सा जल। क्षुब्ध सागर के ज्वार भाटे जैसी उथल-पुथल का वहाँ अभाव है। अन्तिम क्षणों में कुंजरसिंह (बिराटा की पद्मिनी) और कुमुद हृदय खोल कर मिलते हैं फिर भी वे संयमित हैं,स्थिर हैं।[3] दोनों की वर्षों की प्रणय-साधना की सिद्धि का अमूल्य क्षण आ ही गया। उस समय हो क्या रहा था ? भीषण युद्ध। अलीमर्दान की सेना बिराटा पर चढ़ी आ रही थी, बिराटा के दाँगी जौहर कर चुके थे। दोनों का जीवन अन्तिम मोड़ ले रहा था। उस पार वन में सेनायें, मंदिर के ऊपर गोलों की धाँय धाँय और नीचे नदी किनारे तलवारों और बन्दूकों का बोलबाला। वन्य प्रकृति के प्रांगण में संघर्षों के बीच कुंजर, कुमुद के प्रणय की मंगलमय पुनीत धारा बह उठी। एक ओर घोर संकट, दूसरी ओर प्यार के गिने-चुने क्षण। अनोखा संयोग है। दोनों की चुप्पी, धीमा स्वर, आवेश और फिर छलकती आँखें। ऊपर गोले साँय-साँय कर रहे हैं। तोपचियों ने कुंजरसिंह को पुकारा। जीवन संग्राम का तुमुल अन्धड़ दोनों को चैन कैसे लेने देता। कुंजर ने कुमुद से सदा के लिए

१. बिराटा की पद्मिनी—पृ० ३१३ से ३१५

२. रोमांस साधारण जीवन से दूर के प्राकृतिक दृश्यों तथा घटनाओं से युक्त प्रणय व्यापारों का सूचक है, इसमें साहस है, शौर्य है, एक नयापन और स्फूर्ति है।

३. बिराटा की पद्मिनी—पृ० २९६ से ३००। कथोपकथन के प्रसंग में इस दृश्य पर विस्तार से विचार किया गया है।

बिदा ली। जीवन के निष्ठुर, निर्मम, निर्बाध प्रवाह के बीच कुंजर और कुमुद रूपी दो तिनके पास आये, क्षण भर टकराये, मात्र एक क्षण, फिर अलग बह गये। मरुभूमि में पियूष की ये बूँदें किसे न भायेंगी।

कहावत और उक्ति-प्रयोग

कहावतों और मुहावरों का वर्मा जी की भाषा में प्रयोग कम है। नवीनतम मुहावरों और कहावतों के अधिक प्रयोग से उपन्यासों के ऐतिहासिक वातावरण के सृजन-कार्य को धक्का लगने की सम्भावना भी रहती है। वर्मा जी द्वारा उपन्यासों में प्रयुक्त कुछ कहावतें इस प्रकार हैं—

गाँठ में नहीं कौडी, और दाम पूँछे हाथी का। (पृष्ठ २४२, ग० कुं०)

बुढ़िया के मरने का कुछ दुःख नहीं, पर यमदूतों ने घर देख लिया।
(पृष्ठ २८२, ग० कुं०)

राजा करे सो न्याव, पांसा पड़े सो दांव। (पृष्ठ ५३, बि० की प०)

साँप मरे और न लाठी टूटे। (पृष्ठ ४८, मुसाहिबजू)

काल करन्ते आज कर आज करन्ते अब्ब ... (पृष्ठ ५७, कभी न कभी)

पढ़ो या पिंजरा खाली करो। (पृष्ठ ७७, कभी न कभी)

वर्मा जी की विशेषता है, उक्ति कथन। वे मानव-स्वभाव और जीवन सम्बन्धी अपने अनुभवों के आधार पर घटनाओं के साथ एक दो वाक्य की टिप्पणी करते चलते हैं। ये वाक्य आलोचक की व्याख्या जैसे जान पड़ते हैं। इनके द्वारा घटना की सम्भवता सिद्ध करने पर वर्मा जी की दृष्टि रहती है। ऐसी उक्तियाँ उपन्यासों में संख्या में लगभग ३५ के है। यहाँ उनके कुछ उदाहरण यथेष्ट होंगे। एक बार मुँह की खाने पर सेना प्रायः नहीं ठहर पाती। इस पर वे लिखते हैं—'पहली हार और पहली जीत के समान हराने-जिताने वाला और कुछ नहीं हो सकता।' (ग० कुं० ४४८)

—अशान्ति और कोलाहल भी सदा और सर्वदा एक रस नहीं रह सकते।
(संगम, १०६)

दो स्त्रियाँ पास बैठकर अधिक समय तक कदापि चुपचाप नहीं बैठ सकतीं।
(संगम, २४५)

मजाक करने वाले लोग कभी कभी मज़ाक किया जाना पसंद नहीं करते।
(प्रत्यागत, २२)

विजय की अपेक्षा पराजय का समाचार ज्यादा जल्दी फैलता है।
(बि० की प०, ९८)

बहुत कष्ट के बाद भी एक समय अवश्य ऐसा आता है कि मन कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेता है (बि० की प०, २२०)

जो मारने के लिये उतारू है, वह प्रायः मरने के लिये भी तैयार रहता है। (बि० की प०, २७१)

असल में, जनता को रुष्ट, असन्तुष्ट और क्षुब्ध करके यहाँ (भारत) तो क्या संसार के किसी कोने में कोई भी राज्य नहीं कर सकता । (झा० की रा०, २२१)

वादसभा या आपसी वितंडावाद में पुस्तक के वाक्यों का प्रयोग एक बात है और जीवन में उनको व्यवहारिक रूप देना बिलकुल दूसरी बात। (अ० मे० को०, ६७]

नाटकीय व्यंग्य

भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्व संकेत नाटकीय व्यंग्यों द्वारा देने में वर्मा जी दक्ष हैं। ऐसे व्यंग्य उनके सभी उपन्यासों में प्रयुक्त हुए हैं । ये परिस्थिति की संशयात्मकता (ससपेन्स) को बढ़ा कर पाठक की उत्सुकता और कल्पना-शक्ति को उत्तेजित करने में योग देते हैं। धीरज मोटे अनाड़ी वैद्य चकाफार को देखकर निश्चय प्रकट करता है—'मैं मर भले ही जाऊँ, पर इनकी दवा तो कभी न खाऊँगा।' (प्र, प्रे० की भें०) अन्त में वह चकाफार की दवा का लाभ बिना उठाये ही प्राण त्यागता है । रूढ़िवादी पडित टीकाराम विधर्मी को धर्म में वापिस न लेने के सिद्धान्त की घोषणा करते हैं (प्रत्यागत, ५४) किंतु बाद में अपने पुत्र मङ्गल को पुनः हिन्दू धर्म में लाने के प्रश्न पर उन्हें वही सब कुछ करना पड़ता है। बालिका मनू और भविष्य की झाँसी की रानी, बाल सुलभ खीझ में कहती है—'मेरे भाग्य में एक नहीं दस हाथी लिखे हैं।' (झा० की रा०, २३) आगे चलकर यह वाक्य सफल भविष्यवाणी सिद्ध होता है। संतप्ता कुन्ती कई स्थलों पर मरने की धमकी देती है (अ० मे० को०, १६७,२१२,२२२) उसका अन्त भी आत्म-हत्या में होता है। इस प्रकार के संकेत वर्मा जी के नियति और संयोग में विश्वास के द्योतक हैं।

वर्मा जी के प्रारंभिक उपन्यास हिन्दी भाषा के निर्माण-काल में लिखित होने के कारण उनमें यत्र-तत्र शब्दों के अशुद्ध प्रयोग मिलते हैं । 'गढ़ कुंडार' को ही ले लीजिये। उसमें गहरी मारकाट, पृ० ५६ (भारी मारकाट), बड़ी तकिया, १०२ (बड़ा तकिया) ऐसा आप भान क्यों करते हैं, १०२ (ऐसा आप को भान क्यों होता है) सम्पूर्ण विश्वास, ११५ (पूर्ण विश्वास) आदि जैसे अपरिपक्व प्रयोग मिलते हैं। आगे के उपन्यासों, विशेषकर 'झाँसी की रानी' से शब्दों के ऐसे शिथिल प्रयोगों का लगभग लोप हो गया है।

—: ० :—

अध्याय ८

वर्मा जी के उपन्यासों में जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन

उपन्यास में प्रस्तुत किये गये जीवन के चित्रों में उपन्यासकार जाने या अनजाने कुछ समस्याओं का उद्‌घाटन तथा विवेचन करता है। उक्त प्रक्रिया के मूल में उपन्यासकार का जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है। वह दृष्टिकोण ही उसका 'जीवन-दर्शन' है।

अभिव्यक्ति की विधि

उपन्यास में उद्देश्य-पूर्ति के हेतु दो विधियों का आश्रय लिया जाता है—नाटकीय तथा प्रत्यक्ष। नाटकीय विधि के अन्तर्गत उपन्यासकार नाटककार की भाँति जीवन के प्रस्तुतीकरण मात्र द्वारा उसकी व्याख्या करता है। कथावस्तु के संयोजन तथा चरित्रों के उद्‌घाटन कार्य से वह जीवन के प्रति अपनी धारणा का परिचय देता है। प्रत्यक्ष विधि में वह स्वनिर्मित संसार का स्वयं व्याख्याता बन बैठता है। जीवन-प्रवाह और मानव-चरित्र की विशेषताओं का विश्लेषण उसी के हाथों होता है।

जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति में प्रत्यक्ष विधि का उपयोग उपन्यासकार को किसी सीमा तक ही ग्राह्य है। वह उपदेशक नहीं कलाकार है। उपदेशक उद्देश्य का स्पष्ट प्रचार करता है, कलाकार उसे अपनी रचना में ध्वनित करता है। कला का उद्देश्य कलाकृति में, वृक्ष में हरियाली की भाँति सर्वत्र व्याप्त रहता है। अतः उपन्यासकार नाटकीय विधि का अवलम्ब प्रायः ग्रहण करता है।

यथार्थ और आदर्श

जीवन का एक स्वरूप कलाकार की कल्पना में रहता है। वास्तविक जीवन को मनोवांछित स्तर तक लाने के प्रयत्न में वह जीवन के प्रस्तुत और

काल्पनिक दोनों तत्वों को संजोता है। जीवन में 'जो है' और 'जो होना चाहिए', इन्हें हम क्रमशः यथार्थ और आदर्श की संज्ञा देते हैं। परन्तु 'जो होना चाहिए' या जो कथित आदर्शवाद है उसके पैर भी यथार्थ की भूमि पर टिके हैं। यदि उसमें जीवन का यथार्थ या उसकी वास्तविकता का अंश न होता तो हम उसे पाने के लिए पीछे क्यों दौड़ते। अतः कल्पना का रँग चढ़ाये बिना जीवन का यथातथ्य चित्रण यथार्थवाद है और कल्पना के स्पर्श से उसका साफ सुथरा स्वरूप है आदर्शवाद।

जीवन के वास्तविक गुण, दोष दोनों को उचित अनुपात में दिखाना यथार्थवाद का अभीष्ट है किंतु उसके नाम पर मानव की दुर्बलताओं मात्र का उद्‌घाटन उपन्यासकार की एकाङ्गी दृष्टि और अतिरंजना का सूचक है। केवल ऐसी दुर्बलताओं का चित्रण पाठक के चित्त पर हानिकर प्रभाव छोड़ जाता है। नित्यप्रति के दुःख और संघर्ष से जूझने के बाद उसी की उपन्यास में पुनरावृत्ति देखकर पाठक का हृदय भाराक्रान्त हो उठता है। वह पतन और पीड़ा के वातावरण से तनिक बाहर निकल कर चैन की साँस लेना चाहता है। उसे जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए कुछ सुझाव चाहिए, नई स्फूर्ति चाहिए।

उपन्यासकार मानव जीवन का तटस्थ दर्शक नहीं उसका निर्माता भी है। वास्तविक जीवन और जगत् को समक्ष रखते हुए उन्हें सुन्दरतर स्थितियों की ओर अग्रसर करना उसका उद्देश्य है। मानव-स्वभाव पूर्ण रूप से न तो श्याम है और न श्वेत। परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती हैं। यदि वे अनुकूल हुईं तो मनुष्य के अच्छे तत्त्व उभरते हैं, वह देव-तुल्य हो जाता है अन्यथा नराधम। जीवन में 'जो कुछ है' उसका सजीव दिग्दर्शन कराते हुए उसे 'जैसा होना चाहिए' की ओर उन्मुख कर देना उपन्यासकार का कर्त्तव्य है, उसकी यह प्रक्रिया 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' है।

मानव-जीवन और प्रणय

भिन्न दीख पड़ने वाले मानव-शरीरों में परस्पर एकता का एक अदृश्य सूत्र विद्यमान है। शरीरों को धारण करने वाली आत्मायें उस महान् सत्ता, परमात्मा की अंश हैं। संसार की रङ्गभूमि में अभिनय करती इन संसारी आत्माओं पर 'मैं और तू' की भावना का अज्ञान रूपी पर्दा पड़ जाने के कारण वे परस्पर एक दूसरे को भिन्न समझती हैं। उस अज्ञान, उस आवरण को दूर करने की कुंजी है मानव-मानव में परस्पर खोये हुए स्नेह या एकता के सूत्र

की पुनर्स्थापना। मानव जीवन में प्रेम के अनेक रूप हैं, जैसे राष्ट्र प्रेम, बन्धु प्रेम, आदि। इन में अपनी तीव्रता और प्रभाव की दृष्टि से स्त्री-पुरुष का प्रणय अद्वितीय है। प्रणय के मूल में प्रारम्भ में शारीरिक आकर्षण रहता है किन्तु प्रणयी की भावना के परिष्कार एवं संस्कार के फलस्वरूप प्रणय-क्षेत्र म भारी विस्तार और प्रवृत्ति में अनोखा परिवर्तन आना सम्भव है। प्रेम की सच्ची अनुभूति मनुष्य के लिए वरदान है। वह उसे किसी अपूर्व विश्व में ला पहुँचाती है।

वर्मा जी ने उपन्यासों में पुनीत प्रणय की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। उनका प्रणय साधारण व्यापार नहीं एक साधना है। पीछे हमने कहा है कि वर्मा जी की नारी सम्बन्धी अपनी कुछ धारणाएँ हैं। नारी के बाह्य सौंदर्य और लावण्य के अतिरिक्त उसमें छिपे हुए आन्तरिक तेज को ढूँढ़ना तथा उसके बाह्य तथा आन्तरिक गुणों में मेल कराना उनका लक्ष्य रहता है। नारी में दैवी तत्वों का दर्शन वर्मा जी को प्रिय लगता है। उनके प्रेमी पात्र भी प्रेयसी में परमात्मा की नैसर्गिक झाँकी पाते हैं। अतः यह प्रणय शारीरिक संबंधों से ऊपर उठकर एक ऐसे स्तर को स्पर्श करने लगता है जहाँ प्रेमी को अपने देवत्वमय इष्ट की निष्काम आराधना की प्रेरणा मिलती है। ऐसी स्थिति में प्रेमियों का शारीरिक सम्बन्ध गौण हो जाता है और आत्मिक सम्बन्ध मुखर। इस प्रकार निर्विकार आत्माओं को समीपतम लाने पर वर्माजी की दृष्टि रही है।

प्रणयी दिवाकर (गढ़ कुंडार) के प्रेयसी तारा के प्रति दृष्टिकोण में निष्काम पूजा की भावना प्रमुख है। वह बदले में कुछ नहीं चाहता, स्वयं को प्रकाश में भी नहीं लाना चाहता। उसकी मूक साधना की केवल एक आकांक्षा है, तारा का सुख। सोचता है—'लोग विवाह करके करते ही क्या हैं? आफत मोल लेते हैं। हृदय-सिंहासन पर तारा विराजमान रहेगी—और मुझे चाहिए भी क्या? तारा कहीं रहे, उसका कोई भी सत्पुरुष पति हो, मेरे लिये कभी क्लेश का कारण नहीं होगा, परन्तु उस पवित्र छवि को मैं रखूंगा आजन्म अपने हृदय में।'.....दिवाकर तुम (तारा) पर प्रकट किए बिना तुम्हारे सुख-साधन में प्रवृत्त रहेगा और केवल चाहेगा कि तुम दिवाकर को कभी स्मरण न करो और न उसके पहचानने की चेष्टा करो।'[1] साधक दिवाकर की आत्मा इष्ट, तारा की आत्मा में लय हो जाना चाहती है। दिवाकर के स्वप्न का यह अंश देखिये—'...प्रकाश वृत्त बढ़ा और बढ़ा। ज्योतिर्मयी तारा और अंधकाराच्छादित दिवाकर। परन्तु प्रकाश मंडल और बढ़ा।

१. गढ़ कुंडार...पृ० २८६

अंधकार कम हुआ, उसका अंत हुआ। तारा की ज्योति में दिवाकर तारामय हो गया। जैसे भास्कर और उषा, रवि और रश्मि, दोनों एक। एक आत्मा का दूसरे में समावेश। आत्मा का लयकार। अविच्छिन्न, अभिन्न, अखंड। इतना प्रकाश इतनी दीप्ति।...'[1] वह बढ़ती हुई मूर्छा में देखता है, 'एक सिंहासन पर कोई देवी बैठी हुई है। आँखों के मृदुल, कोमल तेज से मुख-श्री उज्ज्वल। मुख के चारों ओर छवि-छटा का मंडल। सिर पर मुकुट और गले में बड़े-बड़े कनेर के फूलों की माला। दिवाकर ने नमस्कार किया। देवी मुस्कराई। बोली—'तेरी तपस्या से संतुष्ट हुई। माँग क्या चाहता है ?'

'भक्त ने कहा—'और कुछ नहीं, चरणों का आश्रय।' और पैरों पर गिरने को हुआ कि देवी ने थाम लिया, और अपने गले की पुष्प माला दिवाकर के सिर पर बाँध दी। माला टूटकर गले में आ गई। फिर देखा, देवी सिंहासन समेत कहीं उड़ी जारही है और वह साथ है। अनन्त स्थान और अनन्त समय।'[2]—भक्त दिवाकर और देवी तारा, दोनों का स्वरूप यहाँ बिलकुल स्पष्ट है। अन्त में तारा से भेंट होने पर दिवाकर की भावनाओं का समाहार भी इसी ढंग पर होता है। उसका मत है कि वर्णाश्रम धर्म या अन्य किसी बाधा का निषेध उन प्रेमी, प्रेमिका की आत्माओं के संयोग में अड़चन बनकर नहीं आ सकता। आत्माओं का यह संयोग अखंड और अनन्त है। दिवाकर और तारा योग-साधना करने के लिये कंटकमय संसार से दूर चले जाते हैं।

मरणासन्न धीरज' (प्रेम की भेंट) भी कल्पना में प्रेयसी सरस्वती के दैवी रूप के दर्शन करता है। वह उसकी जंघा पर मस्तक रख देता है और सरस्वती के कर-स्पर्श का मस्तक पर अनुभव करता है। सरस्वती अपने गले का हार उतार कर धीरज के गले में डाल देती है।[3] धीरज के सब कष्ट दूर हो जाते हैं। वह इहिलोक की यात्रा समाप्त कर देता है, सरस्वती से अगले जन्म या परलोक में भेंट करने के लिये। प्रणय कुमुद और कुंजर (बिराटा की पद्मिनी) का इहिलोक तथा परलोक, दोनों लोकों का एकमात्र सम्बल है। कुंजरसिंह जीवन में सब कुछ खोकर भी कुमुद के समीप स्वर्ग के से आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है। दोनों इसी के सहारे जीवन का कड़वे से कड़वा घूंट सरलता से पी जाते हैं। जीवन की कठिनाइयाँ उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। वे अमर हैं, अडिग हैं। न सही इस जीवन में वे अगले जन्म में

१ गढ़ कुंडार ...पृ० २५५

२. वही...पृ० ४५६

३. प्रेम की भेंट...पृ० १२१ से १२३

एक हो जायेंगे। भले ही आज सफलता न मिले, पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ें परन्तु वे अन्त में मिलेंगे, उन्हें विश्वास है। कुंजर अपना यह विश्वास प्रकट करता है।—'अगले जन्म में फिर मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे अर्थात् आज समाप्त हो गया तो।'[१] कुमुद भी एक अन्य स्थल पर ऐसी ही बात कहती है—'हम दोनों चलेंगे उस पार, परन्तु अकेले-अकेले।'

'मैं समझा नहीं।' कुंजरसिंह ने व्यग्रता के साथ कहा।

'मैं उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग में कोई न मिलेगा।' कुमुद दृढ़ता के साथ बोली—'आप उस ओर से आएँ, जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अन्त में मिलेंगे।'[२]

प्रेमी युगल खुदाबख्श-मोतीबाई तथा मुन्दर-रघुनाथसिंह (झांसी की रानी) शारीरिक सम्पर्क में नहीं आ पाते। स्वतन्त्रता-संग्राम उनके जीवन का चरम लक्ष्य है और उनकी प्रेरणा। यहाँ तक वर्मा जी आदर्शवादी रहे हैं। स्त्री-पुरुष की शारीरिक मांगों का उन्होंने शमन किया है। 'मृगनयनी' में आकर उन्होंने शारीरिक आवश्यकताओं को स्वीकार किया है। वहाँ इस यथार्थ-वादिता में भी संतुलन की ओर उनकी दृष्टि है। हम पहले कह आये हैं कि मृगनयनी अपने पति मानसिंह को मन और तन, दोनों की स्वस्थता रखने के लिये संयम पर बल देती है। उनकी शारीरिक वासना का वेग नियन्त्रित रहा आता है।

जातिगत भेदभाव

हमारी सामाजिक परम्परा में जातिगत भेदभाव बहुत दिनों से चला आ रहा है। वर्मा जी ने इस रूढ़ि को भारतीय इतिहास की कसौटी पर परखा है। उक्त भेदभाव वर्णाश्रम-व्यवस्था के आधार पर उगा और फलाफूला है। वर्ण-व्यवस्था को स्थापित करते समय पूर्वजों ने इसे व्यवहारिक जीवन में सहायक माना था। किंतु कार्य-विभाजन की यह प्रणाली अपनी उपयोगिता खोकर शनैः शनैः झूठे भेदभाव की गर्त में जा पड़ी। भारतीय जन परस्पर मानवता के मौलिक संबंध को त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ, शूद्र आदि बन बैठे। अव्यवस्थित समाज की निरन्तर चोटों के फलस्वरूप देश का राजनीतिक ढाँचा हिल उठा। भेदभाव इतना बढ़ा कि एक समय विदेशी भारत में आए और परस्पर झगड़ते हुए भारतियों पर चढ़ बैठे। विजित भारतियों

१. **बिराटा की पद्मिनी**...पृ० ३००
२. **वही**...पृ० ३३३

की दृष्टि इसी पर लगी रही कि ब्राह्मण का सम्बन्ध क्षत्रिय और क्षत्रिय का संबंध कायस्थ से कैसे हो सकता है। उनकी दासता का सम्बन्ध दिन प्रतिदिन जकड़ता गया।

जातिगत संकीर्णता का अभिशाप आज भी हमारे साथ चला आ रहा है। हमारी अवनति का मूल, भेदभाव, अब भी हममें ज्यों का त्यों स्थित है। मुसलमान और 'किरस्तानी' को जाने दीजिये हिंदुओं में ही अनेक शाखायें हैं। ब्राह्मण देवता को अपने पोथी-पन्ने पर गर्व है तो ठाकुर साहब को अपने लट्ठ का भरोसा है। गाँवों में भी यह विष व्याप्त हो गया है। यह जाति-जनित संकीर्णता वर्मा जी को चुभी है। उन्होंने परस्पर भेदभाव के उन्मूलन की कुंजी सब जातियों में परस्पर रोटी-बेटी के व्यवहार को माना है; अन्तर्जातीय खानपान और विवाह से सब में संबंध स्थापित होगा और उनकी भावी संतान तो घुलमिल कर बिल्कुल एक हो जाएंगी। इस समस्या की चर्चा उनके अधिकांश उपन्यासों में अगणित स्थलों पर आई है। उन स्थलों पर अलग-अलग प्रयोग करके हल ढूँढ़ने का प्रयत्न किया गया है।

'गढ़ कुंडार' मानव जीवन की जाति-भेद सम्बन्धी घातक प्रवृत्ति, संकीर्णता और अहंमन्यता के विषैलेपन की ओर इङ्गित करता है। मनुष्य का बड़प्पन छोटी-छोटी बातों में सीमित हो गया है। ऊँच-नीच और मान-अपमान की सनक उसे पग-पग पर ठोकरें देती है। जातिवाद जनित संकीर्णता और हृदयहीनता इसी आत्मप्रवंचना की देन है। जातिगत भेदभाव सामाजिक क्षेत्र की उपज है। राजनीति ने पद तथा अर्थगत अहंकार रूपी दानव को पाला पोसा है। उपन्यास में इन दो भिन्न क्षेत्रों से उत्पन्न पिशाचों के संघर्ष का चित्रण है। सोहन पाल और उसके साथी (गढ़ कुंडार) बुन्देले जातिगत अभिमान के जीते जागते पुतले हैं। खंगार राजकुमार नागदेव को हेमवती ब्याहने के प्रस्ताव पर विचार करना भी उनके लिये पाप है। दूसरी ओर खंगार हुरमतसिंह और उसके दल वाले, शासक होने के नाते किसी को नहीं गिनते। वह राजा हैं, टुकड़खोर बुंदेले उनके विवाह प्रस्ताव को ठुकरायें! यह मजाल !! खंगार, समाज में बुन्देलों से नीचे गिने जाने के कारण हीनता की भावना से बुरी तरह ग्रसित हैं। अपने को रीति-व्यवहार में बुन्देलों के समान सिद्ध करने के कभी-कभी हास्यास्पद प्रयास तक कर बैठते हैं। दोनों वर्ग एक दूसरे को छलने की घृणित नीति अपनाते हैं। नागदेव हेमवती के अपहरण का दुष्प्रयत्न करता है और बुंदेले विवाह के प्रपंच द्वारा खंगारों का नाश और राज्य चाहते हैं। अन्त में विलासी खंगारों की कुछ नहीं चल पाती।

जातिवाद के अभिशाप से पीड़ित जन भी अपने अन्तर्मन को भेदभाव की

इसी कुटेव के हवाले कर बैठे हैं। नागदेव (गढ़ कुंडार) हेमवती के अपहरण की जुगत लगा सकता है किंतु ब्राह्मण अग्निदत्त और अपनी बहिन मानवती के मध्य प्रेम की बात अवगत कर उसका रोम-रोम जल उठता है। उसे पीड़ित अग्निदत्त से तनिक सहानुभूति नहीं रह जाती यद्यपि अग्निदत्त को मानवती से प्रेम में प्रत्युत्तर मिला था। अग्निदत्त स्वयं इस मनोवृत्ति का शिकार है। नागदेव द्वारा अपमानित होने पर उसके हृदय में खंगार द्वारा ब्राह्मण के अपमान का काँटा अन्त तक कसकता रहता है। इस विषय में उक्त पात्रों के चरित्रों पर विचार करते समय पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है। 'गढ़ कुंडार' में एक तीसरा प्रेमी-युगल है जिसके साथ भी यही कशमकश है। दिवाकर कायस्थ है और अग्निदत्त की बहिन तारा ब्राह्मण। दोनों एक दूसरे को हृदय से चाहते हैं किन्तु समाज उनके लिये उतना ही कठोर है।

तीसरे प्रेमी-युगल की समस्या में वर्मा जी ने अपना प्रयोग प्रस्तुत किया है। तारा और दिवाकर में घोर संयम है। वे आत्मिक प्रेम की ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं। शरीर की प्राप्ति उनके लिये गौण है। अन्त में निष्ठुर समाज से पलायन कर योग-साधना के लिये चले जाते हैं। वे आत्माओं के सम्बन्ध को वर्णाश्रम के क्षेत्र से बाहर मान लेते हैं। वर्मा जी ने उनके आत्मिक सम्बन्ध और पलायन की बात दिखाकर ही संतोष किया है। आक्षेपों से बचने के लिये 'योग साधना' की आड़ ले ली गई है। एक विशेष परिस्थितिवश यह सब कुछ हो सका। साधारणतया जीवन में प्रेमी, प्रेयसी को ऐसा अवसर नहीं मिलता और न उनके बीच इतना आदर्श समझौता ही संभव है। इस प्रकार समस्या का कोई ठोस हल सामने नहीं आता, वह एक कल्पना बन कर रह जाता है। उस युग में दोनों का विवाह करा देने में वर्माजी हिचके हैं।

'संगम' में वर्मा जी ने ब्राह्मण सुखलाल की अहीरिन रखेल के पुत्र रामचरण का नाई जाति की गंगा से विवाह करा ही दिया है। 'बिराटा की पद्मिनी' में क्षत्रिय राजा नायकसिंह का दासी-पुत्र कुंजरसिंह दाँगी-कन्या कुमुद से प्रेम करता है। बीच में सामाजिक रोक-टोक की भारी आशंका है किन्तु घटनाचक्र में दोनों के समाप्त हो जाने के कारण किसी हल विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'झाँसी की रानी' में जूही-तात्या, और सुन्दर-रघुनाथ की जाति-विरुद्ध प्रेम कथायें हैं। ब्राह्मण नारायण शास्त्री और मेहतरानी छोटी के बीच चित्रित प्रेम अनोखेपन में इन सबको पीछे छोड़ जाता है। वे घोर अपमान, अगणित कठिनाइयों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। दोनों एक दूसरे को अपना लेते हैं। नारायण शास्त्री का यह प्रेम चरित्र का दम्भ भरने वाले

सामन्तों की वासना से कहीं ऊँचा है। परन्तु इसे नारायण शास्त्री के मुख से 'प्रकृति के साथ जीवन की टक्कर' कहला कर शरीरगत दुर्बलता मात्र स्वीकार कराया गया है। कदाचित् इस चौंका देने वाले प्रयोग को रूढ़िवादियों के प्रहार से बचाने के लिए यह ओट बनाली गयी है। फिर भी स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐसे सम्बन्ध को सहानुभूति के साथ चित्रित करना बड़े जीवट का काम है।

'कचनार' में दासी कचनार और राजा दलीपसिंह का विवाह करा कर दासियों का समाज में स्थान स्वीकार किया गया है। यहाँ स्त्रियों की नारीत्व की मर्यादा के प्रति सजगता की आवश्यकता पर बल दिया है। तभी इस कुप्रथा से स्त्रियों का छुटकारा सम्भव है। यह प्रश्न जाति-पाँति की समस्या से मिलता जुलता है यद्यपि इसके मूल में सामन्तवाद है।

'मृगनयनी' में अहीर-कन्या लाखी और गूजर अटल एक दूसरे को अपना लेते हैं। रूढ़िवादी समाज का विरोध सहकर वे स्थिर रहते हैं। राजा मानसिंह उनका परस्पर विवाह करा देता है। यह सब हो जाने पर भी उनमें जातिवाद के प्रति निष्ठा कहीं न कहीं बनी रहती है। राई गढ़ी के घेरे में लाखी काम आती है और मरते समय अटल से टूटे स्वर में कह देती है—'ब्याह कर लेना। अपनी जात पाँत में···'। दूसरी ओर गूजर जाति की मृगनयनी और तोमर मानसिंह का विवाह हो जाता है। मानसिंह राजा था, वह सब कुछ कर सकता था। कोई उसका विरोध नहीं करता। उपन्यासकार का यह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर मार्मिक व्यंग्य है। वर्णाश्रम-व्यवस्था के अनन्य पोषक बोधन मिश्र से मानसिंह के कहे गये शब्द इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं, 'शास्त्री सोचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओं की कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनों अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। जातपाँत ढाल का काम तो कर सकी है और कर रही है परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग में उसने कर पाया है और न कभी कर पावेगी।'[1]

निर्बल प्रबल हो सकते हैं

उपन्यासों में यत्र-तत्र जीवन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चायें हुई हैं। उन सब को एकत्र करने पर वर्मा जी के तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण का विशेष स्पष्टीकरण सम्भव है। संसार में रहने का सभी को अधिकार है भले ही कोई निर्बल हो या सबल। योग्यतम का अवशेष (सरवाइविल आफ दि फिटेस्ट) वाला सिद्धान्त एकांगी है। प्रबल का आतंक निर्बल पर स्वाभाविक है किन्तु

---

१. मृगनयनी—पृष्ठ ३७६

निर्बल प्रबल हो सकते हैं और होंगे।[१] वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार समाज के रक्षक क्षत्रिय का कर्तव्य है दुर्बलों को सबलों से, पतितों को उत्थितों से, पीड़ितों को पीड़कों से, निस्सहायों को समर्थ जनों से बचाने में अपने को होम देना किन्तु क्षत्रियत्व की डींग हाँकनेवाले मिथ्याभिमानी जन अहंकार की झंकार और पर-पीड़न को बढ़ाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते।[२]

युद्ध क्यों ?

ये आये दिन के युद्ध क्या सबल सत्तावानों की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के साधन है ? नहीं। युद्ध जीवन और धर्म की रक्षा के लिये अपनी संस्कृति और अपनी कला के बचाने के साधन हैं अन्यथा यह व्यर्थ का रक्तपात है।[३] अपनी रक्षा, अपने खेतों और घरबार की रक्षा, यही सिपाही का धर्म है। परंतु दूसरों का गौरव बढ़ाने के लिये निर्दोषों को लूटने-मारने की अपेक्षा खेती किसानी उसके लिये श्रेयस्कर है।[४] तो फिर हिंसा का उत्तर क्या हो ? हिंसा या अहिंसा ? मनुष्य की प्रकृति के भीतर जो परम्परागत लक्षण हैं उनका दमन नहीं किया जा सकता। उनके रूप विकृत होकर केवल बदल सकते हैं। साधु का बाना पहनने पर मानव मन की बर्बरता समाप्त हो जाएगी इसमें सन्देह है। अतः अत्याचारी से टक्कर लेते समय अहिंसा के साथ हिंसा को भी स्थान देना होगा।[५]

उपन्यासों का उद्देश्य

अब वर्मा जी के उपन्यासों के मुख्य उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार कर लेना युक्तिसंगत होगा। 'गढ़ कुंडार' में मानव-जीवन की घातक प्रवृत्ति, संकीर्णता का उद्घाटन और स्त्री-पुरुष के आत्मिक सम्बन्ध का दिग्दर्शन है। 'लगन' दहेज प्रथा के दुष्परिणाम को सामने रखता है। सम्बन्धियों के वैमनस्य को वर और वधू का पारस्परिक प्रेम दूर करता है। 'संगम' में दहेज-प्रथा तथा विवाह के अवसर पर किये गये कटु परिहास के दुष्फल पर प्रकाश डाला

---

१. **कुंडली चक्र**—पृष्ठ ३२ **तथा** ३५८

२. **बिराटा की पद्मिनी**—**पृष्ठ** ३०६

३. **झांसी की रानी**—**पृष्ठ** ३३४

४. **टूटे कांटे**—**पृष्ठ** ८१ **तथा देखिये अहिल्याबाई**—**पृष्ठ** ६६, ६७

५. **अचल मेरा कोई**—**पृष्ठ** ५२, ५३, ७०,७१ ७२, २२१, २२३ **तथा** २२४

गया है। साथ ही जाति-सुधार-आन्दोलनों के खोखलेपन को सामने रखा गया है। 'कुंडली चक्र' अनमेल विवाह की करुण कथा है। उसमें वर-वधू की विवाह से पूर्व कुंडलियाँ मिलाने के हठ के हानिकर परिणाम का स्पष्टीकरण है। 'प्रेम की भेंट' में प्रेमी-प्रेमिका के आत्मिक मिलन का संकेत है। 'प्रत्यागत' धर्मान्ध कट्टर मुसलमानों की नृशंसता और हिन्दुओं द्वारा निरीह जनों पर अत्याचारों की कहानी है। इसमें समाज के खोखलेपन, झूठे आदर्शों और लोगों की हृदय-गत संकीर्णता पर मार्मिक व्यंग्य है।

'बिराटा की पद्मिनी' में नियति के हाथ में खेलते हुए साधारण पात्र हैं। वे जो नहीं मिला है उसके लिये रोते-पीटते नहीं वरन् भाग्य के दिये हुए को अधिक से अधिक उपयोगी और भला बनाने में संलग्न हैं। कुमुद अपने सुकृत्यों द्वारा साधारण नारी के स्तर से उठ दैवी तत्व प्राप्त कर लेती है। उसके जल राशि में तिरोहित हो जाने पर निष्ठुर कामुक अलीमर्दान तक सिहर उठता है। कुमुद द्वारा गाई हुई अन्तिम पंक्तियाँ इसी जीवन-दर्शन को अत्यंत मार्मिक रीति से व्यक्त करती हैं,

'मलिनिया, फुलवा ल्याओ नंदन-बन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास;
उड़ गए फुलवा रह गई बास।'

'मुसाहिबजू' में प्रजा के प्रति शासक के कर्त्तव्य पर बल है। 'कभी न कभी' मजदूर-जीवन की असहायावस्था का चित्र है।

'झाँसी की रानी' में गीता के संदेश, 'कर्मयोग' का प्रतिपादन है। हमारी दृष्टि केवल कर्म अथवा लक्ष्य पर जमी रहनी आवश्यक है, फल की उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करना अनधिकृत चेष्टा होगी। फल की आकांक्षा में उलझ जाने पर साधना से डिग जाने की आशंका है। फल की देखरेख का भार ईश्वर को सौंप देना उचित और सुविधाजनक होगा। उद्योग अपना, न्याय अन्तर्यामी का। लक्ष्मीबाई का उद्देश्य देश में 'स्वराज्य' स्थापित करना है। सबको मानवीय अधिकार प्राप्त हों और जीवन में स्वस्थ परम्परा के बीज आरोपित हों। यह महान् कार्य पूर्ण हो सकता है सेवा, तपस्या, बलिदान से। इसके लिये अनन्त साधना का क्रम वांछित है। तपस्या का क्रम कभी खंडित नहीं होता। एक युद्ध और एक जन्म से ही कार्य पूरी तौर पर सम्पन्न नहीं होता, 'संभवामि युगे युगे।' आत्मा अमर है, 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।' रानी की मृत्यु पर बाबा गंगादास कहते हैं—'प्रकाश अनन्त है वह कण-कण को भासमान कर रहा है। फिर उदय होगा। फिर प्रत्येक कण मुखरित हो उठेगा। वह अस्त नहीं हुई। वह अमर हो गई।' मुसलमान

गुल मुहम्मद भी इसी धारणा का समर्थन करता है, 'ओः कबी नहीं । वो मरा नहीं । वो कबी नई मरेगा । वो मुर्दों को जान बख्शाता रहेगा ।'[१]

कचनार में स्त्रीत्व की मर्यादा पर बल है। 'अचल मेरा कोई' में स्त्री-स्वातन्त्र्य और दाम्पत्य जीवन के सुखद निर्वाह की समस्या सामने आती है । पति-पत्नी में परस्पर विश्वास और रक्तगत दुर्बलताओं की सहनशक्ति अपेक्षित है । दम्पती को अपना शारीरिक आकर्षण बनाये रखने के लिये इन्द्रिय संयम की आवश्यकता है ।

'मृगनयनी' में संतुलित मानव-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास है । शारीरिक स्वास्थ्य मानवता के निर्वाह की पहली अनिवार्य सीढ़ी है । स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है । मस्तिष्क से उत्पन्न होता है तर्क और तर्क का प्रसाद है कर्त्तव्य । हृदय कोमल भावनाओं और कला-प्रेम आदि को जन्म देता है । जीवन में प्रायः कर्तव्य और भावना के बीच संघर्ष के अवसर आते हैं । दोनों के संतुलन, समन्वय में ही क्षेम है । तभी शारीरिक शक्ति बुरा मार्ग नही पकड़ पाती । इस प्रकार शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क और हृदय के उपयुक्त समन्वय में जीवन की सफलता निहित है। 'सोना' में जीवन के सच्चे सुख की ओर संकेत है । शान-शौकत का रहन-सहन जीवन नहीं है । श्रम, स्वच्छता और कला की उपासना से जीवन को सच्चा बड़प्पन मिलता है ।

'अमरबेल' में ग्रामीण समाज के ढहते शोषकों और ग्राम्य जीवन के जीर्णोद्धार का चित्रण है । दूसरा प्रश्न है हिंसा-प्रयोग का । कुव्यवस्था को व्यवस्था में परिणत करने के हिंसात्मक और अहिंसात्मक दो प्रकार के साधन हैं । हिंसा, विरोधी तत्वों का उन्मूलन कर क्रान्तिकारी परिवर्तनों में विश्वास रखती है और अहिंसा लोगों के शनैः-शनैः हृदय-परिवर्तन में । घृणा हिंसा की जननी है । घृणा से सार्वभौम स्नेह की स्थापना की आशा व्यर्थ है । अतः निर्माण-कार्य में अहिंसा के प्रमुख महत्व को वर्मा जी ने स्वीकार किया है । इसी प्रकार सामाजिक प्रगति के लिये आध्यात्म तथा विज्ञान दोनों के समन्वय की आवश्यकता है । आध्यात्म के विकास के लिये विज्ञान की सहायता अनिवार्य है और विज्ञान को आध्यात्म के निर्देशन की अपेक्षा है ।[२]

'टूटे काँटे' में कृषक जीवन के अगणित दुःखों और शासन संबंधी घोर अव्यवस्था का चित्रण है । यहाँ वेश्या-जीवन की यातना और वेश्या के पुनर्सं-

---

१. कृपया देखिए, झाँसी की रानी...पृ० १६३, २४६, २४७, ३२०, ४१८, ४७३, ४९२, ४९३, ४९७

२. अमरबेल...पृ० २००, ४५०, ४७६, ४७७

स्कार पर वर्मा जी की दृष्टि विशेष रूप से केन्द्रित है। 'अहिल्याबाई' युग के अन्धविश्वासों और दुराग्रहों में घिरी हुई एक शासिका की कर्तव्यपरायणता की कहानी है।

वर्माजी का जीवन संबंधी दृष्टिकोण

वर्मा जी मानव-जीवन के निकट हैं, उनकी कला उसी के लिये है। उन्होंने जीवन या समाज में जो कुछ देखा है उसे अपनी रचनाओं में ला रखा है। उन्हें आज या बीते हुए कल के समाज में जो अग्राह्य दीख पड़ा है उसे सामने लाये हैं किंतु उसकी अभिव्यक्ति में कहीं अरुचि या अश्लीलता न आ जाये इसका ध्यान उन्होंने सदैव रखा है। अग्राह्य का दुष्परिणाम सामने रख कर वे ग्राह्य की ओर इंगित करते हैं। उनकी दृष्टि निर्बल को सबल, अव्यवस्थित को सुव्यवस्थित और कुरूप को सुन्दर बनाने पर रहती है। प्रत्येक पग पर उनमें जन-कल्याण की भावना सजग रहती है। इस प्रकार उपन्यासों में उनका लक्ष्य 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की साधना रहता है। जीवन के ठेठ यथार्थ में आदर्श का गहरा पुट देना उन्हें भाता है।[1] इसी को दूसरे शब्दों में उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। कला जीवन की प्रेरणा से ही प्रस्फुटित होती है। 'कला के लिये कला' के विषय में अचल (अचल मेरा कोई) द्वारा वह कहलवाते हैं—'(यह) एक सुन्दर वाक्य है और कुछ नहीं। स्वान्तः सुखाय कुछ हो सकता है, पर कला के लिये कला तो निरर्थक है। बिना किसी प्रेरणा के कला का विकास हो ही नहीं सकता।'[2]

वर्मा जी का विश्वास है कि सृष्टि के कण-कण में एक महान् सत्ता व्याप्त है, भले ही उसे हम ईश्वर कहें अथवा और कुछ। अतः सृष्टि के जीवों में भेदभाव मूलक दृष्टि भ्रम की देन है। प्रेम एकता का पोषक है। मनुष्य की उत्पत्ति अवश्य किसी कारणवश हुई है। जैसा, जो कुछ मिला है उसी में

---

१. उपन्यास का लक्ष्य, ऊपर ऊपर से, पूर्ण „मनोरंजन और भीतर से सत्यं, शिवं, सुन्दरं की साधना, होना चाहिये। अपनी संस्कृति के इस सूत्र का मैं कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है। अँग्रेजी में उसको यों कह दूँ—फोटोग्रेफिक रियलिज्म शुड बी ब्लेंडेड विद ए डामीनेन्ट नोट आफ आइडियलइज्म।—मैं इसी का निर्वाह करता हूँ। प्रत्यक्ष उपदेश के मैं बिलकुल विरुद्ध हूँ। उसकी कोई एसथेटिक वैल्यू नहीं, चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो सामाजिक, राजनीतिक या नैतिक।

—वर्मा जी का पत्र, २३–११–५०

२. अचल मेरा कोई...पृ० १३८

संतुष्ट रहकर यथाशक्ति कुछ जोड़ने का प्रयत्न उसे करते रहना चाहिये। अनवरत प्रयत्न का दूसरा नाम जीवन है। प्रयत्न के फलस्वरूप असफलता मिलने पर कहीं मनुष्य का साहस न छूट जाय अथवा फल की ओर दृष्टि रखने से प्रयत्न में बाधा न पहुँचे इसलिये फल की वासना से निर्लिप्त रहना आवश्यक है। उसका सिद्धान्त होना चाहिये, 'निष्काम कर्म'। फल स्वतः प्राप्त होगा, देर-सबेर भले ही हो जाय। आत्मा मरती नहीं। उसका तारतम्य अनेक जन्मों में सुरक्षित है। सांसारिक बंधनों से मुक्ति-प्राप्ति के हेतु आगामी जीवन को उत्तमतर बनाने का साधन ही जीवन है। इस जीवन पर हमारा आज और आने वाला कल, दोनों निर्भर हैं। मनुष्य के पास शारीरिक शक्ति है। शक्ति का निर्देशन करते हैं, मस्तिष्क और हृदय। इन दोनों का संतुलन और समन्वय ही जीवन में कल्याणप्रद हो सकता है।

जीवन की एकरसता को भंग कर परिश्रम की थकान को दूर करने के लिये हमें कुछ ऐसे क्षण चाहिये जो ताज़गी दे सकें। मानव-मन की इस शाश्वत माँग पर वर्मा जी की दृष्टि गयी है। उपन्यासों में रोमांस की उद्भावना इस दिशा में उनकी निराली देन है।[1] वे इसके द्वारा पाठकों को आये दिन संघर्षों से उत्साहपूर्वक जूझने की अपूर्व शक्ति प्रदान करते हैं।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति नाटकीय माध्यम द्वारा की है। उन्होंने जीवन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को घटनाओं में यत्र-तत्र छितरा दिया है। उनमें से भले, बुरे को परखने का कार्य वे पाठकों पर छोड़ देते हैं। प्रत्यक्ष विधि का उन्होंने कहीं अवलम्ब ग्रहण नहीं किया है। हाँ, 'झाँसी की रानी' में और उसके बाद के उपन्यासों में वे पात्रों द्वारा अपने विचारों की घोषणा कराने का लोभ संवरण नहीं कर पाये हैं। कथोपकथन कथा-प्रवाह से अलग हट कर विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालने लगते हैं। इस विषय में हम पीछे चर्चा कर आये हैं।

---

१. **अच्छी नींद के बाद, सबेरे की अरुणिमा देखने के लिये जी क्यों ललचाता है ? चलते रास्ते बगीचे के फूलों को देखकर एक क्षण ठहर जाने के लिये मन क्यों मचलता है ? मानव-प्रकृति। मानव त्याग तक अपनी तात्कालिक एकरूपता (मोनोटनी) पर हावी होने के लिये करता है। रोमांस इस प्रवृत्ति का बड़ा सा साथी है। क्रिकेट और कबड्डी को देखकर बिना हाथ पैर हिलाये, आपका मन खेलों को खेलने लगता है, मन के उस खेल से एक ताज़गी आती है, ताज़गी से शक्ति। यही उसका उपयोग है। यही, कम से कम, उसकी एक प्रकट आवश्यकता है।** —वर्मा जी का पत्र, १२.७.५१

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

वर्मा जी के कुछ पत्र

(१)

झाँसी
२३. ११. ५०

प्रियवर सिंहल जी,

सस्नेह

पहले 'स्वतन्त्रभारत' का आपका भेजा हुआ 'अंक' मिला फिर २०।११ का पत्र। अनेक धन्यवाद। 'स्वतन्त्रभारत' मेरे पास आता है। आपका लेख पढ़ लिया था बहुत अच्छा लिखा गया है। मन को भाया।

आपके स्नेहपूर्ण उद्‌गारों के लिये धन्यवाद देना उनके मूल्य का घटाना है। इस स्नेह को अपने स्नेह में कैसे संचित करलूँ यह कामना के वृत्त की बात है और उसके केन्द्र की। यह तै है कि उसकी परिधि बढ़ गई। जब कभी लखनऊ आऊँगा आपसे मिलकर बड़ा आनन्द प्राप्त होगा।

श्री हरीशंकर शर्मा और श्री गुलाबराय से बहुत समय से नहीं मिला। श्री भगवती चरण वर्मा सन् १९४८ में मिले थे जब मैं लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में बीमार पड़ा था—फूड पोइज़निंग हो गया था। अशोकजी पुराने स्नेही मित्र हैं। उन्होंने मुझे भी लिखा था कि 'स्वतन्त्रभारत' में चर्चा करेंगे। आप जो कुछ भी लिखेंगे मैं चाव के साथ पढ़ूँगा।

आप जो प्रश्न भी करेंगे उनका उत्तर लिख भेजूँगा। आपके पत्र में जो प्रश्न दिये हैं उनका उत्तर इस प्रकार है—

१. मैंने सभी उपन्यास भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से लिखे हैं। विशेष दृष्टि कोण से प्रत्येक उपन्यास को अच्छा मानता हूँ वैसे 'बिराटा की पद्मिनी', 'लक्ष्मीबाई', 'अचल मेरा कोई', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'लगन' मुझे सबसे अधिक प्यारे हैं।

२. उपन्यास का लक्ष्य ऊपर ऊपर से, पूर्ण मनोरंजन और भीतर से सत्यं, शिवं सुन्दरं की साधना होना चाहिये। अपनी संस्कृति के इस सूत्र का में कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है। अंग्रजी में उसको यों कह दूँ—फोटो ग्रेफिक रियलइज्म शुड बी ब्लेंडेड विद ए डोमिनैन्ट नोट आफ आइडयलिज्म—मैं इसी का निर्वाह करता हूँ। प्रत्यक्ष उपदेश के मैं बिल्कुल विरुद्ध हूँ। इसकी कोई एस्थेटिक वैल्यू नहीं, चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो, सामाजिक राजनीतिक या नैतिक।

३. मैंने ऐतिहासिक उपन्यासों में सामाजिक चित्रण केवल कथा निर्वाह या क्रियेशन आफ द एटमासफ़ियर के लिये ही नहीं किया है वरन् सामाजिक समस्याओं को दृष्टि में रखते हुए भी, और इस मामले में मैं स्काट, ड्यूमा, ह्यूगो, नट हम्पसन से अलग हूँ। मेरा मार्ग इनसे भिन्न है। स्काट आवश्यकता से अधिक विस्तार करता है यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वह प्रथम है। ड्यूमा घटनाओं की आँधी बहाता है, ह्यूगो ने अनातोले फ्रांस के शब्दों में 'मोन्सटर्स' का सृजन किया है (लाइफ एण्ड लेटर्स बाई अनातोले फ्रांस), नट हम्पसन पर स्काट की छाप बेहद है। मैंने इस सबसे बच निकलने की कोशिश की है। अपना एक पन्थ बनाया है जो बंकिम और राखालदास से भी भिन्न है।

४. स्त्री पात्रों में लक्ष्मीबाई, बिराटा की पद्मिनी, कचनार, पूना, मृगनयनी, लाखी, छपे हुये उपन्यासों में पूर्णतया चित्रित हैं। अप्रकाशित उपन्यास चार हैं। जब तक ये छपें दो और आते हैं। तब देखा जायगा।

आपके पास नाटक भी भेजूँगा। सोचता हूँ जब मिलूँगा तब भेंट करने से स्नेह कोष में जो अर्जन होगा वह योंही भेज देने से प्राप्त न होगा, इसलिये तब स्वयं दूंगा। आप मेरे समीप आ गये हैं। कभी दूर न समझें। लिफाफा काहे को भेजा ! लौटाता हूं। मेरे तो पैसे बचते, पर आपका अपमान होता। असम्भव।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(२)

ग्राम श्यामसी
९. १२. ५०

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका स्नेह पत्र तथा लेख यहाँ आज एक वाहक ले आया। रेल, तार, डाक, पक्की सड़क, इत्यादि सबसे यह गाँव दूर है। सन् १९४९ में जंगल ही जंगल था। शताब्दियों पहले गाँव था। सन् १९४० से ४५ तक जंगल साफ करके फिर बसाने का प्रयास किया है। अब ६, ७ घर हो गये हैं। कुंडार २, ३ मील की दूरी पर है। यहाँ से दिखलाई पड़ता है। झाँसी में वकालत छोड़ देने पर भी, काम नहीं कर पाता हूँ, इसलिये यहाँ चला आता हूँ।

आपका लेख मुझे बहुत पसन्द आया। आपने तटस्थता के साथ लिखा है और आप मेरी बात तक पहुँचे हैं।

मैंने लिखना सन् १९०५ से आरम्भ किया था। तीन छोटे छोटे नाटक लिखे, इंडियन प्रेस ने लिये और ५० रुपये पुरस्कार में दिये। नवीं कक्षा में पढ़ता था। बोर्डिंग हाउस में रहता था। एक सप्ताह में सारे रुपये मूँगफली मटर और दूध मिठाई में मित्रों के साथ साफ कर दिये। फिर सन् १९०८ तक पाँच नाटक और लिखे। सिर मुड़ाते ही ओले पड़े। पहला नाटक सरकार ने जब्त कर लिया और दो बरस पुलिस और मैजिस्ट्रेट की कृपा दृष्टि में काटे। फिर पढ़ने में उलझ गया। सन् १९१६ में वकालत शुरू की और सन् १९१७ में मुराद नाटक का एक अंक लिखा। कुछ नाटक पहले के लिखे रक्खे थे। बरसातके दिन थे। घर के आँगन में एक बड़े बर्तन में बरसाती पानी भरा था। मुराद को श्री कृष्णानन्द गुप्त ले गये जो छुटपन से हीमेरे सम्पर्क में आगये थे। वे आजकल 'संगम' इलाहाबाद के सम्पादक हैं। सम्भवतः मुराद को 'संगम' में प्रकाशित करेंगे।

आपको लेख में यह सब लिखने की आवश्यकता नहीं। केवल यह बतलाने की चेष्टा की है कि कलम घिसने का रोग मुझे १९०५ में लग चुका था।

'जातपाँत' वाले सवाल पर आपने ठीक ही लिखा है। परन्तु यदि मैं दिवाकर और तारा का ब्याह करा देता तो फिर बात अवास्तविक हो जाती। लाखी और अटल का तो करा ही दिया। लेकिन बोधन और उसके साथियों को नहीं रुचा। मैंने प्रवृत्ति की ओर इङ्गित कर दिया है और पाठकों की सहानुभूति उस प्रकार के ब्याह के साथ करदी है। एक दिन जब वकालत करता था, झाँसी के सिविल जज के यहाँ एक अपील की बहस करने गया।

नये ही आए थे। बोले, 'आपका 'गढ़ कुंडार' बहुत पसन्द आया।' मैंने कहा, 'धन्यवाद !'

'परन्तु दिवाकर और तारा की कहानी से ज़ाहिर होता है कि आप अन्तर्जातीय विवाह के पक्षपाती हैं।'

'हूँ तो।'

'क्या इस युग में ऐसा संभव था ?'

'असंभव भी नहीं था।'

'ब्याह करा देते तो बहुत अखरता।'

'किसी किसी को अच्छा भी लगता।'

'खैर, अपील की बहस करिये। आपने जिस परिस्थिति तक उन दोनों को पहुँचा दिया, वही क्या कम है।'

यह वार्तालाप मुझे लगभग ज्यों का त्यों याद है। सिविल जज पहाड़ी ब्राह्मण थे, हिन्दी प्रेमी और वैसे सुधारवादी।

आपके लेख को लौटाता हूँ। शायद आपके पास उसकी प्रतिलिपि न हो। जब 'स्वतन्त्रभारत' में निकलेगा पढ़ लूँगा।

आपने विक्टर ह्यूगो के सम्बन्ध में अनातोले फ्रान्स की पूरी बात लिख दी इसका मुझको बड़ा हर्ष हैं। मैंने अनातोले को अंशतः ही उद्धृत किया था।

आशा है कि आप स्वस्थ हैं।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(३)

झाँसी

२६. १२. ५०

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका लेख तथा पत्र मिले।

आपका लेख विवेचनापूर्ण है। मैं आपका पहला लेख भी रख लेना चाहता था परन्तु सोचा शायद आपको अटक पड़ जाय, इसलिये भेज दिया था। दूसरे को रख लिया है। जब छपेगा दुबारा पढ़ूँगा ही।

आप जब तक पहले से सूचना न भेज दें श्यामसी आने की बात न सोचें। जैसे ही आपने झाँसी से १६ मील की यात्रा लॉरी द्वारा तै की कि यात्रा करते करते आप दो निश्चयों पर पहुँचे—पहला, मैं ऐसेम्बली का मैम्बर हो जाऊँ, दूसरा—मैम्बर होते ही बिल पेश करूँ कि यातायात के साधनों का

तुरन्त राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय—और कहीं का न हो तो उस मार्ग का अवश्य कर दिया जाय जो झाँसी से उत्तर-पूर्व १६ मील, बेतवा पार, श्यामसी की दिशा में ले जाता है। उस सोलह मील मार्ग को ज्यों-त्यों उस वाहन द्वारा तै किया, जो लॉरी के डारविन की ओरीजन आफ स्पेसीज रूप की याद दिलाता है तो दस मील विन्ध्याचल जी की परिक्रमा किये बिना आप एक डग मारलें, तो सही। इसलिये यदि आपके किसी पूर्वजन्म के कृत्य के कारण और अपने इसी जन्म के पराक्रम के फलस्वरूप मैं उन दिनों श्यामसी में हुआ जब आप इस ओर आने की ठानें तो—लारी तो खैर एक अमर स्थायी अलंकार और भाव है—१६ वें मील पर एक ऐसी बैलगाड़ी की योजना कर दूँ जो आपको दस मील कम से कम ६ घंटे में तो ले ही आवे। फिर वहाँ मैं आपकी सुनूँ और आप मेरी। गर्ज कि आपको झाँसी में ही मिल जाऊँ तो सब सध जायगा, अन्यथा, श्यामसी जो गढ़ कुंडार से ढाई मील पर है मिलने का 'ठिया' रहेगा ही। है पूर्वजन्म या इस जन्म की गर्दिश पर निर्भर।

आपने 'शरणागत','अचल मेरा कोई'—'झाँसी की रानी' और 'मृगनयनी' 'मुसाहिबजू' के विषय में जो कुछ लिखा है वह स्नेहसिक्त है। मैंने इनके लिखने में कोई कसर नहीं लगाई इतना तो मैं भी कह सकता हूँ। वैसे भी, जो कुछ लिखता हूँ उसमें कोई कसर नहीं लगाता। आप जो कुछ लिखेंगे उससे कागज काला नहीं होगा—'सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे···'

झाँसी की रानी से हम लोगों के कुटुम्ब या पूर्व पुरुषों का इतिहास बंधा होने के कारण स्वभावतः वैसा लिखना पड़ा—'कलम ने थोड़ी सी स्याही खाई...।' जब परिचय लिख रहा था, तब यह वाक्य यकायक ध्यान में आया था।

नाटकों की प्रतियाँ भेजी जाती हैं। लखनऊ के तकल्लुफ की बात कहकर नहीं टाला जा सकता। आऊँगा तब घर पर (१८, ए० पी० सैन रोड पता याद में कसकर जमा लिया है) तब इतना खाऊंगा खैर, पहले से नोटिस क्यों दूं ?

'शरणागत' के बाद 'कलाकार का दंड' कुछ और कहानियों का संग्रह भी छप गया है। भेज रहा हूँ। 'सत्तरह सौ उन्तीस' 'सरस्वती' में धारावाही आकार में छपा था। अच्छा होगा यदि आपको किसी पुस्तकालय से 'सरस्वती' के अंक मिल जायं। इसमें आपको मेरे मनोवैज्ञानिक संश्लेषण (साइकोलोजिकल सिन्थेसिस) का पता लगेगा।

जैसा कि मैंने आपको एक पत्र में लिखा था मैंने (१९०५ में) पहले

पहल नाटक ही लिखे थे। फिर सन् १६१७ में जब वकालत करने लगा था एक दिन कुछ पुराने नाटक हाथ पड़े, मैंने उन सबको स्वर्ग का प्रवास दे दिया। केवल 'मुराद' विचाराधीन रह गया। उसको कृष्णानन्द जी जो उन दिनों यहाँ कालिज में पढ़ते थे उठा ले गये। अब वह 'संगम' के सम्पादक हैं। 'संगम' में छाप रहे हैं। अब वे नाटक या उनके 'कोई' स्वर्ग का प्रवास समाप्त करके, आते चले जा रहे हैं।

परन्तु अभी इस साल के लिये कार्यक्रम में उपन्यासों का लिखना तै है। इनमें दो ऐतिहासिक होंगे और एक १६५१ तक के वातावरण पर होगा। 'कोई' नाटक भी बीच में कूद पड़े तो मैं जिम्मेदार नहीं।

कोटा जाने की बड़ी इच्छा थी, परन्तु आज जान पड़ रहा है कि शायद न जा सकूं। आगामी कार्यक्रम वाले उपन्यास की ऐतिहासिक सामग्री की खोज में बाहर गया था। सामग्री तो मिल गई, परन्तु थोड़ा सा जुकाम लेकर लौटा हूँ। उस पर पानी बरस गया है और सावन भादों जैसे बादल छाये हुये हैं। सोचता हूँ न जाऊं, कौन ठंड और पानी के झमेले में पड़े। वैसे भी सम्मेलन के अखाडे या अखाड़ों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। अशोकजी और फतहसिंहजी से खासतौर पर मिलना था, सो फिर कभी देखा जायगा।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(४)

झाँसी

२८.२.५१

प्रिय भाई सिंहल जी,

स्नेह पत्र मिला आपको 'अचल मेरा कोई'—और 'लगन' बहुत रुचे यह जानकर हर्ष हुआ। 'लगन' उपन्यास १६२७ में लिखा गया था।

'मृगनयनी' की बधाई के लिये धन्यवाद। आपने पत्रों में संसद की कार्यवाही पढ़ ही ली होगी। रायकृष्णदास ने जो मेरे बड़े पुराने मित्र हैं, कहा था कि मुँह में दाँत नहीं रहे। तुरन्त मैंने उनको उत्तर दिया था कि भीतर तो हैं। मैं ६१ वीं में हूँ—सच मानिये, प्रायः लगता है कि १८, २० वर्ष का हूँ और ऐसा ही समझता रहूंगा उस समय तक जब एक झटका लगा कि उस पार।

मैंने एक बात वहाँ और कही थी कि माता की गोद में जिस भाषा को सीखा और जिस धरती से शरीर की मिट्टी पाई उसका ऋण कभी नहीं

चुकाया जा सकेगा—मूल कभी नहीं, ब्याज सम्भवतः चुका सकूँ। अभी तक ब्याज भी अंशतः ही तो चुका पाया है। संसद की बैठकों में बहुत आनन्द रहा। बंगाल और महाराष्ट्र के लेखकों के सम्पर्क में हम सब आये—मैं भी। हिन्दी के प्रसार का एक यह अच्छा साधन रहा। परन्तु सबसे बड़ा साधन है फ़िल्म। इसको तुरन्त हाथ में लेने की आवश्यकता है। हिन्दी-भाषा का प्रसार साहित्य और कला की व्यापक जन-प्रियता, समाजसुधार इत्यादि सब इस माध्यम द्वारा बहुत आगे बढ़ेंगे। अभी तो उल्टा हो रहा है। मैं इस दिशा में क़दम बढ़ा रहा हूँ। फ़िल्म निर्माताओं के निहोरे करने से काम बिलकुल नहीं चलेगा। हम लोग स्वयं इस उद्योग को हाथ में लेंगे, या इसका राष्ट्रीयकरण करवायेंगे। न हो सके आज तो कल देखा जायगा, क्योंकि बुढ़ापा तो कभी आने का नहीं, और जब चला जाऊँगा तब तक छूत आप सबमें काफ़ी फैल चुकी होगी। दृढ़ कामना है।

लखनऊ आऊँगा तब अवश्य ही मिलूँगा। एक उपन्यास आधुनिकतम विषय पर लिखने जा रहा हूँ। दो दिन के लिये बाहर चला गया था, उसके कथानक से सम्बन्ध रखने वाले भौगोलिक-प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन करने के लिये। लौटा तो समाचार मिला कि 'मृगनयनी' पर डालमिया पुरस्कार भी मिला है। इसकी बात पहले से नहीं मालूम थी। और एक चिट्ठी ए० आई० आर० दिल्ली की मिली। उसके साथ १७।२ को ब्रॉडकास्ट की हुई 'मृगनयनी' की आलोचना। आलोचना में कहा गया कि महमूद बघर्रा को एक मन नित्य खाते और मांडू के सुल्तान को १५,००० (पंद्रह हजार) वेगमें रखते जो दिखलाया है वह अतिरेक है और मेरी लेखिनी को लांछित करता है। इन समालोचक जी ने इतिहास पढ़ा होता तो आलोचना में इतना अज्ञान-प्रदर्शन न हो पाता। ए० आई० आर० को मैंने अभी अभी लिखा है कि पहले अच्छी तरह पढ़ लेता हूँ तब ऐतिहासिक विषय पर कलम चलाता हूँ। और, उनको हवाला भी दिया है। कुछ न पढ़ें तो डाक्टर ईश्वरी प्रसाद रचित 'हिस्ट्री आफ़ मेडीवल इण्डिया' (मुस्लिम पीरियड) ही पढ़ लें जो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की कोर्स बुक भी है। किसी ऐसे-वैसे पत्र में यदि यह आलोचना निकली होती तो कुछ भी न कह सकता। जिस देश में सोहराबमोदी के 'पुकार' और 'सिकन्दर' को ऐतिहासिक चित्र कहा जाता है, साफ़ है कि उसमें इतिहास का ज्ञान व्यापक नहीं हुआ है, परन्तु उस देश के ए० आई० आर० में भी यह लक्षण दिखलाई पड़े तो थोड़ा-सा क्षोभ होता है। मैंने परिचय में कुछ लिखा है, उसको भी ए० आई० आर० के समालोचक ने शायद नहीं पढ़ा। मन चाहता है कि कुछ छपा डालूँ। फिर सोचता हूँ क्यों समय नष्ट करते हो, ए० आई० आर० को

सुनते कितने हैं ? वहाँ तो फ़िल्मी रेकार्डों के 'अपनी पसन्द' के तकाजे ही इतने हैं कि परवाह किसे है ?

आपकी आलोचना जब निकलेगी, रुचि और ध्यान के साथ पढ़ूँगा। 'अमृत पत्रिका' में जो निकली थी उसको बहुत लोगों ने पढ़ा, ऐसों ने भी जो 'अमृत पत्रिका' का नाम भी नहीं जानते थे।

आज संध्या समय गाँव जा रहा हूँ। बस अब चिपटूँगा काम पर ७, ८ घंटे नित्य। तभी तो दो जून भोजन पाने का हक़दार बन सकूँगा। है न ?

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(५)

श्यामसी

११. ३. ५१

प्रियवर भाई सिंहल जी,

आपके २।३ के पत्र का उत्तर आज दे रहा हूँ। ऐसी है यह श्यामसी। वाहक कल पत्र लाया था। यहाँ गर्मियों में आपके लिए आना द्रविड़ प्राणायाम का एक बड़ा दुस्सह रूप होगा। मैं झाँसी में ही मिलूँगा। आने के कम से कम पन्द्रह दिन पहले लिख भेजियेगा।

आपकी रेडियो और फिल्म वाली बात बिल्कुल सही है। अब तो कुछ करना ही पड़ेगा।

जब तक प्रेमचन्द जीवित थे, बहुत थोड़ों ने इनका यश गाया,—वही काम्पलेक्स—जब बिचारे द्वन्द्वों के क्षेत्र से ऊपर चले गये, तब इन लोगों ने साँस भर भर उनकी प्रशंसा की। प्रेमचंद स्वयं इस दोष से बरी थे। 'लगन' उपन्यास जो आपको बहुत रुचा है, उन्हें भी बहुत पसन्द आया था। उन्होंने मुझे अंग्रेजी में पत्र लिखा था। पत्र घर पर है पर बात याद है। उन्होंने खुल कर लिखा था—'इट इज नाट ए नाविल, बट ए पैसटोरल पोइट्री।' यदि कहीं यह वाक्य छप जाय, आज तक नहीं छपवाया गया—तो बस मुझे लेने के देने पड़ जायेंगे, हिन्दी के उपन्यास-जंगल में शायद आग सुलग बैठे।

मैं इतिहास के तत्वों को सुरक्षित रखने की सदा चेष्टा करता आया हूँ—चाहे वह नाटक हो चाहे उपन्यास; परन्तु हो सकता है प्रोफ़े० फ्रूड (फ़ायड नहीं) के शब्दों में—फेक्ट्स आफ हिस्ट्री आर देयर लाइक प्लेइंग कार्डस। वन मे बिल्ड आउट आफ दैम ए हाउस, एनअदर ए चर्च, एण्ड यट एनअदर ए टूम्ब।—मुझसे भी कहीं कहीं यह हो गया हो, यद्यपि मैं सदा सतर्क रहता हूँ कि इतिहास के तथ्यों एवं तत्वों का मनमाना उपयोग न करूँ। परम्परायें

और किम्वदन्तियाँ इतिहास की प्रायः सही व्याख्या करती हैं। मैं इन दोनों के समीकरण और समन्वय करने का प्रयत्न करता हूं। परन्तु उन अहं वालों को कौन समझाये ? व्यर्थ। अपना काम करता जाऊँगा, कोई कुछ भी कहे।

झाँसी की रानी को यदि मैं झाँसी का किला छोड़ने के उपरान्त ही समाप्त कर देता तो गीता की मानने वाली रानी कैसे सामने आती ? और जूही तथा मुन्दर उसके सहायक चरित्र ? अन्य भी ? यदि मैं वैसा करता तो शायद किसी दिन आत्म-हत्या की भी बात सोचता !!! फिर ये हजरत इन्द्र से प्रार्थना करते कि इस मूर्ख उपन्यासकार के चेहरे पर एक बूँद भी पानी की न बरसाना।

सोमरसेट मॉम के लिए भी किसी दिल जले ने, बहुत दिन हुए कहा था– 'अमुक उपन्यास उसकी बड़ी भारी विफलता है—इतनी कि वह मर गया।' (उनकी कृपा के बिना भी वह बिचारा अभी जीवित है।) माम ने इस पर कहा कि माई घोस्ट हैज़ ए जैन्टिल चकिल आन दैम।

अबकी बार एक प्रयोग करने का विचार है—कम से कम पहले संस्करण का परिचय नहीं लिखूँगा, देखूँ ये ज्ञान-निधान कितने गहरे जाकर कौन सी कौड़ी लाते हैं। कैसा रहेगा ?

'सरिता' में छपी आलोचना पढ़ी थी। 'सरस्वती' वाली नही पढ़ी। आप लिखिए, आपका लिखा चाव से पढ़ता हूँ। ए० आई० आर० वाली आलोचनायें (एक दिल्ली वाली दूसरी जलन्धर वाली) झाँसी पहुँचकर भेज दूँगा। जलन्धर वाली मजे की है। अन्त में कहा कि मुखपृष्ठ बहुत खटकता है।

'भारत' मेरे पास नहीं आता। जिस अंक में आपकी कहानी छपी हो भेजियेगा। अवश्य पढ़ूँगा। रस लूँगा।

'मृगनयना' और 'अचल मेरा कोई' पर उ० प्र० की सरकार ने भी पुरस्कार दिया है, कल की डाक से जो समाचार पत्र आये उनमें पढ़ा। अब आपकी मिठाई में शक ही क्या रहा ?

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(६)

झाँसी
१७. ३. ५१

प्रिय भाई सिंहल जी,

दिल्ली से आज सवेरे लौटने पर आपका स्नेह पत्र मिला। वहाँ के लड्डू–

अखिल भारतीय सांस्कृतिक संगम—के लिए गया था। दो दिन रहकर वापिस हुआ। जो नहीं गये थे क्या वे वास्तव में पछता रहे होंगे ?

बेतवा के उस लेख की एक छोटी कहानी है—जो आपको बहुत रुचा है। मेरे पुराने मित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदी नदियों के बड़े प्रेमी हैं। हृदय से कवि हैं। एक दिन बोले, नील नदी पर एक जर्मन ने काफी बड़ी पुस्तक लिखी है, तुम बेतवा की सराहना में एक छोटा सा लेख ही लिख दो। बेतवा मुझको सुख भी देती है और दुख भी। मुझ सरीखे अनेक लोगों को दुख बहुत। उसी का खाका खींचने का प्रयत्न किया है।

ए० आई० आर० वाली आलोचनायें भेजता हूँ। इनको लौटा दीजियेगा। प्रकाशन वाले मिसिल रखते हैं।

नाम भी किसी किसी को खटका है। नहीं तो एक साहब क्यों लिखते ?—'क्या कहने हैं आपके उपन्यासों के। मैंने कई उपन्यास तो अनेक बार पढ़े हैं और दर्शन कभी नहीं किये तो भी अपने को आपके बहुत निकट पाता हूँ—' चिट्ठी में भीतर और बाहर पते पर लिखा था—वृन्दालाल वर्मा !!! यह जितना निकट आए उतना ही इन्होंने पहिचाना। मैंने उत्तर में कृतज्ञता प्रकट की और उनको लिखा—'आप इतने निकट आ गये है कि मेरा नाम तक भूल गये। होता ही है ऐसा। धन्यवाद।' तबसे फिर उन्होंने कभी कुछ नहीं लिखा।

'विराटा की पद्मिनी' मुझे भी बहुत पसन्द है। अर्द्धदेव और अर्द्धमानव की कल्पना का विकास, इतिहास के आश्रय से, किया है। परन्तु मेरे लिए परछाहीं को लौट-लौट कर न देखना ही हितकर होगा। अन्यथा ठोकर खा जाने की आशंका है। चाहता हूं आपके सद्भाव को दिनोंदिन पाता रहूँ।

आगे के आधुनिक उपन्यास में एक छोटा सा चिड़िया-घर रखने की सोच रहा हूँ। जिसमें कुछ जाने समझे पी-एच० डी०, डी० लिट्० भी होंगे। एक मित्र भी हैं—जो अपने को मेरा शिष्य कहते हैं। ग्वालियर के १६ वीं सदी वाले एक दीवान की नबाब साहब थे वह—कहानी याद आगई। एक एम० ए० पास उनके सामने नौकरी की अर्जी लेकर पहुँचे। अपने गुण सुनाये। नबाव साहब बेवकूफ न थे—मक्कार थे। पूछा, 'मियाँ तुम एम० ए० पास तो हो पर क्या मिडल भी पास किया कभी ?' नबाब का मतलब था—समझदारी 'मिडल' के बराबर भी है क्या ? सो साहब अपनी अपनी समझ की बात है। नतीजा यह कि या तो वे मिडल नहीं, या मैं नहीं। किस्साकोता—इसको आप ही लोगों की कलम तै करेगी। मिठाई और नमकीन के साथ यहाँ के

खट्टे बेर भी। तब तो समन्वय होगा। जल्दी मिलने की इच्छा है। देखिये कब पूरी होती है।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(७)

श्यामसी
१२. ७. ५१

प्रिय भाई सिंहल जी

आपका पत्र यहाँ कल संध्या समय एक वाहक ले आया।

खेद है कि आप अस्वस्थ रहे। आपको स्वस्थ रहने का प्रण कर लेना चाहिए। याद है मैंने झाँसी में क्या कहा था ?

पुस्तक की भूमिका गुलाबराय जी लिखेंगे यह जानकर सन्तोष हुआ।

ए० आई० आर० पर किस विषय पर बोले आप ? जब मिलेंगे तब सुन लूँगा। यहाँ तो रेडियो से—श्यामसी गाँव में—कोई वास्ता ही नहीं।

अब प्रश्नों के उत्तर—

१. जीवन के प्रति दृष्टिकोण विरक्ति का नहीं है। पदार्थजन्य सुविधाओं पर भी वह दृष्टि कोण केन्द्रित नहीं है। मेरा विचार (फ़िलासफ़ी कहना तो दम्भ होगा) जो कला के सम्बन्ध में है वह जीवन के उस पहलू से ही उतरा है :—

फ़ोटोग्रेफ़िक रियलइज़्म ब्लेंडेड इन दि डामीनेन्ट नोट आफ़ आडियलिज़्म।—आप इसी का विकास, कभी इस दिशा में कभी उस दिशा में मेरे सब उपन्यासों में पाएँगे। इसी लिए मैं वास्तविक जीवन से घटनाओं के खरोंचने समेटने में तत्पर रहता हूँ।

२. उपन्यासों की औपन्यासिकता यानी कहानी वह है जिसमें कहानीपन हो सो आप हर उपन्यास में पायँगे—

फ़ेक्ट मेड टु एपियर फ़िक्शन
एण्ड फ़िक्शन मेड टु एपियर फ़ेक्ट
दैट इन शार्ट इज माई क्रैफ्ट

३. अच्छी नींद के बाद सवेरे की अरुणिमा देखने के लिये जी क्यों ललचाता है ? चलते रास्ते बगीचे के फूलों को देखकर एक क्षण ठहर जाने के लिये मन क्यों मचलता है ? मानव-प्रकृति। मानव त्याग तक अपनी तात्कालिक एकरूपता (मोनोटनी) पर हावी होने के लिये करता है। रोमांस इस प्रकृति

का बड़ा साथी है। क्रिकेट और कबड्डी को देखकर बिना हाथ पैर हिलाये आपका मन इन खेलों को खेलने लगता है, मन के ऊपर खेल से एक ताज़गी आती है, ताज़गी से शक्ति। यही उसका उपयोग है। यही कम से कम, उसकी एक प्रकट आवश्यकता है।

४. 'लक्ष्मीबाई' में जूही-तात्या की प्रेम कहानी वास्तविक घटना है, मुन्दर-रघुनाथ सिंह और मोतीबाई-खुदाबख्श की प्रेम वाली बात मेरी कल्पना है। जूही-तात्या की प्रेम कहानी, रही उतनी ही है जितनी मैंने बतलाई है। शारीरिक सम्पर्क उन दोनों का कभी नहीं हुआ।

आशा है आप स्वस्थता की ओर अपना दृष्टिकोण वही बनायेंगे जो मेरा है।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(८)

श्यामसी

२८.१.५२

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका स्नेह पत्र कल यहाँ मिला। चुनाव क्या था, मुझे तो ऐसा लगा जैसे थकाने वाला कोई षड्यन्त्र हो। और उस थकान में कितनी बेशुमार गालियाँ खाने को मिलीं। अकेली काँग्रेस पार्टी ने नहीं, सभी ने दीं !! अब हंसी आती है। कुछ गालियाँ छापे में भी आ गई हैं। संभालकर संजोली हैं। कभी दिखलाऊँगा।

अभी तो अपना जनतन्त्र प्राइमरी स्कूल का बालक सा है पर यह सुधरेगा और बढ़ेगा।

अब जब राजनीति में आ गया हूँ तब उसमें बने रहकर कुछ न कुछ करते रहना पड़ेगा—यद्यपि पंतजी झाँसी आकर मेरे लिये कह गये थे—'लेखक हैं, आदर करता हूँ, परन्तु लेखक राजनीति को क्या जाने !'

साथ ही कलम की मजदूरी भी करता रहूँगा। इन्हीं दिनों दो नाटक लिख डाले। दूसरा तीसरी नवम्बर को समाप्त किया था। चुनाव के दिनों में उसका प्रूफ देखा करता था। एक बात सही है कि साहित्य और राजनीति में घोर अन्तर है।

यह जानकर कुतूहल और हर्ष हुआ कि अगले चुनाव में आप भाग लेंगे। मैं भी कुछ न कुछ करूँगा।

लगता है मैं हार गया---यानी मेरे वोट कम आये होंगे, मिनिस्टर के अधिक।

बरेली कालेज के हिंदी परिषद् ने १० तारीख को होने वाले अपने समारोह में बुलाया है। कुछ अस्वस्थ हूँ। यदि स्वस्थ रहा तो—आशा है कि अब और भी अधिक डंड पेलूंगा—९ तारीख की रात की गाड़ी से झाँसी छोड़ूँगा; १० को बड़े सबेरे लखनऊ स्टेशन और दोपहर बाद बरेली। आपसे मिलने की कोशिश करूँगा। झाँसी छोड़ने के पहले आपको लिखूँगा।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(६)

झाँसी
२८.४.५४

प्रिय भाई शशिभूषण जी,

२७।७ का पत्र अभी अभी मिला। 'साहित्य संदेश' का अङ्क भी मिल गया 'मृगनयनी' पर आपने गहराई के साथ लिखा है। मिलने पर बातें करूँगा।

मुझे हर्ष है कि आपको 'अमर बेल' उपन्यास रुचा। इसके लिखने के पहले मुझे अध्ययन पर काफी परिश्रम करना पड़ा था। संसार के भिन्न-भिन्न देशों की कृषि-व्यवस्थाओं की जाँच पड़ताल करने में ही एक वर्ष लग गया। फिर अपने यहाँ की भूमि-व्यवस्था को मथना पड़ा। रूस के कलैक्टिव फार्म का अध्ययन कुछ और पहले कर चुका था। माइकिल शैलोखौत के 'विरजिन सोइल अपटर्न्ड' की भूलों और पूर्वाग्रहों से बचना था। इत्यादि इत्यादि। मतलब यह कि इस उपन्यास के लिखने के पूर्व द्रविड़ प्राणायाम करना पड़ा था। फिर लिखना सहज हो गया। एक बात से मुझे सहायता मिली—सोशलिस्ट एकोनिमी का विद्यार्थी तो रहा ही हूँ जिला कोआपरेटिव बैंक का मैनेजिंग डायरैक्टर २५,२६ वर्ष से हूँ।

'आजकल' की प्रतीक्षा करूंगा।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१०)

ग्राम श्यामसी
६.५.१६५४

प्रिय भाई शशिभूषण जी,

पत्र मिला, पुस्तक मिली और 'बड़े भैया' भी !!

सब पढ़ गया।

पुस्तक बहुत शोध के साथ लिखी गई है। मेरी बधाई और आपकी कलम को मेरी कलम की असीस।

'बड़े भैया' में तो आपने हद ही करदी ! खूब तो लिखा। ऐसे स्नेह को पाकर ही तो नसों में जोश उमड़ता है।

आजकल एक उपन्यास लिख रहा हूँ। पूर्ति पर आ रहा है। कई महीने सामग्री तैयार करने में लग गये उत्तरवैदिक काल पर लिखा है। फिर एप्रिल मई की गरमी तो मालूम नहीं पड़ रही है। चिपटा रहा हूँ।

आशा है कि जल्दी छपेगा। छपने पर पहुँचेगा।

'अमरबेल' उपन्यास १६५३ में छपा था पहुँचा न हो तो पहुँच जायगा।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(११)

झाँसी
२२.११.१६५५

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका १५।११ का पत्र गाँव से लौटने पर मिला। कल संध्या समय आया हूँ।

इसी बीच में एक नाटक लिख डाला है। नाम है–'देखादेखी' सामाजिक है। अभिनीत होने के उपरांत प्रकाशित होगा। आजकल प्रेस में 'मृगनयनी' का नया संस्करण छप रहा है।

धूप में अधिक रहने के कारण आँखों में कुछ तकलीफ है। इसलिये लिखना पढ़ना थोड़े समय के लिये स्थगित करता हूँ। ठीक होते ही एक सामाजिक उपन्यास लिख डालने की ठानी है।

मेरे उपन्यासों पर लिखते समय एक बात का ध्यान रखियेगा—'कोतवाल की करामात' मेरा लिखा नहीं है। गंगा पुस्तकमाला वालों ने मेरा नाम ग़लत डाल दिया है। एक मित्र का लिखा है। प्रकाशन के लिये मैंने भिजवाया, बस इतना ही दायित्व था मेरा। कई बार प्रतिवाद भी छपवा चुका हूँ।

पाँच छः महीने हुये कुछ मित्रों के आग्रह पर मैंने 'अपनी कहानी' लिखनी शुरू की थी। १६२०,१६२१ तक ही आ पाया हूं। कभी कभी ही लिख पाता हूं। श्रीमती महादेवी वर्मा ने बहुत आग्रह किया तो क्रमशः छपने के लिये इलाहाबाद साहित्यकार संसद द्वारा प्रकाशित 'साहित्यकार' में टाइप करवा के भेजता रहता हूँ। ऐसे दो अंश भेज दिये हैं। 'साहित्यकार' में पढ़ियेगा। १३० पृष्ठ से अधिक लिख चुका हूँ। संभवतः १०० और लिखने पड़ें। कह नहीं सकता कब तक लिख पाऊँगा। 'अपनी कहानी' में शिकार सम्बन्धी अनुभव नही दुहराऊँगा क्योंकि वह 'दबे पांव' नाम की पुस्तक मे अलग छपेंगे। पुस्तक तैयार है। देखूं कब तक प्रकाशित हो पाती है। पिछले महीनों में चि० सत्यदेव को मोतीझरा हो गया था। हम सब बहुत चिन्तित रहे। अब वह निरोग हैं परन्तु निर्बल अब भी हैं। उनकी बीमारी के कारण काम बहुत पिछड़ गया है। 'अहिल्याबाई' दिसम्बर के पहले सप्ताह तक, शायद प्रकाशित हो जाय। तीन उपन्यास और छपने को प्रेस में रक्खे हैं। आपको जानकर हर्ष होगा कि 'लगन' का कन्नड़ में अनुवाद हो रहा है और 'लक्ष्मीबाई' का भारतीय भाषाओं के अलावा चेकोस्लोवेकिया की भाषा में अनुवाद हो रहा है। एक चेक विद्वान कर रहे हैं। यदि आप अवकाश मिलने पर दो तीन दिन के लिये दिसम्बर के अन्त या जनवरी में आ जावें तो आपके अनेक प्रश्नों का उत्तर मेरे लिये सहज हो जायगा। वैसे लिख भेजना तो बहुत दुस्तर है। है न ? एक नया रोग और हो गया है। लिखते लिखते कलाही में दर्द होने लगता है तो थोड़ी देर ठहर जाना पड़ता है। अँग्रेजी कोश में इस रोग का नाम बहुत बढ़िया है—'राइटर्स क्रेम्प'। आपने जो ब्योरा माँगा है वह लिखवाया तो जा सकता है, परन्तु लिखना तो बस का नहीं। इसीलिये कहा कि कभी दो तीन दिन के लिये आजाइये।

प्रबन्ध की रूप-रेखा देख ली। ठीक है। जब मिलेंगे चर्चा होगी ही।

मेरा स्वास्थ्य अब ठीक है।

इंजीनियर साहब को मेरा नमस्कार कहिये।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

पुनश्च—

मेरी जन्म तिथि ६.१.१८८६ है (पौष शुक्ला अष्टमी सं० १६४५) आपने जो पहले आलोचना पुस्तक लिखी थी वह और अब जो लिखी है वह भी, भिजवा दीजियेगा।

(१२)

झाँसी
२०.१.१९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

दो दिन के लिये ओर्छा जाना पड़ा इसलिये उत्तर देर में आ रहा है।

आप देर सवेर पत्रोत्तर दें तो जरा भी हर्ज नहीं। बिलकुल खिन्न मत होइये। स्वास्थ्य के प्रति सजग रहने की बड़ी जरूरत है। आशा है आप पूर्ण स्वस्थ रहने का ध्यान रखेंगे।

'अपनी कहानी' में मैं अभी तो सन् १९२०,२१ तक ही पहुँच पाया हूँ। इधर उधर की व्यस्तता के कारण आगे नहीं बढ़ पाया। अब महादेवी जी का तकाजा (इन्हें मैं छोटी बहिन की तरह मानता हूं और वह मुझे अपना बड़ा भैया) 'अपनी कहानी' को पूरा कराके छोड़ेगा। कुछ और भी लिख रहा हूँ। अवकाश मिलने पर 'अपनी कहानी' भी चलाता चलूंगा। 'साहित्यकार' में निरन्तर प्रकाशित होगी। 'दबे पाँव' अभी तक नहीं छप पाया। वह अपनी कहानी का ही अङ्ग है। सन् १९५६ में छप जायगा।

'भुवन विक्रम' १९५४ में लिखा था। आजकल छप रहा है। आशा है मार्च के अन्त तक प्रकाशित हो जायगा। आपके पास प्रति पहुँचेगी। उत्तर वैदिक काल के समाज का चित्रण है—अर्थात् जैसा मैं उसे समझा हूँ।

'अहिल्याबाई' की प्रति कार्यालय भेजना भूल गया था। अब पहुँच गई होगी।

आपने अपने निबन्ध की जो रूप रेखा बनाई है मुझे ठीक लगी। परीक्षक को भी अच्छी लगनी चाहिये। लगेगी ही।

मेरे उपन्यासों के अनुवाद अपने देश की विभिन्न भाषाओं में हो रहे हैं। चेकोस्लोवेकिया के दो सज्जन मेरे कुछ उपन्यासों का अनुवाद चेक भाषा में कर रहे हैं। एक का पत्र अभी हाल में 'लक्ष्मीबाई' नाटक के चेक अनुवाद की अनुमति हेतु आया था मैंने अनुमति दे दी है। वहाँ का एक प्रसिद्ध थियेटर (कार्लोविवरि थियेटर) उसका अभिनय रंगमंच पर कराना चाहता है। उसकी भी अनुमति मैंने दे दी है।

इंजीनियर साहब को मेरा नमस्कार कहिये।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१३)

झाँसी
२८.१.१९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका २०।१ का पत्र उत्तर के लिये रक्खे रहा। आज उत्तर दे पा रहा हूँ।

मुझे हर्ष है कि 'गढ़ कुंडार' आपको बहुत अच्छा लगा। अनेक पाठकों को भी बहुत रुचता रहा है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों इसके लिये ३०,३१ में स्वर्णपदक भी दिलवाया गया था। परन्तु दो आलोचकों ने इसके ऊपर २९ या ३० में कुछ अजीब सा लिखा था; एक आलोचक जैनेन्द्र कुमार जी और दूसरे, जहाँ तक याद आता है, चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार जी थे। मुझे इनकी आलोचनाओं पर हंसी आई थी। प्रत्यालोचना नहीं की और न करता हूँ। यही हाल अन्य उपन्यासों का भी हुआ। दो का स्मरण ताजा है। एक 'मृगनयनी', दूसरा 'अमरबेल', और ,(याद आ गया !) तीसरा 'लक्ष्मी-बाई' भी। बिना इतिहास पढ़े ही एक आलोचक ने फरमाया 'मृगनयनी' अति-रंजित है। दूसरे बोले सामन्तवाद के पुनर्जीवित करने का 'सफल' प्रयत्न है। 'अमरबेल' के बारे में कहा उपन्यास नहीं है सहकारी कृषि पर व्याख्यान है ! 'लक्ष्मीबाई' के लिये कह डाला यह तो जीवन-चरित् है ! परन्तु जब दूसरी तरह के कुछ लोगों ने नोच खंसोट के साथ कुछ लिखा तो चुप रह गए। 'फूलों की बोली' मेरा एक नाटक है। लखनऊ रेडियो से एक आलोचक जी ने बड़ी प्रशंसा करते हुये एक कैंची यह लगादी--'नाटक में नमस्ते का शब्द कई जगह आया है। लेखक आर्य समाजी नहीं तो दयानन्दी ख्याल के जरूर हैं।' मैं सच कहता हूं इस पर मुझे बहुत हंसी आई थी। अथर्ववेद में 'नमस्ते' का शब्द आया है, गीता में है और संस्कृत के 'रत्नावली' नाटक में भी। बिचारे ऋषि दयानन्द से बहुत पहले ये सब हो चुके हैं।

मैं आलोचक की अपेक्षा साधारण पाठक को अपनी दृष्टि में अधिक रखता हूं।

कुछ दिन हुये इंगलैंड के प्रसिद्ध साहित्यकार हैरल्ड निकल्सन ने उपन्यास और कहानी के भविष्य के बारे में एक बड़ी कंटीली भविष्यवाणी की है। कहता है कि इसका कोई भी भविष्य नहीं। फिक्शन के सम्बन्ध में है उसका यह कहना। अर्थात् कल्पना—महज कल्पना– के आधार पर सृजे हुये साहित्य के बारे में। शुरू से ही मेरा स्वभाव तथ्यों की खोज और उनके आधार पर लिखने का रहा है। मेरा एक सूत्र है, है अंग्रेजी में—क्रिएटिव ट्रीटमेन्ट आफ

एक्चुअलिटी – तथ्य या वास्तविकता की सृजनात्मक रचना। इसलिये हर उपन्यास या कहानी में कोई न कोई छोटी बड़ी समस्या लुके-छिपे या कुछ खुले हुये रख देता हूँ। नहीं तो 'कोरे फिक्शन' के बारे में मेरा भी वही मत समझिये जो हैरल्ड निकल्सन का है। मात्र मनोवैज्ञानिक चरित्रों के समावेश या यौन वासनाओं के उद्घाटन वाले फिक्शन का भविष्य तो क्या वर्तमान भी मुझे कुछ अच्छा नहीं जान पड़ता, क्योंकि, मेरे मत में, समाज के लिये उनकी उपयोगिता बहुत नहीं है। मैंने अपने लिये जो ध्येय ४० वर्ष पहले स्थापित कर लिया था वह परिधि में बढ़ रहा है, घटा नहीं है।

अब 'अहिल्याबाई' के सम्बन्ध में आपके 'पाठकीय' दृष्टिकोण के संबंध में :—

१. अहिल्याबाई लक्ष्मीबाई नहीं है और लक्ष्मीबाई अहिल्याबाई नहीं है। अहिल्याबाई का चरित्र मैंने उनके अन्तिम वर्षों से जानबूझ कर बटोरा है। इस आयु और वैसे वातावरण में भी वह स्त्री इतनी बड़ी बनी रही यही आश्चर्य है। क्या हम आज उसके चरित्र से कुछ सीख सकते हैं? मेरा उत्तर हाँ में है। उपन्यास में उन परस्थितियों को ज्यादा विस्तृत और केंद्रित किया है जिनसे अहिल्या को निरन्तर लड़ना पड़ा। अन्य कथाओं का 'पक्का सम्बन्ध' एक दूसरे से चाहे न हो पर अहिल्या से तो है—उसी को तो मुझे उजागर करना है। फिर निकल्सन वाली बात—'चरितात्मक उपन्यासों का भविष्य उज्ज्वल और दीर्घ है महज फिक्शन का नहीं।' छोटे कथानकों की जड़ें उतनी ही पनपाई गई हैं जो अहिल्या के विकास में सहायता कर सकें। अहिल्याबाई अपनी न्यायप्रियता के लिये प्रसिद्ध थी। जितनी घटनायें उपन्यास में आई हैं सब सच्ची हैं। १०० कैंडिल पावर के एक दो बल्ब न लगाकर मैंने दस पाँच छोटे छोटे बल्ब लगा दिये हैं जिससे अहिल्याबाई की मूर्ति पर कई दिशाओं से प्रकाश पड़े। ये छोटे बल्ब मूर्ति के बहुत निकट ही लगाये गये हैं।

आपका कहना सही है कि 'अहिल्याबाई' उपन्यास अहिल्याबाई के चरित्र पर · मजबूत और कमजोर जहाँ जैसा था—प्रकाश डालने के लिये लिखा गया है, परन्तु इससे वह उपन्यास की संज्ञा से वंचित नहीं हो सकता। शुक्ल जी के जिस वाक्य का आपने उद्धरण किया है (कार्य, एक्शन होना चाहिये उपन्यास में) वह है उसमें। पढ़िये अब आप उसे इस दृष्टिकोण से।

आश्चर्य है कि आपको मल्हारराव वाला प्रकरण 'शिथिल सा' या निर्जीव सा लगा। अहिल्याबाई को उसे अन्त में छोड़ना पड़ा—'जैसे जान बचाई हो।' (आपके शब्द) बिल्कुल ऐसा ही हुआ है। इतिहास की बात है। मैंने तत्सम्बन्धी पत्रों का 'परिचय' में हवाला दिया है। जैसा हुआ उस पर पाठकों

को पहुँचाने के लिये, अहिल्याबाई का कष्टों से संघर्ष और तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत करने के लिये, उसे मैंने वैसा किया है।

सिन्दूरी, आनन्दी और भोपत की कथा आपको उपन्यास में 'जुड़ी सी' लगी इस पर तो मिलने पर ही बात हो सकेगी। बहुत से पाठक हैं जिनको ऐसा नहीं लगा। इधर उधर जब कभी इसके सम्बन्ध में छपे, पढ़ियेगा।

'ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णनों की असंतुलित भरमार के कारण रोचकता लुप्त हो गई है' – आपके शब्द। इसके सम्बन्ध में यहाँ क्या लिखूं ? यदि यह 'भरमार' अहिल्याबाई के चरित्र विकास में सहायता करती है तो मुझे कोई पछतावा नहीं। अंग्रेजी उपन्यास पढ़ने वाले पाठक क्या कभी हार्डी, टामस मैन, बरजोरसन (नारवेजियन है, नाम की स्पेलिंग ठीक नहीं याद है इस समय) उन देशों के भौगोलिक वर्णनों और ऐतिहासिक वर्णन – विस्तारों से (स्काट और ह्यूगो में हैं जैसे) घबराते हैं ? भरमार तो उनमें भी बहुत है। हम लोग अपने आसपास के भूगोल से ही परिचित हैं, इसलिये मालवा इत्यादि के स्थानों का वर्णन खटक जायगा यह मैं मानता हूँ। परन्तु मालवा वालों को बहुत पसन्द आयगा यह मुझे आशा है।

अहिल्याबाई अपने काल की राजनीतिक समस्याओं से उतनी ही लड़ सकीं जितना एक महानारी लड़ सकती थी। यही उसकी दुर्बलता और सबलता है। मल्हारराव को वह अपना वारिस बनाना चाहती थी। वैसे मल्हारराव को ऐसी अहिल्याबाई हृदय में एक कोमल कोना दिये रही इसमें आश्चर्य या परिताप की कोई भी बात नहीं है।

'गनपतराव के चरित्र में नाटकीय परिवर्तन बहुत खटकता है'—आपके शब्द। हुआ ही था उसमें नाटकीय परिवर्तन। मल्हारराव का बुरा बर्ताव, आनन्दी का मनमुटाव—इत्यादि कुछ कारण बने। फिर अहिल्याबाई की धर्मानुशीलन सम्बन्धी कीर्ति, उनके दामाद का वह पत्र, चंदेरी का धोती जोड़ा, शिव की मूर्ति और बही खाते में दर्ज किये गये थोड़े से चावल—ये गनपतराव में वैसा परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये क्या कम थे ? वह परिवर्तन ऐतिहासिक घटना है। गनपतराव में जामघाटी पर—जहाँ वह डाके डालता था और जहाँ उसे ऊपर लिखा सब देखने को मिला था—क्यों न नाटकीय परिवर्तन उपस्थित करते ?

जो चित्र उपन्यास के मुखपृष्ठ पर है वह अहिल्याबाई के एक समकालीन का बनाया हुआ है। अहिल्या-स्मारक-समिति की कृपा से प्राप्त हुआ है। वह अपने जीवन काल में ही देवी समझी जाने लगी थी इसे मत भूलिये। उपन्यास को कोई धर्म ग्रन्थ समझ ले तो मैं क्या करूँ ? उस समय के चित्रकार ने

अहिल्याबाई को जैसा कुछ समझा वैसा उसका चित्र बना दिया और मैंने अपने उपन्यास पर उसका ब्लाक छपवा दिया। इससे अधिक और क्या कह सकता हूं।

किसी भी उपन्यास की रोचकता पाठक के तत्कालीन मूड पर निर्भर है। आपने इस उपन्यास को दो दिन में पढ़ा। कब कब पढ़ा यह आपसे मिलने पर पूछूँगा। हो सकता है आपने दिन भर की थकान के बाद पढ़ा हो, हो सकता हैं खूब भोजन करके पढ़ा हो। हो सकता है किसी ऐसे मूड में पढ़ा हो जब मेरे किसी उपन्यास का रोमांस रुचि पर सवार रहा हो !! यह सब मेरा अट-कल है। आपने स्वयं अपने पत्र के अन्त में कुछ इसी तरह की बात लिखी है।

मुझे विश्वास है कि जब आप फिर कभी दूसरे मूड में पढ़ेंगे और पहले के जमे किसी भी पूर्वाग्रह या पूर्व भाव को मन में न रहने देंगे तब यह उपन्यास भी कदाचित् रोचक लगे।

पर आपका यह कहना बिल्कुल सही है कि अहिल्याबाई के चरित्र पर प्रकाश डालना इस उपन्यास का (या चरित् कह लीजिये) खास ध्येय है।

सच मानिये मैं आपको बिलकुल अपना समझता हूं—आप मेरे बहुत समीप रहे हैं और हैं। इसीलिये इतना लिख डाला किसी और को कुछ न लिखता। हँसकर रह जाता।

सुखी रहिये। खूब सोचिये और लिखिये। आगे यदि इतना लम्बा पत्र न लिखूँ तो गप्पगोष्ठी में बातें तो बहुत करूँगा ही।

इंजीनियर साहब को नमस्कार कहिए।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(१४)

झाँसी

१२. २. १९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

पत्र पढ़कर हर्ष हुआ। दो महीने के भीतर ही 'भुवन विक्रम' आपको मिल जायगा। वर्तमान और भविष्य के लिए मुझे अतीत में जो प्रेरक, प्रबोधक और ओजवर्धक जान पड़ा अधिकांश उसको ही संजोया है, परन्तु अतीत में जो त्याज्य है कुछ तो उसे भी ले आया हूँ। उपन्यास कुछ बड़ा हो गया है, परन्तु जब लिखने बैठता हूँ तब यह नहीं सोचता कि जो कुछ लिख रहा हूँ उसका आकार कितना हो जायगा मेरा सबसे छोटा उपन्यास शायद

'लगन' है। प्रेमचन्द जी को बहुत पसन्द था। एक बार उन्होंने अँग्रेजी में लिख भेजा था—'इट इज़ नॉट ए नावेल बट पेसटोरल पोइट्री।'—यह केवल आपकी जानकारी के लिए लिख रहा हूँ और कोई उद्देश्य नहीं। जिस किसी भी उपन्यास में कोई भी उपमा जो दुबारा आ गई हो नोट कर लेना। दूसरे संस्करण में सुधार लूँगा।

इन्जीनियर साहब को मेरा नमस्ते कहिए।—'नमस्ते' वही प्राचीन !!!

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(१५)

झाँसी

१७. २. १९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

'ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्मा जी' पुस्तक मिल गई। आपको धन्यवाद क्या दूँ ? प्रकाशक को धन्यवाद।

अभी तो इधर-उधर से ही थोड़ी पढ़ी है। अवकाश मिलने पर अवश्य ही आद्योपान्त पढ़ूँगा।

कानपुर के एक श्री शिवकुमार मिश्र ने मेरे ऊपर एक मोटी सी पुस्तक लिखी है। आई और एक दिन मेरे पास रही, थोड़ी सी पढ़ पाई कि एक मित्र उठा ले गए। इस पुस्तक को आप खरीदना मत। जैसे ही मेरे पास लौटी आपके पास भिजवा दूँगा। उन्होंने 'गढ़ कुण्डार' के अन्त के बारे में लिखा है कि मुझे तारा और दिवाकर का ब्याह करा देना चाहिए था। शायद यह भी चाहते कि सौ पचास भले आदमियों की बरात और भोजनपान भी बना देता। जो उस युग में हो ही नहीं सकता था कैसे करा देता ? आपने इस सम्बन्ध में ठीक लिखा है।

'बिराटा की पद्मिनी' के अन्तिम परिच्छेदों के बारे में कुछ इस तरह की कहते हैं—

'वर्मा जी रूढ़िवादी हैं।' मैंने पद्मिनी को सेमी ह्यूमन सेमी डिवाइन चित्रित किया है न। डाक्टर सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने 'मृगनयनी' इत्यादि उपन्यासों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उससे तो मैं 'रूढ़िवादी' नहीं रहता।

पढ़कर हँसी आई थी और अपने इन आलोचकों पर थोड़ा सा तर्स। खैर यह तो मेरे आपके बीच की बात रही।

'अचल मेरा कोई'—आपको बहुत बहुत पसन्द आया यह जानकर मुझे बड़ा

हर्ष हुआ। आप उस पर कुछ अधिक लिखेंगे अवश्य पढ़ूँगा। 'अचल मेरा कोई' —सच्ची घटना पर आधारित है। बात सन् ४३, ४४ की है। कानपुर के एक परिवार से सम्बन्ध रखती है। मैंने परिचय में बात गोल कर दी है। मैं नहीं चाहता था कि सुधाकर के असली रूप का जी दुखाया जावे।

जिन सामाजिक समस्याओं (स्त्री-स्वातन्त्र्य सम्बन्धी विशेषत:) को ध्यान में रखकर मैंने कहानी घुनी बुनी है वे पाठकों की समझ में सहज ही उतर जावेंगी और शायद पाठकों को उनके हल ढूँढ़ने में भी कुछ सहायता मिल जायगी ऐसा मेरा विश्वास है। आपके पत्र में भी इसी का संकेत है।

आपको शायद यह पहले न बतलाया हो कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'अचल मेरा कोई' पर २०० रु० का पुरस्कार दिया था। उन दिनों आसाम के बाढ़ ग्रस्त लोगों की सहायता करने पर बहुत आग्रह था। गाँव में था। पैसे की जरूरत नहीं मालूम हो रही थी तो मैंने यह रकम बनारस से सीधी वहीं भिजवादी। जहाँ तक याद आता है का० ना० प्र० सभा ने इस उपन्यास को उस समय तक के पाँच वर्षों के भीतर के उपन्यासों में सर्व श्रेष्ठ बतलाया था। परन्तु मुझे यह सर्टीफिकेट अच्छा नहीं लगा था क्योंकि 'लक्ष्मीबाई' और 'कचनार' इस उपन्यास से पहले लिख चुका था।

पर हाँ है अपने अपने मन की रुचि की बात।

इन्जीनियर साहब को मेरा नमस्कार कहिये।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(१६)

झाँसी

२३. २. १९५५

प्रिय भाई सिंहल जी,

पिछला पत्र मिला होगा। 'बीरबल' नाटक भेज रहा हूँ। इसके पढ़ने पर आपको पता लग जायगा कि रूढ़िवादी हूँ या क्या। एक आलोचक का हवाला देकर मैंने पिछले पत्र में चर्चा की थी।

मैं अपनी बात कहने का माध्यम कभी उपन्यास को बनाता हूँ, कभी नाटक को। आप मेरे कुछ नाटक भी पढ़ लें तो आपको अपना थीसिस लिखने में सहूलियत रहेगी। 'बीरबल' नाटक ऐतिहासिक है। इसलिये भी भेज रहा हूँ। उसमें कुछ समस्यायें हैं।

इंजीनियर साहब को नमस्कार।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(१७)

झाँसी
२६.२.१९५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

आपका २३।२ का पत्र मिला। आपका कॉलेज मैगजीन मिल गया। पहले अपने सम्बन्ध वाला लेख पढ़ा। स्वाभाविक बात। फिर कुछ अन्य लेख पढ़े— हिन्दी अंग्रेजी के भी। मुझे पत्रिका बहुत पसन्द आई।

आप सबको मेरी हार्दिक बधाई। 'अचल मेरा कोई—' को आप एक दो बार और पढ़ लेंगे। ऐसी आशा है। आपके उठाये प्रश्नों पर मिलने पर बात करूँगा। अचल के चरित्र के सम्बन्ध में सांकेतिक तौर पर निशा और कुन्ती ने जो कुछ कहा है उसे फिर पढ़ लेना। अचल जैसा आदमी मैंने देखा है— यानी दूर का एक सम्बन्धी ही है ! उसने भी लगभग वही किया !! परस्थिति का अन्तर अवश्य थोड़ा सा है। कुन्ती का आत्मघात करना भी एबनारमल की परिधि में आता है। मुझे जो समस्या पाठक के गले उतारनी है उसके लिये कुछ इसी प्रकार के व्यक्तियों का उपयोग किया है। कुन्तीवाली घटना भी सच्ची है जैसा कि मैंने आपको लिखा है।

अच्छा तो अब मिलने पर ही अधिक चर्चा होगी, क्योंकि लिखने में तो बहुत थोड़ा ही आ सकता है।

आशा है आप स्वस्थ हैं। हाँ 'बड़े भैया' वाला लेख पूरा पढ़ लिया। बहुत अच्छी तरह लिखा गया है। छापे की एक भूल हो गई है। 'सेनापति ऊदल' नाटक १९०७ में लिखा था १९०४ में नहीं।

इंजीनियर साहब को नमस्कार

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(१८)

झाँसी
२५.७.५६

प्रिय भाई सिंहल जी,

दो दिन के लिये मैं भी नैनीताल गया था। एक मीटिंग के लिये गया था। उधर भी इन गरमियों में जाना पड़ा।

आपकी चिट्ठी जिस समय आई उस समय, अकस्मात् ही कहना चाहिये, मैं आपकी बाबत सोच रहा था।

मुझे हर्ष है कि आपको 'अमरबेल' उपन्यास अच्छा लगा । गाँवों और अधिकांश पात्रों के नाम भर बदल दिये हैं। घटनायें सच्ची हैं। बिक्रम और उदेता पात्र ज्यों के त्यों हैं—नाम सच्चे हैं। बिक्रम ने जो कुछ किया है उसको अधिक नहीं बढ़ाया। उतना ही उपन्यास के लिये काफी समझा। उसका हाथ एक मुसलमान ने तोड़ डाला था। उस मुसलमान को नहीं लाया हूं। दो और हैं वहाँ। ये तीनों घोर प्रतिक्रियावादी हैं। आजकल ठाकुरों (गत ज़मींदारों) के साथ हैं। इनको अच्छा बनाकर पेश करना झूठ होता । ज्यों का त्यों पेश करता तो लोग कहते कि मुसलमानों को गिराने की कोशिश की। हमारे यहाँ के गाँवों में इस उपन्यास का खूब प्रचार हुआ हैं, क्योंकि लोगों को बहुत सी घटनायें मालूम हैं। यदि उन मुसलमानों को 'भला' बनाकर खड़ा करता तो उपन्यास की अपील कमजोर पड़ जाती। जब आप मिलेंगे तब कुछ घटनायें सुनाऊँगा।

आप तो दो तीन महीने उपरान्त ही आ सकेंगे । ठीक है, जब बहुत सा लिखलें तभी मिलना ठीक रहेगा।

इसी बीच में मैं भी इधर उधर की यात्रायें समाप्त कर लूंगा।

आशा है आप स्वस्थ हैं।

इन्जीनियर साहब को मेरा नमस्कार।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

(१९)

झाँसी

२१.१२.५६

प्रिय भाई शशिभूषण जी,

१६।१२ का पत्र मिला।

मेरे उपन्यासों के जितने पात्र हैं–वे सब मेरे जीवन के अनुभवों के परिणाम हैं। उनमें से बहुत से तो मेरे सम्पर्क में आये हैं । फ़िज़ियाग्नामी पर एक पुस्तक कुछ वर्ष हुये पढ़ी थी। उसके कुछ निष्कर्षों से मैं सहमत नहीं हूं और न विक्टर ह्यूगो की इस धारणा या भावना से कि कुरूप जन ही उत्कृष्ट होते हैं, और न वाल्टर स्काट के इस विश्वास से कि सुरूप ही भले या वीर होते हैं।

श्री कृष्ण प्रताप जी को मैं कभी नहीं भूला। उन्हीं के घर तो उस दिन आचार्य जुगल किशोर और उनकी पत्नी एवं श्री टी० एल० महेन्द्र से जो मेरे

पुराने परिचित हैं भेंट हुई थी। अब की बार जब लखनऊ जाऊँगा, उनसे मिलूंगा। आजकल 'स्वतन्त्रता संग्राम—१८५७' पर फिल्म-स्क्रिप्ट लिख रहा हूं। उत्तर-प्रदेश-सरकार उसके आधार पर एक बड़ा सा फिल्म बनाने जा रही है। इसके उपरान्त एक नाटक लिखने का विचार है फिर उपन्यास।

इंजीनियर साहब को नमस्कार।

स्नेही
वृन्दावनलाल वर्मा

(२०)

झाँसी
६. ७. १६५७

प्रिय भाई सिंहल जी,

पहले कुछ अस्वस्थ रहा। फिर आवश्यक कार्य से भोपाल जाना पड़ा। एक सप्ताह उपरान्त लौटा हूँ। आपके पत्र के उत्तर में इसी कारण विलम्ब हुआ।

सन् १६२० से १६५७ के बीच में इतनी घटनायें घटी हैं, मेरे अनुभव में इतने विलक्षण या असाधारण-से नारी नर आये हैं कि अत्यन्त सूक्ष्म में भी उनका वर्णन करना सम्भव नहीं है। कुछ बहुत थोड़ी सी आप बीती घटनायें यहाँ लिखे देता हूं—

(१) सन् १६२२ में झाँसी के कुछ काँग्रेसी नेताओं ने मेरे एक परममित्र का जो क्षयग्रस्त थे 'बाईकाट' किया जिसके कारण उनका देहावसान हो गया। मैं काँग्रेस से अलग हो गया और इन नेताओं का विरोध करता रहा। अहिंसा की लम्बी चीख-पुकार करने वाले भी कितना घोर कर्म कर सकते हैं यह मन में बैठता गया। 'साधुनं प्रति साधुनं' बिलकुल ठीक है—जो इसका पालन न करे वह नीच है। परन्तु हर एक के प्रति पूर्ण अहिंसा का सिद्धान्त मुझे नही जँचता। कभी कभी हिंसा जरूरी ही नहीं, बिलकुल उचित भी है।

(२) सन् १६४२ के मई मास में झाँसी से २७, २८ मील की दूरी पर एक मित्र के भांजे की बरात में झाँसी से ताँगे से गया। रात को ८, ६ बजे पहुँच पाया। बरात में तड़क-भड़क थी पचास पचपन बन्दूकें और इतने ही गैस के हण्डे होंगे। जहाँ बरात गई थी वह गाँव पहाड़ी पर बसा है। बरात का डेरा एक दूसरी पहाड़ी के नीचे वृक्ष कुंज में था। दूल्हे पर ४०, ५० हजार के गहने थे। निकट ही डाकुओं का एक बदनाम बड़ा गिरोह था। मुझे मार्ग में ही उनकी कुछ आहट मिल गई थी।

पहुँचते ही मैंने अपने मित्र से कहा—'केवल दो डाकू इस बरात को लूट सकते हैं।'

मित्र ने आश्चर्य प्रकट किया—'कैसे ?'

मैं ने बतलाया—'दो डाकू इसी पहाड़ी पर किसी ओट में बैठकर दो तीन बन्दूक वालों को मार दें और ४, ५ हण्डे फोड़ डालें तो सब भाग जायेंगे, दूल्हा लूट लिया जावेगा, ऐसे।' तब क्या किया जाय ? यह सवाल उठा। मैं ने सुझाया—'एक सन्दूक में बन्द करके सब गहना डेरे पर छोड़ जाओ। केवल मैं और मेरा शिकारी साथी (करामात उसका नाम है—यही बाद का 'इब्न करीम' 'गढ़ कुंडार' में बनाया गया है) बन्दूकें लेकर यहाँ रहेंगे और लेटे लेटे सन्दूक की रक्षा करेंगे। आप तिलक आदि का दस्तूर लड़की वाले के घर जाकर कराइये।' मित्र मान गये। बरात चली गई हम केवल दो वहाँ, उस सन्दूक के पास रह गये। डेरे में अंधेरा कर दिया और बन्दूकें साधे हुए हम दोनों लेट गये। डाकू निकट ही टौरियों में छिपे थे। मैंने अपने जीवन की सबसे बड़ी मूर्खता की; मैं चिल्लाया—'है तुममें से किसी में दम तो आओ ! गहना रक्खा है !! और बन्दूकें भी तैयार हैं !!!' इस चिनौती को दुहराया भी। पहले दर्जे की मेरी मूर्खता। परन्तु परमात्मा की कृपा थी। जीवन में कुछ करने को बाकी था। इस लिये डाकू वहाँ से धीरे धीरे चले गये। सबेरा होने के पहले बरात डेरे पर लौट आई। मित्र को सब हाल सुनाया। उनकी आँखों में आँसू आ गये, और जब दो तीन घण्टे बाद समाचार मिला कि उन डाकुओं को पुलिस ने घेरने का प्रयास किया और वे पुलिस के घेरे से निकल गये तब वह कुछ भयभीत हो गये थे ! था न यह मेरी परम मूर्खता का कृत्य ?

(३) १९२४ के दिसम्बर में रात के समय बेतवा नदी के तीर से शिकार की टोह से लौट रहा था कि एक गहरे खड्ड में जा गिरा। बन्दूक के दस्ते से सध गया अन्यथा हाथ पैर टूट जाते, परन्तु धक्का इतने जोर का पड़ा कि बायें कान का पर्दा फट गया। दो महीने झाँसी में अच्छा से अच्छा इलाज कराया परन्तु कुछ न हुआ। कान के पीछे की हड्डी की छोटी सी कोठरी (सैल) में पीव पड़ गई। लखनऊ जाना पड़ा। पं० बदरीनाथ भट्ट मेरे मित्र उन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय में थे। खबर लगते ही आये और मुझे प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर निगम के पास ले गये। उन्होंने कहा कि १२ घंटे की देर लगाते तो तुम्हारे मित्र वर्मा जी समाप्त थे। चीरफाड़ का किया जाना तै हुआ। फीस भी। मैंने डाक्टर को चीरफाड़ के पहले उनकी फीस दिलवा दी, क्योंकि मुझेबहुत कम आशा थी कि बच पाऊँगा—हालत बहुत खराब हो चुकी थी। डाक्टर ने मुझे क्लोरोफार्म दिया। मैं देर में बेहोश किया जा सका। डाक्टर मेरे मित्रों से जो मुझे

झाँसी से ले आये थे, पूछा,—'क्या वर्मा जी शराब पीते हैं ?' उन्होंने बतलाया —'नही कभी नहीं', फिर मैं बेहोश हो गया । चीरफाड़ रात के १० बजे से आरम्भ हुई थी । मुझे चेत सबेरे आया । बीमारी ने ६ महीने गड़बड़ में डाला । परन्तु अस्पताल छोड़ने के बाद ही मैं ने पहला साहसिक काम किया था वह एक बड़े सुअर की शिकार की ।

(४) शिकार कैसे और क्यों शुरू की यह आपने मेरी, 'अपनी कहानी' में पढ़ लिया होगा । यहाँ दुहराना व्यर्थ है । सन् १९२७ की १७ वीं अप्रैल के दिन 'गढ़ कुंडार' का लिखना आरंभ किया था । जुलाई के 'आजकल' में उसका करण कारण प्रकाशित हो गया है । पढ़ लीजिएगा । उस लेख में और बातें भी हैं ।

(५) सन् १९३० में कृषि और बागबानी का खब्त सवार हुआ । ऐसा खब्त कि उसे भूत प्रेत ही कह दिया जाय तो गलत न होगा । खब्त को मैंने अपने दस बारह वर्ष सौंपे । प्रयोग पर प्रयोग करता चला गया । वकालत में लगभग साठ हजार रुपये कमाये थे वे सब स्वाहा कर दिए और साठ सत्तर हजार का ऋणी हो गया । यह ऋण अन्त में ब्याज समेत एक लाख की चोटी पर पहुंच गया !! सन् १९३२ तक तो कुछ लिख पाया, फिर १९४२ तक केवल एक नाटक 'धीरे धीरे' लिख सका, बाकी के समय में उतना ऋण सिर पर सवार कराता चला गया । पर एक बड़ी चीज भी हाथ की पकड़ में आई । वह चीज है पैपेन । पैपेन पपीते के दूध से तैयार की जाती है । मैंने जो पैपेन बनाई वह तब तक सर्वश्रेष्ठ समझी जानी वाली जर्मन पैपेन से भी बढ़िया निकली । उसका रासायनिक विश्लेषण न्यूयार्क और लन्दन में किया गया । मैं फूल उठा, क्योंकि वहां से लाखों रुपये की पैपेन की माँग आई । दस हजार पेड़ पपीते के लगा लिये थे । उत्तरप्रदेशीय सरकार को सिंचाई की सुविधा के लिए प्रार्थना पत्र भेजा कि ऐसी पैपेन बनाई है मैंने ! वहाँ से उत्तर आया —पैपेन यहाँ बन ही नहीं सकती । मैं ने नमूना भेजा तो सरकार चकित हो गई । प्रशंसा-पत्र आ गया, परन्तु सिंचाई के नाम पर पानी की एक बूँद नहीं! मैंने बड़े हठ और व्यय पर कुयें खुदवाये थे । उनमें पानी न रहा । इधर इन्द्र देव रूठ गये । परिणाम यह हुआ कि दस हजार पपीते सूख गये । हाथ में केवल प्रशंसा-पत्र रह गये !

मेरे पुत्र चि०सत्यदेव ने अपना प्रेस संभाला जो अभी तक यों ही चल रहा था और मैंने अपनी मूर्खताओं में कमी कर दी । संभाल के क्रम का आरम्भ हुआ ।

(६) सन् १९३६ की जनवरी में मैं झाँसी जिलाबोर्ड का चेयरमैन चुना

गया और सन् १९४८ के अप्रेल तक रहा। इन सवा बारह बरसों में मैं ने भ्रष्टाचार का दमन जिस कठोरता और सावधानी के साथ किया उसको मेरे निन्दक और प्रशंसक जानते हैं। जब बोर्ड छोड़ा तब उसके पास साठ हजार के ऊपर की रकम बचत खाते में थी।

(७) खेती, बागबानी और जिलाबोर्ड के माध्यम से मैं छोटे से छोटे और गरीब से गरीब मजदूरों से लेकर बड़े से बड़े कहलाने वालों के निकट सम्पर्क में आया। एक बार उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर मॉरिस हेलैट से झाँसी में भेंट हुई। बातचीत के सिलसिले में गवर्नर बोला—'यहाँ का किसान सुस्त होता है।'

मेरा खून उबल पड़ा। तड़ाक से मैंने कहा,—'फीमैन्टिल की राय कुछ और है, वह जो उत्तर प्रदेश के बोर्ड ऑव रैवेन्यू का सीनियर मैम्बर था और जिसने 'एग्रीकल्चर इन यू० पी०' पुस्तक लिखी है। उसने बुन्देलखण्डी किसान के लिये लिखा है कि वह प्रकृति से सदा संघर्ष करता रहा है, प्रकृति उसे छलती रहती है, परन्तु वह हिम्मत नहीं हारता, कठिनाइयों के मुकाबिले में डटा रहता है।' हेलैट ने क्षमा माँगी।

ये बहुत थोड़े से लिख दिये।

आपने पूछा कि मेरे पूर्वजों में कोई साहित्यकार हुआ या नहीं? प्रपितामह दीवान आनन्दराय को (रानी लक्ष्मीबाई ने 'राय' से 'राव' कर दिया था) कविता करने का शौक था। मैंने उनकी कवितायें छुटपन में पढ़ी थीं, परन्तु अब गाँठ में एक भी नहीं है। हाँ उनकी एक कविता हम लोग कभी नहीं भूले—केवल एक वाक्य है, परन्तु कौन सा कड़खा उसकी बराबरी करेगा?—

रानी लक्ष्मीबाई का देहान्त ग्वालियर की लड़ाई में हो गया। लगभग दो महीने उपरान्त अँग्रेजी सेना का दस्ता टीकमगढ़ से मऊ होकर झाँसी आना चाहता था। दीवान आनन्दराव ने सामना करने की ठानी। कुछ बूढ़ों ने समझाया,—'रानी मारी गईं अब क्या रह गया है?'

'अभी मैं तो हूँ, जब तक आनन्दराव जीवित है अँग्रेज यहाँ नहीं आने पायगा।' उन्होंने कहा था। और वह लड़ते लड़ते मारे गये। इसीलिए मैंने 'लक्ष्मीबाई' उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि '·· आनन्दराव ने रानी के लिए लड़ते लड़ते गोली खाई और मेरी कलम ने थोड़ी सी स्याही, तो पाठक इस अन्तर को न भूलें।'

'बिराटा की पद्मिनी' में मुख्य घटना पद्मिनी और नवाब कालपी की है जो एक ही युग की ऐतिहासिक घटना है। दूसरी घटनायें भी ऐतिहासिक हैं। उन्हें सहायक घटनाओं के रूप में एक युग से उठा कर दूसरे में रख दिया गया है।

उपन्यास की परिस्थितियाँ सब ऐतिहासिक हैं और वातावरण को तत्कालीन बनाये रखने में पूरी सावधानी बरती गयी है ।

कचनार की घटनायें १७९० से १८०० ई० के बीच की हैं ।

भाषा साधन है, साध्य नहीं । अपनी बात पाठक के पास पहुँचाने के लिए चुस्त भाषा के प्रयोग का पक्षपाती हूँ । बी० ए० में संस्कृत लिये था परन्तु मैं संस्कृत-बोझिल हिन्दी का पक्षपाती नही हूँ ।

'मेरी भाषा' पर जो आलोचनायें छपी हैं उनका मैं कायल नहीं हूँ । जवाब किसी को देता नहीं । क्यों समय नष्ट करूँ ? इन आलोचनाओं को कितने लोग पढ़ते हैं । मेरे उत्तर को ही कितने पढ़ेंगे ?

बुंदेलखण्डी में जैसे कि हिन्दी की अन्य बोलियों में भी, कुछ शब्द और मुहाविरे बड़े ही अर्थपूर्ण और सुन्दर हैं । इन्हें व्यापकता मिलनी चाहिए । इनसे हिन्दी समृद्ध होगी और हमारी रचनायें जनता—'धरती वाली' जनता—के घरों तक पहुँच जायँगी । बुंदेलखण्डी का प्रयोग स्थानिक रंग और वास्तविकता लाने के लिए करता हूँ ।

स्नेही

वृन्दावनलाल वर्मा

—❀?❀—

परिशिष्ट २

श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों की रचना-काल-क्रम की दृष्टि से सूची[1]—

क्रम सं०	उपन्यास	रचनाकाल
१	गढ़ कुंडार	सन् १९२७ (१७ अप्रेल से १७ जून तक)
२	लगन	१९२७ (१९ या २० जून से २८ या २९ जून तक)
३	संगम	१९२७
४	प्रत्यागत	१९२७
५	कुंडली चक्र	१९२८
६	प्रेम की भेंट	१९२८
७	बिराटा की पद्मिनी	१९३३ (सन् २९ में सामग्री-संचय, रचनाकाल ३० से, ३३)
८	मुसाहिबजू	१९३७
९	कभी न कभी	१९४२-४३
१०	झांसी की रानी	१९४६
११	कचनार	१९४६ (१६ अप्रेल से १ जून तक)
१२	अचल मेरा कोई	१९४७ (३१ मार्च से २१ अप्रेल तक)
१३	माधवजी सिंधिया	१९४८ (१७ अप्रेल को समाप्त)
१४	टूटे काँटे	१९४९
१५	मृगनयनी	१९५० (१४ जुलाई को समाप्त)
१६	सोना	१९५० (१४ अक्टूबर से ६ नवम्बर)
१७	अमरबेल	१९५२ (१५ दिसम्बर को समाप्त)
१८	भुवन विक्रम	१९५५ (१९ दिसम्बर को समाप्त)
१९	अहिल्याबाई	१९५५

---

१. डा० रामविलास शर्मा के सौजन्य से—शर्मा जी ने यह सूची वर्मा जी के उपन्यासों की उपलब्ध पांडुलिपियों तथा वर्मा जी एवं उनके सुपुत्र श्री सत्यदेव वर्मा से प्राप्य सूचनाओं के आधार पर तैयार की है।

परिशिष्ट ३

(क) श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास

प्रबन्ध में प्रयुक्त वर्मा जी के उपन्यासों की प्रकाशक तथा संस्करण सहित सूची

१	गढ़ कुंडार	सप्तमावृत्ति, सं० २०१० गंगा ग्रंथागार, लखनऊ ।
२	लगन	द्वितीयावृत्ति, सन् १९५१ मयूर प्रकाशन, झाँसी
३	संगम	द्वितीयावृत्ति, सं० १९९६ गंगा ग्रंथागार, लखनऊ ।
४	कुंडली चक्र	षष्ठावृत्ति, सं० २०११ गंगा ग्रंथागार, लखनऊ ।
५	प्रेम की भेंट	तृतीयावृत्ति, सन् १९५४ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
६	प्रत्यागत	प्रथमावृत्ति, सन् १९५१ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
७	बिराटा की पद्मिनी,	पंचमावृत्ति, सं० २००८ गंगा ग्रंथागार, लखनऊ ।
८	मुसाहिबजू	प्रथमावृत्ति, सन् १९४६ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
९	कभी न कभी	प्रथम संस्करण, सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर।
१०	झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई	तृतीयावृत्ति, सन् १९४९ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
११	कचनार	तृतीय संस्करण, सन् १९५४ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
१२	अचल मेरा कोई	तृतीय संस्करण, सन् १९५४ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
१३	मृगनयनी	सातवीं आवृत्ति, सन् १९५५ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।

१४	सोना	प्रथम संस्करण, सन् १९५२ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
१५	अमरबेल	प्रथम संस्करण, सन् १९५३ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।
१६	टूटे काँटे	प्रथम संस्करण, सन् १९५४ मयूर प्रकाशन, झांसी ।
१७	अहिल्याबाई	प्रथम बार, सन् १९५५ मयूर प्रकाशन, झाँसी ।

(ख) सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

१—अपनी कहानी (अपूर्ण, अप्रकाशित) वृन्दावनलाल वर्मा

२—काँग्रेस का इतिहासः खंड २...डा० पट्टाभि सीता रामय्या

३—ऐतिहासिक उपन्यासकार वर्मा जी...शशिभूषण सिंहल

४—काव्य के रूप...बा० गुलाबराय

५—झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई...दत्तात्रय बलवंत पारसनीस
(मराठी ग्रंथ का अनुवाद)

६—दस्तूर देही...(मिसिल बन्दोबस्त, १८६२) बिराटा गाँव , मोंठ तहसील—परगना

७—दिल्ली सल्तनत...(७११ से १५२६ ई० तक) डा० आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव

८—बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास...गोरेलाल तिवारी

९—ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन...डा० सत्येन्द्र

१०—शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा ..विशम्भरनाथ त्रिपाठी

११—समीक्षा के सिद्धान्त...डा० सत्येन्द्र

१२—सामान्य भाषा-विज्ञान...डा० बाबूराम सक्सेना

१३—साहित्यालोचन...डा० श्यामसुन्दरदास

१४—सिद्धान्त और अध्ययन...बा० गुलाबराय

१५—हिन्दी-उपन्यास...शिवनारायण श्रीवास्तव

१६—हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद...त्रिभुवनसिंह

१७—हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण ..डा० किरण कुमारी गुप्ता

१८—हिन्दी साहित्य का इतिहास...पं० रामचन्द्र शुक्ल

१. तपोभूमि

२. इतिहासाचीं साधनें—भाग १

(ग) सहायक पत्र-पत्रिकाएँ

१—आजकल (मासिक) दिल्ली, अगस्त, १९५४ तथा जुलाई, १९५७
२—आलोचना (मासिक) दिल्ली, अक्टूबर १९५३
३—सरगम (मासिक) बम्बई, ९ मार्च, १९५१
४—साहित्य-सन्देश (मासिक) आगरा, अक्टूबर-नवम्बर, १९४०

Books of Reference (English)

1. A History of English Literature—Arthur Compton-Ricket
2. A History of English Literature—Emile Legouis & Louis Cazamian.
3. An Introduction to the Study of Literature—W. H. Hudson.
4. A Treatise on the novel—Robert Liddell
5. Evolution of Indian Culture—B N. Lunia
6. Educational Psychology—James S. Ross
7. History of Medeival India—Dr. Iswari Prasad
8. Indore Gazetteer
9. Jhansi—A Gazetteer Being Volume XXIV of the District Gazatteers of the United Provinces of Agra and Oudh—Compiled and Edited by D. L. Drake—Brockman I. C. S.
10. Key's History of Sepoy War in India—Vol. III.
11. Life and Life Work of Devi Ahilyabai Holkar—V. V. Thakur
12. Later Moguls—Irvine—Vol. III
13. Modern Educational Psychology—B. N. Jha
14. New History of Marhathas—G. S. Sardesai
15. Psychological Tests of Educable capacity
16. Studies in Indian History Part II—Elliot and Dowson—Sushil Gupta (India) Ltd. Calcutta.
17. The Encyclopaedia Britannica—Vol. XIX.
18. The History of India told by its own Historians-The Posthumous Papers of the Late Sir H. M. Illiot, K. C. B.—Edited & Cont. by Prof. John Dowson—Vol. 7
19. The Imperial Gezatteer of India—W.W. Hunter C. S. I., C. I. E., L. L. D.

20. The Imperial Treasury of the Indian Moguls—Abdul Aziz
21. The Revolt of Central India—(1857-1859)—Compiled in the Central Intelligence Branch, Division of the chief of staff, Army Head Quarters (India) Shimla Govt.

—:o:—

परिशिष्ट ४

वर्मा जी के नव प्रकाशित दो उपन्यास

भुवन विक्रम (प्र० सन् १९५७)
एवं
माधव जी सिंधिया (प्र० सन् १९५७)

१—भुवनविक्रम

कथावस्तु—

१—उद्दण्ड राजकुमार भुवनविक्रम के सुधार तथा उसके एवं गौरी के सफल प्रणय की कथा 'भुवनविक्रम' की मुख्य कथा है। भुवन अपने पिता, अयोध्या के राजा रोमक के अत्यधिक लाड़-प्यार से बिगड़ा उच्छृङ्खल किशोर है। उसके हृदय में शिक्षक मेघ के प्रति आस्था नहीं है और न मेघ में अध्यापक जैसी योग्यता। भुवन के जुए, शिकार तथा उद्दण्डता से चिन्तित हो रोमक उसे नैमिषारण्य के ऋषि धौम्य की सेवा में शिक्षार्थ सौंप आता है। धौम्य के महान् व्यक्तित्व के प्रभाव तथा अनुशासन के फलस्वरूप छः वर्षों में भुवन में संतुलन एवं एकाग्रता का उदय होता है। वह स्वयं स्वीकार करता है, 'गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का मार्ग दिखलाया है।' वह पिता रोमक की शूद्र कपिंजल के वध की स्वार्थमयी योजना को विवेकपूर्वक रोककर धौम्य की दृष्टि में 'स्नातक' हो जाता है।

भुवन नैमिषारण्य में अयोध्या की एक सुन्दरी, गुणवती निर्धना युवती गौरी के प्रति आकृष्ट हुआ था किन्तु धौम्य के अनुशासन के कारण उसे मूक हो जाना पड़ा। द्विविधा-ग्रस्त गौरी अयोध्या लौटते समय माता-पिता को मार्ग की बाढ़ में खो कर जीविकोपार्जन के लिए अयोध्या में विदेशी फणिश नील की हृदयहीना कन्या हिमानी की सेविका बनकर रहती है। हिमानी की भुवन से कभी नहीं बनी, वह भुवन से प्रतिशोध चाहती थी। हिमानी रोमक के विरोधी दल की प्रेरणा से भुवन से विवाह का षड्यन्त्र रचाती है और विवाह के अवसर पर उसके वध की योजना बनाती है। गौरी एवं कपिंजल द्वारा रहस्य से अवगत हो भुवन तथा उसके सहयोगी हिमानी की योजना को ठीक अवसर पर असफल कर देते हैं। तदन्तर बिछड़े हुए भुवन को गौरी पा लेती है, दोनों

विवाहसूत्र में बँध जाते हैं।

२—दूसरी कथा है अयोध्या के घोर अकाल तथा राजा रोमक की अपदस्थता एवं पुनः राज्यप्राप्ति की। अयोध्या-जनपद अनावृष्टि के कारण पाँच वर्षों से अकाल की पीड़ा भोग रहा था। रोमक की अपूर्ण योजनाओं, कम वेतन की नीति तथा स्वार्थबुद्धि से श्रमिक वर्ग असन्तुष्ट हो उठता है। रोमक धनिकों के अन्न-भांडारों से पीड़ितों का पेट भरने के फेर में दोनों का अप्रिय बन बैठता है। वह उदार है, विदेशी व्यापारियों की दास-प्रथा तथा ब्राह्मणवादियों की शोषक 'शूद्र-व्यवस्था' का समर्थक नहीं है। भुवन का शिक्षक मेघ शिष्य की उद्दण्डता में रोमक की पृष्ठ-पोषकता तथा उसकी 'शूद्र-नीति' से क्षुब्ध हो विरोधियों का अग्रणी बन जाता है। मेघ के कूटनीतिक प्रचार के फलस्वरूप जनपद-सभा स्थिति सुधरने तक रोमक को राज्य-पद से च्युत कर शासन-शक्ति मेघवर्ग को सौंप देती है। अपदस्थ निराश रोमक अकाल-संकट में अपना दायित्व खोजने तथा जनमत से अवगत होने के लिए जनपद का विस्तृत पर्यटन करता है। अन्त में ऋषि शौम्य का निरालसता, दूरदर्शिता तथा स्वार्थहीनता का उपदेश पा उसे वास्तविक प्रकाश मिलता है। बोध होता है कि दुर्दिनों का कारण किसी शूद्र का तपस्या कर उठना नहीं वरन् अपने दोषों की वृद्धि है। फलस्वरूप निस्पृह रोमक अपनी प्रायः सभी सम्पत्ति और भूमि अकाल-पीड़ितों को दान कर देता है। दान का क्रम अखंड रखने के लिए वह फणिश व्यापारी नील से ऋण की याचना करता हैं। नील मेघका अनुयायी है, यह वर्ग शक्तिलोलुप है, रोमक को पुनः जनपद का राजा नही देखना चाहता। दानी रोमक की बढ़ती लोकप्रियता से चिंतित हो ये लोग छल-छद्म का आश्रय लेते हैं। नील भुवन से अपनी कन्या हिमानी के विवाह का कपटयुक्त प्रस्ताव भेज कर भारी दहेज का वचन दे रोमक-भुवन की हत्या का षड्यंत्र रचता है किंतु अन्त में षड्यंत्र खुल जाने पर असफल मेघवर्ग को देश से निष्कासन का दण्ड मिलता है और कर्तव्यपालन के इच्छुक जनप्रिय रोमक को पुनः राज्य मिल जाता है।

३—तीसरी कथा है 'शूद्र' कपिंजल की दासता, मुक्ति एवं तपस्या की। कपिंजल अकाल में नील का ऋणी हो उसका दास बन जाता है। नील और हिमानी के अत्याचारों से पीड़ित हो वह अयोध्या से भाग नैमिषारण्य में ऋषि धौम्य की शरण लेता है। धौम्य तथाकथित शूद्र कपिंजल में तपस्वी के गुण लक्ष्य कर उसे शिष्य बना लेते हैं। कपिंजल श्रेष्ठ तपस्वी सिद्ध होता है, शूद्र की तपस्या का औचित्य एक काल तक विवादास्पद विषय बना रहता है।

नील का पहला 'रिन' चुकाने के लिए जटा, दाढ़ी वाला कपिंजल पुनः

उसका सेवक बन जाता है। वहाँ गौरी की सहायता से भुवन-हिमानी के विवाह का रहस्य जानकर भुवन को षड्यन्त्र से सचेत कर देता है। अन्त में बन्दी नील को अपने सोने के सिक्के सौंप कर उसकी दासता के 'रिन' से पूर्णतया मुक्त होता है।

\+ × × +

मुख्य कथा को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, पहला, भुवन का चारित्रिक विकास—उद्दंड से सुशील और विवेकी बनना, दूसरा, भुवन-गौरी का प्रेम, वियोग तथा मिलन। कथा के दूसरे भाग के निर्माण में कई आकस्मिक संयोगों का आश्रय लिया गया है। वे इस प्रकार हैं—

१—गौरी तथा भुवन का प्रेम परिपक्व होता है और ज्यों ही भुवन गौरी की माता को विवाह का वचन देता है तुरन्त ऋषि धौम्य भुवन की गतिविधि को नियंत्रित करते हैं। दोनों का वियोग हो जाता है।

२—जब भुवन स्नातक हो जाता है, गौरी के समक्ष वस्तुस्थिति स्पष्ट होने का अवसर आता है तभी गौरी माता-पिता सहित नैमिषारण्य से अयोध्या के लिये चल पड़ती है यद्यपि गौरी की माता ने भुवन से गौरी से विवाह की सौगन्ध ली थी। अयोध्या जाते समय माता की इस विषय के प्रति नितान्त उपेक्षा स्वाभाविक नहीं।

३—अयोध्या पहुँचने के लिए गौरी के पिता की अस्वाभाविक रूप से शीघ्रता। लोगों के मना करने पर भी संध्या के समय नदी पार करने के लिए पुत्री, पत्नी सहित पानी में धँस जाता है। फिर ठीक नदी के बीच में एकाएक बाढ़ का आना, माता-पिता का बह जाना और गौरी का बच रहना। बहते समय वृद्ध का गौरी को रोमक से लिये कुछ अन्न-वस्त्र का ऋण चुकाने का स्मरण दिलाना। (कदाचित् वृद्ध को ज्ञान था कि उपन्यासकार को गौरी की अभी आवश्यकता है, वह बाढ़ से बच रहेगी और ऋण चुका सकेगी)

४—बाढ़ से छुटकारा पा गौरी मार्ग में या अयोध्या में भुवन से मिलने का प्रयत्न नहीं करती वरन् कभी 'अच्छा भाग्य' सामने आने की आशा में अन्यत्र नौकरी कर दिन काटना चाहती है। नौकरी हिमानी के यहाँ करती है जहाँ भुवन के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है। अन्त में षड्यन्त्र की सूचना भुवन आदि को मिल जाने के कारण षड्यन्त्रकारी असफल होते हैं, भुवन और गौरी की भेंट हो जाती है।

जीवन में संयोग आते हैं किन्तु शृङ्खलाबद्ध होकर नहीं। फिर उपन्यास में अनेक संयोगों के आधार पर कथा का विकास पाठक की सहज बुद्धि को ग्राह्य होगा, इसमें सन्देह है। वास्तव में यहाँ पात्र एवं परिस्थितियाँ पूर्वनिश्चित

कथा के अधीन हो जाने के कारण स्वतः पूर्णतया विकसित होने का अवसर नहीं पा सके हैं। इन संयोगों से पाठक कथा के आगामी मोड़ों का आभास पा जाता है। इस आभास-प्राप्ति के उपरान्त कथा में उसके लिए विशेष कुतूहल नहीं रहता, उसकी दृष्टि कथानिर्वाह की विधिमात्र पर केन्द्रित हो जाती है।

रोमक की विशद कथा उपन्यास में प्रासंगिक है। दोनों कथायें मुख्य तथा प्रासंगिक, प्रारम्भ तथा अन्त में साथ चलती हैं केवल मध्य में दूर हो जाती हैं। रोमक से जनता असंतुष्ट है किन्तु भुवन की उद्दंडता से अप्रसन्न हो मेघ, नील, हिमानी तथा दीर्घबाहु उसके विरोधी बनते हैं। भुवन की शिक्षा-दीक्षा के प्रश्न को लेकर रोमक ऋषि धौम्य के सम्पर्क में आता है। ऋषि धौम्य 'शूद्र-तपस्या' सम्बन्धी समस्या पर अपना सन्देश रोमक को भुवन के माध्यम से ही देते हैं। अन्त में मेघवर्ग का षड़यन्त्र भुवन तथा रोमक को दृष्टि में रखकर रचा जाता है, भुवन के हितैषियों द्वारा रहस्योद्घाटन पर भुवन के साथ रोमक और उसके राज्य की भी रक्षा होती है।

कपिंजल की कथा का सम्बन्ध उक्त दोनों कथाओं से प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त, तीनों स्थितियों में स्थापित होता है। कपिंजल की दीनावस्था से भुवन तथा रोमक दोनों को सहानुभूति है। इसी प्रश्न पर दोनों सब के कोपभजन बनते हैं। मध्य में शूद्र कपिंजल की तपस्या का प्रश्न पिता-पुत्र के विवेक और निःस्वार्थता की कसौटी बन कर आता है। अंत में कपिंजल की सहायता से दोनों विरोधियों के षड़यंत्र से अपनी रक्षा कर पाते हैं।

ऋषि धौम्य का व्यक्तित्व और उनका आश्रम ऐसा केन्द्र है जहाँ उपन्यास की तीनों कथाएँ आकर मिलती हैं। वहीं पर भुवन सुधरता है, कपिंजल की मुक्ति एवं तपस्या होती है तथा रोमक को नया दृष्टिकोण मिलता है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में भुवन-रोमक की सहायता में धौम्य की बुद्धि तथा उनके शिष्यों का श्रम तत्पर रहता है।

पात्र

भुवनविक्रम लाड़-प्यार में पले उच्छृंखल किशोर के रूप में उपन्यास में पदार्पण करता है। वह पंद्रह वर्ष का सुडौल देहवाला है। हिमानी से प्रथम भेंट उसके असंयत क्रोध तथा मिथ्याभिमान की द्योतक है। अयोग्य चिड़चिड़े उपाध्याय मेघ के प्रति आस्था का अभाव होने के कारण गुरु से कुछ सीखने में उसे रुचि नहीं। तथाकथित गुरु के नियंत्रण से छुट्टी पाकर जुआरी, आवारा और झगड़ालू बन जाता है।

ऋषि धौम्य का शिष्य बनने पर भुवन को आश्रम में सात्विक वातावरण

मिलता है किन्तु अभ्यासगत उद्दण्डता उसमे बनी रहती है। धौम्य का गुरु-गंभीर व्यक्तित्व और सजग नियंत्रण उसे संतुलित, संयमित होने पर विवश कर देता है। भुवन के अंतस्थल के किसी कोने में छिपी आस्था और आत्म-शक्ति जाग उठती है। प्रेयसी गौरी के घर के सामने भिक्षुक रूप में पहुँचकर वह उसे अपनी उपस्थिति जताये या नहीं ? एक ओर गुरु का निषेध और दूसरी ओर हृदय की बेताबी। अंतर्द्वन्द्व में मन डिगा, खाँस कर जताने की इच्छा हुई किंतु भीतर से किसी ने तुरंत कहा—'यह भी एक तरह की भाषा ही है और विद्यार्थी-जीवन वासनाओं के संकलन का समय नहीं है।' गुरु की वही पैनी आँख, वही तेजस्विता सामने।'[1]—भुवन वहाँ अधिक नहीं ठहर सका। इस प्रकार भुवन में आत्म-विश्वास और पौरुष के लक्षण उदित होते हैं।

वास्तव में भुवन में पीड़ित के प्रति दया तथा आत्म-नियंत्रण के मूल तन्तु प्रारंभ से वर्तमान थे। परिस्थितियों ने उसके स्वाभाविक प्रवाह को रोककर ऊपर जड़ता की काई जमा दी थी, केवल उपयुक्त रखवाले की अपेक्षा थी। धौम्य के प्रगतिशील, प्रेरक व्यक्तित्व ने भुवन के जीवन को प्रवाह, निर्मलता और सद्दिशा प्रदान की। वह स्वयं आश्वस्त है, 'गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का मार्ग दिखलाया है।'[2] शूद्र कपिंजल की रोमक द्वारा वध की योजना भुवन की परीक्षा बनकर आती है। एक ओर पिता की राज्यप्राप्ति का प्रश्न है, दूसरी ओर गुरु का दिया हुआ विवेक। वह स्वार्थ की ओर ताकता भी नहीं, विवेक उसका हो चुका है। भुवन का विवेक पिता रोमक के मुँदे नेत्र खोलने में भी समर्थ होता है। अंत में भुवन माता-पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर मृत (?) प्रेयसी गौरी की स्मृति को हृदय-पटल से हटा गर्विता हिमानी को स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। उसका शुद्ध अंतःकरण इस अग्निपरीक्षा में पुकार उठता है—'हे परमात्मा, मुझे उजियाले का मार्ग सुझाओ। मैं अपने वचन से न डिगूँ। मुझे कर्तव्यपालन करने की शक्ति दो, मुझे माता-पिता का ऋण चुकाने योग्य बनाओ···।'[3]

अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्मा जी नारी को पुरुष की प्रेरणा के रूप में स्वीकार करते हैं। हिमानी स्वयं शक्ति से पूर्ण है और अपने समीप के कई पात्रों को प्रभावित करने में सक्षम है किंतु उसकी शक्ति दैवी नहीं, आसुरी है। फणिश रक्त उसकी रगों में प्रवाहित है, भारतीय नारी की कोमलता, करुणा और समर्पण-भावना से अछूता। व्यापारी, ब्याजप्रेमी, दासों के

१—भुवनविक्रम—पृ० १५७
२—भु० वि०—पृ० १७२
३—वही—पृ० २७४

स्वामी अपने पिता नील से क्षुद्रता, स्वार्थपरता तथा कृपणता की थाती उसने पायी है। भुवन से प्रथम भेंट—मुठभेड़—में हिमानी का उद्धत स्वभाव साकार हो उठता है, वह भुवन की आजन्म शत्रु बन जाती है।

हिमानी सरीखी हिंस्र नारी के द्रोह के भाव का चित्रण करते समय उपन्यासकार ने मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म पकड़ की कई घटनाएँ रखकर उसके चरित्र को सजीवता प्रदान की है। हिमानी के घरेलू दास उन लोगों के अत्याचारों से त्रस्त हो भाग जाते हैं। भुवन और उसका पिता राजा रोमक हिमानी के चिर शत्रु हैं। इन शत्रुओं से तुरंत प्रतिकार का अवसर नहीं है, उसकी हिंसक वृत्ति नारी-सुलभ अन्य मार्ग पकड़ती है। उसने कुछ पक्षी पाल रखे हैं। उन पक्षियों का नामकरण भुवन, रोमक, तथा भागे हुये दास-दासियों के नाम के आधार पर कर उन्हें गालियाँ दे या उनके चपत लगा हृदय के ताप को क्षणिक शान्ति देकर उनसे प्रतिशोध का संकल्प दृढ़ करती है।[1] और अंत में भुवन से कुरूप विवाह का षड्यंत्र रचकर उसके सर्वनाश के उद्योग में कसर नहीं लगाती।

दासों से भरपूर काम लेना और उनके चित पर अपना आतंक बिठाना हिमानी का स्वभाव बन गया है। बिच्छू द्वारा काटे गये एक दास के पीड़ा-स्थल पर लगाने के लिए प्याज़ के दो गट्टे लाने वाली दासी पर वह बरस पड़ती है। उधर पीड़ा से तड़पता हुआ दास और इधर प्याज़ की मात्रा पर उलझती हुई निष्ठुर कृपण स्वामिनी! वह नौकरों के काम पर जैसी सतर्क दृष्टि रखती है वैसी ही उनके भोजन पर, कहीं वे ज्यादा खाने से बीमार न पड़ जाएँ या सेवा-कार्य में न अलसा जाएँ।[2]

हिमानी की आस्था न पुरुष में है न प्रणय में, उसकी व्यापार-बुद्धि सतर्क है। दीर्घबाहु उसकी दृष्टि में बज्रमूर्ख है, यह 'मिट्टी का ढेला' उसे नापसन्द नहीं। उससे प्रेमालाप का अभिनय करती हुई कहती है, 'हमारे यहाँ नारी नर की बँधुआ होकर नहीं रहती—काम पहले करती और कराती है, प्रेम पीछे।'[3] और वह दीर्घबाहु को प्रेम का झाँसा देती हुई अनेक बार अपने तथा पिता के व्यापारिक कार्यों में उससे सेवा-कार्य लेती है। सरला, सुन्दरी गौरी के प्रति दीर्घबाहु को आकृष्ट होता देख उसमें हीनता का भाव आने लगता है। इससे पूर्व भी गौरी को दासी के रूप में रखते समय गौरी नाम में महत्व का आभास पा उसका नामकरण 'रेवती' करती है। वह दीर्घबाहु को

१—**भुवनविक्रम**—पृ० २५

२—**भु० वि०**—पृ० ८, १३७, १५५

३—**भु० वि०**—पृ० ३४

पुनः चंगुल में लाने का निश्चय करती हुई सोचती है, 'संभव है जीवन भी इसी के साथ बिताना पड़े। मूर्ख है। पुरुष अधिकतर होते ही ऐसे हैं। किसी अन्य दुष्ट मूर्ख के साथ से तो ऐसे सीधे सरल मूर्ख की संगिनी बनना कहीं अच्छा।'[1]

अन्य गौण पात्र

कपिञ्जल अकाल तथा ऋण से ग्रस्त होकर किसान से साहूकार नील का दास बन जाता है। दासता में पशुवत् जीवन बिताने पर भी कपिंजल स्वाभिमानी एवं स्वतंत्र प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वह नील तथा हिमानी के दुर्व्यवहार के प्रति यथावसर विरोध प्रदर्शित करता है। अन्त में नील द्वारा बहुत दंडित होने पर अयोध्या से भाग कर नैमिषारण्य में ऋषि धौम्य की शरण लेता है। धौम्य के तेजस्वी व्यक्तित्व की प्रेरणा पा वह पूर्ण तपस्वी बनता है। उसे ज्ञान, आत्म-शक्ति और निर्विकार सेवा-भाव की प्राप्ति होती है।

मेघ उतरती अवस्था का चिड़चिड़ा उपाध्याय है। वह शिष्य भुवन तथा उसके पिता रोमक से असंतुष्ट है और वे दोनों उससे अप्रभावित हैं। मेघ महत्वाकांक्षी है. उसे राजा की शिथिल तथा शूद्र-पोषक नीति प्रिय नहीं है उसकी सहानुभूति विदेशी व्यापारियों से है। अकाल द्वारा फैले हुए जन-असंतोष से लाभ उठाकर वह राजा-विरोधी अथक प्रचार कर रोमक को अपदस्थ करने में सफल होता है। वह शाप-आशीर्वाद के भय-प्रलोभन दिखा कर सरल जन-मन को मुट्ठी में कर लेने में सिद्धहस्त है। वास्तव में वह प्रतिक्रियाशील रूढ़िवादी ब्राह्मणवर्ग का प्रतीक है। उसके विषय में लिखा गया है—

'मेघ भय के साधकों का साथी था—अन्धविश्वासों का बढ़ाने वाला; इन लकीरों को यों खींचों, उनको यों, इनके भीतर रहो, उनके भीतर मत आओ इत्यादि के द्वारा मानव की विकास-प्रेरणा और निर्भीकता को कुण्ठित करने वाला वेदवादरत कर्मकांडी, क्रिया-विशेष-कुशल।...'[2]

अयोध्या का राज्य-सत्ता हाथ में आ जाने पर मेघ में कर्कशता, अहंकार और पद-लोलुपता और भी प्रबल हो उठते हैं वह रोमक और भुवन को कभी क्षमा नहीं कर सकता। पूँजीपतियों का उसे अवलम्ब है। लोकप्रियता का पलड़ा रोमक की ओर झुकता देख वह रोमक को सपरिवार नष्ट करने का कुचक्र रचने से नहीं चूकता।

× × ×

'भुवनविक्रम' के इन उल्लेखनीय चरित्रों का विश्लेषण करने के उपरान्त

१—भु०वि०—पृ० २५१

२—भु० वि० —पृ० १०४

कुछ निष्कर्ष इस प्रकार प्राप्त होते हैं। प्रायः सभी पात्रों की चारित्रिक रेखाएँ स्पष्ट और सरल हैं। मूल रूप से किसी गुणविशेष को लेकर पात्र चलता है, घटनाओं के चक्र में पड़कर उसकी चरित्र-रेखा उभरती-निखरती जाती है। चारित्रिक गुत्थियों या पारस्परिक विरोधी विशेषताओं को लेकर ये पात्र प्रायः नहीं चलते। पात्रों का चरित्र पाठकों के लिए रहस्य या कुतूहल का विषय नहीं रह जाता। आगामी घटनायें ही कथा को आकर्षण प्रदान करती हैं।—उपन्यास में परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तनशील दोनों प्रकार के पात्र हैं। हिमानी, मेघ, नील, दीर्घबाहु आदि पात्र अपरिवर्तनशील हैं। ये परिस्थितियों की गति से मुड़ते नहीं, परिस्थितियों को अपने प्रभाव से मोड़ने का सफल या असफल प्रयत्न करते हैं। ये पात्र असद् के द्योतक हैं। भुवन, रोमक असद् से सद् की ओर जाने वाले पात्र हैं, वे परिवर्तनशील हैं। वे विपत्ति में पड़कर अपने चरित्र का विश्लेषण करते हैं और स्वयं को परिवर्तित करते हैं। कपिंजल भी परिस्थितियों के प्रवाह में बहता-उभरता अपने चरित्र को विकसित करता है।—उपन्यास में पात्रों के अधिकांश चरित्र को नाटकीय विधि से प्रस्तुत किया गया है यद्यपि पात्रों का परिचय देते समय प्रारम्भ में प्रत्यक्ष चित्रण-विधि का आश्रय लिया गया है।—पात्रों के चरित्र तथा घटनाएँ परस्पर घात-प्रतिघात करते हुए कथा का विकास करते हैं।

वातावरण (अ) समाज-चित्रण

अयोध्या-जनपद का शासन-कार्य राजा नगरसभा की सहायता से चलाता है। सभा में सभी 'श्रेणियों' के लोगों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। सभा की कार्यवाई संचालित करने वाला सभापति रहता है। विशेष आपत्तिकाल में जनपद-समिति अपने बहुमत द्वारा राजा को पद-च्युत या कुछ काल के लिए अपदस्थ कर सकती है। राजा स्वयं सर्वेसर्वा नहीं है, उक्त समितियों के हाथ में वास्तविक शक्ति रहती है।[1] तत्कालीन राजनीति में आर्थिक तत्त्व का महत्व है। अयोध्या-जनपद से उसकी उत्पत्ति का बाहर—बाबुल, फणिश, मिस्र, अरब आदि देशों को—निर्यात होता है और बदले में विदेशों से कम्बल, सोना चाँदी आदि का आयात होता है अयोध्या उत्तर भारत का व्यापारिक केन्द्र है वहाँ आर्य वणिक और विदेशी पणि छाये हुए हैं। राजा को इनके करों से प्रचुर आय है। इन व्यापारियों में समाज, राजा और उसके विरोधियों को प्रभावित करने की क्षमता है। आर्यों की वर्णाश्रम-प्रणाली में शूद्र थे किन्तु दासों का कोई वर्ग न था; वणिक तथा पणि के ऋण-जाल में फँसे

१. भु०—पृष्ठ ६३ तथा १०८

हुए निर्धन व्यक्ति को ऋण चुकाने के लिए उस साहूकार की दासता स्वीकार करनी पड़ती है। दासता का यह जूआ उसकी गरदन में प्रायः जीवन-पर्यन्त रहता था। इस प्रकार समाज में दास-वर्ग के निर्माण का श्रेय, वर्णाश्रम-प्रथा को नहीं, आर्थिक-व्यवस्था को था। स्वामियों की निर्ममता तथा अत्याचार से ऊब कर ये दास अवसर पाकर भाग निकलते थे।[1]

छात्रों के वेतनभोगी शिक्षक -- उपाध्याय---नगरों में रहते हैं। नागरिक जीवन के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में बसे एकान्त आश्रम-निवासी ऋषि-गण जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु साधना करते हुए शिष्यों को ऋषि-परिवार का सदस्य मान कर उन्हें शिक्षा देते हैं। आश्रम अध्यात्म के केन्द्र थे; उनमें विचार, विवेक, तप, अध्ययन और वर्चस्व बढ़ रहा था। उनके प्रति बाहरी क्षेत्रों में श्रद्धा-भाव छाया रहता था। आश्रम के ऋषियों की आध्यात्मिक ऊँचाई वहीं केन्द्रित हो गयी थी। आश्रम नागरिक तथा ग्रामीण-जीवन से दूर पड़ गये थे। वे स्वतन्त्र थे और महत्व में राजा तथा धनिकों के प्रभाव से अछूते। आश्रम का शरणागत राज-दण्ड की पहुँच से बाहर था। आश्रम-निवासी परिश्रमी होने के कारण आत्म-निर्भर होते हैं। समीप के ग्राम उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हैं। आश्रम तथा उन ग्रामों के निवासी प्रकृति से प्रेम करते हैं, वह उन्हें स्फूर्त्ति और उल्लास प्रदान करती है।[2]

अयोध्या नगर तथा गाँवों के समाज में भिन्न चिन्तन और विचार-धाराएँ प्रमुख हैं। वहाँ लोगों में विचार-विनिमय होता रहता है, मतभेद सामने आते हैं किन्तु युगों से चली आयी सहिष्णुता के कारण आपस में सिर नहीं फूटते। उस सहिष्णुता में पेड़ों-पहाड़ों के पूजकों और जादू टोनों वालों से लेकर एक ईश्वरवादी और नास्तिकों तक के लिए स्थान है। लोगों में राजनीतिक प्रसंगों पर भी बात चलती है परन्तु आध्यात्मिक विषयों पर बहुत अधिक। प्रकृति के अगम्य और अबोध रूप का भय उनके सामने सदा रहता है। इसका उपचार वे पूजन, बलिदान, जादू-टोने आदि से करते हैं। आश्रमों का ज्ञान-विज्ञान उनकी पहुँचसे बाहर है।[3]

(ब) प्रकृति-चित्रण

'भुवनविक्रम' में अयोध्या नगरी की अकाल एवं सुकालावस्था तथा ऋषि कुल के चित्रण के प्रसंग में प्रकृति की चर्चा आयी है। वर्षा के निरन्तर अभाव

१. भु०—पृष्ठ ५, ६, २५
२. भु०—पृष्ठ ९, ४९,
३. भु०—६८, ७५

के कारण अयोध्या और उसके आस-पास के वातावरण में निर्जीवता की सूचक नीरवता छा गयी है। सरयू नदी की धार पतली और क्षीण हो गयी है, उसके ऊपर मँडराती हुई चिड़ियाँ नदी के उथले स्थलों से मछलियाँ पाने की टोह में हैं। नदी के किनारे की सूखी पृथ्वी पर दूर तक झुलसी झाड़ियाँ फैली दीखती हैं, नीचे सूखी दूब के मृतप्राय अंकुर दीख पड़ते हैं। शेष स्थल पर भूरी रूखी धूल के ढेर मात्र हैं।[1] उन दिनों ऋषि-कुल में अवश्य सजीवता रहती है। संध्या के समय हवन के धुएँ की ओढ़नी अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें ओढ़ लेती हैं। वृक्षों की लम्बी छाया, सुनहली दूबा और मन्थर पवन के झोंके; ऊपर से ऋचाओं का गान और चिड़ियों की स्फूर्तिदायक चहक। वहाँ के मानव-मन तथा प्रकृति के मध्य तादात्म्य स्थापित हो जाने के कारण वातावरण में सजीवता मूर्त्त हो उठी है। पास के जंगलों में वसन्त ऋतु के सूचक अधपीले पत्ते, टपकते फूल, दूबा के चकत्ते तथा पवन की मादक उष्णता है।[2] वर्षा के बाद अयोध्या के वातावरण में सजीवता आती है। सूर्य की किरणें हरियाली से खेलती जान पड़ती हैं। सूखी झाड़ियों के शुष्क सिरों के नीचे पत्ते और कोंपलें सघन हो उठते हैं। नदी-नाले बह उठे हैं। उनकी धार के किनारे बारीक मिट्टी के पर्त और सपाट रेत की तहों के कण चमक रहे हैं। शरद-ऋतु आ गयी, सुगन्धि फैलाती। ऐसी आई की भूतकाल के कष्टों को भुला दिया और भविष्य की आशाओं के पुंज लोगों की आँखों के सामने खड़े कर दिये।[3] इस प्रकार उपन्यास में प्रकृति परिस्थिति की सूचक और मानव-मन की परिचायक है।

जीवन-दर्शन

'भुवनविक्रम' में मानव-जीवन के वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य को इंगित किया गया है। सीधे-सादे ढँग से कहा जाए तो जीवन का उद्देश्य है जीना—अच्छी तरह से जीना। उपन्यास के नर-नारियों के गीतों द्वारा जीवन के इसी उद्देश्य पर बल दिया गया है। उनकी कामना है कि वे सत्कर्म करते हुए सौ बरस जीवित रहें। वे स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें। उनके जीवन में समृद्धि और सम्पन्नता स्थायी हों।[4] किन्तु मनुष्य की अत्यधिक स्वार्थ-वृत्ति, शिथिलता, अहंकार एवं अयोग्यता के कारण जीवन का उद्देश्य धूमिल हो गया है, उस

१—भु०—पृष्ठ १ तथा ६
२—भु०—पृष्ठ ४६, ७८
३—भु०—पृष्ठ २१६, २२२, २५०
४.—भु०—पृष्ठ ४३

का वास्तविक स्वरूप विकृत हो उठा है। 'भुवनविक्रम' की तीनों कथाओं द्वारा तत्कालीन जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालकर उक्त तथ्य की पुष्टि है। साथ ही जीवन की विकृति और इन विकृतियों के निराकरण भी प्रस्तुत किये गये हैं। कथाओं द्वारा प्रकाशित समस्याएँ क्रमशः इस प्रकार हैं—

१—अयोग्य अध्यापक और उच्छृङ्खल शिष्य। योग्य शिक्षक कैसा हो और शिष्य का संस्कार किस प्रकार हो ?

२—कर्त्तव्यच्युत राजा—राजा का उद्देश्य क्या हो ? उसके आश्रितों का भला कैसे हो ?

३—तथा कथित 'शूद्र' नीच नहीं। फिर शूद्र क्या है ? जो 'शूद्र' कहलाते हैं,उनका समाज में क्या स्थान होगा ?

ऋषि धौम्य के व्यक्तित्व से तीनों कथाएँ आकर मिलती हैं तथा उसी बिन्दु पर कथाओं की उलझन समाप्त होकर किसी संतोषप्रद हल के लिए मार्ग छोड़ देती है। धौम्य प्रचलित शब्दों के प्रवाह पर से निरर्थक परम्पराओं तथा हानिकारक रूढ़ियों की काई हटाने में सिद्धहस्त हैं। वे पुराने शास्त्रीय शब्दों के रूढ़िगत विकृत अर्थों को त्याग उनकी मौलिक—'नयी'—व्याख्या करने के आदी हैं। धौम्य का 'प्रगतिशील' व्यक्तित्व उपन्यास की विचारधारा में व्याप्त होने के कारण विस्तृत विश्लेषण के योग्य है।

धौम्य के मतानुसार श्रुति की एक बात सब के लिए सदा मान्य है—ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है। वे प्रगति को जीवन की कसौटी स्वीकार करते हैं। इस कसौटी पर खरी न उतरने वाली शास्त्र की अनुपयुक्त या अनुचित बातें उन्हें ग्राह्य नहीं। पुराने वस्त्र देखने में अच्छे लगते और पुराने होने के नाते स्मृति को सुहावना भी बना देते हैं, परंतु बढ़ी हुई देह के लिए ओछे पड़ जाने के कारण पहने नहीं जा सकते। बिना ठीक नाप-तौल के नये वस्त्र भी या तो ढीले बैठते हैं या ओछे पड़ते हैं। यही बात पुराने और नये शास्त्रों के उपयोग-प्रयोग में संभव है। अतः शास्त्रों के प्रति समर्पण मात्र की अपेक्षा उन्हें विवेकपूर्वक हृदयंगम करना श्रेयस्कर है। वे स्वयं दीक्षान्त-समारोह पर कहते हैं, "विवेक के साथ प्राचीन को जानो पहचानो और समझो; वर्तमान को भलीभाँति देखो परखो और उसमें चलो; और, भूत तथा वर्तमान दोनों की सहायता से भविष्य को प्रबल बनाओ। भय और बाधाओं के सामने कभी न झुको। जीवन की लहरों पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ रहो।"[१]

धौम्य जीवन में आगे बढ़ने के लिए शिष्यों को दृढ़-संकल्पी होने का उपदेश देते हैं। निःस्वार्थ भाव से किया गया संकल्प डगमगायेगा नहीं, उसमें

१. भुवनविक्रम—पृ० १९२ तथा देखिए पृ० ५० और १९३

दृढ़ता होगी। जीवन का दृढ़ संकल्प और ध्येय होना चाहिए अपने निज को संतुलित रखना। निज के संतुलन का तात्पर्य है मनुष्य के उचित अनुपात में शरीर,मन और आत्मा के समन्वय से, उनके समीकरण से। वे मनुष्य की 'कथनी' और 'करनी' में साम्य स्थापित करने के दृढ़ पक्ष में हैं। ज्ञान-रहित कर्म और आचरण-शून्य ज्ञान अन्धकार की ओर ले जाने वाले हैं। ज्ञान और कर्म का सामंजस्य जीवन का पर्याय है। संतुलित मन से तन्मयतापूर्वक कर्त्तव्यपालन हो। जब कर्त्तव्यपालन हो चुका फिर उसके लिए मन में न संताप हो और न उसकी परछाही को लौट-लौटकर देखने की आकांक्षा ही।[1]

समाज में शूद्र के स्थान की समस्या को लेकर कपिंजल की कथा का विकास होता हैं तथा इसी प्रश्न पर रोमक की उलझन बढ़ती है। वैदिक आर्यों ने श्रम की कोटियों के अनुसार समाज को चार प्रमुख जातियों में विभाजित किया था। वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण बुद्धि, क्षत्रिय वीरता एवं बलिदान, वैश्य राष्ट्र-सम्पत्ति तथा शूद्र श्रम की पवित्रता के प्रतीक माने गये हैं।[2] शनैः शनैः शब्द शूद्र समाज में निम्न कोटि के व्यक्ति के लिए रूढ़ हो गया; शूद्र अछूत और उपेक्षित समझे जाने लगे। कदाचित् इस अव्यवस्था से ऊब कर धौम्य शूद्र नाम की कोई जाति स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं—"चोर, डाकू, अधर्मी, अत्याचारी, दस्यु ये शूद्र हैं। श्रम करने वाला शूद्र नहीं है। जन्म से कोई भी शूद्र नहीं। स्मृति और श्रुति की मेरी व्याख्या यही है और मैं इसी को चलाऊँगा, अहंकार, द्वेष, भय परिग्रह और वासनाओं में लिप्त लोग भी दस्यु और शूद्र कहलायेंगे।"[3] इस प्रकार धौम्य की दृष्टि में 'शूद्र' विशेषण मात्र है। वे कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगों के करने बढ़ाने वाले को वैश्य कहते हैं। इसीलिए तथाकथित शूद्र कपिंजल को अपना शिष्य बनाने तथा योग-शिक्षा प्रदान करने में उन्हें कोई हिचक नहीं। राजा रोमक भी धौम्य की प्रेरणा पाकर वर्ण-कल्पना का मूलाधार श्रमविभाजन-मात्र को मानता है। वह 'शूद्रों' को अन्य जातियों में परिवर्तित करने का इच्छुक है। उनके विषय में उसका मत है, "वे अपने अन्ध-विश्वासों के वशीभूत रहकर जड़ बने रहें, वह दूसरी बात है। वैसे मैं तो शूद्रों का भी आदर सम्मान करूँगा।.....वे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य, अपने अच्छे गुण और वृत्ति के अनुसार, हो सकेंगे। मैं चारों वर्गों का सामंजस्य करके

१. **भुवनविक्रम**—पृ० ४८, ९६, २०४, २९८
२. **वही**—पृ० ९०
३. **वही**—पृ० १२५

चलूँगा। अति किसी बात की भी नहीं करूँगा। परमात्मा के सृष्टि-कार्य को समझने का प्रयत्न करता रहूंगा।"[१]

रोमक क्षत्रिय है और अयोध्या का राजा। अपनी अयोग्यता एवं स्वार्थ-वृत्ति के कारण अपदस्थ होने पर भी उसमें आत्म-विश्लेषण का अभाव है। धौम्य उसके दोषों की व्याख्या करते हुए आलस्य, अदूरदर्शिता और अनिश्चयात्मकता राजा के दुर्गुण बताते हैं। उनके मतानुसार राजा श्रम को समुचित आदर प्रदान करे, लोभ से बचे और लुटेरों आदि असामाजिक तत्त्वों का दमन कर प्रगति एवं विकास के लिए शान्ति स्थापित रखे।[२]

---

१. भुवनविक्रम पृ०—२९९
२. भुवनविक्रम—पृ० १८३

२—माधव जी सिंधिया

कथावस्तु—

उपन्यास की मुख्य कथा अठारहवीं शताब्दी के भारत में प्रभावशाली मराठों की स्थिति-विश्लेषण को लेकर चलती है। स्थिति के दो पक्ष हैं—पूना स्थित पेशवा तथा अन्य सरदारों की केन्द्रीय राजनीति और दूसरी ओर है मराठों की उत्तरी भारत में राजनीतिक, सैनिक गतिविधि। पूना की स्थिति कथा में मौलिक महत्व रखती है। —मनमौजी राजा साहू के देहान्त के उपरान्त महाराष्ट्रीय राज्य-सत्ता ब्राह्मण प्रधानमन्त्री, 'पेशवा' के हाथ में चली गयी। राज्यधानी सतारा से हटकर पूना पहुँच गयी। महत्वाकांक्षी सरदारों ने कभी मिलकर रहना न सीखा था, उन्होंने पेशवा की सत्ता के विरुद्ध सिर उठाया। दूसरी ओर सतारा में साहू के छोटे भाई की पत्नी, ताराबाई पेशवा-विरोधी षड्यंत्रों में रत थी। राज्य की खोखली आर्थिक दशा थी, तथाकथित स्वार्थरत सरदार लुटेरे हो चले थे। ऐसे दुर्दिनों में पेशवा बालाजीराव के रहे-सहे पौरुष को उसकी अदृढ़ता, कामुकता तथा पत्नी की उद्दंडता ग्रस लेती है। निज़ाम, हैदरअली, दिल्ली, रुहेलों, अवध आदि से आये दिन अल्प-लाभकारी निरर्थक लड़ाइयाँ और घरेलू षड्यंत्र, आर्थिक शिथिलता, ये सब पेशवा और मराठों के मूल को जर्जर कर चुकी हैं।

पेशवा बालाजीराव के देहान्त के उपरान्त उसका उत्साही पुत्र माधवराव पेशवा के रूप में मराठों की स्थिति दृढ़ करने में दत्तचित्त होता है किन्तु अल्पायु में उसकी मृत्यु के कारण छोटा भाई नारायणराव पेशवा का आसन ग्रहण करता है। षड्यंत्रकारी सरदार राघोबा नारायण की हत्या करा उसके

नवजात पुत्र का अधिकार छीन स्वयं पेशवा बनने का कुचक्र रचता है। नाना फडनीस, उत्तरी भारत के विजेता सरदार माधवजी सिंधिया आदि के प्रबल विरोध के कारण राघोबा को कूटनीतिक क्षेत्र छोड़ना पड़ता है। अब सत्ता-संघर्ष में नारायणराव के पुत्र, किशोर पेशवा माधवराव द्वितीय के संरक्षक नाना फडनीस एवं तुकोजी होलकर की माधवजी सिंधिया से टक्कर हुई। सिंधिया दूरदर्शी, देश प्रेमी, निस्पृह व्यक्ति है। वह पेशवा को मुग़ल बादशाह का मीरबख्शी नियुक्त करा अपने व्यक्तित्व की छाप उसके किशोर-मन पर डालता है। वह बुद्धिमत्तापूर्वक नाना, तुको के कुचक्रों को विफलप्रायः कर पेशवा के व्यक्तित्व को उभारने, निखारने में रत है। तुको के पुत्र के हाथों विषपान कर सिंधिया प्राण त्यागता है और उसके स्वराज्य, देश के पुनर्निमाण आदि के स्वप्न अधूरे रह जाते हैं।

कथा का दूसरा पक्ष मराठों की उत्तरी भारत में गतिविधि से संबंधित है।—उत्तरी भारत में रुपया एकत्र करने तथा आधिपत्य-स्थापना के ध्येय से मराठा सेनायें किसी न किसी शक्ति से युद्ध करती रहती हैं। अहमदशाह अब्दाली के भारत-आक्रमण की सूचना पा उससे टक्कर लेने के लिए मराठी सेना सदाशिवराव भाऊ के सेनापतित्व में उत्तर आती है। भाऊ के मिथ्याभिमान, अदूरदर्शिता, भावुकता, आर्थिक-विपन्नता आदि के कारण मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। पारस्परिक कलह और दुर्बल मोर्चाबन्दी के कारण अब्दाली से युद्ध में मराठों का घोर पराभव होता है।

मराठा-पराभव के बाद उस राजनीति में माधवजी सिंधिया का दृढ़, दूरदर्शी व्यक्तित्व उभरता है। माधव ने गत अनुभव, निरन्तर चिन्तन के फलस्वरूप देश के पुनर्निर्माण की योजना चित्त में बिठा ली है। वह एकता, सजगता, निस्पृहता, अनुशासन का हामी है। उसके देश में 'स्वराज्य' के स्वप्न से स्वार्थी राघोबा, मल्हारराव होलकर, तुकोजी आदि का मेल नहीं खाता। माधवसब की उपेक्षा कर अपने पौरुष का आश्रय लेता है। वह मुग़ल शाह शाह आलम को इलाहाबाद के अँगरेजों के संरक्षण से निकाल कर दिल्ली के सिंहासन पर आसीन करता है। माधव की योजना है कि सम्पूर्ण भारत दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता के सूत्र में बंध जाय। उस सत्ता का प्रतीक हो बादशाह और संचालक-शक्ति पेशवा हो प्रधानमन्त्री या मीरबख्शी। माधव के प्रयत्नों से पेशवा की मीरबख्शी-पद पर नियुक्ति होती है और स्वयं माधव उत्तरी भारत में पेशवा का स्थायी प्रतिनिधि स्वीकार किया जाता है। अब माधव को मराठों के असहयोग, अविश्वास तथा उत्तरी भारत की विपक्षी समस्त शक्तियों का लक्ष्य बनना पड़ता

है। निरन्तर कई हारों और चतुर्मुखी प्रहारों से उसकी आर्थिक, सैनिक, राजनीतिक स्थिति अन्तिम साँसें गिनने लगती है। माधव का साहस जवाब दे देता है किन्तु अपने स्वामिभक्त, देशप्रेमी सेनापति रानेखाँ के उद्‌बोधन से उसमें कर्म-स्फूर्ति पुनः द्विगुणित वेग से आ जाती है। माधव और रानेखाँ दिल्ली, राजपूताना आदि पर पुनः अधिकार प्राप्त कर उत्तरी भारत में मराठा-शक्ति की धाक बिठा देते हैं।

अब माधव के समक्ष पूना में नाना, तुकोजी के षड्‌यंत्रों के हल का प्रश्न उठता है। वह दक्षिण में रहकर किशोर पेशवा को प्रभावित कर सुव्यवस्था स्थापित करना चाहता है। माधव को कुछ सफलता मिलती है किन्तु विष दिये जाने के कारण उसका स्वप्न अधूरा रह जाता है।

२—दूसरी कथा है दिल्ली की विचलित तथाकथित केन्द्रीय सत्ता की दुर्गति की। मुग़ल-साम्राज्य के वैभव का दीपक बुझ चुका था केवल बाद का धूँआं शेष था। बादशाह नाम मात्र का था, गुड्डा जैसा। कोई भी, देशी-विदेशी आक्रमणकारी उसे समाप्त करने के लिए यथेष्ट था। कुटिल स्वार्थी वज़ीरों के हाथ में उसका अस्तित्व कठपुतली के समान था। वज़ीर लोग कैद से जीवन की घड़ियाँ गिनते किसी शाहज़ादे को बादशाह बनाते, जो उनकी चालों के लिए एक ओट-मात्र होता। और कैदी से जो बादशाह बनता था, वह अपनी वासनाओं में डूब जाता, कठिनाई से षड्‌यंत्रों और घोर दरिद्रता में घुटती साँस ले पाता। कभी-कभी स्वयं षड्‌यंत्रों में भाग ले लेता तो वज़ीरों के हाथ कुत्ते की मौत मारा जाता।

बादशाह अहमदशाह दिल्ली के कंटकाकीर्ण तख्त पर आसीन था। निज़ाम का कुटिल पौत्र शिहाबुद्दीन कुचक्रों से मीरबख्शी, फिर वज़ीर बन कर आलमगीर सानी को गद्दी पर बिठाता है। अहमदशाह अब्दाली आक्रमण कर दिल्ली तथा 'दोआब' में लूट और अत्याचार करता है। कोई संयुक्त शक्ति अब्दाली का सामना नहीं कर पाती, न मराठे और न जाट! बाद में शिहाब अविश्वसनीय बादशाह की हत्या कराके किले को लूटता है और शाहजहाँ सानी को बादशाह बनाता है। अब्दाली का भारत पर पुनः आक्रमण होने पर शिहाब दिल्ली से भाग निकलता है, वहाँ 'जम्हूरी संस्था' तथा कट्टर मुसलमानों का बोलबाला हो जाता है। अन्त में, आसफ़ुद्दौला तथा रुहेलों सहित अब्दाली विशृङ्खल मराठों को बुरी तरह हरा कर उत्तरी भारत में घोर लूट-पाट करता लौट जाता है।

इलाहाबाद में अँगरेज़ों से संरक्षित तत्कालीन मुग़ल 'बादशाह' शाहआलम

द्वितीय को माधव जी सिंधिया दिल्ली लाकर पुनः स्थापित करता है। विपत्तिग्रस्त माधव की अनुपस्थिति में रुहेला गुलाम क़ादिर दिल्ली पर आक्रमण कर शाहआलम को अनेक पीड़ा देकर उसे अन्धा करा के वैर चुकाता है। बाद में माधवजी सिंधिया के द्वारा गुलाम खादिर का पूर्ण पराभव होने पर बादशाह को तनिक सांत्वना मिलती है।

३—तीसरी कहानी है अभागिनी गन्ना बेगम के असफल प्रेम, भग्न हृदय और आत्म-घात की। विधवा माँ की बेटी, असहाया गन्ना भरतपुर के जाट राजकुमार जवाहरसिंह के प्रति आकृष्ट हो जाती है। जवाहर के साथ पलायन की योजना विफल होती है और विवश गन्ना का विवाह कामुक, लम्पट वज़ीर शिहाबुद्दीन से हो जाता है। गन्ना का वैवाहिक जीवन कुंठा, अवसाद से भरपूर है। जवाहर को उसे ले उड़ने में पुनः असफलता मिलती है। गन्ना किसी प्रकार शिहाब के हरम से भाग कर सिख-वेश और गुनीसिंह नाम धारण कर लेती है। गुनीसिंह को जब ज्ञात होता है कि जवाहरसिंह भी लम्पट, वंचक और कामुक मात्र है तो उसका हृदय शीर्ण तरी की भाँति निरावलम्ब जीवन-सागर में टक्करें खाता है।

गुनीसिंह कलमनवीस के रूप में माधव जी सिंधिया का आश्रय ग्रहण करता है। वह माधव के महान् व्यक्तित्व पर न्योछावर है और माधव गुनी के शील और स्नेह पर मुग्ध। गुनी के पुरुष-वेश का रहस्य खुलने पर माधव-गन्ना का स्नेह, प्रणय का रूप धारण कर लेता है जहाँ यौवन का उच्छृंखल ज्वार नहीं प्रौढ़ता की शान्ति और स्थिरता थी। देश में 'स्वराज्य'-स्थापना का स्वप्न दोनों का ध्येय बन गया है। गन्ना माधव के विरुद्ध षड्यंत्रों से चिंतित है। वह धर्मान्ध कूटनीतिज्ञ मुसलमानों की कए सभा में तत्संबंधी भेद लेने जाती है और कुटिल शिहाब के चंगुल में जा फँसती है। शिहाब उससे पुनः वासना-पूर्त्ति चाहता है किन्तु गन्ना अब अपने 'माधव' के अतिरिक्त किसी की नहीं है। गन्ना विषपान कर मरते समय कागज पर कविता की एक पंक्ति लिखी छोड़ जाती है—'आह! गमये गन्ना बेगम!'

४—चौथी कथा है भरतपुर के जाट-राज्य की ह्रासोन्मुखी एकता की। राजा सूरजमल की अपने ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह से गन्ना बेगम के प्रश्न पर बिगड़ जाती है। अब्दाली के भारत पर आक्रमणों के समय सूरजमल मराठों से एकता स्थापित नहीं कर पाता, वह तनिक स्व-केन्द्रित और अदूरदर्शी है। सूरजमल रुहेलों से एक युद्ध में मारा जाता है। राज्य-प्राप्ति के प्रश्न पर जवाहरसिंह तथा उसके भाई नाहरसिंह में युद्ध होने पर नाहर जयपुर में आश्रय लेता है। दुःखी नाहर के मर जाने पर पतित, शराबी जवाहरसिंह जयपुर में

आश्रिता नाहर की सुन्दरी विधवा से विवाह का दुराग्रह करता है। जवाहर मार डाला जाता है, रतनसिंह गद्दी पर बैठता है। रतन किसी धूर्त गुसाँई द्वारा मारा जाता है और गद्दी के अधिकारी, रतन के अल्प-व्यस्क पुत्र, के अभिभावक के प्रश्न को लेकर दो प्रतिस्पर्द्धी परस्पर लड़ते हैं। जाट-शक्ति तहस-नहस हो जाती है।

× × ×

मराठों की कथा उपन्यास में मुख्य है, इस के दक्षिणी तथा उत्तरी भारत सम्बन्धी दो पक्ष हैं। दक्षिणी राजनीति का उत्तरी भारत में स्थित मराठी गतिविधि पर मौलिक प्रभाव पड़ता है किन्तु उपन्यास में विशेष विकास उत्तर सम्बन्धी पक्ष का हुआ है। 'उत्तरी' कथा का कलेवर (६१ परिच्छेदों में व्याप्त)[1] भी 'दक्षिणी' कथा (२८ परिच्छेदों वाली) की अपेक्षा विशद है।—दक्षिणी कथा प्रारंभिक अवस्था में तनिक विस्तृत है, मराठों के घरेलू झगड़ों तथा पेशवा बालाजीराव की विवशताओं एवं शिथिलता को लेकर कथा के दक्षिणी-उत्तरी पक्षों की भूमिका प्रस्तुत करती है। आगे चल कर मध्य में उत्तरी पक्ष प्रधान हो जाता है, दक्षिणी पक्ष प्रायः नेपथ्य में रह कर तीव्रता से बीतती घटनाओं—दो पेशवाओं की मृत्यु राघोबा के षड्यंत्र आदि—की साधारण सूचना मात्र देता है। अन्त में प्रबल, प्रधान उत्तरी पक्ष माधवजी सिंधिया के साथ एकाएक मुड़ कर दक्षिणी पक्ष में समा जाता है। पुनः कहानी के अन्त में दक्षिणी प्रसङ्ग आ खड़ा होता है, फिर समाप्ति।

उत्तरी कथा को स्पष्ट दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) उत्तरी भारत में मराठा-गतिविधि और मराठों का पानीपत के मैदान में अब्दाली से पराभव (२० परिच्छेदों में विस्तार; परिच्छेद संख्या २ से ५३ तक)

(२) मराठों का संभलना। माधवजी सिंधिया का मराठा-नायक के रूप में विकास तथा उसकी गतिविधि (३९ परिच्छेदों में; परि० सं० ५४ से परि० सं० १२२)

बाद के ७ परिच्छेदों में यह कथा दक्षिणी कथा से जा मिलती है, जिस समय माधवजी उत्तर से हट कर पूना की राजनीति में व्यस्त हो जाता है।

उत्तरी कथा का पहला भाग अनावश्यक जान पड़ता है यद्यपि इसमें यत्र-तत्र माधव के विकासोन्मुख चरित्र पर प्रभाव डालने वाली घटनाओं का सूक्ष्म

१. **उपन्यास में कुल परिच्छेदों की संख्या १३२ दी गयी है, वास्तविक सं० १२९ है। छापे की भूलवश परि० सं० ७९ के स्थान पर ८१ छपा है और आगे चलकर १२७ के स्थान पर १३०।**

निर्देश है। यदि दो-एक परिच्छेदों में गत घटनाओं को भूमिका-रूप में देकर कथा के दूसरे तथा मुख्य भाग को तुरंत प्रारंभ किया जाता तो इस कथा में अधिक गति और नाटकीयता स्वतः आ जाती। और, यथावसर कुछ स्थलों पर पहले भाग की मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली तथा मर्मस्पर्शी घटनाओं का स्मरण-रूप (फ्लैश–बैक) में उल्लेख किया जा सकता था। इन परिवर्तनों के अभाव में प्रस्तुत कथा का कलेवर बृहत् तथा बहुधा मात्र इतिवृत्तमय हो गया है; इतिहास के रूखे तन्तु अस्त-व्यस्त दशा में फैल जाने के कारण कथा की गति में कहीं-कहीं घोर शिथिलता आ गई है। साथ ही, दक्षिणी कथा उत्तरी कथा के नेपथ्य में प्रारंभ से अन्त तक रहती तो कथा-सूत्र की प्रभावोत्पादकता निश्चय बढ़ जाती।

उत्तरी कथा में माधव के उत्कर्ष से कथा का मूल सूत्र प्रारम्भ होता है, प्रारंभ का कथा-सूत्र पूर्व घटित घटनाओं का अंकन मात्र प्रस्तुत करता है। आगे कथा माधव के चरित्र को लेकर चलती है। माधव दूरदर्शी, 'राजदर्शी' है, वह देश को एक सूत्र में बाँधना चाहता है। वह पौरुष के बूते पर शाहआलम द्वितीय को इलाहाबाद से लाकर दिल्ली में स्थापित करता है। उसकी योजनायें अभी स्वप्न ही हैं कि उस पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है, घर-बाहर के सभी लोग उसके प्राणों के ग्राहक हो जाते हैं। सार्वजनिक पतन की उस आँधी में सिंधिया के देश-प्रेम का टिमटिमाता दीपक विचलित हो उठता है, अब बुझा कि तब बुझा। त्रस्त माधव का साहस जवाब दे जाता है, यहीं इस कथा की चरम परणति है (परि० सं० ११५)। राने खाँ के उद्बोधन से माधव संभलता है और द्विगुणित वेग से कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होता है। इसके बाद कथा गति खोने लगती है, परि० सं० १२१ तक माधव की सफलता दिखायी गयी है। फिर परि० सं० १२६ तक माधव के पूना-राजनीति में वेन्द्रित होना तथा मृत्यु का प्रसंग, यह सब मुख्य कथा-सूत्र से अलग होकर उसका उपसंहार बनकर रह जाता है। माधव की कथा को १२२ से आगे बढ़ाया जाना इस तथ्य का सूचक है कि उपन्यासकार इतिहास—माधव के जीवन-चरित—पर केन्द्रित है।

उपन्यासकार ने उक्त कथा का प्रसार कदाचित् इस दृष्टि से किया है, माधव का 'राजदर्शी'-व्यक्तित्व, उसका निर्माण तथा स्वार्थी-हृदय बादलों में बिजली की एक कौंध की भाँति चमक कर उसका लुप्त हो जाना। मराठों की उत्तरी भारत में अटपटी गतिविधि के फलस्वरूप अब्दाली द्वारा उनके पराभव सम्बन्धी घटनायें माधव को 'राजदर्शी' माधव जी सिंधिया बनाती हैं। फिर माधव का उत्तरी भारत में विरोधी तत्वों से संघर्ष, असफलता और

सफलता। बाद में माधव को टक्कर लेनी होती है आन्तरिक मराठा-विरोध से। इसी संघर्ष में माधव की मृत्यु की हृदयस्पर्शी घटना के द्वारा उपन्यास के 'अन्त' का प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। उक्त दृष्टि से माधव की मृत्यु की घटना कथा की चरम परिणति स्वीकार की जा सकती है। किन्तु जैसा कि पहले कहा गया है कथा-सूत्र के इतने विशद प्रसार के फल-स्वरूप उसके संगठन, तारतम्य और गति को भारी धक्का लगा है।

उत्तरी भारत की राजनीतिक आदि दशाओं के चित्रण तथा मराठा-कहानी को पूर्णता प्रदान करने के लिए दूसरी कहानी दिल्ली की, उपन्यास में पदार्पण करती है। दिल्ली की कहानी प्रारम्भ में प्राय: स्वतन्त्र चलती है राजनीतिक षड्यन्त्रों को लेकर। अब्दाली के दूसरे भारत-आक्रमण के समय यह कहानी पहली कथा के विशेष निकट आती है। मराठों के पराभव तथा माधव के उत्कर्ष के बाद दोनों कथायें साथ चलती हैं। यहीं से दिल्ली की कथा उपन्यास में प्रासंगिक बनती है।

गन्ना की रोमानी करुण कथा उपन्यास के इतिहास शिथिल तथा इतिवृत्त के मरुस्थल में नदी की छोटी सरस धारा है। यह धारा अन्य कथाओं की शुष्क बीहड़ चट्टानों को काटती-पीटती मन्थर गति से बढ़ती जाती है। गन्ना की कथा जवाहर के प्रति प्रेम तथा तत्सम्बन्धी बाधाओं को लेकर चलती है। गन्ना का शिहाब से विवाह और उस का हरम से निकल भागना। वह स्वतन्त्र होकर देखती है जवाहर का नग्न रूप, उसकी वासना मात्र। दु:खिनी गन्ना का हृदय टूट जाता है, स्वप्न चूर-चूर हो जाते हैं। कथा चरम पर आकर समाप्त होती जान पड़ती है ,किन्तु यह धारा झील में गिर कर पुनः निकल नया मार्ग पकड़ती है। गन्ना गुनीसिंह के वेश में माधव जी सिंधिया के समीप आती है, दोनों के प्रेम-प्रसंग पर कथा गति पकड़ती है और गन्ना की मृत्यु तथा उसके अन्तिम वक्तव्य 'आह ! ग़मये गन्ना बेगम।' के साथ पुन : चरम सीमा पर आकर समाप्त हो जाती है।—गन्ना की कथा प्रकरी है, यह मुख्य कथा में माधव जी सिंधिया, दूसरी, दिल्ली की कथा में शिहाब तथा चौथी, जाटों की कथा में जवाहर के जीवन को विस्तार से छूती है किन्तु इसके कारण उल्लिखित तीनों कथाओं के मध्य कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। गन्ना के प्रसंग द्वारा उपन्यास में सरसता के स्फुरण के साथ नारी-हृदय की सरलता, विवशता, स्निग्धता, समर्पण आदि भावनाओं का परिचय देना अभीष्ट है। गन्ना की करुण कथा तत्कालीन विशृङ्खलित, स्वकेन्द्रित समाज में निरीह नारी की दारुण अवस्था की द्योतक है।

जाटों की कहानी दिल्ली की कथा की भाँति तत्कालीन उत्तरी भारत की

राजनीतिक दशा की सूचक है। इस कथा का प्रारम्भ विस्तृत है, मध्य भी किसी सीमा तक स्पष्ट है किन्तु अन्त की घटनाओं की सूचना मात्र मिलती है। अतः कहा जा सकता सकता है कि जहाँ इस कथा का गन्ना से सम्बन्ध है वहीं तक इसे विशदता प्राप्त हुई है।

पात्र

'माधव जी सिंधिया' का कथावृत्त वर्षों में फैला होने के कारण अत्यन्त विस्तृत घटना-पट को ढके है। इसीलिए उपन्यास में केवल सक्रिय पात्रों की संख्या साठ है और घटना-क्रम में पड़ कर इनमें लगभग ३३ पात्र कराल काल के गाल में समा जाते हैं। इन साठ पात्रों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) कथा-विकास में अग्रसर, मुख्य पात्र—माधव जी सिंधिया, शिहाबुद्दीन, नजीब, गन्ना बेगम, सूरजमल।

(ब) कथा-प्रवाह में सहायक पात्र—सफदर जंग, अकीबत खाँ कश्मीरी रघुनाथराव, उम्दा बेगम, अहमदशाह अब्दाली, जवाहरसिंह, वलीउल्ला फकीर, मल्हारराव होल्कर, बालाजीराव पेशवा, सदाशिवराव भाऊ, नाना फडनीस, राने खाँ, माधवराव पेशवा, गुलाम कादिर।

(स) काल विशेष के परिचायक व्यक्तित्व-प्रधान पात्र—कन्नड़ त्रिम्बक, ताराबाई, बादशाह अहमदशाह, इब्राहीम 'गार्दी', मुगलानी बेगम, गोपिकाबाई विश्वासराव, रामशास्त्री, रामचन्द्र गणेश, शाह नजफ, मन्यारसिंह, रामलाल, कुतुबशाह, शाह आलम का ख्वाजा।

(द) कथा-प्रवाह में गौण, क्षणिक स्थान ग्रहण करने वाले पात्र—दत्ता जी, माधव जी पन्त पुरन्दरे, सलावत जंग, ऊधमबाई, खंडेराव, अजीजुद्दौला, अदीना बेग, शिहाब का ख्वाजा, अन्ता जी मणिकेश्वर, शाहजहाँ सानी, जनकोजी, अब्दुल अजीज, शुजाउद्दौला, इंगले, नाहरसिंह, जयपुर का दूत, मनीसिंह, शाह आलम, विशाजी कृष्ण, नारायणराव पेशवा, जाबितखाँ, मुहम्मद बेग हमदानी, मुहम्मदशाह की विधवा बेगम, बेदारबख्त, देबाई, माधवराव नारायण द्वितीय, मल्हारराव (तुकोजी का पुत्र)।

उपन्यास में भीड़ बढ़ाने का उत्तरदायित्व 'द' श्रेणी के पात्रों पर विशेषकर है। साधारण पाठक के लिए इतने पात्रों से परिचित होना और उन्हें स्मृति-कोश में संजोये रखना प्रायः असम्भव है। कथा में अत्यधिक विस्तार देने की प्रवृत्ति तथा सतर्क कसावट के अभाव के कारण बनैली उपज की भाँति अत्यधिक पात्र उपन्यास में स्थान पा गये हैं। फिर भी 'अ', 'ब', 'स' श्रेणी

के तेंतीस पात्रों की रूपरेखायें स्पष्ट, स्वतन्त्र एवं परस्पर भिन्न हैं। यहाँ पहली तीन श्रेणियों के कुछ उल्लेखनीय पात्रों के चरित्र एवं उनके चित्रण का विश्लेषण कर उपन्यास में वर्मा जी की पात्र-चित्रण-कला का परिचय देना अभीष्ट है।

माधव जी सिंधिया का उपन्यास में पदार्पण बीस वर्ष की आयु में होता है। बड़ी आँखें, गम्भीर स्वभाव, दृढ़ ठोड़ी और दृढ़तर भौंहें।[1] कहा जा चुका है माधव का व्यक्तित्व अब्दाली द्वारा मराठों के पराभव के पश्चात् उदय होता है, उपन्यास के पूर्वार्द्ध में यथावसर माधव के चरित्र-निर्माण के सूत्र सतर्कतापूर्वक संयोजित किये गये हैं। माधव को तत्कालीन घटना-चक्र में जिज्ञासु दर्शक, मनोयोग-युक्त विद्यार्थी के रूप में चित्रित किया गया है। अपरिपक्व माधव युवक को राजदर्शी 'माधव' बनाने में सहायक कुछ उल्लेखनीय सूत्र इस प्रकार हैं।—पेशवा-विरोधिनी, महत्वाकांक्षिणी ताराबाई का समाधान करते समय भारत में स्वराज्य-स्थापन का दृश्य माधव के युवक-सुलभ स्वप्नों में है। पराजित मुसलमानों के प्रति सहृदयता, बड़प्पन की चाह नहीं, 'पटेल' मात्र कहलाने में संतोष और इब्राहीम 'गार्दी' जैसे देशभक्त, परिपक्व सेनानी की गतिविधि की निरख-परख माधव के भावी स्वरूप के द्योतक हैं।[2] अभी माधव मुखर नहीं, केवल परिस्थितियों पर उसकी प्रतिक्रिया लक्षित होती है। अभिमानी, अदूरदर्शी मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ द्वारा हितैषी जाट राजा सूरजमल के अपमान के समय माधव की चिन्ता, विकलता विवशता के निर्देश से यह तथ्य स्पष्ट है।[3] कुछ आगे चल कर माधव स्पष्ट शब्दों में युद्ध तथा सैनिक अनुशासन के प्रश्न पर भाऊ का उद्बोधन भी करता है।[4]

माधव गतकालीन गौरव या ग्लानि के फेर में रहने वाला व्यक्ति नहीं। 'वर्तमान' को सार्थक बनाने में वह दत्त-चित्त है। जब वर्तमान सुफल होगा तो भविष्य का उज्ज्वल होना अवश्यंभावी है।[5] माधव ने अपने युग की समस्या को परखा है। देश की रग-रग में व्याप्त स्वार्थ और अहङ्कार के विष के कारण पारस्परिक फूट तथा विदेशी आक्रमकों के प्रति वह सजग है। वह

१. **माधव जी सिंधिया**—पृ० ५
२. पृष्ठ—४५, १३२-१३३, १८३, २५५ से २५७
३. पृष्ठ—२११ से २१३, २१५, २१७ से २२०
४. पृष्ठ—२३८, २३९
५. पृष्ठ—४२३

भारत के अन्तर्संङ्गठन के महत्व पर बल देता है ; शक्तिशाली मराठे जाटों, राजपूतों आदि को लूट-पीट कर अपना शत्रु न बनायें वरन् सहयोग से भारतीय शक्तियों के संघ—'स्वराज्य'—की स्थापना करें। इस संघ का संरक्षक, केन्द्रीय सत्ता दिल्ली का मुगल बादशाह हो और दक्षिण का पेशवा प्रधान संचालक हो। मुसलमान, जो भारत को स्वदेश समझते हैं, बिना हिचक के साथ लिए जाएँ। ऐसी संगठित भारतीय शक्ति ही अँग्रेजों जैसी विदेशी घोर घातक आक्रमणकारी विपत्ति का सामना कर सकती है। साथ ही, सर्वहारा वर्ग—किसान, मजदूरों—का शोषण त्यागकर उन्हें सशक्त बनाया जाए। माधव की यह धुन जीवन-पर्यन्त रहती है। वह मरते समय भी अपने इस लक्ष्य को आँखों से ओझल नहीं होने देता। माधव गम्भीर विचारक के अतिरिक्त कुशल प्रबन्धक है। देश में सुशासन की स्थापना के हेतु पदों को मौरूसी न रखकर योग्यता के आधार पर दिए जाने के पक्ष में हैं। वह लोगों को गाँवटी पंचायत, जाति, वर्ग-उपवर्ग आदि के संकीर्ण दायरों से बाहर निकाल उनमें राष्ट्रीय भावना फूँकने के पक्ष में है। उसका उद्देश्य 'राज्य' स्थापित कर सुख भोगने का नहीं, स्वयं को जनता के सुख का साधन बनाये रखने का है। सफल सेनानी माधव के मत में सैनिक देश का प्रहरी है, शत्रु से लड़ते समय उसे अन्धकार में न रखा जाए। उसे लड़ाई का उद्देश्य स्पष्टतया मालूम हो। वह उद्देश्य ऊँचा हो और स्फूर्तिदायक।[1]

माधव स्वतन्त्र दृष्टिकोण का व्यक्ति होने पर भी तत्कालीन समाज की दुर्बलताओं से अछूता नहीं है। वह बहुपत्नी-प्रथा का प्रबल पोषक है। उसने तीन विवाह किए हैं। पानीपत में मराठा-पराभव एवं स्वयं घायल होने के बाद पुनः एक और विवाह करता है।[2] स्त्री को भोग्या मात्र समझने वाले माधव तथा गन्ना के मध्य प्रणय-सूत्र की स्थापना कर उपन्यासकार ने माधव की हृदयगत कोमलता का निर्देश किया है। गन्ना माधव को गुनीसिंह, पुरुष, के वेश में मिलती है। यहाँ माधव का गन्ना के प्रति आकर्षण स्त्रीगत नहीं मित्रगत स्नेह है, हृदय की स्निग्धता मात्र। गुनीसिंह का रहस्योद्घाटन होने पर माधव में वासना का ज्वार नहीं उठता, वह स्थिर है। उसे अभागिनी गन्ना से सहानुभूति है और उसके प्रति निष्कपट प्रेम का भाव है। कहता है, '···(गन्ना) बबूला नहीं है, प्रकाश बिन्दु है। माधव के प्यार में ओछापन कभी नहीं पाओगी गन्ना। अपना गायन माधव को सुनाती रहना और माधव के माधव

१. दे० पृष्ठ—३६६, ३७३, ३९०, ४३८, ४७४, ५३२, ५३६, ५३९ से ५४१, ५६५, ५७६
२. पृष्ठ—२८४, २९६

को।'—और दोनों के सांसारिक संघर्षों को झेले हुए प्रौढ़ हृदय परस्पर समीप आते हैं, शारीरिक संतोष की अपेक्षा आत्मिक नैकट्य और तृप्ति की खोज में।

माधव बहु-विवाह, प्रौढ़ता, निरन्तर संघर्ष एवं विरोध-सहन के कारण अत्यधिक गम्भीर और स्थिरप्रायः हो गया है। कहीं-कहीं उसकी यह स्थिरता शिथिलता की द्योतकता के साथ युग के विरोधी तत्वों से टक्कर लेने में अक्षमता की सूचक है। किसी साधारण फकीर की षड्यन्त्रकारी सभा में भेद लाने के लिए अकेली अबला गन्ना को जाने की अनुमति दे देना माधव की अदूरदर्शिता, शिथिलता की सूचक है। गन्ना के न लौटने तथा विवश हो मर जाने पर माधव की असमर्थता, असाधारण ठंडक की देन है। बाद में वह अपनी प्रकृति की चहारदीवारी के भीतर बन्द, आत्म-मग्नप्रायः हो जाता है। विद्रोहों-विरोधों से टक्कर लेते समय और गुलाम कादिर, हमदानी जैसे दुष्टों को तत्काल दण्डित करने के प्रश्न पर मर्म्माहत माधव जड़वत् रह कर 'शक्तिहीन' (स्पेंट अप फोर्स) मात्र जान पड़ता है। इसी असमर्थता के कारण मल्हार के हाथों विषमय पान खा कर प्राण त्यागता है।—वर्माजी ने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक माधव के चरित्र को उभारने का प्रयत्न किया है। जहाँ कहीं माधव असमर्थ है, शिथिल है वहाँ भी उसके चरित्र की व्याख्या कर उसके गुणों को उजागर किया गया है। इस प्रकार उसके चरित्र-चित्रण में प्रत्यक्ष के साथ नाटकीय विधि का मिश्रण है।

गन्ना बेगम युग की बेड़ियों में असमर्थ भावुक युवती है। किसी सहृदय प्रिय को सर्वस्व अर्पित करने के लिए आतुर है। कल्पनाशीला, रसिका होने के कारण लीलामय कृष्ण कन्हैया तथा उसके गीत गाने वाले (जन्म मात्र से मुसलमान) गन्ना के हृदय के अधिक समीप हैं। वह बाँके जाट राजकुमार जवाहरसिंह की पहली झलक पर मुग्ध हो हृदय दे बैठती है। उसे हिन्दू धर्म 'खूबसूरत' लगता है, उस धर्म को ग्रहण करना सौभाग्य समझती है।[१] गन्ना की इस प्रवृत्ति का विकास नूरबाई (टूटे काँटे) में प्रत्यक्ष है। नूर जन्म से मुसलमान और कर्म से वेश्या है किन्तु उसे वृन्दावन-कन्हैया प्यारे हैं।

गन्ना हृदय से जवाहर की होकर भी बलात् वजीर शिहाब से विवाह होने पर शरीर से 'पति' नामधारी कामी दैत्य की है। जवाहर के प्रति उसकी लगन अटूट है और जब अथक प्रयत्न के फलस्वरूप वह मंजिल पर पहुँचने को होती है तो सामन्तयुगीन उद्धत पुरुष जवाहर का नग्न स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। जवाहर को सुरा-सुन्दरी की हवस है, उसके समीप गन्ना प्रेयसी नहीं

१. पृष्ठ—८२

इच्छापूर्त्ति की साधन मात्र है। भ्रम-विहीना, भग्न-हृदया गन्ना गुनीसिंह के वेश में अपने डूबते जीवन, टूटते हृदय को माधवजी सिंधिया को सौंप तिनके का सहारा लेती है। माधव के गम्भीर, शीतलप्रद व्यक्तित्व पर मुग्ध हो माधव और उसके उद्देश्य की रक्षार्थ प्राणों पर खेलती और अन्त में प्राणों से हाथ भी धो बैठती है।

माधव गन्ना के समीप प्रिय पुरुष या आश्रयदाता मात्र नहीं है वह उसकी श्रद्धा, स्नेह एवं तन्मयता का पात्र है। गन्ना ने माधव में अपनी आत्मा का विकास पाया है। माधव इष्ट है तो गन्ना उसकी साधिका, गायिका! गन्ना के लिए 'माधव' के साढ़े तीन अक्षरों में अपने प्रिय और व्रज के माधव की युगल मूर्ति का साक्षात् दर्शन है। यही भावना 'टूटे काँटे' की नूरबाई में द्रष्टव्य है, वह 'मोहन' के साढ़े तीन अक्षरों में प्रिय और व्रज के मोहन का तादाम्य पाती है। प्रिय के माध्यम से प्रभु तक उड़ान वर्माजी के लिए नयी नहीं है। वर्माजी के स्त्री पात्रों का विश्लेषण करते समय कह आये हैं कि उनके दिवाकर (गढ़ कुण्डार) और कुञ्जरसिंह (बिराटा की पद्मिनी) क्रमशः अपनी प्रेयसियों तारा तथा कुमुद में दैवी झाँकी पाते हैं। उनकी प्रेयसी साधारण नारी नहीं देवी—इष्ट देवी—है। वहाँ साधक पुरुष है तो यहाँ नारी। गन्ना और नूर दोनों अपने गत से त्रस्त हैं, समाज और पुरुष द्वारा दलित, भावुक और भविष्य को सुधारने की इच्छुक। जो उनका आश्रयदाता, प्रेरक और पथ-दर्शक पुरुष—साधन—है साध्य 'कन्हैया' तक पहुँचने का, वह साधन शनैः-शनैः साध्य 'मोहन' या 'माधव' के समान आत्मीय बन जाता है। साधन और साध्य एक हो जाते हैं।

गन्ना का सुख-स्वप्न टूट जाता है। घृणित शिहाब के हाथों पुनः पड़ जाने पर उसकी वासना का छुद्र उपकरण बनना उसे अब सह्य नहीं है। माधव-पियूष के पान के बाद इस कीचड़ से गन्ना को क्या लेना! उसे केवल रट है, 'मो प्यारो माधव कहाँ, मोहि बताओ बिसेखि।' और स्वेच्छा से प्राण त्याग देती है।

गन्ना सामन्तयुगीन त्रस्त, पददलिता नारी की प्रतीक है जो तथाकथित पति की क्रीत दासी और लोलुप प्रिय के मन-बहलाव की सामग्री मात्र है। यहाँ तक अत्याचार गन्ना मूक, सिर झुकाए सहती है। शिहाब के हरम में सपत्नी उम्दा के उच्छृङ्खल, विद्रोही व्यक्तित्व से प्रोत्साहित हो उसमें पौरुष, आत्म-निर्भरता का तत्त्व जाग्रत् होता है। अब फिर वह स्वयं परिस्थितियों का निर्माण कर अपना भविष्य बनाती है।

शिहाबुद्दीन मध्ययुगीन चरित्रहीन कुकर्मी कूटनीतिज्ञ सरदारों का प्रतीक

है। उसके कुटिल व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि का मनोवैज्ञानिक संकेत प्रारम्भ में मिलता है। शिहाब कंजूस और अविवेकी पिता का पुत्र है, बचपन में उसे 'धर्म' के शिकंजों में कसा गया है। स्त्री मात्र के संपर्क से उसे दूर रखा गया है। स्त्री के प्रति तृष्णा, अतृप्ति उसके अन्तर मे घोर हवस और विकृति बन कर पैठ गयी है। स्त्री-निषेध के फलस्वरूप उसका बाल-सहज सौन्दर्य-मोह उसे धर्म से खींचकर शरीर को सजाने-संवारने में लगाता है। वह स्त्रीत्व को अपने पुरुषत्व पर आरोपित कर लेता है।[1] शिहाब का बालपन कठमुल्लाओं की दबोच में रहने के कारण उसकी कोमल नैतिक भावनायें सूख गयी हैं और मन अस्वाभाविक रूप से नियंत्रित हो जाता है। उसके मन का यह नियंत्रण, यह एकाग्रता स्वार्थ पर लक्षित है। वह स्वार्थ-केन्द्रित है, लूट-खसोट, हत्या, जाल-फ़रेब, कृतघ्नता आदि को सफलता के स्वाभाविक साधन मानता है।[2] क्षुद्र स्वार्थ के कारण वाक् संयमी कुशाग्र-बुद्धि शिहाब अदूरदर्शिता तथा षड्यन्त्रों का पुतला है।

पन्द्रह-सोलह का विषबुझा यह किशोर अपनी कुटिलता से बड़ों-बड़ों को चुटकी में भूमिसात् कर देता है। वजीर सफदरजंग के यहाँ 'धरना' देकर जिसकी सहायता से मीरबख्शी बनता है उसकी जड़ें काट कर भगाता है। फिर बारी आती है सलाहकार-उस्ताद की, उसका वध कराता है और बादशाह अहमदशाह को खंजर के घाट उतारता है। खुशामद, मक्कारी में उसका कोई सानी नही। फकीर शाहवली जैसे निस्पृह, रूखे व्यक्ति को फुसलाना उसका बाँयें हाथ का खेल है।[3] अहमदशाह अब्दाली के भारत-आक्रमण के अवसर पर रक्षा का कोई चारा न देख उसी की छावनी में हरम सहित जा पहुँचता है और अब्दाली जैसे निर्दय आक्रमक से अपने प्राणों और स्वार्थ को सुरक्षित रखने में सफल होता है। दिल्ली का वज़ीर होते हुए भी जब-तब किले को लूटने-खसोटने में कभी पीछे नहीं रहता।

घटना-चक्र में पड़कर कापुरुष शिहाब वज़ारत के वैभव और गन्ना के विलास से वंचित हो कुंठा, कटुता से भर उठता है। दुराशाग्रस्त हो उम्दा बेगम की स्वयं हत्या करता है और गन्ना की मृत्यु का कारण बनता है।

कुछ विशिष्ट (टिपिकल) पात्र चारित्रिक विलक्षणता की दृष्टि से यहाँ उल्लेखनीय हैं। भारत निवासी किन्तु हृदय से परदेशी क्रूर, लुटेरा **नजीब खाँ** वंचक रुहेला सरदार है। अवसरवादिता और स्वार्थ को येन-केन-प्रकारेण

१. पृष्ठ—२, ३
२. पृष्ठ—१६
३. पृष्ठ १००, १०१

पूरा करने के हठ से युक्त है। प्रारंभ से अन्त तक भारत को लुटेरे और पीड़क की दृष्टि से देखता है। अब्दाली के भारत-आक्रमण में उसका विशेष हाथ है। वह मराठा-पराभव के बाद उनके सरदारों पर अमानुषिक अत्याचार करा अपने अन्तर के पशु को साक्षात् कर देता है। **इब्राहीम खां 'गार्दी'** जैसे देशभक्त मुसलमान सजग सेनानी का उदय उस सार्वजनिक पतन के युग में एक अपूर्व घटना है। गार्दी ने फ्रेंच-भाषा के माध्यम से तत्कालीन योरोपीय सजगता, सक्रियता को हृदयंगम किया है। फ्रांसीसी जनरल के साथ काम करने के फल-स्वरूप विचारधारा और कर्म में भारतीय जन से कहीं आगे है। वह सेना के मिथ्या आडम्बर-प्रदर्शन के पक्ष में नहीं; सच्चे सैनिक को भरपेट भोजन, रात का आराम और मन का काम मिलना चाहिए, बस ! सेना संगठित और अनुशासित हो। इब्राहीम योग्य सेनानी के अतिरिक्त राष्ट्र-प्रेमी विचारक है। वह 'हिन्दुस्थानी मुसलमान है, कोई लुटेरा सरहद्दी नहीं।' स्वामि-भक्ति से बढ़कर उसके लिए और कोई भक्ति नहीं। वह किसी भी मूल्य पर आक्रमक अब्दाली का साथ देने को तैयार नहीं। भूमि के भूखे जो हिन्दू और मुसलमान अब्दाली से जा मिले हैं उनका मनोविश्लेषण करते हुए कहता है—'''इनका भी इतना क़सूर नहीं है जितना हमारे मुल्क की जागीरदारी, जिमींदारी और मंसबदारी का चलन है। उखड़े हुए ज़मींदार हमला करने वाले परदेसी दुश्मन से जा मिलते हैं।'[१] आगे चलकर वह अब्दाली को स्पष्ट उत्तर देता हैं—'''जो अपने मुल्क के साथ घात करे, जो अपने मुल्क को बरबाद करने वाले परदेसियों का साथ दे, वह मुसलमान नहीं है।'[२] उसके मत में क्या राम ख़ुदा और ख़ुदा राम नहीं है ! गार्दी के इन प्रगतिशील विचारों को अब्दाली सरीखे संकीर्ण-स्वार्थी समझने में असमर्थ हैं। वे उसे 'फ़िरंगियों का शागिर्द', 'काफ़िरों का क़ायल' और 'कुफ़' बकने वाला कह कर क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतारते हैं।

सदाशिवराव भाऊ भावुक अदूरदर्शी सेनापति है, मिथ्याभिमान उसकी रग-रग में है। शक्ति-मद से मत्त मराठे भाऊ के ऐश्वर्य-प्रदर्शन के थोथे प्रयास हायास्पद हैं। छावनी के राजसी ठाठ तथा मराठा-ध्वज के फहराने आदि जैसे निरर्थक प्रसंगों पर केन्द्रित रहना उसे रुचिकर है। अपने वाचाल असंयम से हितैषी जाट-राजा सूरजमल और मराठा सरदार मल्हारराव की सहानुभूति खोता है। उसके कुप्रबन्ध के कारण मराठी सेना ग्रस्त-व्यस्त हो भाऊ की खीज बढ़ाती है। अन्त तक शत्रु को हेय समझ कर स्व-गर्व में खोया रहता है।

१—**पृष्ठ २५६, २६५**
२—**पृष्ठ २७७, २७८**

अब्दाली से टक्कर लेते समय संभल नहीं पाता और भतीजे विश्वासराय की मृत्यु के समाचार पर पागलों जैसा लड़ता हुआ सेना को उसके भाग्य पर छोड़ मारा जाता है। पेशवा बालाजीराव की पत्नी **गोपिकाबाई** अपने उद्दण्ड मरदानेपन के लिए उल्लेख-योग्य है। अधेड़ अवस्था की, सुन्दर आकृतिवाली। कापुरुष पति के नियन्त्रण के अभाव में स्वयं को पुरुष समझ उठने के कारण उसका चेहरा-मोहरा पुरुष जैसा हो चला है। स्वर प्रखर, नेत्र तीक्ष्ण, स्वभाव पर नियन्त्रण नाम मात्र का। पति पेशवा को बात-बात पर झिड़कती है; राजनीतिक षड्यन्त्रों-गोष्ठियों में भाग लेना रोब जमाना उसका परम अधिकार है। गोष्ठियों में उसकी उद्दण्डता, डाट-डपट देखते बनती है।

वातावरण

'माधव जी सिंधिया' का सम्बन्ध भारतीय अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से है। इस काल में मुगल-साम्राज्य अन्तिम साँसें गिन रहा था; दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता छिन्न-भिन्न हो चुकी है। किसी सबल शक्ति के अभाव एवं सरदारों-सामन्तों के घोर चारित्रिक पतन के फलस्वरूप विशृङ्खलता, अव्यवस्था का बोलबाला है। दिल्ली में बादशाह पौरुषहीन होकर 'हिजड़ों-कुँजड़ों' के घरेलू षड्यन्त्रों में कठपुतली मात्र बन गया है। शहर के मुसलमान ही आपस में लड़ते नहीं अघाते, कहीं शिया-सुन्नी का झगड़ा तो कहीं हिन्दुस्तानी-ईरानी, तूरानी का फ़साद। पड़ोस के जाटों, गूजरों, अहीरों ने सिर उठाया और लूट-मार में लग गये। बिहार, बङ्गाल से दिल्ली को कोई मालगुजारी प्राप्त नहीं होती। पंजाब अब्दाली की दबोच में जा रहा है, इलाहाबाद के सूबे पर पठानों रुहेलों के दाँत हैं और गुजरात-मालवा को मराठे दाबते आ रहे हैं। दक्षिण में निजाम-मराठों का द्वन्द्व और राजस्थान में रजवाड़ों का पारस्परिक तुमुल संघर्ष। चारों ओर मार-काट आपा-धापी की भीषण आग लगी हुई है।[1]

दिल्ली-पतन की इस घड़ी में दक्षिण में मराठा-शक्ति का उदय हो चुका है। मराठों का प्रभाव भारत के दक्षिण से उत्तर तक फैल गया है। ये पेशेवर योद्धा मुगल बादशाह के निमन्त्रण पर उत्तरी भारत की द्रोही शक्तियों को कुचलने जा पहुँचते हैं और रजवाड़ों के पारस्परिक झगड़ों में किसी न किसी का पक्ष लेकर लड़ना, धन वसूल करना, लूटना इन का नित्य का धन्धा है। दक्षिण में इनका चिर शत्रु निज़ाम है, उससे प्रायः युद्ध होते रहते हैं। साथ ही आंतरिक संघर्ष इस शक्ति में घुन की भाँति लग गया है। स्वार्थी भूमिपिपासु मराठा सरदार तत्कालीन मराठा-नायक पेशवा से निरंतर जूझते रहते

१—**माधवजी सिंधिया** – पृ० २५ से २६

हैं। कभी छूत-अछूत का प्रश्न तो कभी ब्राह्मण-अब्राह्मण का वर्ग-विद्वेष।[1]

यहां 'मराठा'-चरित्र पर प्रकाश डालना युक्तिसंगत होगा। मराठे कठोर प्राकृतिक प्रदेश के निवासी होने के कारण स्व-अस्तित्व-रक्षा में सङ्घर्ष-रत, आत्म-निर्भर एवं स्वाधीन-प्रकृति बन गये हैं। दारिद्रय ने उन्हें पतित नहीं कर्मठ बनाया. निरन्तर सङ्घर्षों ने साहस प्रदान किया। इस कर्मठ जाति में पारस्परिक समता का भाव रहा, इनकी लड़ाकू प्रवृत्ति को महाराष्ट्रीय सन्त, महात्माओं ने भक्ति से नवाया। मराठों ने दुःखियों के लिए त्याग किया और अत्याचारी के लिए अपने भाले की नोंक तैयार रखी। मुसलमानों के अत्याचारों और जन-पीड़न ने इनमें चुस्ती-चालाकी और अवसरवादिता पैदा कर दी। समस्या का अविलम्ब हल निकालना और हल को तुरन्त कार्य-रूप में परिणत करना इन्हें कठिन न रह गया। हार को क्षणिक मानना और अवसर पाते ही तत्क्षण उसे जीत में परिवर्तित कर देना बायें हाथ का खेल हो गया। एशिया भर की वीर-साहसी कौमों में इनका अधिकतम सादृश्य अफ़गानों से है। हाँ, ये वैसे बर्बर और निर्दय नहीं हैं। शिवाजी ने मराठों को संगठित कर शक्तिशाली बनाया किन्तु बाद में सत्ता और नेतृत्व ब्राह्मण पेशवाओं के शिथिल हाथों में चले जाने पर मराठों में ऊँच-नीच का भेदभाव बढ़ गया। स्वार्थ, ईर्ष्या और पर-जीवियों की बाढ़-सी आ गयी। ज़मीन और धन की लूट-मार सब का उद्देश्य बन चला।[2] शक्ति प्राप्त कर मराठों में मुग़लों की नकल पर टीमटाम द्वारा सत्ता-प्रदर्शन का रोग आया।[3] उन्हें रुपयों का अभाव खटका विलास-पूर्ति, पारस्परिक झगड़ों और सैनिक संगठन के लिए। और अखिल भारतीय हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न कल्पना में होने के कारण उन्होंने भारत में अत्यन्त तीव्रगति से विस्तार किया। इस तीव्र प्रसार में व्यवस्था को स्थिरता देना टेढ़ी खीर था। सामाजिक दोष अव्यवस्था की अनुकूलता पाकर फले-फूले और शेष भारत मराठों की लूट-मार, नोंच-खसोट से विषावत हो उठा।[4] सैनिक-वृत्ति महाराष्ट्रीय युवक की प्रवृत्ति के अनुकूल होने के कारण दशहरे के बाद फ़सल कटने पर वे सिपाही बन जाते हैं। उन्हें छावनी के नियम-संयम से अरुचि है और लूट-मार की लपक। सिपाहीपन से उनकी लुटेरा-वृत्ति तुष्ट होती थी और घर पर सरदार या लगान वसूल करने वालों

१—पृष्ठ ११, १२
२—पृष्ठ ४०, ४१, २२
३—पृष्ठ १८६, २६३, २६४
४—पृष्ठ ३१

के पंजे से सुरक्षित रहते थे।[1]

इस युग में भारतीय उत्पादन-कृषि का मुख्य साधन और देश में अत्यधिक त्रस्त प्राणी किसान है। किसान अपने अल्प साधनों द्वारा प्राकृतिक प्रकोपों एवं राजकीय-विदेशी अत्याचारों की चक्की में पिस कर ज्यों-त्यों कुछ पैदा कर पाता है। अपनी मेहनत सभी लोगों द्वारा लूटे जाने पर भी कुट पिट कर किसी प्रकार साँस लिये जा रहा है। उसी निरीह के बूते पर साधु-सन्त, निकम्मे नीच राजा-नवाब तथा महत्वाकांक्षी योद्धा मौज-मजा कर रहे हैं। इस सब का मूल कारण है शक्तिशालियों का क्षुद्र स्वार्थ। सरदारों, सामन्तों की घोर भूमि-विभुक्षा। बिगड़े नवाबों, उजड़े राजाओं का शरणार्थी-रूप में लूट करते हुए घूमना। बे-घर-द्वार साधारण जन का अन्ततोगत्वा उस अराजकता में सम्मिलित हो चाँदी के टुकड़ों के लिए अपनी सेवा-वीरता बेचना।[2] दृढ शासन और प्रेरक नायकत्व के अभाव में लूट-मार और जागीरदारी जन-मन में गहरी जड़ें पकड़ती गयी। व्यक्तित्व और बापौती की धारणा इतनी प्रबल हो गयी कि उसके सामने धर्म, देश, समाज सब तुच्छ हो गये।[3] स्वार्थ-साधक समाज-संचालकों की देन से भारतीय समाज में घोर वर्ग-मोह, जाति-पाँति के झगड़ों को महत्वपूर्ण स्थान मिला। हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक घृणा जग उठी। मुसलमानों के साथ था दंभ और आतङ्क तथा हिन्दुओं के पल्ले में पुरातन स्मृतियाँ और स्मारकों की थाती थी। इस प्रकार उक्त अनवरत द्वन्द्व का हृदयगत मोर्चा भी बंध गया।[4]

इस विपद काल में उत्तर भारत का किसान यदि चुपचाप खेती कर ले और मन्दिर में कुछ क्षण पूजा तो मानो राजनीति तथा शासन-व्यवस्था का चरम आदर्श प्राप्त हो गया। बादशाह बड़ा वह जो इस व्यवस्था को बनाये रखे। आलीशान महल बनवाये और अपने सरदारों, रिश्तेदारों को विद्रोह न करने दे भले पर-जीवी, पर-भोगी कितने ही बढ़ जाएँ।[5] घोर अव्यवस्था के बीच अहमदशाह अब्दाली का भारत-आक्रमण और रक्तपात भारतीय चरम दुर्गति का सूचक है। ब्रज के निरीह जन आक्रमकों की तलवारों की घाट उतरते

१—पृष्ठ ३४० तथा महाराष्ट्रीय मनोवृत्ति के विस्तृत परिचय के लिए देखिए 'माधव जी सिंधिया' के पृष्ठ ११४, ११५, ११७, १२३, १२४, १४१, १८१, १८६, २५४, २६०, २६४, ३७२।

२—पृष्ठ ४४४

३—पृष्ठ ३७२

४—पृष्ठ ४४४

५—पृष्ठ ४१, ४३

मिटते हैं। हिन्दू स्त्रियाँ परम्परानुसार डूब कर, विष खाकर प्राण त्यागती हैं। इन लोगों का पुरुषार्थ कण्ठी-माला तक था, भक्ति और शक्ति के समन्वय का यह अभाव उन्हें ले बैठा। यहाँ के मुसलमान भी अत्याचार की आग में जल मरे।[1] इस प्रकार के आक्रमण के बाद मुसलमान सरदार और हिन्दू सामन्त यथावत् जमीन और सम्पत्ति के अपहरण में लीन हो जाते थे। जले मकान और वीरान गाँवों को जिन किसानों ने आबाद किया, वे लूटे गये और वे स्वयं भी उदर-पोषण के लिए एक-दूसरे को लूटने लगे। साम्राज्य (?) की राजधानी दिल्ली की और भी दुर्दशा थी। हथियार-बन्द गुण्डे दिन-दहाड़े किसी भी घर में घुस कर जो चाहा उठा लाते। दिन में दस-पाँच का जत्था भी बिना लुटे-पिटे एक स्थान से अन्यत्र न जा सकता था।[2]

इस राजनीतिक-विपद तथा आर्थिक-विपन्नता के दुष्काल में समाज त्रस्त हो त्राहि-त्राहि कर रहा है। कदाचित् इसी कारण उपन्यासकार को तत्कालीन रीति-व्यवहार, त्योहार आदि के परिचय प्रस्तुत करने का अवसर नहीं मिला है। मराठों के अवसरवादी आक्रमणों, रक्त भरे युद्धों तथा निकम्मे राजनीतिज्ञों के षड्यन्त्रों के तुमुल अन्धड़ में समाज का सलोनापन अन्तर्हित हो गया है।

प्रकृति

'माधव जी सिंधिया' में युद्धों, राजनीतिक वर्णनों की भरमार के कारण उपन्यासकार को प्रकृति-पर्यवेक्षण के बहुत कम अवसर मिले हैं। ५७७ पृष्ठों के इस बृहदाकार उपन्यास में केवल १५ स्थलों पर प्रकृति-चर्चा आयी है, उसमें ११ स्थलों पर युद्ध-क्षेत्र आदि के प्रसंग में तत्कालीन ऋतु या वातावरण का निर्देश मात्र है। कहीं-कहीं प्रकृति का यह निर्देश संक्षिप्त होते हुए भी उपन्यासकार की सूक्ष्म पकड़ का द्योतक है। जैसे शरद ऋतु में फूल बहार पर हैं और यमुना का जल गदलेपन से स्वाभाविक नीलेपन पर आ रहा है फिर भी जल-धारा की मात्रा और वेग वर्षा-ऋतु जैसे हैं।[3] चार स्थलों पर प्रकृति में रस लेते हुए उसका प्रायः स्वतन्त्र रूप से चित्रण हुआ है।[4] फागुन के महीने में लौट-लौट कर आती ठंड, उतरते जेठ में तपती पहाड़ी के पास सूखी नदी, विकट जाड़े में हिमालय-श्रेणियाँ और सूर्यास्त से पूर्व पहाड़ी वन में

१—पृष्ठ ११९ से १२१
२—पृष्ठ १२९
३—पृष्ठ २३०
४—पृष्ठ १५१, ३३०, ४१३, ५६८

किरणों की छटा से ये दृश्य अनुप्राणित हैं। जाड़े का यह दृश्य उल्लेखनीय है जिसमें गति और स्पष्टता है।

'जाड़ा विकट था। दिन में कुहरा गंगा की तीव्र धारा के ऊपर से नाचता कूदता हिमालय की एक के पीछे दूसरी श्रेणी की चोटियों पर थिरकता। कभी रिमझिम और झिर झिर भी हो जाती। परन्तु रात में दमकते तारे और चमकती चाँदनी।' (पृ० ४१३)

वर्माजी की प्रकृति-चित्रण-कला के विकास एवं स्वरूप पर प्रबन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला जा चुका है, यहाँ अन्य कोई तथ्य विशेष उल्लेखनीय नहीं है।

जीवन दर्शन

'माधव जी सिंधिया' में गत युग का विशद चित्र प्रस्तुत कर वर्तमान को राष्ट्रीयता एवं स्व-अनुशासन का संदेश देना वांछित है। इस प्रयास में भूत के अग्राह्य, वीभत्स को उभार कर ग्राह्य का संकेत किया गया है। वास्तव में अग्राह्य तत्कालीन प्रायः सम्पूर्ण स्थिति है और माधव, गार्दी, रामशास्त्री जैसे पात्र ग्राह्य को इंगित करते हैं। परिस्थिति में ग्लानिमय अग्राह्य के बाहुल्य के कारण उपन्यासकार को प्रयत्नपूर्वक प्रत्यक्ष विधि से ग्राह्य या उद्देश्य को घोषित करना पड़ा है। उपन्यास में जीवन के प्रति उचित दृष्टि, अति स्वार्थ-परता से मुक्ति, एकता की भावना तथा सैनिक संगठन पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

जीवन जीने लिए—अच्छी तरह जीने के लिए मिला है। इसी सुखी जीवन के लिए जीवन को वास्तविक मान कर मनोयोग से उसका निर्वाह करना होगा। जो तत्सम्बन्धी समस्या सामने आएगी उसे सुलझाने के लिए तन-मन-धन की समन्वित शक्ति अपेक्षित है। जीवन को सरल, सुखमय बना कर भी उसके किसी अंग, किसी पक्ष में आसक्तिवश फँस कर रह जाना प्रगति नहीं, जड़ता का द्योतक है। जीवन जैसे अटल प्रश्न का अमिट उत्तर है मृत्यु। मरण को सफल, सन्तोषजनक बनाने के लिए मनुष्य जीवन सरलतापूर्वक निबाहे और उससे निस्पृह बना रहे। अतः जीवन का आदर्श उसके प्रति तन्मयता और निस्पृहता जैसे दो विरोधी तत्वों के समन्वय में निहित है।

उपन्यास के भारतीय जन में भक्ति और शक्ति के समन्वय का अभाव है। ब्रज-निवासी कंठी-माला में मानव-पुरुषार्थ की इति मान बैठे हैं। अब्दाली के रक्त-रंजित आक्रमण के समय ये व्यक्ति निरीह गौओं की भाँति बिना कोई प्रतिक्रिया किये, बे-मौत मारे जाते हैं। अरक्षिता स्त्रियाँ अत्याचारों के डर से

विष खा कर, फाँसी लगाकर, यमुना में डूब कर भार समान अपने प्राण त्यागती हैं। इस निरीहता, पौरुषहीनता का कारण इन लोगों का जीवन को क्षणिक, अवास्तविकता मात्र मान लेना है। जीवन की कठोर वास्तविकता सामने आने पर दीनता, असमर्थता ऐसे एकांगी दृष्टि वालों की सम्बल है। ईश्वर-भक्ति और स्व-नियंत्रण भले हैं किन्तु अस्तित्व रक्षा के लिए शक्ति-संचय भी जीवन की माँग हैं।[1]

जीवन जब तक है उसे वास्तविक मानना उचित है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कृष्ण भगवान ने ब्रज में जन्म लेकर लीलायें कीं। कमल, गुलाब का रूप-रस उपेक्षणीय नहीं उसका भी अपना महत्व है। वह क्षणिक नहीं क्षणिक से तात्पर्य मानव-जीवन की लम्बाई के अनुपात में इसके लाघव से है। सूखे पत्तों, काँटों—फूलों का, अपनी जगह पर सबका उपयोग है।[2] जीवन में रहकर उसे भोग कर भी उसमें डूबना नहीं है। जैसे आग में यदि हाथ न डाला जाय तो उससे अधिक उपकारी पदार्थ संसार में नहीं।[3] यही संतुलन माधव-गन्ना के संयमित प्रेम में द्रष्टव्य है। माधव के हृदय में गन्ना का सौन्दर्य अक्षुण्ण है। वह स्वयं कहता है—'वह चमत्कारपूर्ण पानी का बबूला थी; उसे मैं ने कभी नहीं बुझाया, आलोकमय ओस का कण थी जिसे मैं ने चपल दूर्बादल पर ही बना रहने दिया।' (पृ० ५५२)

जन-मन की अस्वाभाविक विरक्ति और शक्तिशालियों की स्वार्थ-मग्नता के कारण समाज का ढाँचा हिल उठा है। व्यक्ति की समानता और उसके समाज सापेक्ष महत्व की स्थापना से यह समस्या हल हो सकती है। शाहवली इसी समस्या को यथाशक्ति समझ कर शाह, सुल्तान, अमीर, राजा, रूपी बाधा को दूर कर आम लोगों की हुकूमत स्थापित करने की योजना बनाता है।[4] उक्त मार्ग में जागीरदारी प्रत्यक्ष बाधा है। इसके लोभवश व्यक्ति समाज का शत्रु बन जाता है। और, उखड़े भूमिपति स्वार्थवश देश, समाज का अस्तित्व भूल विदेशी आक्रमकों से जा मिलते हैं।[5] जागीर किसी की बापौती नहीं, प्रबन्ध-सुविधा की दृष्टि से जागीरदार के हाथ में राज्य की धरोहर मात्र है। प्रजाजन की व्यवस्था और शान्ति-सुख का भार उस प्रबन्धक पर है। जनता के नायक यदि अपने लिए जागीर और रियासत स्थापित करने की लालसा

---

१. **माधव जी सिंधिया**—पृ० ११६, १२०
२. पृ० ५५४
३. पृ० ५५०
४. पृ० १६४
५. पृ० २५०

त्याग दें तो शुभ हो। पुरानी बापौती, वैभव के खंडहरों का मोह लोगों को आकृष्ट कर प्रगति नहीं करने देता। इन खंडहरों को गिरा कर ऊपर नया भवन खड़ा करने में क्षेम है।[1]

पुरस्कार के रूप में भूमि-राशि का वितरण हानिकारिक है। इससे जन-नायकों में व्यक्ति-मग्नता बढ़ती है। दूसरी ओर किसान, मजदूर इनकी बेगार करते जीवन गवां देते हैं। समस्या समाज में परजीवी-वर्ग की वृद्धि को लेकर है। राजा-नवाब, भिखारी ये सब इसी वर्ग में हैं। दूसरों का धन खींचकर निकम्मे भिखारियों में गँवाना, हरिश्चन्द्र जैसे राजाओं की सूझ हो सकती है किन्तु समाज के लिए अहितकर है। मेहनत सब करें; प्रत्येक स्वस्थ पुरुष को नित्य आठ घंटे काम करने पर ही भोजन का अधिकार है।[2] इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए दृढ़ता अपेक्षित है। यश मिले या अपयश, धन और प्राण रहें या जायें किन्तु जो उचित है, न्याययुक्त है उसका मार्ग धीर व्यक्ति को न छोड़ना चाहिए।[3]

सामाजिक व्यवस्था को यह स्वरूप प्रदान करने के लिए माधव के मस्तिष्क में 'स्वराज्य' की योजना है। भारत की शक्तियों का एकीकरण और सामंजस्य करके शक्तिशाली एक संघ की स्थापना हो। अहिन्दू धर्मों एवं अहिन्दू जनों को हिन्दुओं के समान न्याय मिले। पद मौरूसी न हों केवल योग्यता के आधार पर लोगों को दिये जायें। लोग गाँवटी पंचायत, जाति, वर्ग-उपवर्ग की संकीर्ण पारधियों से बाहर निकल कर राष्ट्र का स्वरूप पहचानें। देश के 'स्वराज्य' की रक्षा के हेतु सुदृढ़ सेना की आवश्यकता है। सेना संगठित हो। सिपाहियों में परस्पर समान व्यवहार हो, वे लूट-मार से बचें। सिपाही को भर पेट भोजन और रात का आराम मिलना चाहिए। उससे कार्य केवल आतङ्क के बल पर न लिया जाय उसके मन को भी कार्य की ओर आकृष्ट किया जाय। उसका कार्य में मनोयोग तभी सम्भव है जब उसे लड़ाई के हेतु का ज्ञान हो, वह हेतु मोहक और ऊँचा हो।[4]

---

१. पृ० २९७, ३०१, ३०२

२. पृ०—२५७, २९९, ३४९, ३५०

३. पृ०—५०९

४. देखिए पृ०—४३८, ३४८, ४७४, ५६५, ५४०, ५४१, ३७३, २५३, ५३१, २५७, २३९, १८८, ५३२